THE BOOK WAS
DRENCHED

TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182796

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP 557 13-7-71 3000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H81.09 S24A Accession No H3195

Author शारस्वत, गोपालदत्त

Title आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा और प्रयोग · 1961 ·

This book should be returned on or before the date last marked below

आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग

(आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि के लिये स्वीकृत)

डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
इलाहाबाद

जून १९६१ मूल्य १५)

डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत
एम० ए० पी-एच० डी०
धर्म समाज डिग्री कालेज, अलीगढ

प्रकाशक
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
इलाहाबाद

मुद्रक
श्री राधेश्वर नाथ भार्गव
स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद

मूल्य पन्द्रह रुपये

प्रथम संस्करण—११००,
जून १९६१

परम्परा तथा प्रयोग का दर्शन

डॉ० सत्येन्द्र एम ए. डी लिट

"प्रयोग" जब बहुग्राहय हो उठता है और काल-क्रम मे दीर्घ इतिहास खडा कर लेता है तो वही परपराबद्ध हो जाता है। "प्रयोग" और "परपरा" मे वही अन्तर है जो "विन्दु" और 'रेखा' मे है। विन्दु एक प्रकार मे प्रयोग है, परपरा रेखा है। यद्यपि यह सत्य है कि एक विन्दु की परपरा ही रेखा है, फिर भी यह स्पष्ट है कि 'रेखा' प्रवृति और प्रकृति मे विन्दु से पूर्णतः भिन्न होत. है, केवल तत्वतः वे समान है।

साहित्य मे यह प्रयोग या विन्दु क्या है ? + हम सभी जानते है कि प्रयोग और परपरा की अवस्थिति मानव की प्रत्येक अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे मिलती है, वह चाहे कला का क्षेत्र हो, चाहे विज्ञान का, या कोई अन्य। अतः साहित्यिक प्रयोग को भी अन्य क्षेत्रो के प्रयोग के समान ही मानना होगा। तब "प्रयोग" की सीधी परिभाषा यही होगी कि यह "अभिव्यक्ति' का प्रथम सार्थक उद्रेक है। इस प्रकार "प्रयोग" और 'आविष्कार' की एक भूमि विदित होती है। आविष्कार किन्तु प्रथम उद्घाटन का प्रयोग है, जबकि पूर्वउद्धारित का नवीन उपयोग भी हो सकता है और ऐसा नवीन उपयोग भी "प्रयोग" ही कहलाता है। मूलतः प्रयोग और परपरा मे कोई विरोध नही। 'प्रयोग' ही दीर्घकाल की आवृति से परपरा मे परिणित हो जाता है। पर परपरा कुछ काल बाद उबाने लगती है और तब उस परपरा के विरुद्ध स्वर उभरता ह। यह स्वर एक परिभाषा मे स्वच्छन्दता का माना जाता है, क्योकि यह परपरा की सीमाओ को स्वीकार नही करता और बँधी-सधी सीमाओ मे बाहर अपना अस्तित्व सिद्ध करता है। इस स्थल पर यह स्वच्छन्दता 'प्रयोग' तो है, पर तत्कालीन परपरा के विरोध मे है। ऐसा स्वच्छन्दतावादी प्रयोग "परपरा से सबधित सामाजिक मनोवृत्ति का साहसिक उद्धार होता है। डॉ० गोपाल दत्त ने अपने ग्रथ 'आधुनिक हिन्दी काव्य मे परपरा तथा प्रयोग' मे पृष्ठ १८ पर डा० एच० वी० रूथ का एक उद्धरण यो दिया है :—

"कला को सदैव नवीन स्वरूप देते रहना चाहिये। उसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्यतत्व पर निर्भर रहता है। एक बार जब कलात्मक अभिव्यक्ति की पद्धति की नवीनता समाप्त हो जाती है तो पाठक या सहृदय उससे विमुख होकर अपने दैनिक कार्यो मे लग जाता है। कला या साहित्य मे वह एक नई दृष्टि खोजजा है, पर ऐसी बासी अभिव्यक्तियो मे उसे केवल स्थूल रूप का ही दर्शन होता है। इसीलिए किसी महान पुस्तक मे नवीनता द्वारा चकित कर

देने की शक्ति होनी चाहिये, जिससे पाठक प्रारभ मे ही आगे पढने के लिये उत्सुक हो जाय और उसे विश्वास हो जाय कि अनुभूतियाँ व्यापक और गभीर छवियो के निर्माण तथा कारयित्री प्रतिभा की क्रीडा की सामग्री मात्र है।"[१]

रूथ महोदय ने नवीनता और आश्चर्य का यह जोडा एक साथ करके उसे कला मे लाते रहने की सँस्तुति की है। आश्चर्य तत्व का सबध उन्होने नवीन से जोडा है। यह नवीनता लाना प्रयोग के अन्तर्गत माना जा सकता है। स्पष्ट है कि मात्र नवीनता प्रयोग नही मानी जा सकती। प्रयोग से नवीन की सीमा सकुचित है। नवीन केवल नयेपन के लिये है, प्रयोग ऐसा हो सकता है जो प्रयोग होकर भी नवीन न हो। किन्तु किसी भी नवीन वस्तु को प्रयोग कहा ही जा सकता है। नवीन के साथ भी विद्रोह या विरोध की भावना हो, ऐसी बात नही। नवीन एक भिन्न मनोवृत्ति का परिणाम है, परपरा विरोधी प्रयोग की मनोवृत्ति भिन्न भूमि रखती है।

नवीन मे 'नवीनता' होती है, यह नवीनता आश्चर्यप्रद भले ही न हो, पर नवस्फूर्तिप्रद अवश्य होती है। एक नवीनता ऐसी हो सकती है जो प्रयोग मे नित्य आये पर प्रतिदिन नवीन रहे। उषा का उदय प्रतिदिन होता है, उसमे प्रतिदिन नवीनता रहती है, अत नवीनता एक गुण है, वह प्रगोग मात्र नही। किन्तु कुछ समय तक एक नवीनतायुक्त प्रयोग भी प्रयोग कहा जा सकता है। अतः नवीन उस मनोवृत्ति का प्ररिणाम है जो नयी-नयी सृष्टि की उद्भावक होती है, यह निर्यामक वृत्ति है, इसके मूल मे निषेध, खडन या विरोध विद्रोह या ऊब नही होती। शुद्धतः यह मनोवृत्ति के positive पक्ष से सबधित है negative से नही। नवीन मे नवीन की ग्राह्यता के साथ किसी और की अग्राह्यता का भाव नही। अत. प्रयोग की भावना के लिए यह अत्यन्त ही श्लाध्य और शुद्ध प्रवृत्ति है।

"प्रयोग" के संबध मे डॉ० सारस्वत का अभिमत है :—

"प्रयोग मे नया आविष्कार करने का प्रश्न नही उठता। परिचित वस्तुओ मे सन्निहित सभावनाओ का उद्घाटन करना ही प्रयोग का उद्देश्य है। काव्य मे यही सत्य दृष्टिगोचर होता है। काव्य-वस्तु का आधार चिर-परिचित होता है, जिससे मानव-समाज प्रेरणा ग्रहण करता है। तथा जिसका मानव-हृदय से शाश्वत सबध होना है। रूस, मास्को, लालसेना एव लाल निशान

---

[१] डॉ० एच० वी० रूथः इग्लिश लिटरेचर एण्ड आइडियाज इन द ट्वेंटिएथ सेंचुरी, पृ० २।

के गीत भारतीय हृदय को स्पन्दित नही कर सकते, क्योकि इनके साथ उसका रागात्मक सबध नही है। प्रयोग की विशेषता यह है कि कवि प्राचीन वस्तु मे कल्पना का ऐसा रग देता है कि वह सर्वथा मौलिक एव नवीन दिखाई पडती है ,जिससे उसकी ओर सबका हृदय आकर्षित होता है। प्रयोग का अर्थ यही है कि कवि शाश्वत सत्य को नवीन परिस्थितियो के सदर्भ मे रखकर नये रूप मे उपस्थित करे। इसके अतिरिक्त प्रयोग का और क्या अर्थ है ?

:प्रयोग और परंपरा ।

काव्य-वस्तु का आधार चिर-परिचित होता है-यह सत्य परपरा के अस्तित्व की ओर एक विशेष रूप से सकेत करता है। इसमे कुछ यह आभास मिलता है कि वस्तु प्राचीन अर्थात् परपरा से प्राप्त होती है, उसी पर नये प्रयोग किये जाते है। इस प्रकार प्रयोग से ही परपरा नही बनती परपरा पर भी प्रयोग किये जाते है। यही नही परपरा और प्रयोग साथ-साथ चलते है। कभी वस्तु परपरा से मिलती है तो रूप और शैली प्रयोग से, कभी-कभी वस्तु "प्रयोग" से उद्भावित होती है तो रूप ओर शैली परपरा से।

दार्शनिक दृष्टिकोण से यदि देखे तो विदित होगा कि "प्रयोग 'व्यक्ति-वादी' मनोवृत्ति और मूल प्रयत्न से निबद्ध है, और "परपरा" 'व्यक्ति-समूह' निष्ठ है।

प्रयोग की प्रेरणा कई कारणो से होती है। आत्म-विस्तृति मे नयी-नयी भूमियो का उत्क्रमण नयी-नयी वस्तुओ से परिचित कराता है। मनः विस्तृति मे वे वस्तुएँ नयी-नयी भूमियो, रूपो और रगो से समन्वित हो उठती है। यह स्वाभाविक प्रतिभा है। पर सकल्प और हठ से भी प्रयोग को प्रेरणा मिलती है। कुछ प्रतिमाएँ सकल्पपूर्वक नये नये शब्दो का, कल्पना-रूपो (images) का, वाक्य-विन्यासो का, तथा अर्थ-भ्रान्तियो का निर्माण कर "प्रयोग" को महत्त्व देते है। ये प्रयोग साहित्य मे नव-सर्जन के प्रेरक होते है। कुछ प्रयोग मात्र प्रयोग के लिए, प्रयोग के शौक के लिए भी किये जाते है।

प्रयोग किसी भी कारण से किया गया हो, वह प्रगतिशील स्थिति से स्थापकता प्राप्त करने मे ।किसी सीमा तक सहायक होता है। यह इस प्रकार आत्मा ओर मन की काल के माध्यम से विस्तृति के परिणामो से अनुकूलता पैदा करता है। समय की प्रगति के साथ मानव का विकास होता चलता है, उसके भावो मे, विचारो मे, ज्ञान मे सवर्द्धन परिवर्तन होता चलता है। उसकी अन्तर्दृष्टि के समक्ष एक अज्ञात लोक उद्धरित होता चलता है, उसके समक्ष यह समस्या उपस्थित होती है कि वह इन अनुभूतियो को किस प्रकार अभिव्यक्त करे। उसका अब तक का शब्दकोष उसके लिए अपर्याप्त सिद्ध होता है। वह

एक प्रयत्न तो यह करता है कि ज्ञात शब्दो मे ही उनके नये प्रयोग से नया अर्थ भर जाये ऐसा तभी होगा जब परपरा से प्राप्त शब्द के अर्थ मे ही कोई विकार कर देने से काम चल सकता हो। किन्तु जब अनुभूति कभी कभी सर्वथैव 'शब्दातीत' होती है, उसके लिए वह कभी यो ही कोई शब्द प्रस्तुत कर देता है। अर्थ-विकास मे इसी प्रकार कभी किसी अन्य क्षेत्र का शब्द किसी अन्य क्षेत्र मे एक विशेष अर्थ पैदा कर देता है। 'मीठा दर्द' मे मीठा शब्द इस प्रयोग का ही एक उदाहरण है।

सक्षेप मे यह स्पष्ट है कि "प्रयोग" मानव की प्रगति का द्योतक है, उसके लिए अनिवार्य है। साहित्य मे प्रयोग इसी प्रकार मानव-विकास के साहित्य के विकास का द्योतक है।

किन्तु जब हम प्रयोग और परपरा को अलग अलग देखना चाहते हैं तो हमे देखना होगा कि 'प्रयोगो मे' ऐसे कौन से है जो अपनी एक दृढ परपरा नही बन सके, जो इतने सीमित रह गये कि 'प्रयोग' की सज्ञा के ही अधिकारी रह गये। साथ ही "परपरा" के स्वरूप को देखते हुए उससे आलिगित प्रयोगो को भी अलग दिखाने की अवश्यकता होगी।

परपरा किस प्रकार समय की प्रगति का साथ न देकर उससे अलग सी होकर एक मदधारा बनकर चल रही है, यह देखते हुए भी देखना होगा कि समय समय पर इसी अभाव की पूर्ति के लिए उसमे क्या क्या प्रयोग किये गये है। परपरा प्रगति से विच्छिन्न होकर भी क्यो जीवित है, इसका अध्ययन भी अपेक्षित होगा। उसमे ऐसे कौन से शाश्वत-तत्व है जो उसे अमर बना रहे है। भले ही हम पहली स्थिति मे शाश्वत तत्वो के विश्लेषण मे प्रवृत्त नही, पर हमे अपने साहित्य और उसके अग-प्रत्यग के प्रत्येक तत्व मे प्रयोग और परपरा को समझ लेने की आवश्यकता है। इससे मानव की उन दोनो ही वृत्तियो के स्वरूप के साहित्यिक परिणाम का ज्ञान हो सकता है, जो प्रयोग और परपरा के लिए दायी है। दीर्घ परपरा ही हमारी मूल मनोभावो को प्रकट करती है, प्रयोग किसी भी जाति की व्यक्तिगत प्रतिभा की गरिमा सिद्ध होती है।

फलत: किसी भी साहित्य के प्रयोग और परपरा का अध्ययन उसके इन्ही दोनो पहलुओ के मर्म का अध्ययन है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक दीर्घकाल मे फैला हुआ, यह कम से कम १० शताब्यिो का काल है। इसमे न जाने कितने राजनोतिक और ऐतिहासिक परिवर्तन हुए, भारत भूमि का न जाने कितने अन्य विस्तृत दूरस्थ

भूभागो से सपर्क हुआ। पाश्चात्य इसी युग मे भारत मे घुसा और अपनी सभ्यता, सस्कृति और साहित्य को यहाँ डप (dump) कर गया। औद्योगिक क्रान्ति, रेनेसा महान, विश्व-युद्ध इसी युग मे तो हुए। लालक्राति और साम्यवाद का प्रसार इसी युग मे हुआ। हिन्दी साहित्य का यह समस्त काल भारत मे अनेको भाषा सम्मेलनो का युग रहा है। तथा अन्य भी बहुत से कारणो से हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रयोग और परपरा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

हिन्दी मे ऐसा प्रयत्न हमे डॉ० गोपालदत्त सारस्वत के शोध-प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी काव्य मे परपरा तथा प्रयोग' मे मिलता है। इस विज्ञान तथा शोधपूर्ण ग्रथ को इस भूमिका के साथ हिन्दी जगत को 'प्रेषित करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। आशा है इसका स्वागत होगा। हमे यह भी आशा है कि लेखक आगे भी हिन्दी साहित्य को अपने अध्ययन और अनुसधान के नवीनतम सुगधित पुष्प समर्पित करेगा।

—०—

वक्तव्य

परम्परा और प्रयोग साहित्य की गति को परिचालित करते है। परम्परा की दृष्टि अतीत की ओर रहती है तथा प्रयोग की दृष्टि भविष्यत् की ओर। परम्परा अनुकरण की प्रवृत्ति का आश्रय लेकर रचनात्मक निर्माण की ओर प्रेरित करती है, जब कि प्रयोग चेतना के नवीन स्तरो का अनुसन्धान करके अभिव्यक्ति के लिए नये नये मार्गों का उद्घाटन करता है। प्रयोग का परम्परा के साथ इतना ही सामजस्य है कि वह अतीत के अनुभवो का सबल लेकर निरन्तर आगे बढने की शक्ति ग्रहण करता चलता है, क्योकि अतात का अनुभव भविष्य के लिए दृष्टि का द्वार खोलता है। परामपरानुगत सत्य के शील से अनुप्राणित होकर नये नये अन्वेषण करने मे ही प्रयोग की सार्थकता है। स्वस्थ परम्पराऐ नये प्रयोगो को जन्म देती है। प्रयोग का लक्ष्य भी परम्परा बनने मे ही है। इस प्रकार प्रयोग तथा परम्परा क्रिया एव प्रतिक्रिया के रूप मे चक्रवत घूमते हे तथा साहित्य की धारा को निरन्तर गतिशील एव प्रवहमान रखते है।

परम्परा तथा प्रयोगो के अध्ययन के बिना साहित्य का मर्म नही समझा जा सकता। हिन्दी-साहित्य के आदि काल से लेकर वर्तमान काल तक न जाने कितनी परम्पराऐ किन-किन स्रोतो से फूट पडी, कब तक चली, कहाँ विलीन हुई, कितने प्रयोग हुए, कितने सफल हुए, कितने असफल—इसका इतिहास हमारी काव्य-सस्कृति के ज्ञान मे कितना सहायक हो सकता है, इसका अनुमान लगाना कठिन है। यदि एरम्पराओ के द्वारा काव्य की पूर्वकालीन सचित निधि की झाकी ली जा सकती है, तो प्रयोगो से काव्य के भविष्यत के विकास की सभावनाओ का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार काव्य-सस्कृति के उत्थान-पतन एव ह्रास-विकास को समझने के लिए परम्परा तथा प्रयोगो का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

आधुनिक युग हिन्दी-कविता का सक्रान्ति युग है। इसमे जीवन के प्रतिमान बदल गए है। कवि एव रचनाकारो ने नये जीवन-बोध एव सौन्दर्य-बोध को पूर्ण गहराई के साथ अनुभव किया है। आधुनिक काव्य मे भारतेन्दु के युग से ही परिवर्तन की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होने लगती है, द्विवेदी-युग मे उसका विकास

होता है और छायावाद युग के आरभ से उसका रूप पूर्णतया स्थिर हो जाता है अतएव प्रस्तुत प्रबन्ध मे सन् १९२०-१९५० ई० तक के काव्य का पर्यालोचन किया गया है, क्योकि यह काल काव्य के नवीन प्रयोगो की दृष्टि से सबसे अधिक समृद्ध है। प्राचीन परम्पराओ का अस्तित्व भी किसी न किसी रूप मे बना ही हुआ है। प्रयोगो का आग्रह विशेष है। अत. इन दोनो का अनुशीलन काव्य के अध्येता के लिए अत्यन्त रोचक विषय है।

वर्तमान युग मे हिन्दी मे विशाल काव्य-राशि का सृजन हुआ है। काव्य के अन्तर्गत वस्तु एव शिल्प की दिशा मे इतना अधिक विस्तार हुआ है कि उसके अध्ययन एव मूल्याकन की आवश्यकता हो गई है। नवीन काव्योत्थान परम्परा के विकास का परिचायक तो है ही, इससे भविष्यत् की सभावनाओ का भी सकेत मिलता है। इन्ही विचारो से प्रेरित होकर इस निबन्ध की रचना का कार्य प्रारभ हुआ।

अस्तु, आलोच्य काल (१९२०-१९५० ई०) की काव्य सामग्री को आधुनिक काल की प्रकाशित काव्य-राशि मे ही सग्रह किया गया है। इसके लिए प्रबन्ध को दो भागो मे विभाजित किया गया है। प्रथम भाग मे परम्पराओ का तथा द्वितीय भाग मे प्रयोगो का अध्ययन किया गया है। पहले दो अध्यायो मे परम्परा तथा प्रयोग का सामान्य विवेचन है, जिसमे स्वरूप, विषय, सीमा एव प्रयोगो की परम्परा पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय मे काव्य-प्रयोगो के उद्भव और विकास की परम्परा का सिंहावलोकन किया गया है। इन दोनो अध्यायो की साधनभूत सामग्री के लिए अधिकतर अगरेजी एव सस्कृत के ग्रन्थो से सहायता ली गई है। तीसरे अध्याय मे काव्य की वस्तुगत परम्पराओ की शोध की गई है। इसके लिए आधुनिक युग के प्रतिनिधि काव्य-ग्रन्थो (प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत काव्य) को आधार बनाया गया है। इस अध्याय मे विषय-वस्तु का वर्गीकरण लेखक ने अपनी दृष्टि से किया है। तथ्यो की शोध एव विवेचन भी मौलिक है। चौथे अध्याय मे भाव-व्यजना एव रस-निरूपण है। पाचवे अध्याय मे काव्य रूपो का अध्ययन है, जिसके अन्तर्गत प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत काव्यो का निरूपण विशेष स्थान रखता है। छठे अध्याय मे काव्य-शैली के विचार से आलोच्य-कालीन काव्यो की परीक्षा की गई है। अलकार, प्रतीक, छन्दो का अध्ययन शास्त्रीय परम्परा के आधार पर किया गया है। इस प्रकार अन्तिम चार अध्यायो की विषय-वस्तु की परीक्षा शास्त्रीय सिद्धान्तो के आलोक मे की गयी है तथा वर्गीकरण एव विवेचन की पद्धति मे सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण रखा गया है।

प्रबन्ध के द्वितीय भाग मे काव्यगत प्रयोगो का अध्ययन है। आधुनिक काल मे नयी प्रवृत्ति एव परिस्थिति के फलस्वरूप काव्य-क्षेत्र को सर्वथा नये प्रयोगो ने आच्छादित कर लिया है। सातवे अध्याय मे काव्य की नई दिशा के प्रेरक स्रोत एव विषय-वस्तु के क्षेत्र मे नये प्रयोगो का अध्ययन है। वर्गीकरण, विवेचन तथा परिणाम नूतन काव्य-सामग्री की परीक्षा करके निकाले गए हैं। आठवे अध्याय मे भाव-व्यजना के विचार से आलोच्यकालीन काव्यो की परीक्षा की गई है। आधुनिक काल मे भिन्न भिन्न रसो के आलम्बन उद्दीपन तथा सचारियो मे नितान्त परिवर्तन हो गया है। रति के क्षेत्र मे भी बहुत कुछ विस्तार हुआ है। आलम्बनो के साथ साथ भाव क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। आधुनिक युग के मनोविश्लेषण शास्त्र के अनुसार फ्री ऐसोसिएशन, यौन वासना तथा ऐन्द्रियिक सवेदनो को भी आलोच्यकालीन काव्य मे स्थान मिला है। इस अध्याय मे इन सब बातो का मौलिक ढग से अध्ययन किया गया है। उपलब्ध काव्य सामग्री के अतिरिक्त इसमे और कही से सहायता नही ली गई है।

आधुनिक युग मे सबसे अधिक प्रयोग काव्य-रूप एवं शैली की दिशा मे हुए है। प्रबन्ध और प्रकीर्णक मुक्तको के क्षेत्र मे तो नए प्रयोग हुए ही हैं, सबसे अधिक प्रयोग प्रगीत काव्य के क्षेत्र मे हुए है। नई काव्य-रचनाओ के आधार पर नवे अध्याय मे प्रचलित काव्य रूपो के नये प्रयागो का अध्ययन है। दसवे अध्याय मे शैली सबधी प्रयोगो का अध्ययन है। इसके अन्तर्गत अलकार, प्रतीक, भाषा एव छन्दो का विचार है। नये अप्रस्तुत विधान का अध्ययन सर्वथा मौलिक है। प्रतीको का अध्ययन मुख्यत. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। इसके पश्चात उपसहार है इसमे सम्पूर्ण प्रबन्ध की मुख्य मुख्य प्रवृतियो का सार प्रस्तुत किया गया है परिशिष्ट मे नई कविता के प्रतीको का कोश भी उपस्थित किया गया है। यह सब लेखक का अपना प्रयास है। छन्दो के प्रयोगो के लिए अँगरेजी तथा हिन्दी के ग्रन्थ और प्रकीर्ण निबन्धो से सहायता ली गई है। इस क्षेत्र मे डा० पुत्तूलाल शुक्ल का 'आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्द-योजना' सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। इसके लिए लेखक आभारी है। मुक्त छन्द (फ्री वर्स) के विषय मे लेखक ने सभी प्रकार की उपलब्ध सामग्री का उपयोग करने का प्रयत्न किया है। 'भाषा' का अध्ययन प्रचलित काव्य-ग्रन्थो के आधार पर किया गया है। आधुनिक काव्य भाषा लाक्षणिक प्रयोगो की दृष्टि से अधिक समृद्ध है। अतः इसका विवेचन अधिक विस्तार से किया गया है। अन्तिम अध्याय मे सम्पूर्ण प्रबन्ध का उपसहार है।

इस प्रकार प्रथम दो अध्यायो को छोड़कर शेष सभी अध्यायो मे वर्गी-

करण, विवेचन, अध्ययन सब प्राप्त काव्य-सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

इस विषय को आधार बनाकर बहुत कम ग्रन्थ लिखे गए है, शोध के रूप मे कोई भी नही। सूर्यबली सिंह की 'हिन्दी कविता' मे नवीन और प्राचीन काव्य-प्रवृत्तियो की तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की गई है, किन्तु उसका विषय सक्षिप्त और सकुचित है। प्रस्तुत निबन्ध मे नई और पुरानी काव्य-प्रवृत्तियो का व्यापक रूप मे अध्ययन किया गया है। यथासभव लेखक ने अपने को सभी प्रकार के पूर्वग्रहो से बचाया है तथा प्रस्तुत विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके उसके सहज निष्कर्षो तक पाठको को पहुँचाने का प्रयत्न किया है। नये कवियो का विवेचन उपलब्ध काव्य सामग्री के आधार पर किया गया है किन्तु अन्तिम निर्णय कही पर भी नही प्रकट किया है, क्योकि नये कवियो से नये काव्य-निर्माण के क्षेत्र मे अभी बहुत कुछ आशाए एव सभावनाएँ है।

इस प्रबन्ध को लिखने मे अनेक महानुभावो, लेखको एव विद्वानो से सहायता प्राप्त हुई। लेखक उन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। डा० हरिवश कोचर, अध्यक्ष तथा प्रोफेसर हिन्दी-विभाग, गवर्नमेट कालेज, नैनीताल का मै विशेष आभारी हूँ, जिनके पथ-प्रदर्शन और प्रोत्साहन से ही यह कार्य पूर्ण हुआ है। साथ ही डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० हरिवशलाल शर्मा, डा० भगीरथ मिश्र एव श्री प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अमूल्य सुझाव एव परामर्शो के लिए भी लेखक अत्यन्त कृतज्ञ है। वस्तुत इन सभी की अकुकम्पा से यह प्रबन्ध कुछ मूल्यवान बन सका है।

धर्म समाज कालेज,

साथी व्यास नारायण भट्ट, 'सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद,' जिनकी रुचि एव प्रयास से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अलीगढ़
जूलाई, १९५८।

डा० गोपाल दत्त
सारस्वत

विषयानुक्रम

प्रथम खण्ड

आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा

प्रथम अध्याय १–३०

परम्परा तथा प्रयोग – स्वरूप विषय तथा सीमा – परम्पराओ का स्वरूप-परम्परा तथा काव्य शास्त्र - कवि प्रसिद्धियाँ– परम्पराओ मे रूपान्तर—प्रयोग का मनोविज्ञान—प्रयोग की प्रवृत्ति - प्रयोग और परम्परा – परम्परा और स्वच्छन्दता— परम्परा, प्रयोग तथा वाद—हिन्दी साहित्य का विकास -- परम्परा और प्रयोग का मूल्याकन—प्रयोग की समस्या ।

द्वितीय अध्याय ३१-७१

प्रयोग की परम्परा – उद्भव तथा विकास –काव्य का उदय अलकार, अलकारो मे रूढियाँ - प्रतीक – प्रतीको का उद्भव – प्रतीको का विकास – छन्द छन्द उद्भव – पाद योजना – छन्दो का विकास – महाकाव्य महाभारत – रघुवश – महाकाव्य का लक्षण – भारतीय तथा पाश्चात्य महाकाव्यो के लक्षणो की तुलना – गीत-वेदो मे गीततत्व – गीति काव्य का विकास – लोक गीति—विदेशी प्रभाव--वैदिक देवता – वैदिक साहित्य मे प्रकृति ।

तृतीय अध्याय ७३–१३६

आधुनिक काव्य : वस्तु तथा उपादानो की परम्परा – **पौराणिक विषय** – दिव्य – दिव्यादिव्य – अदिव्य – **वस्तु वर्णन** – देव्यवश कृष्णायन पुरुषोत्तम – गगावतरण – उद्धवशतक – मधुपुरी -- बिषपान – शर्वाणी – शक्ति - विवेचन – अलौकिक वस्तु वर्णन– **ऐतिहासिक विषय**—महाकाव्य – खण्डकाव्य – मुक्तक—ऐतिहासिक कथानक - तक्षशिला--कुणाल – बुद्ध चरित – नूरजहाँ–

ऐतिहासिक वस्तु वर्णन—राज परिवार—**धार्मिक विषय**—मुक्तक काव्य—धर्म नीति- **प्राकृतिक विषय** — परम्परा—आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रकृति वर्णन—प्राकृतिक विषयो का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप मे वर्णन - प्रकृति मे मानवीय भावो का आरोप—**धार्मिक** एव नैतिक उपदेशो के लिये प्रकृति वर्णन—प्रकृति मे आत्म दर्शन—उपसंहार—**काम शास्त्रीय विषय**—रग गृह--शृङ्गार के प्रसाधन—**मनोविनोद के विषय**—सुरति वर्णन।

चतुर्थ अध्याय १३७-१९६

रस-परम्परा—**शृंगार रस की परम्परा**—महाकाव्य—खण्ड—काव्य, मुक्तक तथा प्रगीत काव्य—रसाभास—**विप्रलंभ शृंगार**—विरह की परम्परा—ऋतु बारहमासा और अष्टयाम--दूत या सदेशहर—चन्द्रोपालम्भ—**काम दशायें**—अभिलाषा—चिन्ता— स्मृति — गुणकथन उद्वेग— प्रलाप उन्माद—व्याधि--जडता — मरण — **हास्यरस** — परम्परा -- मुक्तक काव्यो मे हास्यरस—**करुण रस**—परम्परा—करुणरस का विवेचन—**रौद्ररस**—**वीररस** -- परम्परा — महाकाव्य- खड काव्य—मुक्तक काव्यो मे वीररस—**भयानक रस**--परम्परा—विवेचन—**वीभत्स रस** —परम्परा—महाकाव्य—खड काव्य--विवेचना—**अद्भुत रस**--परम्परा—विवेचन **शान्त रस** - परम्परा—विवेचन—**वात्सल्य रस**--परम्परा—उपसहार।

पचम अध्याय १९७-२२८

काव्य रूपों की परम्परा--महाकाव्य का लक्षण—महाकाव्य की आत्मा--महाकाव्य का शरीर--कथा वस्तु--रस—मगलाचरण - सर्ग रचना—छन्दोविधान वस्तु वर्णन--विवेचन—खड काव्य — वर्गीकरण—मुक्तक काव्य—वर्गीकरण—सतसई काव्य परम्परा — प्रगति काव्य—प्राचीन परम्परा—आलोच्य काल मे प्रगति काव्य।

षष्ठ अध्याय २२९-२७५

काव्य शैली की परम्परा—अलंकार परम्परा—अनुप्रास—यमक-श्लेष — अन्योक्ति— रूपकातिशयोक्ति— समासोक्ति -

विरोधाभास—विवेचन—चित्र काव्य—**प्रतीक परम्परा**—आलोच्य काल मे प्रतीक परम्परा—प्रकृति मूलक प्रतीक—यथार्थता मूलक प्रतीक—छन्द परम्परा—छद का महत्व—मात्रिक छद सममात्रिक छन्द — अर्धसममात्रिक छन्द — विषम मात्रिक छन्द—**वर्णावृत्ति**—अन्त्यानुप्रास — गीत—पाद योजना—छद और भाव का सम्बन्ध—निष्कर्ष—असत् का वर्णन—सत् का वर्णन न करना —नियम ।

द्वितीय खण्ड

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयोग

सप्तम अध्याय २७६–३१४

वस्तु उपादनों मे प्रयोग—प्रयोग के प्रेरक स्रोत—वैज्ञानिक उन्नति — सास्कृतिक पुनरुत्थान — राष्ट्रीय आन्दोलन स्वच्छन्दता वाद — साम्यवाद — मनोविश्लेषण — यौन-भावना — प्रयोगवाद प्रपद्यवाद—नवीन वस्तु तथा उपादान मातृ भूमि—राष्ट्रवीर—निम्नवर्ग — सस्कृति — विप्लवगान—दु.ख वाद—विवेचन — राजनीति — सिद्धान्त निरूपण—पूजीवादी वर्ग से सम्बन्धित विषय—श्रमिक वर्ग से सम्बन्धित विषय— **वैज्ञानिक विषय**—अणुवाद—पदार्थ की अनश्वरता — विकास वाद का सिद्धान्त अन्तर-राष्ट्रीय विषय—साराश ।

अष्टम अध्याय ३१५–३५८

भाव-व्यंजन मे प्रयोग—प्रकृति विषयक रति—अव्यक्ति प्रिय विषयक रति—**हास्य के क्षेत्र में प्रयोग**—व्यग्य-व्यक्ति—परिवार—समाज स्वय कवि—परिहास—मधुर हास—पैरोडी —**वीर रस के क्षेत्र मे प्रयोग**—वीररस के आश्रय मे परिवर्तन —वीरत्व की आश्रय नारियाँ—वीरत्व का आश्रय देशभक्ति वीरत्व का आश्रय पाठक—वीररस के नये आलम्बन—वीररस के नये सचारी भाव—विवेचन — **करुण रस के क्षेत्र में प्रयोग**—राष्ट्रीय तथा सास्कृतिक पतन से सम्बन्धित विषय दलित वर्ग से सम्बन्धित विषय—बलिदान तथा जौहर के विषय—अव्यक्त

प्रियतम — आश्रय के क्षेत्र में प्रयोग—नये सचारी भाव — विवेचन—रौद्ररस के क्षेत्र में प्रयोग—रौद्ररस के नये आलम्बन—विवेचन-भाव क्षेत्र का विस्तार—देश भक्ति—विद्रोह—विक्षोभ—साम्य—महानुभूति—आक्षेप— आत्म-प्रशंसा—स्वातन्त्रय — प्रतिशोध प्रवंचना—नैराश्य — साहस—उत्सर्ग—विजय —स्वत्व—बौद्धिकता—यौन वासना— सहज सम्बन्ध—सवेदन—दृश्य चित्र—ध्वनि चित्र—स्पृश्य चित्र—गन्ध चित्र—गति चित्र८—उपसहार ।

नवम अध्याय ३५६-३८६

काव्य रूपों में प्रयोग—महाकाव्य मे प्रयोग—महाकाव्य का अन्तरंग उद्देश्य—महाकाव्य का बहिरग—तायक का आदर्श—भाव क्षेत्र मे परिवर्तन—वस्तु एव घटनाओ का सैद्धान्तिक विवेचन—बहिरङ्ग प्रकृति चित्रण—विषय और उपादान मातृभूमि राष्ट्रीय विषय—सास्कृतिक विषय—राजनीतिक विषय—छन्दो विधान—सस्कृत वृत्त-भिन्न तुकान्त, मुक्त छन्द—मिश्र छन्द—गीत योजना—उर्दू के छन्द—नाटकीय सम्वादो की योजना—भाषा के प्रयोग—विवेचन — आख्यान काव्य—निबन्ध तथा मुक्तक काव्य—प्रगीत काव्य—व्यग्य गीति — शोक गीति—सम्बोध गीति—राष्ट्रीय गीति—विचारात्मक गीति पत्र-गीति—लोक गीति—चित्रपट गीति—विवेचन अन्य काव्य का रूप—गीति नाट्य—सलाप काव्य—एकालाप काव्य — चम्पूकाव्य—एकार्थ काव्य ।

दशम अध्याय ३६१ ४५४

काव्य शैली में प्रयोग—अलकारो के प्रयोग—मानवीयकरण —विशेषण विपर्यय—मूर्त के लिये अमूर्त का प्रयोग—अमूर्त के लिये मूर्त का प्रयोग—अगी के लिये अग का प्रयोग— विशेष के लिये सामान्य का प्रयोग—सामान्य के लिये विशेष का प्रयोग —जातिवाचक के लिये भाववाचक का प्रयोग—भाववाचक के लिये जातिवाचक का प्रयोग—गुण वाचक पदार्थ के स्थान पर उसके गुणो का प्रयोग —प्रभाव—साम्य के आधार पर अप्रस्तुतो

का प्रयोग—प्रस्तुत – अप्रस्तुत का तादात्म्य—प्रतीकात्मक उपमान –– लाक्षणिक उपमान —विरोधात्मक विशेषण मूलक उपमान -आत्म विषयक रूपक--विवेचन—प्रतीक –प्रतीको का महत्व –प्रतीक का मनोविज्ञान –– भाषा—अ ग्रेजी शब्द विन्यास —नये शब्दो की रचना लाक्षणिक पद प्रयोग-- ध्वनि के प्रयोग–लोकोक्ति तथा प्रोक्ति चमत्कार—द्विरुक्त पद-- ध्वन्यात्मक शब्द—विवेचन- छन्द प्रयोग--छन्द तथा परिवर्तन की प्रक्रिया--तुक—अन्तर्यति—अन्तनुं प्रास--मुक्त छंद उर्दू छन्दो के प्रयोग--बगला छन्दो के प्रयोग –अ ग्रेजी छन्दो के प्रयोग – लोक धुनो के प्रयोग ।

उपसहार ४५५–४६७

काव्य रूप –अलकार विधान — प्रतीक योजना—प्रयोग का उद्देश्य ।

परिशिष्ट ४६६–४८३

सहायक ग्रन्थ सूची ४८५–४९५

प्रथम खण्ड

आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा

प्रथम अध्याय

परम्परा तथा प्रयोग

परम्परा तथा प्रयोग

स्वरूप, विषय तथा सीमा

परम्परा अत्यन्त व्यापक शब्द है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से इसका सम्बन्ध है। धर्मशास्त्र, समाज-विज्ञान, कला एव साहित्य के क्षेत्र मे परम्पराओ के विविध रूप दिखाई पडते है। परम्परा मे स्वीकृत विधियो, प्रथाओ तथा प्रणालिया का अनुसरण एव पूर्वकाल से चली आती हुई विचारधाराओ की अभिव्यक्ति होती हे। यदि किसी युग के मनुष्यो की कतिपय विचित्र एव अद्भुत बातो को तथा किसी दूसरे समाज से आई हुई अनुकरण मूलक प्रथाओ को छोड दे ता सामाजिक जीवन की समग्र बाते परम्परा के क्षेत्र मे आ जाती है, जिसको समाज पीढियो मे ग्रहण करता चला आया है। परम्परागत आचार, व्यवहार, सस्था, भाषा, वस्त्र, विधि, गीत एव लोकवार्ताएँ सब परम्परा के ही अग है[१]।

वर्तमान काल मे अनेक दृष्टियो से परम्पराओ का अध्ययन प्रारभ हुआ है। गिसबग ने सामाजिक परम्पराओ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया ह। उन्होने सामाजिक प्रथा, रीति, व्यवहार एव आचार के सम्बन्ध मे विस्तार मे विवेचन किया है[२]। वुट ने सामाजिक प्रथाओ को उन ऐच्छिक कार्यो का रूप बतलाया है, जो राष्ट्रीय या जातीय जीवन मे विकसित हुई है। उनके मत मे सब प्रकार की सामाजिक परम्पराओ का मूल पूजा के कार्यो मे ढूढा जा सकता है। राष्ट्र, सम्प्रदाय, समाज, धर्म, सस्था अथवा किसी जाति के सघटन मे परम्पराओ का बहुत बडा हाथ होता है। राष्ट्र की परिभाषा निर्धारित करते हुए सिडनी हर्बट का कथन है कि—'एक ऐसे सामाजिक समूह का नाम राष्ट्र है, जो ऐसी चेतना से बधा हुआ हो, जो उसके ऐतिहासिक अतीत के द्वारा जाग्रत रूढियो से निकलती हो और जो एक निश्चित देश से प्रत्यक्ष रूप मे सम्बद्ध हो[३]। ईसाई, इस्लाम, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मो मे स्थूल एव सुनिश्चित रूढियो का मूल तत्व सन्निहित है, जो उनमे परम्परा से चला आता है। इन धर्मो के साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे उन बातो का उल्लेख हुआ है[४]।

१—इंसाइक्लोपीडिया आव द सोशल साइंसेज, जिल्द १५, पृ० ६३।
२—मारिस गिसवर्ग: द साइकालाजी आब सोसाइटी, पृ० १०६।
३—सिडनी हर्बर्ट: नेशनैलिटी, पृ० ३७।
४—इन्साइक्लोपीडिया आव द सोशल साइंसेज, जिल्द १५, पृ० ६२।

इस प्रकार समाज, धर्म, राष्ट्र, जाति एव सम्प्रदाय—जीवन के नाना क्षेत्रों मे रूढि तथा परम्पराओ का तत्व विद्यमान है, जो उन्हे अतीत युग से अनुप्राणित करता चला आया है। टी० एस० ईलियट के अनुसार 'जिनसे एक ही देश के लोगो की जातीयता का भाव प्रकट होता है, जिनसे पारस्परिक समानता और आत्मीयता स्थापित होती है, वे स्वभाव, स्वाभाविक कार्य, सामाजिक प्रथाएँ, धार्मिक विधियाँ, अभिवादन करने की प्रणालियाँ—सब परम्परा के अन्तर्गत है। इनमे सामाजिक विधि एव निषेध का भी अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार परम्परा मान्यता, विश्वास, रीति, प्रथा, रूढि, आचार सब एक ही वस्तु के रूपान्तर है। साहित्य के परम्परावाद (क्लैसीसिज्म), स्वच्छन्दतावाद (रोमेटीसिज्म) और यथार्थवाद (रियलिज्म) भी इसी मे आ जाते है।

विभिन्न क्षेत्रो की परम्पराओ का विवेचन हमारा अभीष्ट विषय नही है। अतएव इस सन्दर्भ मे केवल काव्य-क्षेत्र की परम्पराओ के स्वरूप, उत्पत्ति विकास, भेद, प्रयोजन एव उनके महत्व पर ही विचार किया जाता है।

परम्पराओं का स्वरूप

काव्य के क्षेत्र मे परम्पराओ से तात्पर्य उन आदर्श, रीतियो, प्रवृत्तियो एव स्थापनाओ से है, जो पूर्ववर्ती कवियो से उत्तरवर्ती कवियो को प्राप्त होती चली आई है तथा जो कवि-समाज मे स्वीकृत होने से स्वयमेव काव्य मे प्रचलित हो गई है। वस्तु, भाव, तुक, लय, छन्द, रूप, भाषा एव अप्रस्तुत विधान मे इनका अस्तित्व मिलता है। काव्य मे ऐसी अनेक बाते पाई जाती है, जिनका कही अस्तित्व नही है। किन्तु कवि—समाज मे प्रचलित है। ये कवि-समय के नाम से प्रसिद्ध है।[१] महाकवियो ने भी इनको स्वीकार किया है, तथा अपने काव्यो मे इनको स्थान दिया है। काव्यो मे इन बातो का वर्णन गतानुगतिक न्याय से चला आता है। इनका कोई प्रमाण नही है, रूढिमात्र है।

परम्परा अथवा रूढि मे मान्यता, विश्वास एव नैरन्तर्य का आधार होता है। 'कविजन कहत कहत चलि आए, सुधिकरि का हू न कही'—सूर की इस पक्ति मे परम्परा का लक्षण समुचित रीति से स्फुट है। कवियो ने जिसे बार बार कहा हो तथा जिसके पीछे कोई तर्क न हो—इसमे परम्परा के दो लक्षण आ जाते है—गतानुगतिकता तथा मान्यता या विश्वास। अंग्रेजी कवि वर्ड सवर्थ ने इसे दूसरे प्रकार से कहा है—

---

१ विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, ७।२३

"जीवन की प्रारभिक अवस्था (बाल्यावस्था) मे मुझे प्रकृति से अनुराग था, इस युवावस्था मे भी मुझको वैसा ही अनुराग है तथा अपनी वृद्धावस्था मे भी मै इसे रखना चाहता हू। मुझे प्रकृति की उपासना मे ईश्वर की उपासना के समान आनन्द प्राप्त होता रहे और इस प्रकार मेरे जीवन के दिन प्रकृति-प्रेम के आनन्द से थिरक उठे।"[१]

इस उक्ति मे भी परम्परा का भाव चरितार्थ होता है।

जान लिविंग्स्टन के मत से परम्परा मे मूलत. दो तत्व प्रधान है—मान्यता और भ्रान्ति। काव्य-क्षेत्र की सम्पूर्ण परम्पराओ का विकास इन्ही दो तत्वो के आधार पर हुआ है। मनुष्य अपने भावो एव विचारो को शब्दो द्वारा दूसरो पर प्रकट करता है। ये शब्द ध्वनि-सकेत है। इन शब्द-ध्वनियो से व्यक्ति का आशय प्रकट होता है। यह निश्चित है कि ध्वनि से जिस वस्तु का बोध होता है, उसके साथ शब्द का किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। शब्द जिस अर्थ को व्यक्त करता है, वह कल्पित है। उसका आधार है, मात्र स्वीकृति। विभिन्न शब्दो से जो अर्थ प्रकट होते है, उनका एक मात्र कारण है, दीर्घकालीन सार्वजनिक मान्यता। इसी के द्वारा मनुष्य अभीष्ट अर्थ को ग्रहण करते है। यह सभी जानते है कि शब्द और सकेतित अर्थ मे कोई वास्तविक सम्बन्ध नही है। कोई तर्क-सम्मत एकात्मता नही है। केवल मान्यता है, स्वीकृति है और है एक भावुकता पूर्ण विश्वास।

कल्पना मे दूसरा तत्व है, भ्रान्ति। काव्य का सम्पूर्ण अप्रस्तुत-विधान इसीके आश्रित है। काव्य की रचना मे उपमान एव प्रतीको द्वारा जिस भाव को व्यजित कराया जाता है, उसके मूल मे भ्रान्ति या कल्पना का तत्व है; इसके द्वारा पाठक को देश-काल सम्बन्धी वस्तुओ का ज्ञान आसानी से हो जाता है।

१—"So was it when my life began,
So is it now I am a man,
So be it when I shall grow old,
who could and wish their days
To be bound each to each by natural piety
The Rain-bow—Words worth

मैथ्यू आर्नाल्ड ने भाव, भाषा और वस्तु—कवि के तीन साधनो को स्वीकार किया है।[1] काव्य सम्बन्धी परम्पराओ का विकास इन सभी मे पाया जाता है। धीरे-धीरे काव्य के वर्ण्य, भाषा, शैली, रीति तथा काव्यादर्शो मे भी परम्पराये स्थापित हो जाती हैं। अतएव गिलवर्ट मरे ने कहा है कि, 'प्राचीन सभ्यता से जो पूर्ण प्रवाह निकलकर आया है तथा जिसने हमे काव्य का रूप तथा एकान्विति प्रदान की है, वही आदर्श परम्परा है,[2]।

परम्परा तथा काव्य-शास्त्र

काव्य-क्षेत्र की परम्पराओ तथा काव्यशास्त्रीय विषयो के अन्तर को यहाँ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। काव्यशास्त्र मे काव्य के स्वरूप, शब्दवृत्ति, रस, ध्वनि, गुण, दोष, रीति एव अलकारो का विवेचन रहता है। काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण आदि ग्रान्थो मे इन्ही बातो का विचार किया गया है, किन्तु ये विषय काव्य-परम्परा से भिन्न है। काव्यशास्त्र के ये विषय काव्याग कहलाते है, तथा परम्परा के क्षेत्र मे नही आते। जिस क्षेत्र मे कुछ विशिष्ट बधी-बधायी रीतियाँ, रूढियाँ, एव प्रणालिया स्थापित हो जाती हैं, उन्ही को परम्परा मे लिया जा सकता है। काव्यागो का विवेचन सभी अलकार-शास्त्रीय ग्रन्थो मे पाया जाता है, किन्तु काव्य-परम्परओ का उनमे कही उल्लेख नही है। यह बहुत कुछ मौखिक रूप मे ही चलती रहती है। भ्रमरगीत का विषय हिन्दी-साहित्य मे काव्य-परम्परा के रूप मे चला आता है। काव्य-रूपो मे सतसई की भी एक दीर्घकालीन परम्परा है। इसके अतिरिक्त अलकारशास्त्र एक व्यापक विषय है, परम्पराओ का विषय अपेक्षाकृत सीमित है। अलकारो की सख्या असीमित है, किन्तु उनमे परम्पराए या रूढियाँ बहुत कम है।

कवि-प्रसिद्धियां

काव्य की परम्पराओ में कवि-प्रसिद्धियो का भी स्थान है। साहित्य मे ऐसी अनेक मनगढन्त बातें पाई जाती हैं, जो कवि-समाज मे स्वीकृत हो जाने से रूढियाँ बन गई हैं। असत्य होने पर भी उनमे किसी ने अविश्वास प्रकट नही किया है। कवि-सम्प्रदाय मे वे परम्परा से चली आ रही हैं। हस का क्षीर-नीर विवेक, चकोर का अगार-भक्षण, रात्रि मे चकवा-चकवी का वियोग, यश और हास्य का श्वेत रग, पाप का कृष्ण वर्ण, क्रोध और प्रेम की रक्तता,

---

१—जान लिविंग्स्टन : कन्वेंशन एण्ड रिवोल्ट इन पोइट्री, पृ० १०।
२—द क्लैसिकल ट्रैडिशन इन पोइट्री (गिलवर्ट मरे), पृ० ५।

चन्द्रमा का शश-लाछन और कामदेव का मकरकेतन नाम, शिव के भाल पर द्वितीया के चन्द्रमा की स्थिति, विष्णु का क्षीर शयन, कोल, कमठ और शेष का पृथ्वी-धारण आदि अनेक बातें कवि-समय के नाम से प्रसिद्ध है तथा उन पर सर्व-सम्मति की मुहर लगी हुई है। इसीलिए ये काव्य-परम्परा के रूप में प्रचलित है तथा महा कवियो तक ने इनको काव्य मे स्थान दिया है।

किन्तु विचार करने से कवि-प्रसिद्धियो मे स्वीकृत अधिकाश बातें भ्रामक एव सत्य से बहिर्भूत होती हैं। फिर काव्य मे इनकी प्रतिष्ठा क्यो है? कोई भी कवि इनको साहित्य से बहिष्कृत करने का साहस क्यो नही दिखाता है? कारण स्पष्ट है। इनके पीछे परम्परा की शक्ति है। परम्परा मे भ्रामक कल्पना का तत्व विद्यमान रहता है। काव्य मे दो सत्य है—एक वस्तुगत और दूसरा कल्पित अथवा प्रतीयमान। कवि वस्तुगत सत्य का दर्शन नही करा सकता है, क्योकि उसका साधन सीमित है, शब्द और अर्थमात्र[१]। शब्दो से भौतिक, वस्तुगत सत्य का साक्षात्कार नही हो सकता। अतएव कल्पना का आश्रय लिया जाता है। इसके द्वारा परोक्ष एव अलक्षित वस्तुओ को लक्ष्य कराया जा सकता है। राजशेखर ने काव्य-मीमासा मे कवि-समयो पर अच्छा प्रकाश डाला है। वे कहते है, "शास्त्र और लोक से बहिर्भूत, केवल कवि-परम्परा मे प्रचलित जिस अर्थ का कविजन उल्लेख करते है—वह कवि समय है। इससे कवियो का उपकार होता है, तथा यह काव्य-मार्ग का प्रदर्शक है। अतएव सदोष होते हुए भी सभी कवियो ने इसका उपयोग किया है। वर्ण्य विषय को रोचक और हृदयग्राही बनाने के लिए कवि-समयो का उपयोग किया जाता है।"

कवि-सम्प्रदाय मे परम्परया प्रचलित बातो का ही कवि-समयो मे उल्लेख हुआ है। अतएव ये वास्तविक अर्थ मे काव्य-परम्परा के अन्तर्गत हैं। राजशेखर की परिभाषा पर विचार कर लेना अवश्यक है। उन्होने इसके तीन आधार बतलाए है—(१) शास्त्र से बहिर्भूत होना, (२) अलौकिकता और (३) परम्परा। शास्त्र से बहिर्भूत कथन करने का अभिप्राय इतना ही है कि काव्यशास्त्र मे इसका विचार नही हुआ है। काव्यागो का विवेचन तो अलकारशास्त्रो मे विस्तार से पाया जाता है, काव्य-परम्पराओ का नही। फिर भी कवि-सम्प्रदाय मे इनका प्रचार है। इससे मान्यता एव विश्वास का आधार स्वतः सिद्ध है।

राजशेखर ने आचार्यों के कथन को पूर्व पक्ष मे रखकर कहा है—शास्त्र और लोक दोनो से रहित स्वेच्छया वस्तु वर्णन तो दोष है। ऐसी दोषयुक्त वस्तु

१—"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।" भामह।

का वर्णन उचित नही। इसके उत्तर मे वे कहते है—इसके द्वारा कवि का उपकार होता है तथा यह काव्य-मार्ग का दर्शक है। अतएव यह दोष कैसे हो सकता है? फिर कहते है—प्राचीन विद्वानो ने सहस्रो शाखा वाले वेदो का अगो सहित अध्ययन करके, शास्त्रो का तत्व-ज्ञान प्राप्त करके, देशान्तर और द्वीपान्तरो का भ्रमण करके, जिन वस्तुओ को देख, सुन और समझकर वर्णन किया है, उन वस्तुओ और पदार्थो का देश-काल और कारण भेद होने पर या विपरीत हो जाने पर भी उसी प्राक्तन अविकृत रूप मे वर्णन करना कवि-समय है। कवि-समय (काव्य-रूढि) शब्द का प्रयोग उसके मूल तत्व को न जानने वाले कुछ लोगो ने, केवल प्रयोग को देखकर ही प्रचलित कर दिया और वह रूढ हो गया है। इनमे से कुछ बाते ऐसी है जो प्रारभ से वस्तुतः कवि-समय नाम से प्रसिद्ध है और कुछ बाते धूर्तो ने परस्पर प्रतिस्पर्द्धा या स्वार्थ-साधन के लिए प्रसिद्ध कर दी है।

इस प्रकार लोक, शास्त्र एव प्रकृति के नियमो के प्रतिकूल चलाने के लिए कवियो को अक्षम्य नही ठहराया जा सकता है। जो काव्य मे ऐसा स्वेच्छाचार बर्तते है, वे राजशेखर की दृष्टि मे धूर्त हैं। किन्तु शास्त्रीय ज्ञान और अनुभव के आधार पर विद्वानो ने जिन परम्पराओ का प्रवर्तन किया है, वे काव्यशास्त्र मे वर्णित न होने पर भी मान्य है। इससे सिद्ध है कि राजशेखर की दृष्टि मे भी काव्य-परम्परा का पहला आवश्यक तत्व है, मान्यता या विश्वास।

दूसरा तत्व है, अलौकिकता। इससे आशय उन बातो का है, जो लोक-व्यवहार से बहिर्भूत, विलक्षण और अद्‌भुत् है। अद्‌भुत् वस्तुओ के वर्णन से एक मनोवैज्ञानिक कूतूहल का भाव उत्पन्न हो जाता है, क्योकि अद्‌भुत् के पीछे आश्चर्य की वृत्ति छिपी रहती है। यह कल्पना के आश्रित है। कल्पना-शक्ति जितनी अधिक उत्कृष्ट होगी, कवि उतना ही अद्‌भुत् एव अलौकिक वस्तुओ का वर्णन कर सकेगा। इससे सिद्ध है कि परम्परा मे दूसरा तत्व है, कल्पना, भ्रान्ति।

तीसरा तत्व है, परम्परा। इसका आशय है, पूर्वकाल के कवियो से चली आती हुई काव्य-प्रवृत्तियो का अनुसरण। किसी लिखित प्रमाण के अभाव मे मौखिक रूप से ही परम्पराओ का अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार परम्परा मे गतानुगति एव अनुकरण का तत्व विद्यमान है।

निष्कर्ष यह है कि राजशेखर के मत से काव्य-परम्पराओ के तीन आधार-तत्व है—(१) मान्यता, (२) कल्पना और (३) अनुकरण की प्रवृत्ति। यदि और अधिक विचार करके देखा जाय तो कल्पना तथा अनुकरण की प्रवृत्ति

का आधार मान्यता ही है। कल्पना मे नवोन्मेष के साथ रूढि का अश भी रहता है। कल्पना जिस अश मे रूढ हो जाती है, उससे वही अश ग्रहण किया जाता हे। वस्तुत कल्पना एक रूढि है, जिसके अनुसार चलना हर एक व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाता है। चन्द्र-मुख, कमल-नयन, बिम्बोष्ठ मे मुख, नेत्र तथा ओष्ठ के लिए क्रमश. चन्द्र, कमल और बिम्बाफल के उपमान लाए जाते है। सभी जानते है कि प्रस्तुत के लिए जितने अप्रस्तुतो की योजना कवि-परम्परा के अनुसार चली आती है, वे सब कल्पित, भ्रामक ओर अविश्वसनीय है, किन्तु कवि-सम्प्रदाय मे प्रचलित हो जाने से ये सवमान्य हो गए है। कारण यह है कि समस्त कल्पना-विधान रूढि के आश्रित है। ये रूढियाँ जैसी काव्य मे प्रचलित है, वैसी ही अन्य कलाओ मे भी। इनका आधार मूलतः सर्वमान्यता है। अनुकरण की प्रवृत्ति भी भावुकतापूर्ण मान्यता के आश्रित है। इससे स्पष्ट है कि कवि-समय, कवि-परम्परा या काव्य-रूढि का एक मात्र आधार है, सर्वमान्यता।

आचार्य सीताराम चर्तुवेदी[१] रूढि के मूल मे सामाजिक रुचि को कारण मानते हुए कहते है, सामाजिक रूढि वह व्यापक लोक-प्रवृत्ति है, जो पहले के मान्य व्यक्तियो द्वारा किन्ही वस्तुओ को सुन्दर, भव्य, मानी जाने की परम्परा से सध गई है और जो इस प्रकार सधते-सधते रूढि बन गई है। अतः इस सामाजिक रूचि को रूढ रूचि कहना भी असगत न होगा। इस कथन मे भी सामाजिक रुचि को परम्परागत मान्यता पर आधारित बताया गया है।

आचार्य वामन ने विशिष्ट पद-रचना को रीति बतलाया है[२]। उन्होने लोक व्यवहार के आधार पर इसके वैदर्भी, गौडीया और पाचाली तीन भेद किए है। ये देश-विशेष के नाम है, जिनके आधार पर रीति का विभाजन किया गया है। देश-विशेष से काव्य-गुणो की उत्पत्ति नही होती है, किन्तु उन देशो के लोगो ने विशेष-विशेष प्रकार की रचना-शैली का आविष्कार किया है। वामन के अनुसार ओज, प्रसादादि समस्त गुणो से युक्त रीति का नाम वैदर्भी है। ओज और कान्ति गुणो से युक्त गौडीया रीति है जिसमे समासो का बाहुल्य और उग्र पदावली का सन्निवेश रहता है। माधुर्य तथा सौकुमार्य गुणो से युक्त पाचाली नामक रीति होती है। ये माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण विशिष्ट रीतियाँ काव्य परम्पराओ से भिन्न वस्तु नही है। वस्तुतः ये वे काव्य मार्ग है, जिनको कवि-समाज ने स्वीकार कर लिया था तथा जिनकी काव्य-रूढियां स्थापित हो गई

१—आचार्य सीताराम चतुर्वेदी : समीक्षाशास्त्र, पृ० १२५।

२—वामन : काव्यालंकार सूत्र, १।२।७

थी। काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थो मे गुण एव रीतियो की विशिष्ट एव स्वीकृत विधियो पर पूर्ण विचार-विमर्श पाया जाता है। कवि-सम्प्रदाय की मान्यता ही इसका आधार है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि काव्य-परम्पराएँ किसी शास्त्रीय ग्रन्थ मे प्रतिपादित नही होती है। इनकी मान्यता गतानुगतिक न्याय से चली आती है। पूर्ववर्ती रचनाकारो ने साहित्य के क्षेत्र मे जो पथ, परिपाटिया, प्रवृत्तिया एव रीतियां स्थापित कर दी है, उन्हे उत्तरवर्ती कवि आप से आप ग्रहण कर लेते है। अतएव इनकी मान्यता व्यवहार के आश्रित है, किसी सिद्धान्त के नही। कवि-सम्प्रदाय मे स्वीकृत हो जाना इसकी प्रथम आवश्यकता है। इसके लिए सर्व-मान्यता, सर्व सम्मति एव सर्व स्वीकृति अपेक्षित है।

सस्कृत-साहित्य मे कवि-शिक्षा पर अनेक पुस्तके मिलती है, जिनमें काव्य-परम्पराओ एव रूढियो का विस्तार से वर्णन किया गया है। अरिसिंह की काव्य कल्पलतावृत्ति, देवेश्वर की कविकल्पलता तथा क्षेमेन्द्र के कवि कठा भरण मे कवि-शिक्षाओ का विशद वर्णन है। इनमे काव्य-रचना के व्यावहारिक अभ्यास बताए गए है। इनके अध्ययन से विदित होता है कि काव्य-निर्माण के लिए बहुत सी रचना सम्बन्धी परम्पराए स्थापित हो चुकी थी, जिनका ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक समझा जाता था। वस्तुत· इनमे काव्य-रूढियो का विशाल भडार भरा पडा है, जो कवि-समाज मे प्रचलित हो जाने से सबके द्वारा स्वीकृत हो चुकी थी। इसमे मान्यता एव अनुकृति ही कारण है। हिन्दी के लक्षण ग्रन्थो मे भी इनका उल्लेख हुआ है। केशव की कविप्रिया तथा रसिक-प्रिया मे काव्य-रूढियो का ही निरूपण है। इनके अध्ययन से सिद्ध होता है कि काव्य-परम्पराओ के मूल मे स्वीकृति, अनुकृति एव मान्यता का भाव विद्यमान है।

परम्पराओं में रूपान्तर

साहित्य के इतिहास मे प्राय: देखा जाता है कि कला अपने विकास के लिए दो प्रकार के परस्पर विरुद्ध मार्गों पर होकर चलती है। एक मार्ग है परम्पराओ की स्वीकृति का और दूसरा मुक्ति का। पहले मार्ग पर चलनेवाले कवि परम्परावादी होते हैं और दूसरे मार्ग का अवलम्बन करने वाले क्रान्ति-कारी। पहली श्रेणी के कवि रचनात्मक विधियो मे विश्वास करते है और दूसरे नयी नयी खोजो और प्रयोगो मे। इसी क्रिया-प्रतिक्रिया अथवा कार्य कारण की शृ खला मे साहित्य का विकास होता रहता है। यह मानव स्वभाव है कि कभी उसे प्राचीन प्रवृत्तियो के अनुकूल चलना प्रिय होता है और कभी उन्से विद्रोह

करना अच्छा लगता है तथा कभी दोनो मे आनन्द आता है। इसका कारण है, मानव-स्वभाव की परिवर्तनशीलता।[१]

एक दूसरा कारण और है। परिस्थितियो के परिवर्तन से भी काव्य-मार्ग बदल जाता है। किसी राष्ट्र मे राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक उत्क्रान्ति के अवसर पर भी प्राचीन परम्परा विशृ खल हो जाती है। जब नई चेतना नई क्रान्ति को जन्म देती है, तब पुरानी परम्पराए असामयिक, अनुपयोगी एव अशक्त सिद्ध होने से दम तोड बैठती है। सन् १७८९ की राज्यक्रान्ति के पश्चात फ्रान्स मे ऐसी ही परिस्थिति का प्रादुर्भाव हुआ था, जिसमे प्रति-क्रिया-वादी तत्वो की विजय होने से प्राचीन परम्पराए परास्त हो गई और अचिरात् उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। जो परम्परा परिस्थिति के साथ-साथ नही चल सकती है, वह पगु और निर्जीव हो जाती है। स्वस्थ एव समर्थ परम्पराएँ जीवित रहती है तथा अशक्त एव निरुपयोगी तत्व समाप्त हो जाता है। मृत परम्पराओ के प्रति तीन प्रकार की प्रतिक्रिया आरभ होती है—(१) उनके प्रति उपेक्षा का भाव हो जाता है, (२) उनमे सुधार-सस्कार किया जाता है, अथवा (३) उनके प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति उठ खडी होती है। रीति-कालीन काव्य-परम्परा के प्रति भारतेन्दु युग मे प्रथम दो प्रतिक्रियाएँ आरम्भ हो गई थी तथा द्विवेदी युग मे तीसरी प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ।

निष्कर्ष यह कि काव्य मे क्रिया-प्रतिक्रिया चक्रवत् घूमती है। परिवर्तन का क्रम सदैव अपना काम करता रहता है। जीवन की तरह साहित्य के क्षेत्र मे भी कोई प्रवृत्ति स्थायी नही होती है। एक प्रवृत्ति अपनी विरोधी प्रवृत्ति को जन्म देती है। उसी से वह अपनी पुष्टि करती है, कभी दबती है, कभी उभरती है, कभी रूपान्तरित होती है, तथा कभी अपना अस्तित्व ही खो बैठती है।

प्रयोग का मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोग भी अनिवार्य है। कवि की चेतना पर पडनेवाले जीवन और जगत के प्रभाव एक समान नही होते है। हर एक रचनाकार अपनी सापेक्ष दृष्टि से अनुभव करता है, अतएव अनुभव के क्षणो मे वह जो आत्म-साक्षात्कार करता है, वह दूसरे के अनुभव से अवश्य भिन्न होता है। मीरा और महादेवी दोनो के काव्य मे प्रेम की पीडा के उद्‌गार है, किन्तु फिर भी दोनो की प्रेमानुभूति एक सी नही है। किसी भी कलाकार के जीवन के

१—जान लिविंस्टन लोविस : कन्वेंशन ऐंड रिवोल्ट इन पोइट्री, पृ० ८७।

कोई से दो क्षण, दो अनुभव सर्वथा एक समान नही हो सकते हैं। अनुभव की भिन्नता ही प्रयोगो का मूल है। यदि इस भिन्नता को स्वीकार नही किया जाता तो सम्पूर्ण साहित्य पुनरावृत्ति मात्र रह जाता।

प्रयोग की प्रवृत्ति

प्राचीन वस्तु को नये नये रूपो मे प्रस्तुत करना प्रयोग है। प्रयोग प्राचीन परम्पराओ मे से नवीन वस्तु का अनुसन्धान करके लाता है तथा यह स्वच्छन्दता पूर्वक अपने को नये नये रूपो मे अभिव्यक्त करता है। प्रयोग की प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक होती है। वह प्राचीन प्रवृत्तियो को कविता-कामिनी के पैरो की शृखलाए समझता है। वह काव्य के परम्परागत उपकरणो का सदैव खडन करता है। प्रयोग के दो रूप है, (१) रचनात्मक और (२) ध्वसात्मक। प्रयोग की प्रवृत्ति निषेधात्मक ही नही, विधानत्मक भी होती है। वह पुनरावृत्ति को कला का दोष समझता है तथा स्वानुभूति को प्रकाशित करने के लिए अभिव्यक्ति के नये नये मार्गों का अन्वेषण करता है। सत्य एक है, किन्तु उसकी अनुभूति के स्तरो मे भेद है। इसीलिए उसे नाना पथो से आत्मसात् करने का प्रयत्न चलता आया है और चलता रहेगा। प्रयोग काव्य-सत्य को पाने के लिए नये नये प्रयत्नो मे विश्वास करता है। इसीलिए वह काव्य-चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रवृत्तियो का सृजन करता है और नये नये पथो का अनुसधान करता है। प्रबुद्ध कवि की चेतना विकासोन्मुख रहती है। बधी-बधायी काव्य सरणियो एव परम्पराओ मे फसकर उसका जी घुटने लगता है। इसीलिए वह नवीनता की सभावनाओ मे विश्वास रखता है तथा परम्पराओ से विद्रोह करके नये पथ से चलने का साहस दिखलाता है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध छायावाद ने यही साहस दिखलाया था, जिसका अभिनन्दन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है—"वह दिन सचमुच ही हिन्दी की कविता की मुक्ति का दिन था, जब कवि ने परिपाटी-विहित रसज्ञता और रूढि-समर्थित काव्य-कला को साथ ही चुनौती दी। मर्यादा विषयक अज्ञान और उपेक्षा दोनो ने उसकी मुक्ति मे सहायता दी। यद्यपि वह मुक्त होकर ठीक रास्ते नही गया, पर मुक्त वह निस्सन्देह हो गया। पुराने पडितो ने झुझलाकर रोष प्रकट किया, मजाक उडाया, भद्दे-भद्दे नाम देकर उसे हतोत्साह करना चाहा, पुराने शास्त्रो के जटिल तर्को की अवतारणा करके उसे डराना चाहा, पर वह इनसे विचलित नही हुआ।

प्रसाद, निराला, पन्त, सियारामशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, आदि कवियो ने रूढ़ि मुक्त होकर अपनी बात कही।[१]"

प्रयोग और परम्परा

परम्परा का सम्बन्ध अतीत से तथा प्रयोग का वर्तमान युग से होता है। किन्तु अतीत और वर्तमान, प्राचीन और नवीन सापेक्षता मे ही देखे जा सकते है। कर्त्तव्य और अधिकार की भाँति परम्परा और प्रयोग मे अनिवार्य सम्बन्ध है। प्रत्येक कवि मे प्राचीन और नवीन बातो का किसी न किसी अश मे अवश्यम्भावी योग रहता है, क्योकि अतीत मे विच्छिन्न होकर सर्वथा स्वतत्र होकर चलना किसी भी कलाकार के लिए सभव नही है। टी० एस० ईलियट ने भी कहा है—कोई भी कवि या कलाकार अपने आप मे सर्वथा पूर्ण नही होता है। प्राचीन युग के कवि या कलाकारो के सम्बन्ध से ही उसके गुण तथा गौरव की सराहना की जाती है। उसकी स्वतत्र या निरपेक्ष सत्ता का कोई मूल्य नही होता। समान या असमान बातो मे पुराने कवियो के साथ उसकी तुलना करने से ही उसका विशेषत्व प्रकट होता है।[२]

साहित्य की परम्पराओ को ऐतिहासिक क्रम मे देखने से कार्य-कारण का सम्बन्ध प्रकट होता है। प्रयोग और परम्परा मे कार्य कारण सम्बन्ध होता हे। वर्तमान युग के प्रयोगो का कारण अतीत की परम्पराओ मे ढूँढा जा सकता है, क्योकि अतीत वर्तमान का जनक है। वर्तमान की उत्पत्ति अतीत मे से होने के कारण वह उसी का एक अश है। हमारी वर्तमान परिस्थिति पूर्वकालीन परिस्थिति का प्रतिफल है तथा पूर्व की परिस्थिति उससे पूर्व की स्थिति का परिणाम है। कार्य-कारण की यह अखड परम्परा एक महानद की भाँति सुदीर्घ काल से निरन्तर चली आती है। इसीसे वर्तमान की कोई निरपेक्ष सत्ता नही है। वर्तमान को समझने के लिए अतीत की ओर अवश्य दृष्टिपात करना चाहिए, क्योकि अतीत भी वर्तमान मे ही छिपा हुआ है। कार्य-कारण की इस शृ खला पर विचार करने से विदित हो जायगा कि वर्त्तमान काल के प्रयोगवादी कवि अपने से पूर्व पूर्वतर, प्रगतिवाद, छायावाद, द्विवेदी युग, भारतेन्दु युग एव प्रारम्भिक युग के कवियो से एक ही शृ खला मे जुडे हुए है। अतः परम्परा से विच्छिन्न होकर कोई कवि कुछ भी मूल्य नही रखता।

१—हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, चतुर्थ आवृत्ति, पृ० १४८।

२—टी० एस० ईलियट : सेलेक्टेड प्रोज (पेंग्विन), पृ० २३।

परम्परा और प्रयोग मे अच्छेद्य सम्बन्ध है तथा वे एक दूसरे के पूरक है । प्रत्येक प्रयोग कुछ काल के अनन्तर परम्परा बन जाता है तथा प्रत्येक परम्परा मे से नये प्रयोगो की सृष्टि होती रहती है । जिस परम्परा मे आगे प्रयोग करने की प्रेरणा नही होती, वह उतनी ही निरर्थक है, जितना कि वह प्रयोग जो नई परम्पराए स्थापित करने मे असमर्थ होता है[१] । प्रयोग की प्रेरणा परम्परा मे ही होनी है । यदि परम्परा मे विकास की शक्ति नही, गति नही, तो वह अधिक दिनो तक जीवित नही रह सकती । प्रयोग-हीनता निर्जीव परम्परा का लक्षण है । परम्परा का प्रवाह सतत् गतिशील है । इसके बिना वह निश्चल, स्थिर एव जड है । विकासशील जीवन मे पुरातन प्रवृत्तिया भी परिवर्तित होती रहती है । स्वस्थ परम्परा सदैव विकासोन्मुख रहती है । कोई भी पुरातन वस्तु अथवा स्थिति अक्षुण्ण नही है क्योकि जीवन की कोई विशेष स्थिति किसी विशेष प्रवृत्ति का परिणाम होती है । वह सदैव एक सी नही रह सकती[२] ।

निष्कर्ष यह है कि प्रयोग और परम्परा मे मूलत. कोई अन्तर नही है । प्रयोगशील कवि या कलाकार परम्परा को स्वायत्त करके ही नये प्रयोगो की सृष्टि करता है । स्वस्थ परम्पराओ मे से ही नये रूप, नये रग, एव नयी अभिव्यक्तियो के नये प्रकारो का विकास होता रहता है, जिन्हे हम नया प्रयोग कहने लगते है ।

परम्परा और स्वच्छन्दता (क्लैसीसिज्म और रोमेंटीसिज्म)

ग्रीस और रोम की कला मे जिन गुणो का विकास हुआ था, उन्हे परम्परा (क्लैसीसिज्म) का नाम दिया जाता है । इस शैली मे सयम, गौरव, सरलता, प्रसन्नता एव शालीनता आदि गुणो की प्रधानता है । इसके अतिरिक्त विचारो की विशदता, रूप की समग्रता तथा कल्पनात्मक ज्ञानात्मिका शक्ति का भी इसमे समन्वय हो गया है । कल्पना और विवेक के समन्वय से क्लैसीसिज्म की प्रणाली आत्मगत होने की अपेक्षा वस्तुगत अधिक है ।[३]

स्वच्छन्दतावाद (रोमेटीसिज्म) की प्रवृत्ति परम्परा से भिन्न है । इसमे भाव और मनोवेगो का प्रभुत्व है । समुन्नत कल्पना, उद्दाम भावना, अनुभूति की प्रगाढता, उत्साह एव करुणा भावो की अभिव्यक्ति इसके प्रधान तत्व है ।[४]

१—लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १६२ ।

२—टी० एस० ईलियट : आफ्टर स्ट्रेंज गॉड्स, पृ० १८-१६ ।

३—इन्साइक्लोपीडिया आव सोशल साइंसेज, जिल्द ३, पृ० ५४२ ।

४—वही, जिल्द १३, पृ० ४२७ ।

अमरीका तथा फ्रास की राज्यक्रान्तियो के उपरान्त प्रजातत्र की स्थापना हो जाने पर स्वातत्र्य प्रेम तथा व्यक्तिवाद के रूप मे इसकी अभिव्यक्ति हुई। इसने कला के क्षेत्र मे वैयक्तिकता को जन्म दिया।

परम्परा की प्रवृत्ति वस्तुपरक है, जिसमे प्राकृतिक पदार्थों के बाह्य-चित्रण तथा उनसे पडनेवाले प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया जाता है। स्वच्छन्दता-वाद मे चाक्षुष प्रत्यक्ष की अपेक्षा मानस-प्रत्यक्ष के चित्रण को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमे बाह्य चित्रण की अपेक्षा सूक्ष्म आन्तरिक सौन्दर्य की ओर कवि का ध्यान रहता है। क्लैसीकल कविता मे अनुभूति का तत्व प्रधान होता है जब कि रोमेटिक काव्य मे आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होती है। क्लैसीकल काव्य का सम्बन्ध बाह्य जगत से होता है जिससे सभी परिचित होते है। उसकी अपनी परम्पराएँ है, जिनसे उसमे प्रेषणीयता का तत्व अधिक है। इसके विपरीत आत्म-प्रेरित काव्य का अन्तर्जगत् स्वय कवि के लिए अविदित है। अतएव उसमे प्रेषणीयता बहुत कम है।

क्लैसिकल काव्य की उन्नति के लिए सामन्तीय युग अनुकूल होता है। सामन्तीय युग के कठोर शासन सम्बन्धी नियमो और क्लैसिक काव्य के सयत काव्य-विधानो मे बहुत कुछ समानता होती है। जब प्रजा के ऊपर कडे नियमो का शासन होता है, धर्म एव मर्यादाओ का पालन आवश्यक हो जाता है, तब परम्परावादी काव्य का विकास होता है। ऐसे युग के कवि काव्य शास्त्रीय मर्यादाओ का कठोरता से पालन करना अपना कर्तव्य समझते है तथा प्राचीन काव्य-मार्ग के उल्लघन को अपराध समझते है। महाकाव्यो का सृजन अधिकतर सामन्तीय युग मे ही होता है। काडवेल के मत से सामन्तवर्ग के शासन मे ही महान कविता की सृष्टि होती है।[1] सस्कृत के महाकाव्यकार कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष एव हिन्दी के चन्द, तुलसी एव केशव का जन्म सामन्तीय युग मे ही हुआ था। इनके काव्यो मे छन्दोविधान अलकार-योजना तथा व्यवस्थित भाषा एव रचना-शैली का आग्रह दृष्टिगोचर होता है। काव्य-विधान का ऐसा नियत्रण अपेक्षाकृत भिन्न युग के कवियो मे नही दिखाई पडता है।

जब धार्मिक परतत्रता शिथिल हो जाती है, वैयक्तिक स्वातत्र्य की भावना का विकास होने लगता है, परम्राओ का बन्धन असह्य हो उठता है, तब स्वच्छन्दता वादी काव्य-प्रवृत्ति का श्रीगणेश होता है। सच्चा रोमेटिक कवि शास्त्रीय नियमो से प्रेरणा नही पाता है, उसका काव्य बहुत कुछ आत्म-प्रेरित

१—काडवेल : इल्यूजन एण्ड रिएलिटी, पृ० ३६।

होता है। इसी कारण उसकी कविता मे आत्माभिव्यक्ति का उल्लास अधिक वेग से प्रस्फुटित होता है।

योरुप मे १५वी शती के समाज मे एक नए वर्ग का जन्म हुआ, जिसे बोर्जुआ समाज-व्यवस्था कहा जाता है। क्लैसिकल कविता जिस प्रकार सामन्तीय युग की साहित्यिक अभिव्यक्ति है उसी प्रकार रोमेटिक काव्य-प्रवृत्ति बोर्जुआ या पूजीवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। काडवेल ने भी आधुनिक युग की रोमेटिक काव्यधारा को पूजीवादी कविता बतलाया है।[1] हिन्दी-साहित्य के छायावादी कवि स्वच्छन्दतावाद की कोटि मे आते है, क्योकि इनके काव्य मे कल्पना का वेग, मधुमय प्रेम चर्या, मधुर वेदना एव आत्माभिव्यजन का प्राचुर्य है। इनकी अभिव्यक्ति मे वैचित्र्य है, जिसमे परम्परागत भावो को नई भगिमाओ के साथ व्यजित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि क्लेसीसिज्म और रोमेटीसिज्म परम्परा और प्रयोग के ही नामान्तर है।

परम्परा और स्वच्छन्दता मे देश-काल की दृष्टि से भी भेद माना गया है। परम्परा (क्लैसीसिज्म) का सम्बन्ध मूलतः ग्रीक और रोम के कला-शिल्प से है, जिसका प्राचीन युग मे आविर्भाव हुआ था। स्वच्छन्दता (रोमेटीसिज्म) की प्रवृत्ति का विकास जर्मन, फ्रास तथा इग्लैड आदि देशो मे उन्नीसवी शती के आरभ से अपने-अपने ढग पर हुआ था। यह भी निश्चित है कि योरुप के देशो मे मूर्ति-पूजा के युग के भाव एव कला-शिल्प मे सामन्तीय युग के भाव एव कला-शिल्प से अन्तर है। आलोचको का कथन है कि क्लैसिक और रोमेन्टिक कलाकारो की बौद्धिक प्रवृत्ति, अनुभूति, कल्पना तथा शैली-शिल्प मे बहुत अन्तर है। इसी के आधार पर ग्रीक और रोम की बौद्धिक चेतना मे स्पष्टता, सरलता. सयम, एक-रूपता और पूर्णता के गुण विद्यमान है तथा इसी आधार पर आधुनिक काल की किसी कला-कृति मे यदि रचना-शिल्प, एक-रूपता, सक्षिप्तता, स्पष्टता तथा सुनिश्चित रूप-रेखा आदि गुणो की अभिव्यक्ति होती है तो उसे निस्सकोच परम्परागत (क्लैसिकल) कह दिया जाता है तथा ऐसा कहने मे किसी ऐतिहासिक युग का विचार नही किया जाता है। इसके विपरीत मध्यकाल के कवि एव कलाकारो की रचना मे भावात्मकता का आधिक्य, कल्पना का प्राचुर्य, रूप-विधान की उपेक्षा एव अतिशयोक्ति की प्रधानता परिलक्षित होती है। अग्रेजी साहित्य के ब्लेक, कालरिज, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन के काव्य मे यह प्रवृत्ति प्रधान रूप से परिलक्षित होती है।

१—काडवेल : इल्यूजन एण्ड रिएलटी, पृ० ४६।

स्टूटार्ड ने दोनो प्रवृत्तियो का भेद दिखलाते हुये कहा है—"शुद्ध क्लैसिकल काव्य मे शैली और उद्देश्य के विषय मे कुछ निश्चित नियमो का पालन करना होता है। उसमे रचना-सम्बन्धी नियमो की स्वीकृति का भाव प्रधान होता है। क्लैसिकल रचना मे एक निश्चित आदर्श, सन्तुलन, शोभा, औचित्य एव सामजस्य पाया जाता है। ऐसे आदर्श की स्वीकृति से नियम, एकरूपता, विधि एव बन्ध-सौष्ठव के गुण आप से आप आ जाते है। क्लैसीसिज्म का जन्म विधि (लॉ) से होता है। अधिकार मे कर्त्तव्य का पालन प्रधान होता है तथा उसके आदर्श ज्ञात होते है। ऐसा कलाकार परिवर्तन के विरोधी विचारो का होता है तथा प्राचीनता के प्रति आस्थावान् होता है। स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति स्वीकृति के स्थान पर विरोध की होती है। यह प्रवृत्ति शाब्दिक की अपेक्षा रूपकात्मक अधिक होती है। ज्ञात से अज्ञात की ओर इसकी दृष्टि उन्मुख रहती है। यह प्रत्यक्ष को छोडकर भावो के प्रतीको की खोज मे रहती है। अधिकार के विरोध मे स्वच्छन्दतावाद का जन्म होता है। यह प्रवृत्ति नियम-बद्धता के स्थान पर नये नियमो की खोज मे निरतर सलग्न रहती है। फलत. परपरावाद की दृष्टि से रोमेन्टिक कृति मे सतुलन, सादृश्य एव पूर्णता का अभाव रहता है, क्योकि क्लैसीसिज्म सुसस्कृत मान्यता है तथा रोमान्टिसिज्म अनियमित आकाक्षा।"

स्वच्छन्तावाद की व्याख्या अवरक्रोम्बे ने इस प्रकार की है—"यह बुद्धि के प्रति भाव की प्रतिक्रिया है। यह उच्छृखलतापूर्ण है तथा यह यथार्थवाद का विरोधी है। यह बाह्यानुभूति की अपेक्षा भावानुभूति की ओर उन्मुख रहता है।" स्वच्छन्दता अपने अतिवादी रूप मे यथार्थता और समाज के प्रति विद्रोह का रूप है जिसमे स्वप्न और उन्माद के सामने तथ्य और कर्तव्यो का त्याग हो जाता है।[२]

परपरावाद (क्लैसीसिज्म) और स्वच्छन्दतावाद (रोमेन्टीसिज्म) दोनो काव्य-प्रवृत्तियो के विषय मे यह स्मरण रखने योग्य है कि इनमे कोई वस्तुगत भेद नही है। भेद केवल शैलीगत है। किसी पुराने से पुराने विषय को नई शैली मे तथा नये से नये विषय को पुरानी शैली मे प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरण के लिये कीट्स ने 'ओड आन ए ग्रीसीयन अर्न' कविता मे क्लैसिक वस्तु को रोमान्टिक शैली मे चित्रित किया है तथा टैनीसन ने 'यूलीसिस' और 'द लोटस ईटर्स' जैसे होमर युग के विषयो को

२—एफ० एल० लूकाज : लिट्रेचर ऐंड साइकालाजी, प० १००, १०३।

क्रमश. क्लैसिक और रोमेन्टिक शैलियो मे प्रस्तुत किया है। पत और निराला ने क्रमश. 'नौका विहार' और 'यमुना के प्रति' कविताओ मे पुराने विषयो को नए रूप-रग मे अकित किया है। इसी प्रकार रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध चरित' मे नवीन कथानक को प्राचीन शैली मे प्रस्तुत किया है। वस्तुत. कोई भी रोमेन्टिक विषय ऐसा नही है,जो क्लैसिकल शैली मे उपस्थित न किया जा सके तथा ऐसा कोई भी क्लैसिकल विषय नही है, जो रोमेन्टिक शैली मे प्रस्तुत न हो सके। दोनो ही काव्य-प्रवृत्तियो मे 'प्रकृति की ओर' लौटने का समर्थन किया गया है। प्रकृत्ति मे कहाँ परम्परावाद है और कहाँ स्वच्छन्दतावाद। नदी, वन, पर्वत, कछार, पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, फूल एव पौधो मे न तो कोई स्वच्छन्दतावादी तत्व है ओर न कोई परम्परावादी गुण। भेद तो केवल वस्तु को प्रस्तुत करने की शैली मे हो जाता है। जिसमे आत्माभिव्यजन एव कल्पना का वैचित्र्य प्रधान है उसे स्वच्छन्दतावाद कह दिया जाता है तथा जिसमे वस्तुओ का एक नियत छद एव निर्धारित शेली मे वर्णन किया जाता है, उसे परम्परावाद का नाम दिया जाता है।

परम्परा (क्लैसिसिज्म) तथा स्वच्छन्दता (रोमेटीसिज्म) तत्वतः दोनो एक दूसरे के पूरक है। दोनो के सयोग से काव्य मे जीवन को प्रतिष्ठा होता है। जिस प्रकार राज्य की प्रगति के लिये परम्परावादी और क्रान्तिकारी दोनो वर्गो की आवश्यकता होती है उसी प्रकार काव्य एव कला के स्वस्थ विकास के लिये दोनो ही काव्य-प्रवृत्तियाँ अपेक्षित है। दोनो मे विरोध अनुचित है। दोनो का समन्वय काव्योत्कर्ष मे सहायक होता है। काव्य के क्षेत्र मे केवल परम्परा-वाद की प्रवृत्ति गतिरोध को जन्म देती है तथा केवल स्वच्छन्दतावाद के आग्रह से काव्य मे अराजकता बढ़ती है। अतएव काव्य के गतिशील विकास के लिय दोनो काव्य-प्रवृत्तियो के सहयोग की आवश्यकता है।

परम्परा, प्रयोग तथा वाद

काव्य के क्षेत्र मे जब ये दोनो प्रवृत्तियाँ 'वाद' के रूप मे आती है तब ये अत्यन्त भ्रामक सिद्ध होती है। टी० एस० ईलियट का कथन है कि कोई भी रचनाकार परम्परावाद या स्वच्छन्दतावाद का लेबिल लगाकर उत्पन्न नही होता। 'वाद' तो राजनैतिक दलबन्दी को प्रकट करता है। साहित्य के इतिहास मे तथा विद्वानो के मुख से भी ये शब्द सुने जाते हैं, किन्तु ये अधिक महत्व नही रखते। यदि कोई कलाकार या कवि किसी वाद का आग्रह लेकर कला के क्षेत्र मे पदार्पण करता है, तो वह लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक उठाता है।

साहित्य के क्षेत्र मे वाद का महत्त्व नही, महत्व है सृजनात्मिका शक्ति का। जब कोई कलाकार सृजन करने मे प्रवृत्त होता है, तब वह यह नही सोच रहा होता कि उसकी रचना 'वाद' की किस श्रेणी मे स्थान पा सकती है। सृजन के क्षणो मे कलाकार आत्मानुभूति से प्रेरित होकर लिखता है, किसी वाद विशेष के पूर्वाग्रह से नही।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते है, 'सच्ची कविता किसी 'वाद' को लेकर नही चलती, जगत की अभिव्यक्ति को लेकर चलती है। वादग्रस्त काव्य अधिकतर काव्याभास ही होता है। उसमे प्रकृति के नाना रूप और व्यापार किसी वाद या सप्रदाय के घेरे में निरूपित बातो को मूर्त रूप मे स्पष्ट करने या काव्य की भावात्मक शैली पर मनोरजक बनाने के लिये साधन रूप मे ही व्यवहृत होते है[2]।

प० नन्ददुलारे बाजपेयी का मत है—'वाद तो वास्तव मे जीवन सबंधित धारणाओ और प्रवृत्तियो के बौद्धिक निरूपण है। प्रत्येक वाद की एक सीमा रेखा होती है। प्रत्येक वाद के अतर्गत समय-समय पर ऐसी जीवन दृष्टियाँ सघटित होती है जिनसे सामाजिक उन्नति और ह्रास दोनो के सयोग इकट्ठे हो सकते है। प्रत्येक वाद मे शक्तिमता और दुर्बलता के परमाणु समयानुसार घटते-बढते रहते है।' आगे चलकर उन्होने कहा है—'वाद तो एक स्थूल और परिवर्तनशील जीवन दृष्टि है। काव्य जीवन व्यापी अनुभूति है। काव्य और वाद दोनो के स्वरूपो और प्रक्रियाओ मे अतर है[3]।

सुमित्रानन्दन पत 'युगवाणी' मे 'कवि' को लक्ष्य कर कहते है—

'हे राजनीति विद अर्थविज्ञ। रच शत शत वाद, विवाद, तत्र,
परतत्र किया तुमने मानव, तुम बना न सके उसे स्वतन्त्र।—पत

उपर्युक्त सभी आचार्य और कवि इस सबध मे एक मत है कि 'वाद' एक साम्प्रदायिक दृष्टि है। वाद के सकीर्ण घेरे मे बद होकर कोई कवि जीवन को समग्र रूप मे नही देख सकता है। इसकी दृष्टि सीमित हो जाती है। जब अनुभूति के ऊपर वाद का पूर्वाग्रह छा जाता है, तब कवि के काव्य मे से कवित्व तो चला जाता है, वाद का प्रचार शेष रह जाता है। आधुनिक युग के प्रगति-

---

१—टी० एस० ईलियट, आफ्टर स्ट्रेन्ज गोड्स, पृ० २६।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : काव्य मे रहस्यवाद, चिन्तामणि, दूसरा भाग, पृ० ७३।

३—नन्ददुलारे बाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० २१।

वादी काव्य मे यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। जितने अश मे कवियो ने वाद-ग्रस्त काव्य का सृजन किया है उतने ही अश मे कवित्व का दर्शन नही मिलता। परम्परावाद, स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद भी कविता की शैलियो के रूप मे ही व्यवहृत हुये हैं। इनको वाद के रूप मे ग्रहण करने से काव्य की हानि ही होती है। वस्तुतः यह भावाभिव्यक्ति के माध्यम है। अतः श्रेष्ठ कवियो ने इनको साधन के रूप मे ही ग्रहण किया है, साध्य के रूप मे नही। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी शैली के कवि शैली, कीट्स, वर्डसवर्थ आदि तथा हिन्दी के प्रसाद, पत, निराला, महादेवी का काव्य इसका प्रमाण है। इससे सिद्ध है कि 'वाद' कविता का नियामक नही है। यह काव्य के उन्मुक्त प्रवाह मे बाधक तत्त्व है।

हिन्दी साहित्य का विकास—

साहित्य का इतिहास परम्परा और प्रयोग की कहानी है। क्रिया-प्रतिक्रिया, परम्परा-प्रयोग, रचनात्मक प्रवृत्ति और विरोधात्मक प्रवृत्ति मे सदैव प्रतिद्वन्द्व चलता रहता है। जीवन की तरह साहित्य का प्रवाह भी परिवर्तनशील है। साहित्य मे कोई प्रवृत्ति स्थायी नहीं है। जब एक प्रवृत्ति पुरानी हो जाती है, तब उसमे रूढियाँ स्थिर हो जाती है। कवि प्रतिभा बँधी-बँधायी रीतियों के आसपास चक्कर काटती रहती है, जिससे एक से ही तुक, छद, वस्तु, प्रतीक, उपमान एव काव्य रूपो की पुनरावृत्ति होना प्रारभ हो जाती है। इस स्थिति से क्रान्ति का प्रादुर्भाव होता है। नवीनता, मौलिकता एव परिवर्तन की पिपासा नए काव्य की प्रेरक शक्ति है। पुरानी प्रवृत्ति से ऊब कर कवि-चेतना नये रूप; नये रग तथा नये रेखा चित्रो के अनुसधान मे प्रवृत्त होने लगती है। नये-नये प्रयोग इसी प्रवृत्ति के परिणाम है। प्रयोग भी कुछ काल के पश्चात् परम्परा का रूप धारण कर लेते है। फिर प्रतिक्रिया आरभ हो जाती है। साहित्य के विकास मे क्रिया-प्रतिक्रिया का यही क्रम निरन्तर चलता रहता है और इसी मे साहित्य का जीवन विकास पाता रहता है। अँग्रेजी के आधुनिक युग के एक आलोचक डा० एच० वी० रूथ ने इस परिवर्तन के मूल मे निहित आश्चर्य तत्व को आवश्यक बताया है—"कला को सदैव नवीन स्वरूप देते रहना ,चाहिये। उसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्य तत्त्व पर निर्भर रहता है। एक बार जब कलात्मक अभिव्यक्ति की पद्धति की नवीनता समाप्त हो जाती है तो पाठक या सहृदय उससे विमुख होकर अपने दैनिक कार्यों मे लग जाता है। कला या साहित्य मे वह एक नई दृष्टि खोजता है, पर ऐसी बासी अभिव्यक्तियो मे उसे केवल स्थूल रूप का ही दर्शन होता है। इसीलिये किसी महान पुस्तक मे नवीनता

द्वारा चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिये, जिससे पाठक प्रारम्भ मे ही आगे पढने के लिये उत्सुक हो जाय और इसे विश्वास हो जाय कि अनुभूतियाँ व्यापक और गम्भीर छवियो के निर्माण तथा कारयित्री प्रतिभा की क्रीडा का सामग्री मात्र है[१]।"

हिन्दी कविता के ऐतिहासिक विकास मे भी परम्परा और प्रयोग का यही क्रम दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी साहित्य के प्रारभिक सामती युग की स्थूल शास्त्रीय परम्परा के प्रति सत काव्य मे सजग विद्रोह की भावना विद्यमान है। सत कबीर ने प्राचीन रूढियो और मान्यताओ का खुलकर विरोध किया है[२]। उनके साहित्य मे सामाजिक और आध्यात्मिक विद्रोह की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। जो सत काव्य विद्रोह की इतनी सजग चेतना लेकर अग्रसर हुआ था, वह आगे चलकर स्वय रूढियो के जाल मे बँध गया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"कम सतो की वाणियो मे बँधी-सँधी बोलियो के बाहर की बात मिलेगी, सबमे एक ही वक्तव्य विषय, एक ही शब्दावली, एक ही शैली मे बार-बार दुहराया गया है[३]।" निर्गुण भक्तिकाल की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण भक्ति काल का उदय हुआ। भक्त कवियो मे एकान्तिक धर्म साधना के विरुद्ध लोक-सग्रह का भाव अधिक है। सूर और तुलसी ने भक्ति काव्य को पूर्णोत्कर्ष को पहुचा दिया है, जिससे परवर्ती कवियो के लिये उसके आगे जाना कठिन हो गया। भक्ति काव्य मे धार्मिक एव आध्यात्मिक भावना का इतना विकास हुआ कि रीतिकाल मे लौकिक प्रेम भावना के रूप मे इसकी प्रतिक्रिया दिखाई पडी। भक्ति काल मे स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति का वेग था। रीतिकाल मे इसके विरुद्ध रीतिबद्ध शास्त्रीय काव्य परम्परा का विकास हुआ। इसके साथ ही स्वच्छन्दतावादी रीतिमुक्त काव्यधारा भी चलती रही। इस प्रकार सपूर्ण मध्ययुग मे परम्परा और स्वच्छन्दता दोनो काव्य प्रवृतियो का सघर्ष चलता है।

बीसवी के शताब्दी के प्रारम्भ मे पुनरुत्थान युग के साथ रीतिकालीन काव्य रूढियो के विरुद्ध फिर विद्रोह हुआ, जिसकी परिणति द्विवेदी युग के काव्य मे दृष्टिगोचर हुई। इस काल मे कविता के छद, तुक, लय, वस्तु, भाव एव रूप मे सर्वथा नये प्रयोग हुये। किन्तु जब नीति, उपदेश एव वस्तु तत्व

१—डा० एच० वो० रूथ, : इंग्लिश लिटरेचर ऐण्ड आईडियाज़ इन द ट्वेंटिएथ सेंचुरी, पृ० २।

२—हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० २७।

३—वही, पृ० १५८-५६।

की एकरूपता से द्विवेदी युग की कविता मे भी रूढिवादिता दृष्टिगोचर होने लगी, तब स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को लेकर छायावाद युग का प्रारम्भ हुआ। प्रसाद, पत, निराला के काव्य मे वस्तु और शिल्प के क्षेत्र मे अभिनव प्रयोगो का बाहुल्य है। इस काल मे काव्यक्षेत्र मे अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। किन्तु कुछ समय के पश्चात् छायावादी काव्य-विधान भी रूढियो की भूलभुलैयो के बीच चक्कर काटने लगा। उसकी पलायनवादी प्रवृत्ति और वायवी कल्पना के विरोध मे प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ। अचल, बच्चन, नरेन्द्र, भगवती चरण वर्मा के काव्य मे जिस स्थूल एव मासल प्रेम तथा सामाजिक यथार्थ का चित्रण है, उसमे छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया का तत्त्व प्रधान है। आगे चलकर यह काव्य-प्रवृत्ति भी मार्क्सवादी सिद्धान्तो के प्रचार के दलदल मे फँस जाने से लडखडाने लगी। तब प्राचीन प्रवृत्तियो के प्रति पूर्ण विद्रोह का स्वर लेकर प्रयोगवाद का जन्म हुआ। यह हिन्दी साहित्य की नवीनतम काव्य प्रवृत्ति है। इसमे परम्परागत छन्द, भाषा, तुक, लय, प्रतीक, उपमान, वस्तु एव भाव सबके प्रति उद्दाम विरोध की भावना है। तार सप्तक के प्रकाशन के साथ प्रयोगवादी काव्य की रूपरेखा निश्चित हुई। अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारतभूषण, डा० रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार, प्राचवे, धर्मवीर भारती आदि इस नई कविता के कवियो मे प्रमुख है।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी साहित्य के समूचे इतिहास मे परम्परा और स्वच्छन्दता (प्रयोग) का सघर्ष है। कभी ये दोनो प्रवृत्तियाँ एक दूसरे को दबाकर आगे बढती है और कभी दोनो साथ-साथ चलती है। इन दोनो मे कार्य-कारण का सबध है। परम्परा मे अनुकृति एव पुनरावृत्ति का तत्त्व प्रधान होता है, प्रयोग मे नये रूप एव नये रगो का। इन्ही दोनो प्रवृत्तियो के आरोह-अवरोह के साथ काव्य की धारा निरतर गतिशील रहती है।

परम्परा और प्रयोग का मूल्यांकन—

साहित्य मे परम्परा का वही मूल्य है, जो जगत् मे जीवन का। विकासशील जीवन मे भी नई-नई परम्पराओ का विकास होता रहता है। परम्पराओ की स्वीकृति से एक बडा लाभ यह होता है कि जो कुछ परम्परागत निधि है, वह सुरक्षित रहती है। यह सचित निधि काव्य का बहुत बडा सबल है।

आज के प्रयोग कल परम्परा होगे। प्राचीन परम्पराये भी किसी दिन के नवीन प्रयोग थे। परम्परायें युग विशेष की दृष्टि, प्रवृत्ति एव सौन्दर्यबोध का परिचय कराती है। इनके अध्ययन से पता चलता है कि अतीत युग मे सौन्दर्य एव जीवन बोध का अन्वेषण किस रूप मे प्रचलित था। उन पर युग

के सस्कारो की छाप लगी रहती है। चाहे आज उनमे सौन्दर्य का दर्शन करना लुप्त हो गया हो, चाहे उन धारणाओ को अब परित्याज्य समझा जाता हो, किन्तु उनमे अपना गौरव होता है, जो उन्हे स्थायित्व प्रदान करता है। मौर्य और गुप्त काल के सिक्के आधुनिक युग मे प्रचलित नही है, किन्तु इसमे उनका महत्त्व नही घट जाता। मध्य युग के काव्य का अनुप्रास, यमक, श्लेष का चमत्कार, खड्गबन्ध, कमलबध आदि चित्र काव्य का नैपुण्य आधुनिक युग के काव्य मे बद हो गया है, परतु उसमे जो कलात्मक सौष्ठव है उसका अवमूल्यन नही किया जा सकता है। जो परम्परा जिस युग का प्रतिनिधित्व करती है, उस पर अपने युग के रुचि वैचित्र्य और कलात्मक सौन्दर्य की छाप रहती है। युग दृष्टि एव जीवन बोध के परिवर्तित हो जाने पर उनका महत्त्व चला जाता है, किन्तु काव्य के ऐतिहासिक विकास क्रम अपने स्थान पर उसका गौरव अक्षुण्ण रहना है। डा० रामकुमार वर्मा ने जातीय सस्कृति और परम्पराओ के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुये लिखा है—

"ये हमारे सामने जातीय सस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं। इनके द्वारा किसी युग विशेष की समस्त परम्पराये अपने स्वाभाविक क्रियाकलाप मे स्पष्ट हो उठती है। ये परम्पराये, उत्सव, त्यौहार और मगलमय आचारो की हृदयग्राही भावनाओ और उनकी स्मृतियो से जीवन की अनुभूति को और भी सरस बना देती है। प्रत्येक मगलमय त्यौहार और उत्सव सयोग या वियोग मे प्रेम का आश्रय पाकर भावनाओ के अत्यन्त समीप आ जाता है। और तब हम अनुभव करते है कि हमारी परम्पराये जीवन की कितनी गहराई से उठती है और उनके निर्माण मे कितनी जातीयता या सगठन की भावना है। उन्ही विचारो से पोषित होकर हमारे नायको या नायिकाओ ने एक ऐसे आचरण का परिचय दिया है जो समय की अवहेलना करते हुये सर्वयुगीन हो गया है[१]।"

जातीय सस्कृति की तरह काव्य की भी सस्कृति है। उसकी धारा सतत प्रवहमान है। काव्य ने अपनी सस्कृति के निर्माण के लिये जीवन और जगत के सभी पार्श्वों को स्पर्श किया है। प्रशात महासागर मे पाई जानेवाली मूँगे की दीवारो का निर्माण न जाने कितने युगो से होता आया है। आज वे इतनी विशाल एव सुदृढ है कि बडे-बडे जहाज उनसे टकराकर चकनाचूर हो सकते है। काव्य-परम्पराओ का निर्माण भी महान प्रतिभाओ की तपस्या का फल है। इनमे अनुभूति, अभिव्यक्ति एव ऐन्द्रियिक सवेदनाओ का सार निहित है। ये

१—डा० रामकुमार वर्मा : साहित्यशास्त्र, प्रथम संस्करण, पृ० १०२।

वर्तमान मे मनोरजन की वस्तु ही नही भविष्य की सवल भी है। इनमे वह प्राणदायिनी शक्ति है, जो जीवन को निरन्तर विकसित एव ऊर्जस्वित करती रहती हैं।

किसी देश के लिये साहित्य परम्परा का बहुत बडा महत्त्व है। उसमे प्राचीनता का गौरव और उज्जवल अतीत का प्रतिबिम्ब झलकता है। प० नन्द दुलारे वाजपेयी ने 'भारतीय साहित्य मे 'एकता' निबध मे परम्परा के महत्त्व के सबध मे लिखा है—"कोई भी देश अपनी साहित्यिक परम्परा से नाता नही तोड सकता। अतीत का प्रभाव वर्तमान पर पडता ही है। इसके साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि भारतीय परम्परा बहुत पुरानी है। पुरानी ही नही वह अतिशय समृद्ध भी है। ऐसी स्थिति मे यह सभव नही है कि हम अपनी सारी विरासत को छोडकर दूसरे देशो के साहित्यो का छिछला अनुकरण करने लगे[१]।"

काव्य-सस्कृति का भवन उसकी आधारभूत परम्पराओ की शिलाओ पर ही निर्मित होता है। आधार को गिरा कर किसी भवन का निर्माण सभव नही है। जब काव्य की धारा का अतीत की परम्पराओ से सबध विच्छिन्न हो जाता है तब उसका प्रवाह अत्यन्त क्षीण और हलका हो जाता है। अतीत के साथ सबध जोड कर ही काव्य-सस्कृति समृद्धि को प्राप्त होती है। इसके बिना वह दीन और निर्बल है। अतएव टी० एस० इलियट ने लिखा है—"कवि के लिये अतीत की चेतना से प्रभाव ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है। उसको इस चेतना का विकास जीवन पर्यन्त करते रहने की आवश्यकता है[२]।"

दूसरी ओर प्रयोग की समस्या है। काव्यवस्तु अथवा रचनाशैली के क्षेत्र मे जब पिष्टपेषण होने लगता है तब उसके सहज विकास मे गतिरोध आ जाता है। काव्य मे 'मौलिक सृजन का आदर है। काव्य-निर्माण के लिये प्रतिभा अपेक्षित है। भट्टतौत के अनुसार—नये-नये अर्थों का उन्मीलन करनेवाली प्रज्ञा ही प्रतिभा कहलाती है[३]। प्राचीन आचार्यों ने काव्य की रचना मे व्युत्पत्ति को हेतु माना है। व्युत्पत्ति का अर्थ बहुज्ञता है। शास्त्र, लोक व्यवहार एव प्रकृति-परिचय आदि का अधिक से अधिक ज्ञान ही व्युत्पत्ति है। राजशेखर के मत से प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनो सयुक्त रूप से काव्य रचना मे हेतु है[४]। परम्परा-

---

१—नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १२८।
२—टी० एस० ईलियट : सिलैक्टड प्रोज (पैंग्विन), पृ० २५।
३—नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता—भट्ट तौत।
४—राजशेखर : काव्य मीमांसा, पंचम अध्याय।

नुगत विषयो पर भी काव्य की रचना करना दुष्कर है। सर्वथा नवीन तथा अनभ्यस्त विषयो पर रचना करना तो और भी कठिन है। प्रतिभा से ही उत्तम काव्य का निर्माण सभव है। राजशेखर ने प्रतिभा का लक्षण करते हुये लिखा है—'प्रतिभा शब्दो के समूह को, अर्थो के समुदाय को, अलकारो एव सुन्दर उक्तियो को तथा अन्यान्य काव्य सामग्री को हृदय के भीतर प्रतिभासित करती है। जिसे प्रतिभा नही है, उसके लिये प्रत्यक्ष दीखते हुये भी अनेक पदार्थ परोक्ष से मालूम होते है और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिये अनेक अप्रत्यक्ष पदार्थ भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये मेधाविरुद्र एव कुमारदास आदि कवि जन्म से अन्धे थे परन्तु उनकी वर्णन शैली उत्कृष्ट थी[१]।

इससे सिद्ध है कि काव्य मे सर्वथा नूतन एव मौलिक प्रयोगो के लिये प्रतिभा की आवश्यकता है। प्रतिभाशील कवि ही नूतन कार्यों का अनुसधान करने मे समर्थ होता है। वस्तुतः काव्य के प्रयोग कवि की प्रबुद्ध चेतना के परिचायक है।

अब प्रश्न यह है कि प्रयोग और परम्परा मे एकता का सूत्र क्या है? प्रयोग का परम्परा के साथ इतना ही सामजस्य है कि वह अतीत के अनुभवो का सबल लेकर निरतर आगे बढने की शक्ति ग्रहण करता चलता है। जितने अश मे सत्य का अनुभव किया जा चुका है उससे लाभ न उठाना अनुचित है। अतीत का अनुभव आगे के लिये दृष्टि का द्वार उन्मुक्त करता है। इसके बिना कवि का मार्ग विपदग्रस्त हो सकता है। परम्परानुगत सत्य के शील से अनुप्राणित होकर नये-नये अन्वेषण करने मे ही प्रयोग की सफलता है। प्रयोग का सत्य से स्नेह है, रूढियो से नही। स्वस्थ परम्परा विकासमान जीवन के साथ परिवर्तित होती रहती है और नये प्रयोगो को प्रेरणा प्रदान करती है। प्रयोग का लक्ष्य भी परम्परा बनने मे है। जब काव्य मे रूढियो के कारण अगति आ जाती है, तब नये प्रयोग क्रान्ति का उद्घोष सुनाते हैं तथा नवीन ऊर्जस्वित परम्पराओ की स्थापना करते है। इससे सिद्ध है कि प्रयोग परम्परा का सच्चा उत्तराधिकारी है। यही नही महान से महान कवि जितना प्रयोगशील होता है उतना परम्पराशील भी। प्रयोगशील कवि पुरानी परम्पराओ को नये रूप मे ग्रहण करते है। उनकी विकृति को दूर करके नये रग, नये रूप तथा नई छवियो मे उनकी प्राणप्रतिष्ठा करते है। आलोच्यकाल मे रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, गुरुभक्त सिंह, श्यामनारायण पाडेय, उदयशकर

१—राजशेखर : काव्य मीमासा, चतुर्थ अध्याय।

भट्ट आदि कवि इसी श्रेणी के अतर्गत है। इनके विषय मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—

'वे प्रसग के अनुकूल परम्परागत पुराने छन्दो का व्यवहार और नये ढग के छदो तथा चरण व्यवस्थाओ का विधान भी करते है, । व्यजक चित्र विन्यास, लाक्षणिक वक्रता और मूर्तिमत्ता, सरल पदावली आदि का भी सहारा लेते है, पर इन्ही बातो को सब कुछ नही समझते। एक छोटे से घेरे मे इनके प्रदर्शन मात्र से वे सतुष्ट नही दिखाई देते है, उनकी कल्पना इस व्यक्त जगत और जीवन की अनत वीथियो मे हृदय को साथ लेकर विचरने के लिये आकुल दिखाई देती है[१]।"

प्रयोग की समस्या—

आलोच्यकाल प्रयोगो का युग है। १९२० ई० के आसपास छायावाद युग के आरभ के काव्य मे वस्तु और शिल्प के प्रयोगो की बाढ-सी आ जाती है। ये प्रयोग दो रूपो मे हुये है। स्वाभाविक विकास के रूप मे और विद्रोह के रूप मे। पहले रूप के साथ कोई आपत्ति नही है क्योकि इस प्रकार के प्रयोग हर एक युग मे होते आये है तथा वे काव्य के इतिहास के विकास के पग चिन्ह है। जब प्रयोग दूसरे रुप मे आते है, तब वे एक समस्या खडी करते है और विद्वानो का ध्यान आकर्षित करते है। छायावाद युग के प्रसाद, पत और निराला ने काव्य मे अभिनव प्रयोगो की सृष्टि की है। प्रयोगो की दृष्टि से निराला सबसे अग्रणी है। उन्होने काव्यवस्तु, रूप प्रकार ओर सबसे अधिक छन्दो के क्षेत्र मे क्रान्ति उत्पन्न की। पत जी ने भी पल्लव की भूमिका मे पुराने छद,पुरानी भाषा, पुराने भाव एव अलकारो के प्रति विद्रोह प्रकट किया है। प्रगतिवादी काव्य मे विषयवस्तु के क्षेत्र मे नाना प्रकार के प्रयोग हुये है। सन् १९४२ मे 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवादी कविता का आगमन हुआ। उसमे वर्तमान प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तक अज्ञेय जी ने लिखा है—"भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम सकेतो से अंको और सीधी तिरछी लकीरो से, छोटे-बडे टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरो से, लोगो और स्थानो के नामो से, अधूरे वाक्यो से—सभी प्रकार के इतर साधनो से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई सवेदनाओ की सृष्टि को पाठको तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।[२] "इस कथन मे

१—रामचद शुक्ल : हिंदी शाहित्य का इतिहास, नवा संस्करण, पृ० ६५८।

२—अज्ञेय : तार सप्तक, पृ० ७५।

'उलझी हुई सवेदना की सृष्टि'' को पाठको तक पहुँचाने की समस्या की ओर सकेत है। मूलतः यह समस्या अभिव्यक्ति के प्रकार की है। मुक्ति बोध, भारत भूषण, माचवे, गिरिजाकुमार, रामविलास, भवानीप्रसाद, शमशेर, नरेशकुमार धर्मवीर भारती आदि कवियो की रचनाओ मे प्राचीन परपरा से विद्रोह करके अभिव्यजना के नये प्रकारो का पूर्वाग्रह अदम्य ओज के साथ प्रकट हुआ है। इन सभी कवियो ने काव्य की प्राचीन परपराओ के प्रति पूर्ण असतोष प्रकट किया है। इन पर मार्क्स के समाजवाद तथा फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का पूर्ण प्रभाव है। जिस प्रकार छायावाद युग की की कविता अग्रेजी कवि शैली, कीट्स, वायरन, टैनीसन और ब्लेक के स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित है, उसी प्रकार प्रयोगवादी कविता फ्रास के पाल वर्लेन, रिम्बे, रिम्बो, बोदलेयर, लकोदली एव अग्रेजी कवि एजरा पाउन्ड, ईलियट और डी० एच० लारेंस के वैचित्र्य पूर्ण नये काव्य प्रयोगो से प्रभावित है। नई कविता विदेशी प्रभाव के कारण बौद्धिकता से इतनी बोझिल है, कि उसमे रागात्मक तत्त्व बिल्कुल लुप्त हो गया है। इसके अतिरिक्त नये कवियो ने परम्परागत भाषा, छद, अलकार, प्रतीक एव काव्य रूपो का एक साथ बहिष्कार कर दिया है। ये प्रयोग काव्य के विकास मे कहाँ तक हितकर है, कितने अश मै ग्राह्य है, अग्राह्य है, इस सबध मे एक प्रश्न चिन्ह जुडा हुआ है। इस प्रकार नये प्रयोगो ने एक जटिल समस्या खडी कर दी है।

इस समस्या पर अनेक विद्वानो ने अपने मत प्रकट किया है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के मत हैं—"जितनी बातें आजकल काव्य क्षेत्र मे नवीनता कह कर पेश की जाती है, एक-एक करके सबका मूल हम योरोप के नये पुराने प्रचलित प्रवादो मे दिखा चुके है। सब नकल की नकल है।[1]" उन्होने इस प्रवृत्ति को हानिकारक तथा साहित्य और सस्कृति के पतन का कारण बताया है। शुक्ल जी ने अनुकरण की प्रवृत्ति—चाहे वह पूर्ववर्ती कवियो की हो, चाहे विदेशी कवियो की, खूब भर्त्सना की है, किन्तु आगे चलकर उन्होने छायावादी कवि प्रसाद, पत, निराला और महादेवी के काव्य की सराहना भी की है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद युग के कवियो की विद्रोह जन्य काव्य-प्रवृत्ति की महत्ता को स्वीकार किया है—"इन सुन्दरतम् काव्य प्रयोगो के मूल मे एक अभिनव रहस्य भावना, एक विश्व-जीवन, दार्शनिकता और एक परिष्कृत सौन्दर्य चेतना काम कर रही है। बिना उस मूलवर्ती आधार के रचनाओ मे यह चमत्-

---

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, दूसरा भाग, पृ० १७०।

स्कार और ये कलात्मक विशेषतायें नही आ सकती[१]। छायावादी कवियो ने वस्तु, रूप और शैली के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये थे, किन्तु परम्परागत काव्यादर्श मे पूर्ण निष्ठा प्रदर्शित की थी। इस दृष्टि से छायावाद युग और वर्तमान युग की प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्ति मे महान अन्तर है।

वर्तमान काव्य प्रयोगो के विषय मे आधुनिक विद्वानो ने अपना-अपना मत प्रकट किया है। डा० नगेन्द्र ने काव्य के मूल्यो के सन्तुलन की रक्षा पर बल दिया है तथा काव्य के विकास के लिये साधन के रूप मे प्रयोगो को सार्थक माना है। उन्होने कहा है—"काव्य के मूल तत्त्व रस-प्रतीति पर दृष्टि केन्द्रित रखकर, काव्य को गतिरोध और रुढिजाल से मुक्त करने के लिये नये प्रयोग स्तुत्य है, वे काव्य के साधक है। परन्तु क्रम को उलट कर काध्य की आत्मा का तिरस्कार करते हुये प्रयोगो को स्वातन्त्र महत्त्व देना उन्हे ही साध्य मान लेना हलकी साहसिकता मात्र है। काव्यगत मूल्यो का अनुचित तथा अनावश्यक क्रम-विपर्यय है।[२]" नगेन्द्र जी ने काव्य मे रसात्मक अनुभूति को मान्यता प्रदान की है। प्रयोगवादियो के रस-विद्रोह से उनका समझौता नही है। रसात्मक बोध से रहित काव्य को वे अकाव्य समझते है। डा० सत्येन्द्र के मत से—"काव्य एक सामाजिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक परपरा की देन है और प्रत्येक देशकाल मे वह इसी अनुकूलता के साथ फलता-फूलता है और कल्याणकारी होता है। नयी उद्भावनाये, नये उन्मेष, नूतन सृजन उधार लिये हुये और थेगरी के रूप मे नही हो सकते। वे परम्परा के बीजो मे होने वाली देश-काल की नयी रसायन के फल होते हैं। हमारी कोई भी अभिव्यक्ति मात्र व्यक्तिगत नही हो सकती, इसका एक घनिष्ट सामाजिक मूल है क्योकि व्यक्ति अत्यन्त व्यक्तिगत हो जाने पर समाज के लिये मृत हो जाता है।"[३] सत्येन्द्र जी ने काव्य को सामाजिक, सास्कृतिक परिपार्श्व मे रखकर परखने का प्रयत्न किया है। यदि कोई सृजन या प्रयोग सास्कृतिक परम्परा से उद्भूत नही है, तो वह निरा वाग्जाल है। वे काव्य के सामाजिक मूल्य की प्रधानता देते हैं, अभिव्यक्ति को वे समाज के लिये अहितकर समझते है। परपरा से आमूल विच्छिन्न होकर कोई रूप-सृष्टि नही हो सकती। कम-से-कम समाज के लिये वह निरर्थक है।

नयी कविता के प्रयोगो को असन्तुलित मनोवृत्ति का प्रकाशन बतलाते

१—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ३४।

२—शिवदान सिंह चौहान : काव्य धारा, पुस्तक पत्रिका १ पृ० ५३।

३—वही, डा० सत्येन्द्र, कवि और काव्य, पृ० ४६–५०।

हुए शिवदान सिंह चौहान ने कहा है कि—"साधारणतया प्रयोगवादी कविताओ मे एक दयनीय प्रकार की झुंझलाहट, खीझ, कुठा, किशोर औद्धत्य और हीन-भाव ही व्यक्त हुआ है, जो कवि के व्यक्तित्व को प्रमाणित करने का नही, खडित करने का मार्ग है। महान कविता का जन्म सारे ससार को, समाज को, जीवन के प्रगतिशील आदर्शों और नैतिक भावनाओ को एक उद्दड और छिछोरे बालक की तरह मुँह बिचकाने से नही होता। सामाजिक बन्धनो के प्रति व्यक्ति-वादी प्रतिवाद का यह तरीका स्वाग बनकर ही रह जाता है।"[१] इस कथन मे भी कविता को सामाजिक दायित्व की महत्ता स्वीकार की गई है, जिसके बिना कविता बालको की खिलवाड मात्र रह जाती है।

'आधुनिक काव्य का अतरग' निबध मे प० नन्ददुलारे वाजपेयी ने आधुनिक प्रयोगवादियो के सबध मे लिखा है—'प्रयोगवादियो का यथार्थ केवल अन्वेषण है। इस अन्वेषण की भी कोई निश्चित दिशा नही है, न उसके पीछे कुछ उद्देश्य ही है। जिस प्रकार 'निहिलिस्ट' समस्त मान्यताओ को अस्वीकार करने के बाद अपना पथ खोजता है और यह जानने के पूर्व ही कि उसे पथ किस मजिल के लिये चाहिये, उसके पूर्व के समस्त विश्वासो को अस्वीकार कर देता है, उसी प्रकार ये प्रयोगवादी है। यह कहना कठिन है कि इनकी जीवन दृष्टि क्या है।[२]" इस प्रकार वाजपेयी जी ने आजकल की प्रयोगवादी रचनाओ की आलोचना करते हुये उन्हे उद्देश्यहीन बतलाया है।

उपर्युक्त विद्वानो ने आधुनिक काव्य-प्रयोगो के विषय मे, जो कुछ कहा है, उसका साराश यह है कि नये काव्य-प्रयोग वही तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे कविता को रूढियो के जाल मे से निकाल कर उसे चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करते है। जब प्रयोग प्रयोग के लिये होने लगते है तथा कविता मे साध्य का स्थान ग्रहण करने लगते हैं, तब एक कठिन समस्या खडी हो जाती है। प्रयोग की सार्थकता काव्य विकास मे योग देने से होती है। यह तभी सभव है जब ये परम्परा के बीज से प्रादुर्भूत होते हैं। परम्परा से विच्छिन्न होकर काव्य-प्रयोगो का सामाजिक महत्त्व जाता रहता है। सामाजिक एव नैतिक आदर्शो का विरोध करने से प्रयोग हास्यास्पद होने लगते हैं। नये प्रयोग एव नये सृजन का तभी तक मूल्य है, जब तक उनसे सामाजिक दायित्व का निर्वाह होता है।

१—शिवदान सिंह चौहान : वाग्यधारा, सख्या १, हिन्दी कविता का विकास, पृ० ४५।

२—नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १४४।

प्रयोगवादियो के समक्ष कोई निश्चित काव्यादर्श होना चाहिये, जिससे वे निभ्रात सत्यान्वेषण के पथ पर चल सके। केवल विरोध या विद्रोह की प्रवृत्ति अपने आप मे कोई सिद्धात नही है जिसके आधार पर कोई नया निर्माण हो सके। निष्कर्ष यह कि परपरा का सहज उत्तराधिकार लेकर विश्वासपूर्वक प्रगति की ओर चलने मे ही प्रयोगो की सफलता का तत्त्व निहित है। अतीत से विद्रोह करके चलने वाले प्रयोगवादियो का मार्ग शका और भय से मुक्त नही है। लक्ष्य भ्रष्ट हो जाने पर वे काव्य मे विकृति भी उत्पन्न कर सकते है।

कलाकार की मौलिकता विचित्र प्रयोगो की ऐसी सृष्टि खडी करने मे नही होती, जो सहृदय के लिये अज्ञात एव अपरिचित हो। कला के क्षेत्र मे न तो अधिक परिचित और न अधिक अपरिचित वस्तु से हृदय को तृप्ति होती है। मानव-हृदय को दोनो के समन्वय से सतोष मिलता है। काव्य मे भी जब परिचित वस्तु का नये रूप, नये रग एव नये वैचित्र्य के साथ दर्शन होता है, तब पाठक को अद्‌भुत आनद मिलता है। कवि अपनी इच्छा से चाहे तो नई वस्तु को पुराने रूप सौष्ठव मे प्रस्तुत कर सकता है, चाहे पुरानी वस्तु को नये रूप-रग मे चित्रित कर सकता है। काव्य का आनन्द इसी मे है कि नवीन वस्तु हमको परिचित-सी प्रतीत हो। कवि अनेक प्रकार से परिचित वस्तु को अपरिचित वस्तुओ के साथ तथा अपरिचित वस्तुओ को परिचित वस्तुओ के साथ ग्रथ कर इस प्रकार नूतन भावो की सृष्टि करता है कि सहृदय पाठक मुग्ध हो जाते है। जान लिविंग्स्टन लोवेस ने इस सबध मे ठीक ही कहा है—"हम लोग नवीन वस्तु के लिये उत्सुक तो अवश्य रहते है, किन्तु हमारा यह भी आग्रह रहता है कि जो परिचित है, तथा जो अपना है उससे भी उस वस्तु का सबध अवश्य बना रहे, हम पुराने को तो चाहते है कि वह किसी न किसी रूप मे नया प्रतीत हो[1]।" टी० एस० इलियट ने कहा है—"काव्य रचना करने से पहले कवि मे ऐतिहासिक तत्त्व का भी विचार होना चाहिये। उसे केवल अतीत पर ही नही वर्तमान पर भी दृष्टि रखनी चाहिये। उसे साहित्य की समग्र परम्परा को दृष्टि मे रखते हुये तथा राष्ट्रीय साहित्य के सम्पूर्ण विकास का चिन्तन करते हुये काव्य सृजन करने की आवश्यकता है। समय के अनन्त प्रवाह तथा उसकी सम्पूर्ण चिन्ताधारा को ध्यान मे रखकर काव्य की सर्जना करने-वाला कवि ही वस्तुतः परम्परावादी कहलाता है[2]। इससे स्पष्ट है कि काव्य

१—जान लिविंग्स्टन लोकेसः कंवेंशन ऐंड रिवोल्ट इन पोइट्री, पृ० ६३।
२—टी० एस० इलियट : सिलेक्टेड प्रोज (पेंग्विन), पृ० २३।

मे युगसत्य के साथ अतीत युग की परम्पराओ का समन्वय आवश्यक है। परम्परा को व्यापक दृष्टि से देखने पर नये-पुराने का भेद मिट जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत ध्यान देने योग्य है। काव्य के स्वतन्त्र विकास के विषय मे उन्होने कहा है कि—"हम अपने हिन्दी काव्य को विश्व की नित्य और अनत विभूति मे स्वच्छन्दतापूर्वक, अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार, अपनी आँखें खोलकर, विचरण करते हुये देखना चाहते है। पर वह दिन तभी आ सकता है जब हमारी अतर्दृष्टि को आच्छन्न करनेवाले परदे हटेंगे और हमारे विचारो मे बल आयगा[1]। शुक्ल जी के कथन मे परम्परा और स्वच्छन्दता का समन्वय हो जाता है। काव्य के सृजनात्मक विधान मे स्वाभाविकता तभी आ सकती है, जब उसके विकास की गति परम्परा से निर्धारित होती है। विश्व की अनन्त विभूति मे तन्मयता प्राप्त कर लेने पर कवि की दृष्टि मे स्वच्छन्दता की व्याकुलता उत्पन्न होगी और स्वाभाविक प्रेरणा के अनुकूल चलने से वह दूसरो की अनुकृति से बच जायगा। जो कवि प्रतिभा सम्पन्न है, वे ही शाश्वत सत्य को युगीन सौदर्य मे रखकर नये माध्यमो द्वारा अभिव्यक्ति दे सकते है। अभिनय प्रयोगो का इसके अतिरिक्त और क्या अर्थ हो सकता है?

इस अध्ययन के द्वारा आलोच्य काल मे काव्य सबधी परम्पराओ एव प्रयोगो के यथार्थ मूल्य को समझने का प्रयत्न किया गया है। काव्य-सस्कृति का इतिहास बहुत प्राचीन है। आधुनिक काव्य मे कितनी ही परम्पराओ का लोप हो गया है, कितनी ही जीवित है तथा कितनी ही नये रूपो मे प्रकट हुई है। उनका अध्ययन जितना ही रोचक है, उतना ही उपादेय भी, क्योकि इसके बिना काव्य का मर्म समझ मे नही आ सकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगो को प्राचीन परम्पराओ के सन्दर्भ मे ही समझा जा सकता है। नये प्रयोगो का मूल्य अपने आप मे कोई निरपेक्ष वस्तु नही है। परम्पराओ की सापेक्षता मे ही उनका महत्त्व है। कारण यह है कि परम्पराओ की नीव पर ही नये प्रयोगो का उत्थान हुआ करता है। अतएव परम्पराओ और प्रयोगो के रूप मे ही काव्य-सस्कृति का ह्रास-विकास होता आया है। प्रस्तुत निबन्ध मे आधुनिक हिन्दी काव्य के अन्तर्गत विभिन्न परम्पराओ के ह्रास-विकास का विवेचन तो है ही, नवीन प्रयोगो के स्वरूप का भी उद्‌घाटन किया गया है। नयी कविता के कवि अभी जीवित है, तथा प्रयोगो का कोई अन्त नही, अतएव उनके विषय मे अभी कोई निर्णय देना असभव है। आलोच्य काल की सीमा मे जितनी काव्यराशि

१—आचार्य रामचद शुक्ल . चिंतामणि, द्वितीय भाग, पृ० १७१।

प्रकाशित हो चुकी है, उसी के आधार पर उसका मूल्य निर्धारण किया गया है।

साहित्य के किसी इतिहास में परम्परा और प्रयोगों का ऐसा अध्ययन नहीं मिलता है। संस्कृत एवं हिन्दी का काव्य-शिक्षा की पुस्तकों में परम्पराओं का वर्णन अवश्य हुआ है। उसको यहां सहायक-सामग्री के रूप में लिया गया है। काव्यशास्त्रीय परम्पराओं के अध्ययन बहुत हुए हैं, किन्तु काव्य-संबंधी परम्पराओं एवं प्रयोगों का अध्ययन यह पहला ही प्रयत्न है। इस प्रकार का अध्ययन काव्य-संस्कृति के उत्थान-पतन को समझने में तो सहायता करता ही है, नये प्रयत्नों पर भी प्रकाश डालता है। अतएव इसकी आवश्यकता तथा उपादेयता निर्विवाद है।

द्वितीय अध्याय

प्रयोग की परंपरा : उद्भव तथा विकास

प्रयोग की परंपरा
उद्भव तथा विकास

काव्य का उदय

सस्कृत वाड्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। इसके अनेक सूक्तो मे काव्यमय वर्णन पाया जाता है, जिनसे काव्य के मूल तत्त्वो पर प्रकाश पडता है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तो मे अलकार, प्रतीक, रूपकोक्ति, छन्द, भाषा, गीत, सवाद एव प्रकृति वर्णन के उदाहरण मिलते है, जिनसे सहज ही यह परिणाम निकाला जा सकता है कि काव्य के प्रारभिक प्रयोग वैदिक काल मे ही आरभ हो गए थे। वेद के अर्थज्ञान का साधक होने से सबसे प्रथम राजशेखर ने अलकार को वेद का सातवाँ अग कहा है। उनके मत से वाड्मय के दो भेद है—शास्त्र तथा काव्य[१]। काव्य के अनुशीलन से पूर्व शास्त्राभ्यास की आवश्यकता बतलाई गई है, क्योकि इसके बिना काव्य का रहस्य समझा नही जा सकता। इससे दो निष्कर्ष निकलते है। काव्य उतना ही प्राचीन है, जितना वेद तथा काव्य का मूल स्रोत शास्त्र है।

वेदो मे देवताओ की स्तुति के मत्रो के अतिरिक्त दानशील राजाओ की प्रशस्तियाँ भी मिलती है, जिन्हे "नाराशसी" कहते है। सहिताओ मे यशस्वी राजाओ की गाथा के वर्णन उपलब्ध होते है। ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेष तथा ऐन्द्र महाभिषेक वाले प्रसगो मे इस प्रकार की अनेक साहित्यिक गाथाएँ पाई जाती है। दूसरी ओर वैदिक काल मे सस्कृत से भिन्न किसी जनभाषा मे लोक-कथाओ के आधार पर भी काव्य की रचना होती थी। ऋग्वेद के अनेक सूक्तो मे लोक जीवन का चित्रण पाया जाता है। प्राकृत भाषा के वीर-गीत, प्रेम-गीत एव प्रगीत काव्यो की परम्परा इसी का विकसित रूप है[२]। इससे स्पष्ट है कि वैदिक युग मे एक ओर देवताओ एव प्रतापी राजाओ की प्रशस्तियो का वर्णन किया जाता था और दूसरी ओर साधारण लोक-जीवन का चित्रण होता

१—इह हि वाड्मयमुभयथा शास्त्रं काव्य च।

(काव्य मीमांसा)

२—एस० एन० दास गुप्ता : हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३-४।

था। उत्तरवर्ती महा काव्यो के युग मे प्रबन्ध काव्यो के अन्तर्गत पहली परम्परा का विकास हुआ है तथा प्रगीत मुक्तको मे दूसरी का।

ऋग्वेद एव ब्राह्मण ग्रन्थो के अतिरिक्त कठ, छान्दोग्य तथा श्वेताश्वतर उपनिषदो मे भी काव्यमय वर्णन उपलब्ध होते है, किन्तु काव्य का वास्तविक स्वरूप रामायण और महाभारत मे ही प्रस्फुटित हुआ है, इसमे किसी को सन्देह नही।

ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियो मे काव्य के अन्यान्य गुणो का विकास होने लगता है, इसके प्रमाण तत्कालीन शिलालेख एव प्रशस्ति पत्रो मे उपलब्ध होने है। शक, क्षत्रप, रुद्र, दामन की प्रशस्ति मे लिखा हुआ गिरनार का शिलालेख (१५० ई०) मिलता है, जिसमे रुद्र दामन को स्फुट, लघु, मधुर, चित्र, कान्त, शब्द-समय-सम्पन्न, उदार तथा अलकृत गद्य-पद्य की रचना करने मे कुशल बतलाया गया है। इसमे काव्य-भाषा के उत्कृष्ट गुणो की ओर स्पष्ट सकेत मिलता है। इसी प्रकार राजा समुद्रगुप्त की प्रशस्ति मे लिखित कविवर हरिषेण कृत प्रयाग का शिलालेख (३५० ई०) गद्य पद्य मिश्रित काव्य गुणोपयुक्त भाषा का अन्यतम उदाहरण है। मन्दसोर की वत्सभट्ट रचित (४७३ ई०) प्रशस्ति मे वैदर्भी रचना शैली का आश्रय लिया गया है, जिसम काव्य का स्वारस्य है। इसके अतिरिक्त पिगल मुनि के छन्द. सूत्र मे नानाप्रकार के लौकिक तथा गीतात्मक छन्दो का उल्लेख पाया जाता है। "गाथा" इसका स्पष्ट प्रमाण है। छदो के नाम भी अधिकतर शृगारात्मक है – वसन्त तिलका, तन्वी, सुन्दरी, रुचिरा, प्रमदा, प्रमिताक्षरा (कम बोलनेवाली), मजु भाषिणी, शशि वदना, चित्रलेखा, विद्युन्माला, सग्धरा (माला धारण करनेवाली) आदि। इन नामो से सिद्ध होता है कि ये छन्द सर्व प्रथम स्त्रियो के वर्णन मे एव शृगार विषयक रचनाओ मे प्रयुक्त हुए है। डा० याकोबी का मत है कि छन्दो का प्रयोग तथा नामकरण ई० पू० की शताब्दियो से सबध रखता है। इन सब प्रमाणो से स्पष्ट है कि ईसा की आरभिक शताब्दियो मे काव्य रचना के मूल तत्त्वो का सम्यक् विकास हो चुका था तथा काव्य मे उनकी स्वस्थ परम्परा स्थापित हो चुकी थी। किंतु उस काल के काव्यो के उपलब्ध न होने से हमे उनका यथेष्ट परिचय नही है[२]।

नीचे काव्य के प्रयोगो की पृथक्-पृथक् परम्पराओ का सक्षिप्त वर्णन

१—देखिए, बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, तृतीय संस्करण पृ० १५।

उपस्थित किया जाता है, जिससे आलोच्य काल से पूर्व काव्य सबधी प्रयोगों तथा परम्पराओ के विकास का परिचय हो सके।

अलंकार—

अलंकारो का मूल उपमा है। ऋग्वेद मे उपमा का प्रयोग अनेक मत्रों मे पाया जाता है।[१] इद्र की स्तुति मे उपमा का प्रयोग हुआ है—'जो पूर्ण रूपो का निर्माता है और जो दोहक के लिए अधिक दूध देने वाली गौ के सदृश है, उस इद्र को समृद्धि के लिए हम प्रतिदिन पुकारते है—

'सुरुम कृत्नुमूतये सुदुधामिव गौ दुहे, जुहूमसि द्यवि-द्यवि।

—ऋ० १।४।१

उषा विषयक एक मत्र मे चार उपमाओ का विधान है—

अभ्रातेव पुस एति प्रतीची, गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः॥

—ऋ० १।१२४।७

ऋग्वेद मे उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, रूपकोक्ति (एलेगोरी), यमक, अनुप्रास के अनेक उदाहरण है। उपनिषदो मे विशेषतः कठ एव श्वेताश्वतर मे अलकारो का सौन्दर्य सबसे अधिक मिलता है—

आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मन. प्रग्रहमेव च॥

—कठ० उप० १।३।३

(इस शरीर रूपी रथ मे आत्मा रूप स्वामी है, बुद्धि सारथी है तथा मन रस्सी है। इसमे रूपक स्पष्ट है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

—ईश० मत्र ५।

यह विरोधाभास का उदाहरण है। कठ उपनिषद् की छठी वल्ली के पहले मत्र मे अतिशयोक्ति अलकार है। इसी वल्ली के पाँचवे मत्र मे दृष्टान्त है तथा सातवे-आठवे मत्रो मे सार अलकार प्रयुक्त हुआ है।

नाह मन्ये सुवेदेति नौ न वेदेति वेद च।
यो नस्तद् वेद तद्वेद नौ न वेदेति वेद च॥

—केन० उप० २।२

ब्रह्म के विषय मे शिष्य का कथन है कि उस परम तत्त्व को मै भली-

---

१—देखिए, ऋग्वेद, १।३१।१५ तथा ५।३४।६

भाति जानता हू, ऐसा मै नही मानता, उसको नही जानता, ऐसा भी नही है। जो हममे से उसे जानता है, वही जानता है तथा वह यही जानता है कि मै नही जानता हू, किन्तु जानता हू। इसमे ब्रह्म ज्ञान के विषय मे जो कुछ कहा गया है, उसमे विचित्र भाषा का प्रयोग है। सभवतः इसी प्रकार के मत्रो से आगे चलकर दृष्टकूट की शैली का विकास हुआ होगा। इससे सिद्ध है कि वैदिक साहित्य मे अलकारो के प्रयोग विद्यमान है, जिनसे उत्तरवर्ती साहित्य मे अलकारो का विकास हुआ है।

अलकारो का विकास धीरे-धीरे हुआ है। भरत के नाट्यशास्त्र मे केवल चार अलकारो का उल्लेख मिलता है—यमक, उपमा, रूपक और दीपक।[१] इनमे से एक शब्दालकार है और तीन अर्थालकार। ये चार अलकार ही विकसित होते-होते कुवलयानन्द मे १२५ की सख्या तक पहुँच गए है। भरत ने उपमा और यमक के अनेक भेद किए है, तथा काव्य एव लोक-व्यवहार के आधार पर उपमा के अन्य भेदो की ओर भी निर्देश किया है।

ईसा की पाँचवी-छठी शताब्दी से अलकारो का निरूपण व्यवस्थित प्रणाली के आधार पर होने लगता है। भामह प्रथम आचार्य है, जिन्होने काव्य-गत अलकारो के प्रयोजन पर विचार किया है, उनकी सख्या निर्धारित की है तथा परम्परा को यथार्थ रूप मे उपस्थित किया है। वे समस्त अलकारो को वक्रोक्ति-मूलक मानते है। इसीसे काव्यार्थ विभामय होता है। वक्रोक्ति के बिना कोई अलकार नही है, अतएव कवि को इसी के हेतु प्रयत्न करना आवश्यक है।[२] प्रकृत वर्णन और अलकृत वर्णन का भेद इसी समय से आरभ होता है। प्रकृत कथन को वार्ता और चारुत्व निबन्धना को अलकार बताकर भामह ने ही अलकार परम्परा का सूत्रपात किया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि अलकारो की सख्या चाहे जितनी हो, किन्तु चारुत्व-विशेषत्व धर्म एक ही है तथा वही समस्त अलकारो का मूल तत्त्व है। अलकारो की सख्या का ह्रास-विकास होता रहता है, किन्तु चारुत्व-अलकारत्त्व का नही। अलकारत्त्व के अभाव मे काव्य अकाव्य है, इतिवृत्त है। इसी के अन्य नाम है—चारुत्व, वक्रता, वैचित्र्य, विच्छित्ति आदि।

अलंकारो का अध्ययन एक स्वतत्र निबन्ध का विषय है। यहाँ केवल यही बतलाना इष्ट है कि आलोच्य काल से पूर्व अलकारो की एक स्वतत्र परम्परा विकसित हुई है, जिसको अग्रसर करने मे उद्भट कवियो ने योग दिया है।

१—भरत : नाट्यशास्त्र, १६।६३

२—भामह : काव्यालंकार, २।८५।

सस्कृत के भारवि, माघ, श्रीहर्ष, वाण, जयदेव आदि महाकवियो ने अलकारो के प्रति विशेष रुचि प्रदर्शित की है। भारवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष के अतिरिक्त चित्रकाव्य लिखने मे पूर्ण चातुरी प्रदर्शित की है। किरातार्जुनीय का पचदश सर्ग केवल चित्रकाव्य को दिया गया है। इन्होने एक ही अक्षर वाले एक श्लोक की रचना भी की है[१]। हिन्दी के कवियो मे केशव बिहारी, देव, पद्माकर इत्यादि ने शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने वाले विविध अलकारो का प्रयोग करके अपने उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है।

निष्कर्ष यह है कि काव्य मे अलकारो का महत्त्व सदैव रहा है। यह दूसरी बात है कि भिन्न-भिन्न युगो में कवियो का ध्यान कभी शब्द को चमत्कृत करने की ओर रहा है और कभी अर्थ को। सूर और तुलसी जैसे प्रतिभाशाली कवियो ने शब्द और अर्थ दोनो मे ही सौन्दर्य भर दिया है।

सस्कृत-वाङ्मय मे गृहीत अलकार-परम्परा का ही हिन्दी मे अनुसरण हुआ है। "केशव दास से राम दहिन मिश्र तक सार्धत्रय शताब्दियो की इस दीर्घ अवधि मे हिन्दी के आचार्यो ने अलकार विषय पर जो कुछ लिखा है, उसका आधार सस्कृत-भाषा के अलंकार ग्रन्थ ही है[२]।" नीचे अलंकार विधान की रूढियो को उपस्थित किया जाता है :—

अलकारों में रूढ़ियाँ—

सादृश्यमूलक अलकारो के क्षेत्र मे बहुत-सी रूढियाँ चल पडी है, जिनका परम्परा के अनुरोध से कविजन अनुवर्तन करते आए है। काव्य मे नारी का स्थान हर एक काल मे प्रमुख रहा है। उसके अगो के लिए उपमानो की रूढियाँ स्थापित हो गई है, जिनका कवि समाज मे बहुत प्रचार है। ये उपमान रूढ हो गए है—स्त्री का वर्णन अधिकतर सत्व गुण प्रधान अथवा रजोगुण प्रधान रूप मे हुआ है। स्तोत्र-साहित्य मे स्त्री के सत्य गुण प्रधान रूप का कथा अन्यत्र रजो गुण प्रधान विलासिनी के रूप मे वर्णन पाया जाता है। स्त्री-शरीर के रग के लिए प्रायः रोचना, स्वर्ण, विद्युत, हरिद्रा. वराटिका, चम्पा, केतक-पुष्प के रग से सादृश्य दिखाया जाता है। स्त्री को कनक यष्टि, पुष्पितलता, दमनक यष्टि से उपमित किया जाता है। स्त्री के अग प्रत्यगो के उपमान काव्य कल्पलतावृत्ति से नीचे दिये जाते है[३] :—

१—किरातार्जुनीय, १५। १४

२—देखिए, डा० ओम प्रकाश : हिन्दी अलंकार साहित्य, पृ० २५०।

३—काव्यकल्पलतावृत्ति, ४।१।१६—३१

वेणी के लिए सर्प, असि, भृंगाली, केश-पाश के लिए चामर, धम्मिल्ल के लिए राहु, सीमन्त के लिए ध्रुव दड, ललाट के लिए अष्टमी विधु, फलक, कपोल के लिए मुकुर, चन्द्रमा, भौ के लिए खड्ग धनु, यष्टि, रेखा, नेत्र के लिए चकोर, मृग, मदिरा, खजन, अम्बुज, नीलकमल, मीन आदि श्रुति के लिए दौला, पाश, नासा के लिए वश, तूणीर, शुक चचु, तिल प्रसून, अधर के लिए पल्लव, बिम्बाफल, प्रवाल, दन्त के लिए मुक्ताफल, कुन्द, दाडिम, हीरक, स्मित के लिए ज्योत्स्ना, दुग्ध, पीयूष, श्वास के लिए कमल-सौरभ, जिह्वा के लिए अचल, दोला, वाणी के लिए भृ गीरव, पिकी-स्वर, सुधा, मधु, वेणु, वीणा, हस-स्वस, मुख के लिए शशी, कमल, दर्पण, कठ के लिए कम्बु, स्कन्ध के लिए कुभ, बाहु के लिए वल्लरी, बिस-लता, मृणाल नाल, विद्युल्लता, हथेली के लिए पद्म, पल्लव, विद्रुम, अगुलि के लिए पल्लव, नखो के लिए रत्न, तारा, प्रसून, स्तन के लिए स्तवक, घट, गजकुभ, गिरि, चक्र, शिव, चक्रवाक, जम्बीर, समुद्र, स्तम्ब पुगफल, कमल, विल्व, ताल, गुच्छ, सौवीर, वीजपूर आदि, स्तन-मध्य के लिए वैदिका, रोमाली के लिए रेखा, मृणालवल्ली, नाभि के लिए अभोज, आवर्त, ह्रद, विवर, कूप, त्रिवली के लिए वीचि, सोपान, निसेनी, नदी, जघन के लिए पुलक, पीठफलक, नितम्ब के लिए स्थल, पीठ, प्रस्तर, पृथ्वी, गिरि, चक्र, ऊरू के लिए कदली, स्तभ, शुडा, करभ, जघा के लिए स्तभ, गति के लिए हस गति, गजगति, कटि के लिए सुई की नोक, शून्य, अणु, वेदी, सिह की कटि, मुष्टि ग्राह्यता, चरणो के लिए पल्लव, कमल, स्थल पद्म, प्रवाल नूपुर ध्वनि के लिए सारस, हस की ध्वनि आदि, आदि।

पुरुष के अगो मे स्कन्धो के लिए वृषभ और रक्ताक्ष के स्कन्ध, भुजाओ के लिए सर्पराज, हाथी की सू ड, पवि, स्तभ, अर्गला, दड आदि।

हिन्दी के कवियो ने भी इन्ही उपमानो मे से कुछ को ग्रहण कर लिया है तथा कुछ को छोड दिया है।

प्रतीक—

कोश मे प्रतीक का अर्थ है, चिह्न, प्रतिरूप, प्रतिमा या स्थानापन्न। साहित्य मे प्रतीको का प्रयोग बहुधा उपलक्षण के रूप मे होता आया है। भावो या मनोविकारो को पूर्ण रूप से शब्दो मे प्रकट करना हर समय सभव नही होता। इसीलिए भावो की व्यजना के लिए काव्य मे प्रतीको का व्यवहार होता आया है। "प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इगित करनेवाला न तो सकेत मात्र है और न उसका स्मरण दिलानेवाला कोई चित्र या प्रतिरूप ही

है। यह उसका एक जीता-जागता एव पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है जिस कारण इसे प्रयोग मे लानेवाले को इसके व्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावो को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है[१]।"

प्रतीको की योजना अलकारो के अन्तर्गत होने पर भी दोनो मे भिन्नता है। प्रतीक उपमान की अपेक्षा कही अधिक समर्थ एव व्यापक होता है। उपमान के पीछे सादृश्य और साधर्म्य होता है, प्रतीक मे इसके विपरीत प्रभाव साम्य होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नही, बल्कि भावना जागृत करने की निहित शक्ति है[२]। जब कवि के आन्तरिक भावो को प्रकट करने मे भाषा पगु एव निर्जीव सिद्ध होती है, तब प्रतीक भावो का प्रतिनिधि बन कर आता है।

प्रतीकों का उद्भव—

प्रतीको का इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी मानव-सस्कृति। वैदिक साहित्य मे प्रतीको के बहुत से उदाहरण पाये जाते है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पल स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो भिचाकशीति॥

—ऋ० १।२२।१६४

अर्थात् सुन्दर पखवाले, एक साथ रहनेवाले और परस्पर मित्रता रखने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष मे निवास करते है। उन दोनो मे से एक स्वादु युक्त फलो को खाता है और दूसरा बिना कुछ खाए ही चैतन्य रहता है। इसमे दो पक्षी जीवात्मा और परमात्मा है तथा वृक्ष शरीर को कहा है एव वृक्ष के फल सासारिक भोगो का प्रतीक है।

चत्वारि शृङ् गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्त सोऽस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रौरवीति महादेवो मर्त्यमाविवेश॥

—ऋ० ४।५८।३

इस मत्र की अनेक व्याख्याएँ मिलती है, किन्तु सभी मे प्रतीकत्त्व स्पष्ट ही है। इसमे वृषभ, शृग, पाद, शीर्ष, हस्त आदि प्रतीकात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति करते है।

१—परशुराम चतुर्वेदी : 'कबीर साहब की प्रतीक-योजना,' अवंतिका, काव्यालोचनांक, वर्ष २, अंक १, जनवरी, १९५४।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि, द्वितीय भाग, पृ० १२६।

ऋग्वेद का पुरुष सूक्त प्रधानतः प्रतीकात्मक है। उपनिषदो मे आत्म विद्या के गूढ तत्त्वो को समझने के लिए प्रतीको की योजना की गई है।

नव द्वारे पुरे देही हंसो लेलायते वहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥

—श्वेताश्वतर ३।१८

इसमे नौ द्वारो वाला पुर शरीर का तथा 'हस' चेतन आत्मा का प्रतीक है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्र तद् ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः ॥

—श्वेताश्वतर ४।२

इसमे अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, शुक्र, जल आदि प्रतीक है। अन्यत्र रथ-चक्र तथा नदी के प्रतीको द्वारा आध्यात्मिक रहस्यो को स्पष्ट किया गया है[१]। वृहदारण्यक के दूसरे अध्याय के पाँचवे ब्राह्मण की मधु विद्या, पाँचवे अध्याय के दूसरे ब्राह्मण की कथा मे 'द' अक्षर का उपदेश और केनोपनिषद के तीसरे खड मे यक्ष की कथा सब प्रतीकात्मक है। इनमे प्रतीको के माध्यम से आध्यात्मिक रहस्यो का उद्घाटन किया गया है।

वैदिक साहित्य के कुछ प्रतीक नीचे दिये जाते है :—

१—स्वस्तिक —मागलिक चिह्न जिसमे देवताओ का निवास माना जाता है।

२—अक्षर —ब्रह्म, प्राण, आत्मा का प्रतीक (देखिये ऐतरेय आरण्यक १० तथा माण्डक्य कारिका १)

३—ओउम् —ब्रह्म का अभिधान। 'ओमित्येतदक्षरमिद सर्वम् तस्योपाख्यान, भूत भवत भविष्यदिति सर्वमोकार एव। माण्डूक्य उप०कारिका २

४—ज्योतिः —प्रकाश, सूर्य, अग्नि, प्राण। कोषीतकी ब्राह्मण २५।३।६, शतपथ ६।४।२।२२

५—अग्निः —तेज, प्रकाश। अग्निवै प्रथमा विश्वज्योतिः। शत० ६।४।२।२५

६—श्रीः —सार, सर्वस्व। शतपथ० ६।१।१।४, ऐतरेय० ८।५

१—श्वेताश्वतर, १।४-५

७— वायुः —प्राण । शतपथ ३।१।२।२०

८— लक्ष्मी —सौन्दर्य, गुण । शतपथ ८।५।४।५, ८।४।४।११

९— प्राण —ब्रह्म, जीवन । शतपथ १४।६।१०।३, 'प्राणेन प्राणितः' केन उप० ८, 'प्राणो ब्रह्म,' छान्दो० ४।१०।५

१०— अमृत —आनन्द, ब्रह्म । मृत्योर्मामृत गमय—यो वै भूमा तदमृतम्' · · छान्दो० ७।२४

११— शून्य —आकाश ।

इससे सिद्ध है कि वैदिक काल मे प्रतीको का प्रादुर्भाव हो चुका था, क्योकि वैदिक साहित्य मे इनका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है । आगे चलकर काव्य मे भी इनको स्थान मिल गया । काव्य मे पौराणिक युग के प्रतीको का सबसे अधिक प्रचार है । अवतारो के रूप, आकार एव कथाओ को बहुत से प्रतीको के द्वारा प्रकट किया है । अनेक देवी, देवता, तत्सम्बन्धी गुण एव कार्यकलापो को पौराणिक साहित्य मे प्रतीको के माध्यम से व्यक्त किया गया है । त्रिदेवो मे ब्रह्मा, विष्णु और शिव के नाम आते है । ये तीनो नाम प्रतीकात्मक ही है । ब्रह्मा चारो वेद एव प्रचुर ज्ञान के, विष्णु व्यापकत्त्व के तथा शिव प्रलय के प्रतीक ही है । इन त्रिदेवो की शक्तियाँ भी प्रतीकात्मक है—ब्रह्म की शक्ति सरस्वती है, जो विद्या एव कलाओ की प्रतीक है, विष्णु की शक्ति लक्ष्मी ऐश्वर्य की तथा शिव की शक्ति पार्वती, दुर्गा, काली भय एव सहार का प्रतीक है । सरस्वती वीणा और पुस्तक से सयुक्त है, जो क्रमशः सगीत तथा ज्ञान के प्रतीक है । विष्णु के हाथो मे शंख, चक्र, गदा और पद्म है जो क्रमश. उज्जवलता, भय, मृत्यु और कोमलता या निर्लिप्तता के प्रतीक है । भारतीय सस्कृति मे कमल का स्थान प्रमुख है । यह स्वच्छता, कोमलता एव सुन्दरता का प्रतीक है ।

नीचे काव्यकल्पलतावृत्ति के आधार पर कुछ प्रतीक दिये जाते है, जो चिरकाल से काव्य मे प्रयुक्त होते आए है—

१ मागलिकता के प्रतीक —शख, मधु, रजत, स्वर्ण, ताम्र, मणि, ताम्बूल, दर्पण, कलश, स्वस्तिक, नन्दी, चन्दन, अक्षत, दीप, दधि, दूध, दूर्वा ।

२ अमागलिकता के प्रतीक—उल्लू, सर्प, पाषण्ड, खर, चिता, धूम, चाडाल ।

३	पवित्रता के प्रतीक	—अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, यति, द्विज, दर्भ, गगा, यमुना, सरस्वती ।
४	अपवित्रता के प्रतीक	—रक्त, अस्थि, श्मशान, कुत्ता ।
५	सुख के व्यजक प्रतीक	—स्वर्ग, सुधा, सुहृद ।
६	दुख के व्यजक प्रतीक	—नरक, कारागृह, विष ।
७	स्थिरता के प्रतीक	—पृथ्वी, पर्वत, धर्म, सती, शूर ।
८	अस्थिरता के प्रतीक	—लहर, विद्युत, बुद्बुद्, दीप-शिखा, निमेष ।
९.	वेग के प्रतीक	—अश्व, मन, वायु, इन्द्र, गरुड ।
१०.	मन्दता के प्रतीक	—शनि, गज, वृषभ ।
११.	बल के प्रतीक	—इन्द्र, स्कन्द, राम, हनुमान, भीम, बलराम, सिह, दिग्गज, शेष, कूर्म, ऐरावत ।
१२	मधुर ध्वनि के प्रतीक	—हंस, मयूर, पिक. कीर, वेणु, वीणा, मजीर ।
१३.	कठोर ध्वनि के प्रतीक	—गदहा, मेढक, कुक्कुर, गीदड, का शब्द ।
१४	कोमलता के प्रतीक	—शिरीष, पल्लव, कदली ।
१५	मधुरता के प्रतीक	—काव्य, गीत, सुधा, मधु, रस, चन्द्र, रश्मि, द्राक्षा, आम, रम्भा ।

काव्य कल्पलतावृति आदि कवि शिक्षा की पुस्तको मे इनके सग्रह प्रचुर मात्रा मे मिल जाते है । सस्कृत के काव्य ग्रन्थो मे सभी कवियो ने इनका यथा-स्थान प्रयोग किया है । किन्तु काव्य एव नित्य के व्यवहार मे बार-बार जाने से इनका प्रतीकत्त्व नष्ट हो गया है तथा ये साधारण शब्दो की श्रेणी मे आ गए है । इससे सिद्ध है कि इनके विकास की परम्परा दीर्घकालीन है । ये प्रतीक अधिकतर धार्मिक और आध्यात्मिक भावो की व्यजना के लिए प्रयुक्त होते आए है । पौराणिक युग प्रतीको की दृष्टि से सबसे अधिक समृद्ध है तथा सस्कृत एव हिन्दी काव्यो पर पौराणिक सस्कृति का प्रभाव सबसे अधिक है । अतएव सस्कृत एव हिन्दी काव्यो मे इन प्रतीको का प्राचुर्य है ।

इन प्रतीको का वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन हे । श्री सुदर्शन सिह ने सभी प्रतीको को दो भागो मे विभाजित किया है, नित्य तथा कल्पित । नित्य प्रतीक वे है, जिनका भाव या वस्तु के साथ नित्य सम्बन्ध है, जैसे, आकाश का

प्रतीक शून्य है। कल्पित प्रतीको मे व्यक्तियो के नाम, राष्ट्रो के ध्वज तथा दूसरे कल्पित चिह्न हैं। ये यदृच्छा निर्मित है। जैसे, अमेरिका के राष्ट्रध्वज मे तारक चिह्न हैं[१]। उनके मत से नित्य प्रतीक के दस भेद हो सकते है—(१) चिह्न प्रतीक (२) रग प्रतीक (३) पदार्थ प्रतीक (४) प्राणी प्रतीक (५) पुष्प प्रतीक (६) शस्त्र प्रतीक (७) वाद्य प्रतीक (८) वृक्ष प्रतीक (९) वेश प्रतीक और (१०) सकेत प्रतीक (मुद्राएँ)।

प्रतीको का एक अन्य विभाजन इस प्रकार किया गया है[२]—

१—अक्षरात्मक प्रतीक।

२—सकेतात्मक प्रतीक।

३—रूपात्मक प्रतीक।

४—कथात्मक प्रतीक।

५—सख्यात्मक प्रतीक।

डा० प्रेमनारायण शुक्ल ने प्रतीको को चार श्रेणियो मे विभाजित किया है[३]—

१—परम्परानुगत

२—देशगत

३—व्यक्तिगत और

४—युग गत

इस प्रकार दृष्टि भेद से प्रतीको के अनेक वर्ग हो सकते है। कोई एक वर्ग अपने आप मे सर्वथा पूर्ण नही हो सकता। डा० सुधीन्द्र के अनुसार प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समग्र आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है ·· प्रतीक तो अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप मे अवतार है[४]। आपके अनुसार जीवन के हर एक क्षेत्र मे प्रतीको का प्रयोग होता है। सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृतिक एव आध्यात्मिक जीवन के हर एक क्षेत्र मे प्रतीक व्यवहृत होते है। जीवन का कोई पार्श्व इनसे बचा हुआ नही है। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय प्रतीक होने है, प्रेम, करुणा, आशा, अभिलाषा, आकाक्षा आदि सवेदनो की अभिव्यक्ति के लिए भावात्मक प्रतीक होते है।

१—देखिये, कल्याण वर्ष २८, अंक ५, पृ० १०४६।

२—राजाराम रस्तोगी : हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना, पृ० २१३।

३—हिन्दी साहित्य में विविधवाद, पृ० ४७२।

४—डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृ० ३६४।

दार्शनिक प्रतीको मे शास्त्रीय चिन्तन प्रतिफलित हाता है और जहा आध्यात्मिक तत्त्व चिन्तन अभिप्रेत हो, वहां आध्यात्मिक प्रतीको का प्रयोग होता है। दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रतीकवाद अतीन्द्रिय तत्त्व होने के कारण 'सकेतवाद' भी कहे जा सकते है।

डा० सुधीन्द्र के प्रतीको के विश्लेषण मे वस्तुगत और भावगत दृष्टियो का सन्निवेश है, जो वैज्ञानिक होने से अधिक समीचीन है।

यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीको पर विचार किया जाय, तो यह वर्गीकरण अधिक सुन्दर होगा, क्योकि प्रतीक मनोगत भाव एव प्रवृत्तियो के व्यजक होते है। इस दृष्टि से शृ गारिक प्रतीक, आत्मख्यापन के प्रतीक, वात्सल्य के प्रतीक हीनता या दैन्य के प्रतीक, धार्मिक प्रतीक एव नैतिक आदि भेद हो सकते है। यह वर्गीकरण सबसे अधिक पूर्ण एव उपयुक्त दिखाई पडता है, क्योकि प्रतीक मूलतः किसी-न-किसी प्रवृत्ति या भावना की ही अभिव्यक्ति मे सहायता करते है। यदि वाङ्मय के विकास के ऐतिहसिक सन्दर्भ मे काल-क्रम के आधार पर प्रतीको की परम्परा के ऊपर विचार करे तो वैदिक युग के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक प्रतीको मे, पौराणिक युग के धार्मिक प्रतीको मे, सिद्ध और नाथ कवियो के योग परक प्रतीको मे, सन्त कवियो के दाम्पत्य सम्बन्धी प्रतीको मे, सगुणवादी भक्त कवियो के लाक्षणिक एव साकेतिक प्रतीको मे, प्रगतिवादी कवियो के राजनीतिक प्रतीको मे तथा प्रयोगवादी कवियो के यौन प्रतीको मे मूल प्रवृत्तियो एव भावो का ही उद्‌घाटन हुआ है। अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीको का वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

१—शृ गारिक प्रतीक
२—वात्सल्य सम्बन्धी प्रतीक
३—हीनता या दैन्य सम्बन्धी प्रतीक
४—आत्मख्यापन सम्बन्धी प्रतीक
४—सास्कृतिक, आध्यात्मिक अथवा धार्मिक प्रतीक।

प्रतीकों का विकास—

हर एक युग नई प्रवृति और परिस्थिति लेकर आता है। तदनुकूल प्रतीको मे भी नवीन विकास दृष्टिगोचर होता है। आठवी, नवी शती के सिद्ध कवियो के रहस्यवादी प्रतीको से उस युग की विशेषताओ पर भी प्रकाश पडता है। राहुल साकृत्यायन ने सिद्ध कवियो की रचनाओ के अनुशीलन से जो निष्कर्ष निकाले है, उनसे बौद्ध धर्म के पतन, आचार-भ्रष्टता, जीवन मे अनाचार, मिथ्या

विश्वास और आडम्बरपूर्ण जीवन पर पूर्ण प्रकाश पडता है[1]।

८०० ई० के नालन्दावासी भुसुकपा (शातिदेव) की एक रचना यहा उद्धृत की जाती है, जो आद्योपान्त प्रतीकात्मक है—

'णिसि अधारी मूसा करअ अचारा। अमिअ-भरवअ मूसा करअ अहारा॥
काला मूसा उहण वाण। गअणे उठि करअ अमिअ पाण।
तव्वे मूसा अचल चचल। सद्गुरु वातै करह सो निच्चल॥

—भुसुकपा

इसमे 'णिसि अधारी' (निशि अधियारी), मूसा (चूहा), अमिअ (अमृत), गअणे (गगन) क्रमशः अज्ञानान्धकार, काम, क्रोधादि विकार, आत्मानन्द एवं अन्तःकरण के प्रतीक है। इन प्रतीको द्वारा भ्रष्ट जीवन का चित्र खीचा गया है।

भारतीय एव पाश्चात्य साहित्य मे रहस्यात्मक प्रतीक बहुत बडी सख्या मे मिलते है। रहस्यवादी कवि आन्तरिक आनन्दानुभूति को वाह्य प्रतीको द्वारा प्रकाशित करते है। कबीर के एक पद से इस बात को स्पष्ट किया जाता है—

'चल हसा वा देस, जहा पिया बसे चितचोर।
सुरत सुहागिनि है पनिहारिनि, भरे ठाड बिन डोर।
वहि देसवा वादर ना उमडै, रिमझिम बरसे मेह।
चौवारे मे बैठ रहो ना, जा भीजहु निर्देह॥
वहि देसवा मे नित्त पूरनिया, कबहुँ न होय अधेर।
एक सूरज कै कवन बतावै, कोटिन सुरज उजेर॥

(कबीर।)

इस पद मे हस जीवात्मा के लिए, चितचोर ब्रह्म के लिए, पनिहारिनि कुडलिनी के लिए, डोर ध्यान के लिए, बादल माया के लिए, मेह आनन्द के लिए, चौबारा ब्रह्मरन्ध्र के लिए, पूर्णिमा और सूर्य ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रतीक रूप मे आए है। 'रिमझिम बरसे मेह' से आनन्दानुभूति की ओर इगित है।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे फ्रास के अन्दर प्रतीकवादी काव्यधारा बडे वेग से प्रवाहित हुई तथा उसने अल्पकाल मे ही साहित्य के सभी अग एव कला के सभी क्षेत्रो को आत्मसात कर लिया। योरुप के अन्य देशो मे भी इसका प्रभाव पडा। रूस, जर्मन, अमरीका, आयरलेण्ड, इगलैड आदि देशो मे भी इसकी

१—राहुल सांकृत्यायन (सं०) : हिन्दी काव्यधारा, भूमिका, पृ० ३५।

बडे वेग से चली। फ्रास के रहस्यवादी कवियो में बोदलेअर, बर्लेन, मालार्मे रिम्बो, पूस्त और वालेरी के नाम प्रधान है। अमेरिका के हाथनि, ह्विटमेन, जर्मन के रिल्क, रुस के ब्लाक, आयर्लैण्ड के यीट्स तथा इग्लैण्ड के ब्लेक, ईलियट आदि इस धारा के कवि है। आधुनिक काल के हिन्दी के रहस्यवादी कवियो पर किसी-न-किसी अश मे इस काव्यधारा का प्रभाव है, जो बगला के कवियो मे विशेषतः रवीन्द्र बाबू की काव्य रचनाओ के अनुशीलन से हिन्दी मे आया है[१]।

हिन्दी के सन्त कवियो के प्रतीक-विधान पर डा० रामकुमार वर्मा, डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री परशुराम चतुर्वेदी, श्रीचन्द्र-बली पाडेय ने विषद रूप से विचार किया है। कबीर का रहस्यवाद (डा० राम कुमार वर्मा), कबीर और हिन्दी साहित्य की भूमिका (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी), उत्तरी भारत की सन्त परम्परा और कबीर साहब की प्रतीक योजना (श्री परशु-राम चतुर्वेदी), द निर्गुन स्कूल आफ हिन्दी पोइट्री (डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल), सूफीमत और तसव्वुफ (श्री चन्द्रबली पाण्डेय) निर्गुण सन्तो की प्रतीक योजना (श्री प्रभाकर माचवे) आदि इस विषय के जिज्ञासुओ के लिए अच्छे उपादेय सन्दर्भ ग्रन्थ है।

सन्त कवियो मे कबीर के साहित्य मे सबसे अधिक प्रतीक आए है। नाद, विन्दु, सुरति, निरति, शून्य, निरजन, सहज, लौ आदि शब्द प्रतीकात्मक है[२]। नैहर और ससुराल की प्रतीक योजना का एक सकलन सद्गुरुशरण अवस्थी ने प्रस्तुत किया है। साराश यह कि वैदिक युग से आधुनिक युग तक का प्रतीको की परपरा का विकास अत्यन्त रोचक विषय है। विभिन्न कालो के प्रतीको मे युगगत अनुभूतियो एव सस्कारो के छाया चित्रो की सुस्पष्ट झलक दिखाई पडती है। धर्म, अध्यात्म, सस्कृति, प्रेम एव भक्ति के भावो को प्रति-फलित करने मे इन प्रतीको का बहुत योग है।

छन्द

सामान्य विचार

भारतीय वाड्-मय मे भाषा की उत्पत्ति के समय से ही छन्द का

१—आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० ६६८।
परशुराम चतुर्वेदी : 'कबीर साहब की प्रतीक योजना', अवंतिका, वर्ष २, अंक १

२—हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ४१,६४।

विचार प्रारम्भ हो जाता है। ऋग्वेद के मन्त्रो मे स्वर, ध्वनि, बल वर्णों की नियमित व्यवस्था तथा पाद-योजना के अन्तर्गत छन्द के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। इसी के आधार पर अनेक विद्वानो का मत है कि ये मन्त्र किसी पूर्वकाल से चली आती हुई परम्परा के विकसित रूप है। जीवविज्ञान तथा भाषा विज्ञान के विद्वानो के विचार से आदि मानव की भाषा मे स्वर, ध्वनि, बल, लय एव नाद सौन्दर्य की प्रचुरता रही होगी तथा इसमे भी सन्देह नही कि मानव ने अपने भावावेगो की सकुलता मे गद्य से पहले पद्य मे ही बोलना प्रारभ किया होगा। आदि मानव ने भाषा का प्रयोग सर्व प्रथम अपने उत्कट एव तीव्र भावो की व्यजना के लिये किया होगा। तत्त्व-विचार, मनन एव चिन्तन की भाषा विकसित युग की देन है। गभीर भावावेश की भाषा अवश्य ही बल, मात्रा तथा लय के साम्य से युक्त रही होगी। अतएव उसमे छन्द के तत्त्व अवश्य रहे होगे। तीव्र भावोद्रेक की अवस्था मे व्यक्ति जो कुछ बोलता है, उसमे लयात्मक प्रवाह स्वयमेव आ जाता है। भय, क्रोध, प्रेम, करुणा आदि मनोवेगो की उत्कटता के क्षणो मे मनुष्य की अभिव्यक्ति अपने-आप छन्दोमयी हो जाती है [१]। निष्कर्ष यह कि छन्दोमयी भाषा उतनी ही प्राचीन है, जितना कि मानव।

ऋग्वेद मे छन्दो के विविध प्रयोग मिलते है। छन्दो का महत्त्व इसी से सिद्ध है कि काव्य के अतिरिक्त कोश, व्याकरण, स्मृति, दर्शन, धर्मशास्त्र, राजनीति, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयो को भी छन्द मे ही लिखा गया है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण, सस्कृत का साहित्य तथा पाली, प्राकृत और अपभ्रश का अधिकाश साहित्य तथा हिन्दी साहित्य का विशाल भाग छन्दो मे ही रचित है। इससे छन्द का गौरव प्रकट होता है।

छन्द · उद्भव—

छन्द का प्रयोग सर्व प्रथम ऋग्वेद मे मिलता है। इसके पाँच भेद है—अनादिष्ट छन्द, वृहच्छन्द, अतिच्छन्द कृतिच्छन्द तथा प्रचितिच्छन्द। अनादिष्ट छन्द पाँच प्रकार के है—उक्त, अत्युक्त, मध्य, प्रतिष्ठा और सुप्रतिष्ठा। वृहत् छन्द के सात प्रकार है—गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती, पक्ति, त्रिष्टुप, धृति, अतिधृति। सात ही कृतिच्छन्द है—कृतिः, प्रकृतिः, आकृतिः, विकृतिः, सकृत.,

---

१—घाटे वैदिक मीटर, "द लैंग्वेज आव नेचर क्लोथ्स इट्सेल्फ इन मीटर, तथा, डीप स्ट्राग पैशन्स एक्प्रेस देमसेल्व्स इन मीटर।

अभिकृतिः और उत्कृतिः। शेष प्रचितिच्छन्द है, जिनकी कोई सख्या नही है[1]।

पाद योजना—

ऋग्वेद के छन्द का मूलभूत आधार पाद-योजना है। प्रत्येक पाद मे अक्षरो की नियत सख्या होती है। गायत्री छन्द के हर एक पाद मे आठ अक्षर होते है तथा सम्पूर्ण छन्द त्रिपाद होता है। इस प्रकार गायत्री चौबीस अक्षर का छन्द है। जगती का प्रत्येक पाद बारह अक्षर का, विराज का पाद दश अक्षर का तथा त्रिष्टुप का पाद ग्यारह अक्षर का होता है[2]। जिस छन्द के एक पाद मे जितने अक्षर होते है, उसी नियम से वह छन्द एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद और कही चतुष्पाद होता है। गायत्री मे त्रिपाद है। इसमे एक और चौथे पाद के योग से अनुष्टुप् हो जाता है। वेदो मे गायत्री छन्द सबसे अधिक आया है। शतपथ मे गायत्री को सबसे प्रथम छन्द कहा गया है—'गायत्री प्रथमा छन्दसाम्' गीता मे श्रीकृष्ण ने गायत्री को अपना स्वरूप ही बताया है—'गायत्री छन्दसामहम्'। अक्षरो की न्यूनाधिक सख्या के पादो के अनुसार इसके 'कात्यायन ने नौ भेद किए है—त्रिपदा, पदपक्ति, उष्णिगर्भा, पाद निवृति, अति निवृत, पव मध्या, वर्धमाना, प्रतिष्ठा तथा ह्रसीयसी।

त्रिपदा गायत्री—(१) अग्नि मीले पुरोहित, (२) यज्ञस्य देवमृत्विजम्
(३) होतार रत्नधातमम्॥ ऋ० स० १।१।१।१

अति निवृत— (१) पुरूतम पुरूणा, (२) स्तोतृणा निवाचि।
(३) वाजेभिर्वाजयताम्॥

ऋ० स० ४।७।२६।४—

वेद के मत्रो मे यदि किसी पाद मे अक्षर न्यून हो, तो 'इय' आदि के द्वारा उसकी पूर्ति की जाती है—'तत्सवितुर्वरणियम्'। इस पाद मे एक अक्षर कम है, उसकी पूर्ति उच्चारण द्वारा ध्वनि को बढाकर की जाती है[3]। एक अक्षर कम होने से प्रसिद्ध गायत्री मत्र 'निवृत्त गायत्री' है। इसी प्रकार दो अक्षर न्यून होने पर 'विराड्' सज्ञा होती है। यदि एक अक्षर अधिक हो तो 'भूक्ति' और दो अक्षर अधिक हो, तो उसे 'स्वराड्' कहा जाता है[4]। वेद के मत्रो मे

१—देखिए, पिंगल, छन्दःशास्त्र की भूमिका, पृ० ४५।
२—देखिए, पिंगल, छन्दः शास्त्र, सूत्र ३।१—७।
३—पिंगल, छन्द, सूत्र ३।२
४—वही, ३।४१—६०

नियम की कठोरता कही पर नही मिलती है। प्रायः अनेक मत्रो मे कही पाद के अक्षरो की सख्या घट जाती है तथा कही बढ जाती है। पीछे के अनुक्रमणी-कारो ने न्यूनाक्षर छन्दो को 'विच्छन्द' और अधिकाक्षर छन्दो की 'अतिच्छन्द' के नाम से अभिहित किया है। सहिताओ मे पद-पाठ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध रूप मे दिया गया है, किन्तु मत्रोच्चारण के समय पाठ लय का अनुवर्ती होकर चलता है। यह बात बहुत से मत्रो से प्रमाणित होती है। इसी से 'इन्द्र' शब्द को 'इन्दर' करके पढा जाता है, कही 'ज्येष्ठ' को 'जमिष्ठ', 'सख्याय' को 'सखियाय,' 'स्याम' को सिजाम तथा 'व्युषाः' को 'वि उषाः' करके पढने का नियम है।

वैदिक मत्रो मे ही छन्द के प्रथम प्रयोग मिलते हैं। प्रारभ मे नियमो की कठोरता नही हुआ करती है। वैदिक मत्र भी इसके अपवाद नही है। किन्तु शनैः शनैः जब विस्तार प्रस्तार का युग आता है, तब नियमो की कठोरता भी बढती चलती है। वैदिक छन्दो मे प्रारभिक अवस्था का यह नियम-शैथिल्य इतना अधिक है कि पीछे के वैयाकरणो ने 'छन्दसि सर्वे विधयो विकल्पन्ते' का सिद्धान्त इन्ही अपवादो के लिए गढा है। इस स्वाभाविक स्वच्छन्दता को आदर देने के लिए 'छान्दसप्रयोग' कह दिया जाता है। वस्तुतः यह छन्दो के क्षेत्र मे प्रारभिक प्रयोगो की अवस्था है। इन्ही मे भविष्यत् के विकास की अवस्था के बीज छिपे रहते है। पीछे के आचार्यो ने इन्ही के आधार पर नये-नये छन्दो का निर्माण किया है।

मैकडानल्ड ने अपनी वैदिक ग्रामर मे समपादी, सयुक्तपादी तथा विषम-पादी छन्दो के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ऋग्वेद मे इनके उदाहरणो का प्राचुर्य है। गायत्री, अनुष्टुप् समपादी छन्द हैं। पहले अष्टाक्षर के तीन पाद तथा दूसरे मे अष्टाक्षर के चार पाद होते है। त्रिष्टुप् छन्द ऋग्वेद मे अधिकता से प्रयुक्त हुआ है। इसके एकादशाक्षर के चार पाद होते है। गायत्री और जगती के योग से अनेक नये छन्दो की रचना हुई है। उदाहरण के लिए ८+८+१२ —२८ अक्षर का उष्णिह्, १२+८+८=२८ अक्षर का पुर उष्णिह् तथा ८+ १२+८=२८ अक्षर का ककुभ छन्द होता है। इसी प्रकार छत्तीस अक्षरो (८+८+१२+८) का वृहती, चालीस अक्षरो (१२+८+१२+८) का सतोवृहती, साठ अक्षरो (८+८+८+८+८+१२+८) का अतिशकुवरी छन्द होता है। वह योगिक छन्द है, जिसके छः पाद गायत्री के तथा एक पाद जगती का होता है। अत्यष्टि छन्द मे अडसठ अक्षर होते हैं, जिसमे चार पाद गायत्री के तथा तीन पाद जगती के होते हैं। ऋग्वेद के बहुत से छन्दो की रचना सयुक्त छन्दो के योग से हुई है। प्रगाथा ऐसा ही छन्द है। इसके दो भेद है—

ककुभ प्रगाथा तथा वृहत प्रगाथा। पहले की रचना ककुभ और सतोवृहत के योग से होती है तथा दूसरे की वृहती और सतोवृहती के मेल से[१]।

छन्दों का विकास—

वैदिक मन्त्रो की पाद सख्या और अक्षर सख्या का बार-बार अनुसन्धान करके उत्तरवर्ती विद्वानो ने छन्दोराशि को विकसित किया है। पहले गण, अक्षर, मात्रा, लघु एव गुरु का विचार हुआ। इसके पश्चात् इन्ही के आधार पर नए-नए छन्दो का विकास हुआ। वैदिक मन्त्रो मे अक्षर सख्या से विहीन केवल उच्चारण के काल-मात्र पर अवलम्बित छन्दो के अनुशीलन से मात्रिक छन्दो की कल्पना का प्रारम्भ हुआ।

नीचे इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है—

१—'रथ न दुर्गाद्वसवः सुदानव.' (ऋ० स० १।७।२४)। इसमे वशस्थ का बीज है। इसका लक्षण है, जगण, तगण, जगण और रगण।

२—'पुषण्वते ते चकृया करम्भ (ऋ०स० ३।३।१८ए। इन्द्रवज्रा का पाद है, जिसका लक्षण है—दो तगण, एक जगण और दो गुरु।

३—'स्तुहि श्रुत गर्तसद पुवान (ऋ०स०२।७।१८) उपेन्द्र वज्रा का पाद है, जिसके प्रत्येक पाद मे एक जगण, एक तगण, एक जगण तथा दो गुरु होते है।

४—'अमीय कक्षा, निहितास उच्चा नक्त दहश्रे कुह चिदिवेपु.' (ऋ० स० १।२।१४) यह उपजाति है, क्योकि इसमे इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र-वज्रा के पादो का योग है।

५—'इन्द्रा सोमा दुष्कृते मा सुग भूत्' (ऋ०स० ५।७।६)। यह शालिनी वृत्त है, क्योकि इसमे एक मगण, दो तगण और दो गुरु आए है।

इसी प्रकार अन्य वृत्तो के मूलभूत पादो के लक्षण सैकडो वेद मन्त्रो मे ढूँढे जा सकते है। यथा—गायत्री के अष्टाक्षर के तीन पादो मे एक पाद की और वृद्धि करके 'अनुष्टुप्' छन्द हो जाता है[२]—

१—सहस्रशीर्षा पुरुषः २—सहस्राक्षः सहस्रपात्।
३—स भूमि विश्वतो वृत्वा ४—त्यतिष्ठ छशाङ् गुलम्॥
—ऋ०स० ८।४।१७। १

१—देखिए, मैकडानल्ड, : वैदिक ग्रामर, पृ० ४४३=४६।

२—पिंगल, छन्दःशास्त्र, ३।२३

वस्तुतः अनुष्टुप् छन्द गायत्री का ही परिवर्धित रूप है। वैदिक मत्रो मे गायत्री की ही प्रधानता है तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे अनुष्टुप का प्राचुर्य है। यहाँ आकर इसमे ताल एव लय का सगीत फूट पडा है। गीत तत्त्व की प्रधानता होने से इसका नाम गाथा प्रसिद्ध हुआ। गाथा का छन्द शास्त्र मे उल्लेख नही मिलता है, किन्तु लक्ष्य ग्रन्थो मे इसका प्रयोग मिलता है। यही गाथा छन्द पीछे काल मात्रा से नियत्रित होकर सस्कृत, प्राकृत और अपभ्र श मे 'आर्या' के रूप मे दिखाई पडता है[1]। हिन्दी मे आकर इसी ने दोहे का रूप धारण कर लिया है। इसी को विपरीत क्रम मे रखकर पढने से सोरठा हो जाता है। इस प्रकार वैदिक अनुष्टुप् वर्णवृत्त से आरभ होकर किस प्रकार गाथा, आर्या की अवस्थाओ को पार करके दोहा बन गया है, यह अत्यन्त मनोरजक कहानी है। रामायण, महाभारत, पुराण तथा स्मृतियो मे अनुष्टुप् का ही व्यवहार सबसे अधिक हुआ है। यद्यपि अष्टाक्षर के चार पादो के इस छन्द मे बत्तीस अक्षर होते है तथापि आगे चलकर इसमे पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा वर्ण गुरु रखने का भी विधान चल पडा है[2]। गाथा, आर्या तथा कारिकाओ मे इसका मात्रिक रूप प्रचलित हुआ है। वैदिक त्रिष्टुभ् (११,४) वर्णवृत्त के रूप मे लौकिक सस्कृत मे भी आ गया है। सस्कृत मे इसके दो रूप है—एक मे पाद का पहला अक्षर लघु और दूसरे मे गुरु। उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा इसी के रूपान्तर है। वैदिक जगती छन्द से वशस्थ और इन्द्रवशा का जन्म हुआ है। अनुष्टुप की तरह त्रिष्टुप और जगती छन्दो ने भी प्राकृत और अपभ्र शो मे पहुच कर मात्रिक छन्द का रूप ग्रहण कर लिया है तथा वैतालिक के नाम से अभिहित हुए है।

वैदिक छन्द उष्णिक्, बृहती, सतोबृहती, विराज, पक्ति और शववरी आदि से अर्ध सम, विषम पाद छन्दो का प्रादुर्भाव हुआ है। जहाँ से पादो मे एक समान लक्षण मिला, वहा अर्धसम तथा जहाँ चारो पादो मे भिन्न लक्षण हुआ, वहा विषम छन्द होता है। ऋग्वेद मे इस प्रकार के उदाहरण प्रचुर है।[3] पिगल ने अर्धसम छन्दो की सख्या दस बताई है तथा हेमचन्द्र ने इनका कही अधिक विस्तार किया है।

पिंगल ने सबसे बडा सत्ताईस अक्षर के पाद का दण्डक छन्द रखा है,

१—दे०, रघुनंदन शास्त्री : हिन्दी छंद प्रकाश, पृ० ६।

२—पचमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
गुरु षष्ठं तु पादनामन्येष्वनियमो मतः॥

३—देखिए, मैकडानल्ड : वैदिक ग्रामर, पृ० ४४३।

जिसमे दो नगण और सात रगण होते है। पीछे इनका और अधिक विकास हुआ है। हिन्दी मे दण्डको का प्रयोग सस्कृत से कही अधिक हुआ है। वैदिक छन्दो मे गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती के अवान्तर भेदो से प्रस्तार की रीति द्वारा अनेक छन्दो का विकास हुआ है। आगे चलकर वैदिक छन्दो की जातियाँ स्थापित हो गईं, जिनसे नए-नए छन्दो का विकास हुआ है।

वैदिक छन्दो मे अक्षरो की संख्या के आधार पर ही ध्वनि का सन्तुलन किया जाता था। मन्त्रो मे लय की उत्पति के उदात्त-अनुदात्त स्वरो से काम लिया जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थो मे लय की प्राप्ति के लिए ताल-सगीत पर विशेष ध्यान रखा जाता था। सस्कृत के छन्दो मे आधार तो अक्षरो की सख्या ही है, किन्तु लय की उत्पति के लिए लघु और गुरु अक्षरो की स्थिति का क्रम निर्धारित प्रणाली पर हो गया है। इसके लिए आचार्य पिंगल ने तीन-तीन अक्षरो के त्रिक या गण बनाए है, जिनकी सख्या आठ है। इन गणो के द्वारा लघु और गुरु वर्णों के क्रम को स्थिर कर दिया गया है। तब से आधुनिक काल तक लघु-गुरु वर्णों की योजना के लिए गणो की प्रणाली ही व्यवहार मे लाई जाती है।

सस्कृत के पश्चात् प्राकृतो का युग आता है। प्राकृत छन्दो का विकास अपनी स्वतत्र पद्धति पर हुआ है। सस्कृत के छन्दो मे लघु-गुरु की स्थिति के क्रम को यथा रूप रखने के लिए गण-योजना पर पूरा ध्यान दिया जाता है। प्राकृत मे ऐसा नही होता। इसके छन्दो मे वैदिक छन्दो की सी स्वतत्रता है। प्राकृत के छन्दो की सबसे बडी विशेषता यह है कि इनकी पाद-व्यवस्था का आधार अक्षर सख्या नही, मात्रा सख्या है। इसमे ध्वनि का आधार मात्रा है। मात्रा का आधार ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियो से न होकर उस 'काल' से है, जो किसी ध्वनि के उच्चारण मे लगता है। सस्कृत मे मात्रिक छन्द बहुत कम है। जो हैं, उन पर प्राकृत के छन्दो का ही प्रभाव है। अपभ्र श काव्य मे भी यात्रिक छन्दो का ही अधिक व्यवहार हुआ है। हिन्दी के छन्द भी अधिकतर प्राकृत और अप-भ्र शो की देन हैं।

इस प्रकार भारतीय छन्दो के विकास मे तीन अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं—(१) स्वर तत्त्व प्रधान (२) ध्वनि तत्त्व प्रधान और (३) काल तत्त्व प्रधान।

वैदिक छन्द स्वर तत्त्व प्रधान है। इसमे छन्द की गति का आधार स्वर हैं, जिनके उच्चारण मे आरोह-अवरोह का विधान पाया जाता है। सस्कृत के छन्द ध्वनि तत्त्व प्रधान हैं। इनमे ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियो के आधार पर लय चलती है। सस्कृत मे लघु-गुरु वर्णों के नियम स्थिर हो गए हैं। इन्ही से लय का सचालन होता है।

हिन्दी के छन्दो मे प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दो के समान काल तत्त्व प्रधान है। इनमे मूलवर्ती ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियो का विचार नही रखा जाता। इसके विपरीत किसी ध्वनि के उच्चारण पर जो काल लगता है, उसी के आधार पर उस ध्वनि ह्रस्वता या दीर्घता का निर्णय किया जाता है। उदाहरण के लिए 'ए' मूलतः दीर्घ ध्वनि है। सस्कृत मे इसे गुरु माना जाता है, किन्तु हिन्दी मे छन्द के अनुरोध से इसका कभी-कभी 'ह्र' के समान ह्रस्व उच्चारण भी होता है—

(१) अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद के भूपति लै निकसे।

(२) मानुष हो तो वही रसखानि बसो ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

उक्त उदाहरण मे चिह्नाकित 'ए' और 'ओ' का उच्चारण ह्रस्ववत् है। हिन्दी के छन्दो मे ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेगे, जिनमे 'ए,' 'ऐ,' 'ओ' 'औ' का ह्रस्ववत प्रयोग हुआ है। तभी वे छन्द की व्यवस्था मे ठीक बैठते हैं। इससे सिद्ध है कि हिन्दी के छन्दो मे उच्चारण पर लगने वाला काल तत्त्व प्रधान है।

महाकाव्य—

वैदिक सूक्तो मे काव्य के छन्द, अलकार प्रतीक, रस एव वस्तु के विविध उपकरण प्रचुरता से मिलते है,[१] किन्तु महाकाव्य का रूप वैदिक साहित्य मे प्रस्फुटित नही हुआ है। अन्य प्रमाणो के अभाव मे वाल्मीकि रचित रामायण ही आदि महाकाव्य ठहरता है, जिसकी रचना ५०० ई०पू० की बतलाई जाती है। इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि आदि कवि है तथा उनकी रामायण आदि महाकाव्य है। विद्वानो के मत से महाकाव्य का महत्त्व रामायण से ही स्थापित होता है। उत्तरवर्ती कवियो के लिए रामायण ने ही काव्य का मार्ग प्रदर्शित किया है, जिससे प्रेरणा ग्रहण कर आगे के कवियो ने महान् काव्यो का सृजन किया है। अतएव महाकाव्य की परम्परा का सूत्रपात इसी महाकाव्य से होता है। आगे चलकर लक्षणकारो ने रामायण को ही दृष्टि मे रखकर महाकाव्य के लक्षणो की रचना की है।

रामायण मे सीता और राम की पुनीत कथा का वर्णन है। बालकाण्ड के आरभ मे वाल्मीकि ने नारद जी से पूछा है—'चारित्रेयेण च को युक्तः' इसके उत्तर मे राम के जिस उदात्त चरित्र को चित्रित किया है, वही समस्त काव्य का मेरुदड है। इसमे भारतीय सस्कृति एव सभ्यता के उच्चादर्शों का सम्यक्

१—डा० सूर्यकान्त : 'काव्यशास्त्र का मूल और औचित्य, आलोचना, वर्ष ६, अंक २, पृ० ३७।

चित्रण है। राम के लोक पावन चरित्र मे सत्य, धर्म, शील, व्रत, त्याग एवं प्रतिज्ञा पालन का पूर्ण रूप से समावेश हुआ है। इसी प्रकार सीता के चरित्र मे सतीत्व एव पातिव्रत का आदर्श प्रतिफलित हुआ है। सीता के चरित्र के विषय मे सामान्य जनता के सामने जब कटु बचनो से उपालभ देते है, तब सीता उत्तर देती है—

"नर शार्दूल, आप मनुष्यो मे श्रेष्ठ है, परन्तु क्रोध के वश मे होकर आपने मेरे स्त्रीत्व को तो दोषारोपण करने के लिए आगे किया है किन्तु आपने इस बात पर तनिक भी ध्यान नही दिया कि बालकपन मे आपने मेरा पाणि-ग्रहण किया है। आश्चर्य है, मेरी भक्ति, शील तथा मेरी निश्छल प्रकृति को आपने पीछे ढकेल दिया है।"

"त्वया तु नर शार्दूल क्रोधमेवानुवर्तना।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्वात्ये वालेन पीडितः।
मम भक्तिश्च शील च सर्वे ते पृष्ठत. कृतम्।"

राम का चरित्र धैर्य और सहिष्णुता का उत्स है। वन को जाते समय उनके चित्त मे कोई विकार उत्पन्न नही होता है—

न वन गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्त विक्रिया॥

—अ० का० १९।३३

राम क्षात्र-धर्म के अवतार है। उनके क्षत्रियत्व का आदर्श महान् है—क्षत्रियो के द्वारा धनुष को इसलिए धारण किया जाता है कि पृथ्वी पर कोई पीडित न दिखाई दे।

क्षत्रियै धीर्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति'

—अरण्य० १०।३

प्रतिज्ञा-पालन राम के लिए सबसे बडा धर्म है। इसके लिए वे जीवन का, सीता का, लक्ष्मण का सभी का परित्याग कर सकते है। विशेषतः ब्राह्मणो के साथ की गई प्रतिज्ञा तो उनके लिए अपरिहार्य है—

अप्यह जीवित जह्या त्वा वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञा सश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

—आरण्य० १०।१९

रामायण की कथा-वस्तु इतनी विस्तृत एव विशाल है कि इसकी परिधि मे जातीय गौरव तथा मानव जीवन के विविध पक्षो का आकलन हो

गया है। इसकी कथा-वस्तु इतनी प्रौढ एव सुसगठित है कि अश्वघोश, कालिदास, भवभूति आदि अनेक उत्तरवर्ती कवियो ने इसी से काव्य की प्रेरणा ली है। महाभारत मे वर्णित रामकथा पर भी इसका प्रभाव है। बौद्ध एव जैन साहित्य के तिब्बती और चीनी अनुवादो की राम-कथा मे भी रामायण की झलक पाई जाती है[२]। इसके अतिरिक्त पाली, प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी के सैकडो काव्यकारो ने वाल्मीकि रामायण से कथा-वस्तु का सगठन किया है तथा काव्य-वर्णन की शैली का भी अनुसरण किया है[३]। वस्तुतः वैदिक साहित्य मे जो स्थान ऋग्वेद का है, लौकिक सस्कृत मे वही रामायण का है।

रामायण मे कथा वस्तु की सश्लिष्ट योजना के भीतर वन,पर्वत, नदी, सरोवर तथा ऋतुओ का भी वर्णन किया गया है। वाल्मीकि के वर्षा, शरद, हेमन्त आदि ऋतुओ के वर्णन अत्यन्त सजीव तथा चित्रोपम है। चित्रकूट और मन्दाकिनी के वर्णन अत्यन्त सुन्दर है।

रामायण मे वीररस प्रधान है। गौणरूप मे सभी रसो का उन्मेष पाया जाता है। छन्द, भाषा एव अलकारो का सौन्दर्य तो इस महाकाव्य मे स्थल-स्थल पर दिखाई पडता है[४]। शृ गार रस के प्रसग अपेक्षाकृत कम आए है, क्योकि इस महाकाव्य की कथावस्तु का मूल स्वर गम्भीर तथा करुण रस-सिक्त है। रामायण का महत्त्व इसी से प्रमाणित है कि काव्य की वस्तु एव वर्णन की शैली के लिए पीछे के कवि एव रचनाकारो ने इसी को अपना आदर्श बनाया है तथा ई० पू० के अश्वघोष से लेकर वर्तमानकाल मे अयोध्यासिह उपाध्याय तथा मैथिलीशरण गुप्त तक यह महाकाव्य निरन्तर कवियो को काव्य एव जीवन मे महान् आदर्शों से प्रभावित करता आया है। वस्तुतः रामायण उपजीव्य महाकाव्य है।

महाभारत—

रामायण के समान महाभारत भी उपजीव्य ग्रन्थ है, किन्तु यह इतिहास की कोटि मे आता है। इसमे भारतीय सस्कृति के भव्य रूप का दर्शन मिलता है। यद्यपि इसमे कौरव-पाण्डवो के इतिहास का वर्णन है, तथापि इसमे जीवन

१—देखिए, डा० कामुल बुल्के : राम कथा, पृ० ४६।
२—वही, पृ० ६७।
३—कीथ, : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४३।
४—वही, पृ० ४४।

और जगत की सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओ का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। इसमें जीवन को व्यापक दृष्टि से देखा गया है तथा मानव-धर्म के वाह्य एव आन्तरिक स्वरूप का विशद पर्यालोचन किया गया है। इसके विषय मे यह प्रसिद्ध है कि 'इस ग्रन्थ मे जो कुछ वर्णित है, वह अन्यत्र भी मिलता है, किन्तु जो कुछ इसमे नही है, वह अन्यत्र भी नही है[१]। इसी से यह पचम वेद के नाम से विश्रुत है। इस विशाल ग्रथ मे वर्णन-शैली के इतने रूप व्यवहृत हुए हैं कि उनसे प्रेरित होकर उत्तरवर्ती रचनाकारो ने काव्य, नाटक, गद्य, पद्य, चम्पू, कथा, आख्यायिका-नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है[२] आधुनिक युग के दर्जनो हिन्दी कवियो ने महाभारत से कथावस्तु का सग्रह कर अनेक काव्यो की सृष्टि की है। राजनीति, इतिहास, समाज-शास्त्र, आचारशास्त्र, धर्म एव अध्यात्म की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

रघुवंश—

सस्कृत के महाकाव्यो मे कालिदास प्रणीत रघुवश सर्वोत्कृष्ट रचना है[३]। भारतीय काव्यशास्त्रियो ने भी इसी को सबसे अधिक आदर दिया है। इसके उन्नीस सर्गो मे महाराज दिलीप से लेकर अग्निमित्र तक इक्ष्वाकुवश के राजाओ के इतिहास का वर्णन है। प्रथम नौ सर्गों मे दिलीप, रघु, अज तथा राजा दशरथ का वर्णन है। दस से पन्द्रह सर्ग तक महाराज रामचन्द्र के पुण्य चरित्र का तथा अन्तिम चार सर्गों मे उनके वशधरो का वर्णन है। रघुवश के राजाओ की माला मे रामचन्द्र सुमेरु की तरह स्थित हैं। सूर्यवशी राजाओ मे वे कीर्ति, प्रताप एव वीरता मे अद्वितीय है। अतएव वे ही इस महाकाव्य के प्रधान नायक ठहरते है। इस काव्य मे सूर्यवश के राजाओ के आदर्श चरित्र का वर्णन प्रथम सर्ग के आरम्भ मे किया गया है[४]। इसकी कथा-भूमि के विशाल अचल मे सभी रसो का उन्मेष हुआ है। छन्द, अलकार एव भाषा के सौन्दर्य ने इस काव्य को निरूपम बना दिया है। कालिदास की उपमाएँ प्रसिद्ध है। केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

१—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्ववचित्'।—महाभारत।
२—देखिए, बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६१।
३—देखिये, कीथ : ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिट्रेचर, पृ० ६२।
४—कालिदास : रघुवंश, १

सचारिणी दीप शिखेव रात्रो य य व्यतीयाय पतिबरा सा।
नरेन्द्र मार्गट्ट इव प्रपेदे विवर्ण भाव स स भूमिपालः ॥'

इसमे इन्दुमती के स्वयवर के अवसर का वर्णन है—वह इन्दुमती जय-माला को हाथ मे लेकर पति को चुनने की इच्छा से प्रेरित होकर जिस-जिस राजा को छोडकर आगे को बढ गई, वह राजा इस प्रकार निष्प्रभ हो गया, जिस प्रकार रात्रि के समय राजमार्ग के भवन दीपक के प्रकाश के आगे निकल जाने पर धुधले पड जाते हैं। इस काव्य मे कवि की वर्णन चातुरी की शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। युद्ध, राज्याभिषेक, स्वयवर, विवाह, देश, नगर, बन, पर्वत्, गोचारण, ऋतुओ का वर्णन, दिग्विजय, यज्ञ, सयोग तथा विरह एव करुणा के प्रसगो मे कवि की अद्भुत वर्णन शक्ति का परिचय मिलता है।

महाकाव्य का लक्षण—

भामह सबसे पहले आचार्य है, जिन्होने महाकाव्य का लक्षण स्थिर किया है[1]। किन्तु दण्डी का लक्षण सबसे अधिक विशद है, जो नीचे दिया जाता है[2]—

१—महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है।

२—प्रारभ मे आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक मगलाचरण होना चाहिए।

३—कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध, यथार्थ एव सज्जनाश्रित हो।

४—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति उसका फल हो।

५—चतुर एव धीरोदात्त नायक हो।

६—उसमे निम्नाकित वस्तुओ का वर्णन हो—नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रमा तथा सूर्य का उदय एव अस्त, उद्यान, जल-क्रीडा, मधुपान, सभोग, विप्रलभ, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, मत्र, दूत, प्रस्थान, युद्ध, विजय आदि।

७—वस्तुवर्णन सूक्ष्म एव अलकृत हो।

८—रस एव भावो से समृद्ध हो।

९—सर्ग-रचना न अधिक लघु और न अधिक दीर्घ हो। सुन्दर छन्द

१—भामह : काव्यालंकार, १।१९—२३

२—दंडी : काव्यादर्श १।१४—१८

एव नाटक सधियो से युक्त हो। सर्गान्त मे छन्द का परिवर्तन होना चाहिए।

आगे चलकर आचार्य विश्वनाथ ने इसको और अधिक सुन्दर रूप मे उपन्यस्त किया है[१] :—

१—महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है, जिसका नायक देवता अथवा सद्वश जात क्षत्रिय होता है, जो धीरोदात्त नायक के गुणो से युक्त हो अथवा एक ही वश के श्रेष्ठ कुलोत्पन्न अनेक राजा भी उसके नायक हो सकते है।

२—शृ गार, वीर तथा शान्त रसो मे से एक रस अगी होता है, शेष रस अग भूत होते है।

३—नाटक की सभी सन्धियाँ होती है।

४—इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु अथवा सज्जनाश्रित वृत्त होता है।

५—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे से एक फल की प्राप्ति हो।

६—प्रारभ मे नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक मगलाचरण होता है।

७—खल निन्दा और सज्जना-प्रशसा का भी कही-कही उल्लेख होता है।

८—आठ से अधिक सर्ग होते है, जो न अधिक बडे और न अधिक छोटे होते है। सर्ग मे एक से छन्द होते है तथा सर्गान्त मे छन्द को बदल दिया जाता है। किसी सर्ग मे कही बहुत से वृत्तो का भी उल्लेख पाया जाता है तथा सर्ग के अन्त मे आगे की कथा को सूचित कर दिया जाता है।

९—सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, सयोग, विरह, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, प्रस्थान, विवाद, मत्र, पुत्रोत्पत्ति आदि वर्ण्य वस्तुओ का सागोपाग वर्णन किया जाता है।

१०—कवि, वस्तु, नायक अथवा किसी अन्य गुण पर ग्रन्थ का नाम होता है।

उत्तर कालिदास युग से सस्कृत महाकाव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा का विकास होने लगता है, किन्तु सस्कृत महाकाव्यो की वृहत् त्रयी मे किरातार्जुनीय

१—साहित्य दर्पण, ६।३१५—२४

शिशुपाल वध तथा नैषधचरित विशिष्ट स्थान रखते है। इन महाकाव्यो की रचना निर्धारित प्रणाली पर हुई दिखाई पडती है। इनकी कथावस्तु प्रख्यात एव इतिहास-सम्मत है, जिसका आधार है, महाभारत। कथानक के नायको के चरित्र मे आदर्श गुणो की प्रतिष्ठा हुई है, जिससे उनमे धीरोदात्त नायक के सम्पूर्ण लक्षण घटित होते है। इन महाकाव्यो मे वस्तु-वर्णन, प्रकृति वर्णन एव कथा का वर्णन परम्परानुगत प्रणाली पर है, क्योकि इनसे पूर्व महाकाव्य का लक्षण निर्धारित हो चुका था, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। रसोन्मेष, अलकार योजना एव छन्दोविधान की दृष्टि से ये महाकाव्य पूर्ण रूप से सफल हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है—छन्दो की ऐसी परिमार्जित योजना, ध्वनियो का ऐसा सामजस्य पूर्ण सस्थापन, मानवीय मनोभावो का ऐसा स्पष्ट और ठोस चित्रण और साथ ही मानवीय आदर्शों का ऐसा सम्मिश्रण ससार के साहित्य मे दुर्लभ है।[1]

यह स्मरण रखने योग्य है कि अश्वघोष और कालिदास के काव्यो मे वर्णन-शैली की जो नैसर्गिकता मिलती है, वह उत्तरवर्ती महाकाव्यो मे नही रही। माघ और नैषध चरित मे छन्द और अलकारो का चमत्कार इतना अधिक दृष्टिगोचर होता है कि इससे कथा-प्रवाह दूर तक विच्छिन्न हो गया है। एस० एन० दास गुप्त के मत से उत्तर कालिदास युग के महाकाव्यो मे कला-शिल्प का ही प्राधान्य है। इनमे कथा की अपेक्षा शिल्प का, अनुभूति से अधिक रचना-विधान का कौशल अधिक दिखाई पडता है। वस्तुतः इस युग की काव्यचेतना रूप-विधान की ओर अधिक सजग है। कालिदास के काव्य मे जो सुघरता एव रमणीयता है, उसका उत्तरवर्ती काव्यो मे अभाव है। कालिदास ने काव्य को सुचारु आकृति दी थी, पीछे के कवियो ने उसे अलकारो से विभूषित किया है।[2]

इसके पश्चात् ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी तक सस्कृत के महाकाव्यो की जो परम्परा चली, उसमे अभिजात्य का वातावरण ही सर्वत्र दिखाई पडता है, साधारण जीवन से उसका सम्बन्ध बहुत दूर तक हट गया है। किन्तु इस युग तक आते-आते लोकजीवन की धारा मे अधिक वेग दिखाई पडने लगा था,

---

१—हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'सस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा, आलोचना, वर्ष १, अंक १, पृ० १६।

२—किरातार्जुनीय सर्ग ४,५,८, १० तथा माघ सर्ग ६–११।

३—एस० एन० दास गुप्त : हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० १७६।

जिसने जायसी के पद्मावत और तुलसी के रामचरितमानस के रुप मे अपने को प्रकट किया। इन दोनो महाकाव्यो मे लौकिक जीवन का साधारणीकृत सहज रूप ही सामने आया है, राजकीय वातावरण का नही। इनमे काव्य की गरिमा के भीतर काव्यशैली का उत्कृष्ट रूप भी प्रकट हुआ है, किन्तु सस्कृत के कवियो समान भाषा-शिल्प अलकारो की चमत्कृति एव छन्दो विधान के भार से कथा-वस्तु की स्वाभाविक गति को कही पर भी क्षति नही पहुँची है। रामचरित-मानस मे महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण घटित होते है, क्योकि उसमे कथावस्तु प्रख्यात है, नायक धीरोदात्त है, रसो का पूर्ण उन्मेष है, चतुर्वर्ग की योजना भी है, प्रत्येक काड के प्रारभ मे तथा अन्य स्थलो पर भी मगलाचारण तथा स्तुतियाँ है, खल-निन्दा और सज्जन प्रशसा के भी प्रसग है, छन्द नैपुण्य भी स्फुट है, वर्षा शरद एवं वसन्त, गिरि, वन, नदी, आश्रम, विवाह, युद्ध, प्रस्थान, मत्र आदि विविध वस्तुओ का वर्णन भी अत्यन्त सजीव एव हृदयावर्जक है। सबसे बडी विशेषता है, कथा-प्रबन्ध के कौशल की। इसमे 'तुलसी' को बहुत अधिक सफलता मिली है। कथा के विकास मे लौकिक जीवन का चित्रण प्रधान है।

केशव की रामचन्द्रिका भी मध्ययुग का प्रौढ महाकाव्य है। किन्तु केशव ने सस्कृत के महाकाव्यो से प्रेरित होकर चमत्कार-चारुता एव रचना-शिल्प की ओर अधिक ध्यान दिया है, जिससे कथाप्रबन्ध का यथोचित विकास नही हुआ है। इसके अतिरिक्त केशव, तुलसी के समान साधारण जीवन का चित्रण नही कर सके है। अभिजात वर्ग के कार्यकलापो का वर्णन उनको अधिक प्रिय है। यह सस्कृत के महाकाव्यो का प्रभाव है और राजाश्रित जीवन का भी। इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल के पूर्व के हिन्दी महाकाव्यो मे एकरूपता नही थी। तुलसी लोक जीवन से प्रेरणा लेकर महाकाव्य की रचना मे प्रवृत्त हुए थे। इसके विपरीत केशव राजन्य वर्ग से प्रभावित थे। ये दोनो प्रवृत्तियाँ सस्कृत महाकाव्यो की परम्परा से विरासत मे मिली थी। तुलसी, वाल्मीकि एव कालि-दास की परम्परा को लेकर चल रहे थे, केशव, माघ और श्रीहर्ष की परम्परा का अनुसरण कर रहे थे।

आलोच्यकाल के महाकाव्यो पर परम्परानुगत आदर्शों के साथ ही पाश्चात्य आदर्शों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। आलोच्यकाल के प्रारभ से ही भारतीय स्वतत्रता सग्राम ने उग्र रूप धारण कर लिया था। जनता मे अगरेजी राज्य के प्रति विरोध की भावना प्रकट होने लगी थी। सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, एव राजन्यवर्ग के प्रति एक स्वाभाविक ग्लानि उत्पन्न हो चुकी थी। इससे जनजीवन मे उत्क्रान्ति की भाव-तरगे उठने लगी थी। इस युग के

महाकाव्यो मे भी इस नवोन्मेष के दर्शन मिलते है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य महाकाव्य के आदर्श ने भी नवयुग के कवियो को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।

पाश्चात्य महाकाव्यो का लक्षण इस प्रकार है[१]—पाश्चात्य महाकाव्यो (एपिक) के दो भेद है—विकसित महाकाव्य (एपिक आव ग्रोथ) तथा कलात्मक महाकाव्य (एपिक आव आर्ट)। विकसित महाकाव्य उसे कहते है, जिसकी सम्पूर्ण कथावस्तु जनवरत युग युगो से सचित होती रहती है, अनेक कवियो के सहयोग से जिसका सम्पादन होता रहता है, जिसके सम्पूर्ण कथा-प्रबन्ध का निर्माता कोई एक कवि नही होता तथा बहुत-सी प्राचीन कथा, कहानी, गाथा एव जनगीतो के मिश्रण से जिसके रूप का निर्माण होता है। विकसित महाकाव्य मे अनेक छोटी-छोटी कथाएँ, आख्यान तथा वीर गीत किसी एक चरित्र के साथ अनुस्यूत हो जाते है। यूनान के महाकवि होमर के 'इलियड' और 'ओडेसी' इसके उदाहरण है। इसके विपरीत कलात्मक महाकाव्य एक ही कवि की प्रौढ प्रतिभा का परिणाम होता है। इसकी रचना विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान के आधार पर की जाती है तथा परम्परानुगत साहित्यिक आदर्शों की सुनिश्चित प्रणाली के अनुसार जिसका निर्माण किया जाता है। इस प्रकार विकसित महाकाव्य मे जहाँ नवीनता, स्वाभाविकता एव जातीयता का गुण प्रधान होता है, वहाँ कलापूर्ण महाकाव्य मे प्राचीनता, पाडित्य की गरिमा तथा अनुकरण की प्रवृत्ति विशेष होती है।

कलापूर्ण महाकाव्य के उदाहरण हैं, वर्जिल का 'इनीड'। यह लैटिन का महाकाव्य है। इसकी रचना करने मे वर्जिल ने होमर को अपना आदर्श मानकर उन्ही की काव्यकला का अनुसरण किया है। मिल्टन के पैराडाइस लास्ट तथा पैरेडाइस रिगेंड भी कलापूर्ण महाकाव्यो की कोटि मे आते हैं।

दोनो प्रकार के महाकाव्यो मे कुछ सामान्य बातें भी पाई जाती हैं—

१—कथावस्तु परम्परागत होती है, जिसमे जातीय गौरव का भाव प्रधान होता है।

२—यह एक विशाल महाकाव्य होता है, जिसकी वर्णनात्मक शैली होती है तथा उसमे जातीय जीवन का चित्रण होता है।

३—इसकी वीरत्वपूर्ण प्राचीन घटनाओ एव कार्यों के वर्णन मे भूत,

१—हडसन : एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी आव लिट्रेचर पृ० १३८।

प्रेत एव देवताओ का भी उल्लेख होता है, जिनका सबध अलौकिक जगत से होता है।

४—इसकी शैली वस्तुगत, वर्णनात्मक तथा गौरवपूर्ण होती है।

५—इसकी रचनाशैली परम्परानुगत प्रबन्ध काव्यो के आदर्शों के अनुसार होती है जिसमे परम्परागत पद-शैया, निर्धारित शब्द-योजना तथा प्राचीन युग से चले आते हुए विशिष्ट पद तथा मुहावरो के प्रयोगो की प्रधानता होती है।

अगरेजी साहित्य मे साहित्यिक महाकाव्य के अन्य भेद भी मिलते है—

क—प्रमाणित महाकाव्य (आथेटिक एपिक)

ख—रूपकौक्ति महाकाव्य (अलेगोरीकल एपिक)

ग—परिहास महाकाव्य (माक एपिक)

भारतीय तथा पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों की तुलना —

भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणो मे विशेष अन्तर नही है। दोनो मे नायक प्रख्यात एव इतिहास-प्रसिद्ध कथानक होता है। पाश्चात्य महाकाव्यो की कथावस्तु मे जातीय गौरव प्रधान होता है। भारतीय लक्षण के अनुसार नायक शूर, युद्धवीर तथा सत्कुलोत्पन्न होता है। उसके असाधारण साहस को प्रदर्शित करने वाले कार्यों, युद्ध-यात्राओ एव विजयो मे जातीय जीवन के आदर्शों की झलक विद्यमान होती है। कथानक के इतिहास प्रसिद्ध होने से तथा नायक के उदात्त गुण सम्पन्न होने से उसके प्रति आसानी से ही लोह-हृदय का साधारणीकरण भी हो जाता है। नायक के आदर्श मे वीरत्व की प्रतिष्ठा, अलौकिक व्यापारो का वर्णन तथा ओजस्वी वर्णनो मे प्रायः समानता है। रचनाशैली की उत्कृष्टता, छन्दोविधान की भव्यता, भाषागत विशिष्टताओ एव अलकरण की दृष्टि से भी बहुत कुछ बाते एक समान है। भारतीय लक्षण मे रस, चतुर्वर्ग फल प्राप्ति एव वस्तुवर्णन अपेक्षित है। सर्गों की सख्या तथा सानुबन्ध कथा का होना भी आवश्यक है। यद्यपि लक्षणो का कठोर प्रतिबन्ध दिखाई पडता है तथापि व्यवहार मे ये नियम शिथिल हो जाते हैं। रामचरितमानस मे ही आठ से कम सर्ग है तथा प्रत्येक काड मे छन्द भी नही बदलता। सम्पूर्ण कथा दोहा-चौपाइयो मे ही वर्णित है, परन्तु फिर भी मानस एक उत्कृष्ट महाकाव्य है।

इससे प्रतीत होता है कि भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्यो के लक्षणो मे प्रायः समानता है। केवल स्थूल बातो मे ही अन्तर है। भारतीय महाकाव्यो

मे रक्षात्मक बोध का प्राधान्य है, इसके विपरीत पाश्चात्य महाकाव्यो मे जीवन के घात-प्रतिघात, सघर्ष एव चरित्र-चित्रण को अधिक महत्त्व दिया गया है। मिल्टन रचित पैराडाइज़ लास्ट तथा पैराडाइज़ निगेड इसके अच्छे उदाहरण है।

गीत

गीत कविता का उच्छ्वास है। समस्त सृष्टि गीतमय है। प्रकृति के हर एक स्पन्दन मे गीत का स्वर है। पशु-पक्षियो की वाणी मे भी एक प्रकार का स्वर-प्रवाह, लय-साम्य तथा नाद-सौन्दर्य है। प्रकृति के कलरव मे एक अद्‌भुत लय-साम्य है। मानव अनादि काल से उस पर मुग्ध होता आया है। वस्तुतः यही लय-साम्य सगीत का जन्मदाता है।

वेदों में गीत-तत्व—

ऋग्वेद के मत्रो मे गीत के प्रयोग मिलते है। वैदिक सूक्तो मे नाना देवताओ के प्रति जिन प्रार्थनामय भावो की अभिव्यक्ति हुई है, उनमे भावो की स्निग्धता, कल्पना की रुचिरता एव अनूठी लयमयता विद्यमान है। उषा, इन्द्र, वरुण, तथा अग्नि विषयक मत्रो मे तन्मयता, अनन्यता, भावो की प्रगाढता एव सौन्दर्य भावना का प्राचुर्य है। उषा से रम्यरूप को देखकर वैदिक कवि का हृदय थिरक उठता है और वह गा उठता है—हे प्रकाशवती उषा! तुम कन्या की तरह अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर अभिमत फलदाता सूर्य के निकट जाती हो तथा उनके सम्मुख स्मितवदना युवती की भाति अपने वेष को अनावृत करती हो।' इसमे सुकुमारी उषा को प्रणय मिलन के हेतु अभिसार करती हुई युवती के रूप मे देखा गया है। उषा के मानवीकरण से कल्पना मे कितनी सरसता आ गई है —

कन्येव तन्वा शाशदाना एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
सस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्विंक्षासि कृणुषे विभाती॥

—ऋ० १।१२३।१०

उषा के विषय मे कवि का हृदय इतना भाव-विभोर हो उठता है कि अनूठी कल्पनाएँ स्फुरित होने लगती है—

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना
सिन्धुर्नक्षोद उर्विया व्यश्वैत।

—ऋ० १।९२।१२

उषा अपने प्रकाश को उसी प्रकार फैलाती है, जिस प्रकार ग्वाला चरागाह मे गौवो की छोड देता है अथवा नदी अपने जल को फैला देती है।

प्राची के क्षितिज पर स्वर्णिम आभा छिटकनेवाली उषा को देखकर कवि का हृदय आनन्दोल्लास से उद्वेलित हो उठता है और उसका अभिनन्दन करते हुए गा उठता है—

उषो देव मर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सुनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्य वर्णो पृथु पाजसो ये।

—ऋ० ३।६१।२

अर्थात् हे प्रकाशमयी उषा! तुम सोने के रथ पर चढ कर अमरण धर्मा बन कर चमको। तुम्हारे उदय के समय पक्षिगण सुन्दर रसमय वाणी का उच्चारण करते है। सुन्दर शिक्षित पृथुवल मे सम्पन्न घोडे सुवर्ण की सी आभा धारण करनेवाली तुमको वहन करे।

इसी प्रकार अग्नि, वरुण, सोम आदि देवो के सूक्तो के अध्ययन से विदित होता है कि इनमे स्वभावोक्ति, मजुल उद्भावना, सुकुमार कल्पना, भाव-प्रवणता, पदलालित्य एव उपमा का चमत्कार ओतप्रोत है।

वेदो मे गीति-काव्य के अन्य स्रोत भी उपलब्ध होते है। प्रत्येक वैदिक सूक्त मे उसके ऋषि, देवता, छन्द, स्वर तथा राग का नाम आता है। मत्रो को उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के स्वर-भेदो मे उच्चारण करने का विधान है। वैदिक ऋचाए प्रायः सामूहिक रूप मे गाई जाती थी। यज्ञ एव अन्य उत्सवो मे वीणा-वादन के साथ सस्वर मत्रो का गान हुआ करता था। आज भी सस्वर वेद-पाठ की विधि प्रचलित हैं। मत्रो के स्वर-हीन उच्चारण को बहुत बडा दोष माना जाता है। सामवेद मे गीत-तत्त्व का प्राचुर्य है। वेद-मत्रो को वाद्य-यत्रो की सहायता से गाया जाता था। दुन्दुभी, कध-वीणा, वनवीणा, तुनव, नदि, उदम्बर आदि उस समय के स्वरयत्र थे। सामवेद का उपवेद गन्धर्व वेद है, जिसमे नाट्य और सगीत का विचार प्रचुरता से हुआ है। ऋक् प्रातिशाख्य मे प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्वर का उल्लेख पाया जाता है। मन्द और अतिस्वर का भी विधान था। नारदीय शिक्षा के अनुसार सामगान के सात स्वरो का सगीत के सात स्वरो से सबध है। इससे सिद्ध है कि सगीत के समस्त स्वर, ध्वनि, उच्चारण-भेद वैदिक काल मे प्रचलित थे तथा वाद्य-यत्रो पर वैदिक मत्रो के सामूहिक गान को एक व्यवस्थित प्रणाली स्थिर हो चुकी थी। निराला जी का भी यही मत है—'आर्य जाति का सामवेद सगीत के लिए प्रसिद्ध है। यो इस जाति ने वेदो मे जो कुछ भी कहा, भावमय सगीत मे कहा। सगीत

का ऐसा मुक्त रूप अन्यत्र उपलब्ध नही होता। गायत्री की महत्ता आज भी आर्यों मे प्रतिष्ठित है। इसके नाम मे ही सगीत की सूचना है। भाव और भाषा की ऐसी पवित्र झकार और भी कही है, मुझे नही मालूम। स्वर के साथ शब्द, भाव और छन्द तीनो मुक्त हैं।[1]

गीति काव्य का विकास—

वैदिक युग के पश्चात् लौकिक सस्कृत मे गीत का रूप और अधिक प्रस्फुटित हुआ है। वैदिक गीत-तत्त्व स्वर-प्रधान था, लौकिक सस्कृत का गीति-काव्य लय-साम्य और नाद-सौन्दर्य पर स्थित हुआ। छन्दो मे लय का माधुर्य दृष्टि-गोचर होता है। आर्या गीति तथा उसके उपभेदो मे गीत का अविरल माधुर्य छलकता है।[2] वाल्मीकीय रामायण के श्लोको को लव-कुश के द्वारा गाए जाने की बात बहुत प्रसिद्ध हैं। पुराणो मे भागवत के अन्तर्गत गीति-काव्य का माधुर्य सबसे अधिक है। भ्रमरगीत, वेणुगीत, युगल गीत, गोपिका गीत तथा ऐलगीत इसके पाच प्रसिद्ध गीत है, जिनमे गीति-तत्त्व का पूर्ण प्रवाह छलकता है। भावाभिव्यक्ति, गीतात्मकता, एकतानता, सरसता एवं मधुरता का इनमे पूर्ण सन्निवेश हुआ है। सस्कृत एव हिन्दी के उत्तरवर्ती साहित्य पर भागवत के माधुर्यपूर्ण गीतो का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। इसके पश्चात् कालिदास के मेघदूत मे हमे गीतिकाव्य का चरम विकास प्राप्त होता है। इसमे यक्ष तथा उसकी प्रियतमा की विरहावस्था का वर्णन है। इसके प्रत्येक श्लोक मे प्रेम की विह्वलता, भावो की तीव्रता एव कल्पना की सुकुमारता सहृदय के चित्र को आकर्षित करती है। मन्द्राक्रान्ता की लय मे सगीत का माधुर्य प्रवाहित होता है। मेघदूत के पश्चात् सन्देश काव्यो मे इसी पद्धति का अनुसरण दृष्टि-गोचर होता है। भर्तृहरि के शतको मे, हाल की गाथा सप्तशती मे, अमरुक के प्रेम गीतो मे, गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती मे तथा जयदेव के गीतगोविन्द मे गीति-काव्य का असीम भडार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के स्तोत्र साहित्य एव शृगारिक रचनाओ मे गीतिकाव्य का यथेष्ट विकास हुआ है। गीत गोविन्द मे लौकिक सस्कृत के गीत-तत्त्व का चरम विकास पाया जाता

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : गीतिका की भूमिका, चतुर्थ सस्करण, पृ० १।

२—पिंगल : छन्दःशास्त्र, 'गीत्यार्या लः'। आर्या के प्रत्येक पाद मे सोलह लघुवर्ण होते हैं।

है । 'ललितलवङ्गलता परिशीलन कोमल मलय समीरे' वाली अष्टपदी कविताओ मे सगीत का माधुर्य फूट पडा है । इस काव्य से एक-एक पद मे गीत का सौन्दर्य समन्वित है । विशेषता यह है कि इसके पद विविध राग-रागिनियो तथा ताल-स्वरो मे अधे हुए है ।

इसके साथ ही प्राकृत की थेरी गाथाओ और अपभ्र श के लोकगीतो मे प्रवाहित होती हुई गीति-काव्य की ध्वनि मैथिली कोकिल विद्यापति के कलकठ मे सुनाई पडती है । इस समय तक काव्य का सगीत राग और ताल मे आबद्ध हो चुका था । सगीत की सभी मुख्य-मुख्य प्रचलित ताले एव राग-रागिनियाँ गीत-गोविन्द मे मिलती है । विद्यापति और चडीदास आदि कवियो की रचनाओ पर गीतगोविन्द का प्रभाव स्पष्ट झलकता है ।

हिन्दी के कवियो मे कबीर के भजन सबसे अधिक प्राचीन हैं । इनमे शास्त्रीय सगीत की अपेक्षा लोक धुनियो का आश्रय अधिक लिया गया है । वैष्णव कवियो के साहित्य मे हिन्दी गीतिकाव्य का चरमोत्कर्ष पाया जाता है । सूर और तुलसी के गीतो मे भावानुभूति की तीव्रता है, भाषा का प्रवाह है और है कल्पना का वैचित्र्य । मीरा के गीतो मे अनुभूति की प्रगाढता है, भाव-माधुर्य है और है तन्मयता । सन्त कवि एव वैष्णव भक्तो के पद इतने हृदयावर्जक है कि उन्हे सुनने से जन-जन का हृदय झकृत हो उठता है । निराला जी का कथन सत्य है— 'सन्त पदावली से एक बहुत बडा उपकार जनता का हुआ । जहा सगीत की कला दरबार मे तरह-तरह की उखाड-पछाडो से पीडित हो रही थी, भावपूर्ण सीधा-सादा स्वर लुप्त हो रहा था, वहाँ भक्त साधको और साधिकाओ के रचे गीत और स्वर यथार्थ सगीत की रक्षा कर रहे थे और जनता पूरे आग्रह से यथासाध्य इनका अनुकरण करती थी—भजन की महत्ता का यही कारण है[१] ।

लोकगीत—

किसी भी साहित्य मे गीतो के दो रूप देखने को मिलते है, लोक गीत और साहित्यिक गीत । लोकगीत भी उतने ही पुरातन हैं, जितने साहित्यक गीत । साहित्यिक गीतो के साथ-साथ लोकगीतो की धारा भी प्राकृत, अपभ्र श एव अन्य देश-भाषाओ के माध्यम से लोक मे प्रचलित रही हैं, ब्रज भोजपुरी मे मनोहर लोकगीत पाए जाते है । बगला का सगीत स्वरमैत्री पर आधारित है ।

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : गीतिका की भूमिका, पृ०४ ।

कजली, फाग, बसन्त, होरी, बारहमासा, सोहर, लचारी आदि लोकगीतो मे भावों का उन्युक्त प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।

विदेशी प्रभाव—

मुसलमानी राज्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दी गीतिकाव्य पर उर्दू का रग पडना भी आरम्भ हुआ। सबसे अधिक गज़लो की तर्जों का प्रभाव पडा है। भक्त नागरीदास ने अनेक पद गज़लो की तर्ज पर लिखे है। भारतेन्दु के गीतो पर गज़लो के अतिरिक्त बगला का भी प्रभाव है। आधुनिक काल मे हिन्दी के कवियो ने अङ्गरेजी सगीत के ढग को भी अपनाया है। अङ्गरेजी सगीत के ढग के नियम को सबसे पहले ग्रहण करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा डी० एल० राय को है। अङ्गरेजी सगीत की अविकल रूप मे तो ग्रहण नही किया जा सकता। अतएव उसके ढग को ही अपनाया गया है। इनमे भाव-प्रकाशन के अनुसार स्वर विशेष लगाए जाते है। सगीत का यह भावबोध पश्चिमी सगीतबोध पर आधारित है।

इस प्रकार वैदिक युग से आरम्भ होकर गीतिकाव्य स्वर के आरोह-अवरोह के क्रम, लय-साम्य, नाद-सौन्दर्य एव विभिन्न राग-तालो की अवस्थाओ को पार करता हुआ आधुनिक युग तक आ पहुँचा है। आज इसके लय-प्रवाह मे लोकगीत तथा उर्दू, बगला एव अङ्गरेजी लयो के स्रोत भी आकर मिल गए है, जिन्होने इसकी धारा को बृहद्‌काकार बना दिया है।

वैदिक देवता—

वैदिक देवताओ मे अग्नि, सोम, पृथ्वी, वायु, इन्द्र, बृहस्पति, अश्विनी कुमार, रुद्र, मरुत, अप्, पर्जन्य, सविता, वाक्, पूषण, वरुण, उषा, द्यौः, विष्णु, मित्र, अश्विन आदि मुख्य है। आयुर्वेद के एक मत्र मे अनेक देवताओ के नाम है—

'अग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वसवौ देवता, रुद्रा, देवतादित्या देवता, मरुतो देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता, वरुणो देवता।'

यजु० १४।२०

इसका यह आशय है कि जिन-जिन वस्तुओ मे दिव्य प्रकाश का आधिक्य है तथा जिनसे जीवन की धारण करने मे सहायता मिलती है, वे सब देवता हैं। पौराणिक युग मे इनमे से अनेक देवताओ के नाम लुप्त हो जाते है, कुछ देवताओ

की महिमा बढ़ जाती है और कुछ की घट जाती है तथा कुछ नये देवता प्रकट होते है। वैदिक साहित्य के इन्द्र, अग्नि, वरुण, सविता आदि देवो का स्थान रामायण-महाभारत युग मे गौण हो जाता है, उषा, द्यो:, मित्र, अश्विन आदि के नाम लुप्त हो जाते हैं। इन्द्र की महिमा अधिक बढ जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कुबेर, गणेश, कार्तिकेय, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, यक्ष, गन्धर्व आदि कुछ देवता नये रूप मे प्रकट हो जाते हैं। पौराणिक युग मे इन्ही देवताओ की कथाएँ विविध रूपो मे वर्णित है, जिनको अन्तर्कथाओ के रूप मे काव्यो मे भी ग्रहण किया गया है। सूर और तुलसी के काव्य मे इन देवताओ की कथाओ का प्रयोग सबसे अधिक पाया जाता है। मानस के पात्रो के जीवन की दिशा को बदलने मे इन देवताओ का बडा हाथ है। कैकेयी की बुद्धि को सरस्वती ने ही बदल दिया था, जिसके कारण उसने चौदह वर्ष के लिए राम को वन मे रहने का आग्रह किया था।[१]

इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन ऋग्वेद के अनेक मत्रो मे पाया जाता है। ऋग्वेद (८।६।६) मे इन्द्र ने काँपते हुए वृत्र के मस्तक को सौ धारोवाले पराक्रमशील वज्र के द्वारा काट डाला। इसी प्रकार ऋग्वेद (८।१२।२७) मे तथा (८।२९।७) मे वामन की कथा का वर्णन है जिसमे विष्णु ने सम्पूर्ण पृथ्वी को तीन पगो मे नाप दिया था। इन कथाओ को पुराणो मे और अधिक विशद रूप मिला है। सस्कृत एव हिन्दी के काव्य साहित्य मे ये कथाएँ सर्वत्र मिलती है। इसी प्रकार अत्रि, दधीच, पृथु, वेनु, नहुष, अदिति, अगस्त्य, उर्वशी, पुरुवा, मनु, मान्धाता, सुदास, च्यवन आदि की अन्तर्कथाओ के अकुर वैदिक साहित्य मे उपलब्ध होते है। इसके उपरान्त रामायण, महाभारत एव भागवत आदि मे ये कथाएँ पल्लवित होकर विशाल आकार ग्रहण कर लेती हैं। काव्य मे भी इनका उपयोग प्राय: सभी कवियो ने किया है, इसके लिए प्रमाणो की आवश्यकता नही है।

वैदिक साहित्य में प्रकृति—

वैदिक कवियो ने प्रकृति के हर एक रूप की ओर दृष्टिपात किया है। उनकी मर्मभेदनी दृष्टि ने प्रकृति के अन्तरतल के अज्ञान रहस्यो को ढूँढ निकाला है। देश, काल, भूमडल, अन्तरिक्ष एव उससे भी परे स्वर्गलोक तक कोई विषय ऐसा नही है, जिस पर उनकी दृष्टि न पडी हो। दिन, रात, वर्ष, मास, छ:ऋतुएँ,

---

१—तुलसीदास: रामचरितमानस, अयोध्या कांड, दोहा—१२

गिरि, वन, सरिता, समुद्र आदि सबको उन्होने गहरी दृष्टि से देखा है। अथर्ववेद (१२।१।३६) मे ग्रीष्म, वर्षा, शरदादि ऋतुओ एव दिन-रात की उत्पत्ति पृथ्वी के परिभ्रमण से बतलाई है। अथर्ववेद (१०।८।४) मे चक्र के १२ अरो से वर्ष के १२ मास, ३ नाभियो से ३ ऋतुएँ (ग्रीष्म, वर्षा, शीत), तथा ३६० शकुओ से वर्ष के ३६० दिनो का भाव प्रदर्शित किया है। सूर्य, चन्द्र ग्रह-नक्षत्रो के वर्णन से वैदिक कवियो की अद्‌भुत निरीक्षण शक्ति पर प्रकाश पडता है।

प्रकृति के अन्तर्गत सरित-समुद्रो का स्थान है। ऋग्वेद (१०।७५।१-९) मे सिन्धु के ओजस्वी प्रवाह का काव्यमय वर्णन है। नदियो के विषय मे यह प्रसिद्ध सूक्त है, जिसमे सिन्धु, गगा, यमुना, सरस्वती आदि भारत की मुख्य नदियो के नाम आए हैं। ऋग्वेद (१०।९।१) मे गौ, गोपाल तथा गोष्ठो के प्रति मार्मिक भावो की अभिव्यक्ति है। गोवश की उन्नति, अभिवृद्धि तथा उपलब्धि के लिए इन्द्र की स्तुति करते हुए उनका हृदय आनन्द से भर जाता है।

अथर्ववेद (१२।१) के पृथ्वी सूक्त मे मातृभूमि का विशद् वर्णन है, जिसमे स्वदेश के पर्वत, वापी, कूप, तडाग, समुद्र एव सम्पूर्ण खाद्य पदार्थो का उल्लेख पाया जाता है। मातृभाषा के वक्षस्थल पर नाना प्रकार की शक्ति-प्रद औषध विद्यमान है तथा उसके सब ओर शस्यपूर्ण क्षेत्र लहलहाते है, जिनमे खाद्यान्न की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसी से वह सम्पूर्ण जीवधारियो का भरण-पोषण करती है।

'यस्यश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टयः सवभूवुः। या बिभर्ति।' जिस मातृभूमि के वक्षस्थल पर अतीत युग मे हमारे पूर्वजो ने पराक्रमपूर्ण कार्य किये थे तथा देवो, असुरो को पराजित किया था तथा जो गौ, अश्व, पशु आदि, तथा विविध खाद्य-पदार्थो का सस्थान है, वह हमे ऐश्वर्य और शक्ति प्रदान करे—

"विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशिनी।
वैश्वानर विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणो नो दधातु॥"

इसी सूक्त के ग्यारहवें मत्र मे मातृभूमि के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, गिरि-काननो का वर्णन है। उसकी उर्वरा शक्ति का परिचय देते हुए पराक्रमी पुरुषो से रक्षित होना बताया गया है। २६वें मत्र मे मातृभूमि के आकार, गुण एव वैभव का वर्णन है। इसमे मातृभूमि के हिरण्यगर्भा स्वरूप के प्रति अभिवादन है। इस सूक्त मे स्थान-स्थान पर मातृभूमि के प्रति निश्छल भक्ति का भाव प्रगट हुआ है। 'हे मातृभूमि, आगे से, पीछे से, नीचे से, ऊपर से, हमे दूर मत भगा। तू हमारा कल्याण कर। शत्रु हमे प्राप्त न हो। मारक शस्त्र हम से दूर हो।"

मातृभूमि के गुण-गौरव का वर्णन करते हुए उसके अतुल ऋण को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया गया है। ४४वे मन्त्र मे कहा गया है—'जिस मातृभूमि के गूढ हृदय मे विविध प्रकार की रत्न-राशियाँ निहित है, वह हमे सुवर्ण, मणि, एव विभूति प्रदान करे। जिसके पास सम्पूर्ण पदार्थ है, जो सर्वगुण सम्पन्ना हैं, वह देवी, भगवती, प्रेम एव प्रसन्नता से पुलकित होकर हमको समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे।

इसी सूक्त के 'माता भूमिः पुत्रोऽह पृथिव्याः' मन्त्र १२ की डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने विस्तृत व्याख्या की है। भूमि के साथ जन का सम्बन्ध घनिष्ठतम है। जो जन भूमि के साथ इस परम पवित्र सबध को स्वीकार करता है, वही मातृभूमि के सम्पूर्ण ऐश्वर्य का उपभोग करता है। उसी के लिए भूमि पुत्र के लिए जननी के सदृश दूध का विसर्जन करती है।

'सा नो भूमिः विसृजता माता पुत्राय मे पयः' ॥मंत्र १०॥

इसी सूक्त मे कवि ने भूमि, उसके निवासी तथा उनके घनिष्ठ सम्बन्ध से उत्पन्न एक उत्तम राष्ट्र की कल्पना की है—

'सा नो भूमिद्विस्त्वषि वल राष्ट्रे दधातूत्तमे' ॥मत्र ८॥

वह भूमि ज्ञान और शक्ति से युक्त हमको एक उत्तम राष्ट्र बनावे।

पृथ्वी सूक्त के इस विशाल वर्णन के अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि वैदिक युग मे भूमि के प्रति मातृभाव था। कवि को वसुन्धरा का समस्त ऐश्वर्य काम्य है। मातृभूमि के पदार्थों की उपलब्धि और रक्षा के लिए शक्ति, सत्य एव उतम चरित्र वाछनीय है। इसमे मातृभूमि के समर्थ एव योग्य सेवक बनने का भी भाव प्रगट है। पारस्परिक सगठन, उत्तम चरित्र एव नैतिक बल के आधार पर एक महान् राष्ट्र के निर्माण की आकाक्षा है।

लौकिक सस्कृत के काव्यो मे प्रकृति के रम्य दृश्यो का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन पाया जाता है। वाल्मीकि, कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, वाण, श्रीहर्ष आदि महाकवियो के ग्रन्थो मे प्रकृति के मनोज्ञ रूपो का चित्रण स्थल-स्थल पर मिलता है। हिन्दी के काव्यकारो ने भी इसी पद्धति का अनुसरण किया है। वाल्मीकि की रामायण[१] और कालिदास के ऋतुसहार, कुमार सभव,[२] रघुवंश[३] आदि काव्यो मे प्रकृति का वर्णन आलम्बन के रूप मे हुआ

१—देखिए वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काड, श्लोक ३–३०।

२—कालिदास : रघुवंश, नवम् सर्ग का वसन्त वर्णन तथा कुमार संभव का हिमालय वर्णन, प्रथम सर्ग।

३—वही।

है, किन्तु आगे चल कर प्रकृति वर्णन की अनेक विधाओ का जन्म हुआ है। इनमे प्रकृति को आलम्बन के रूप मे, उद्दीपन के रूप मे, अलकारो के रूप मे, उपदेश ग्रहण के रूप मे तथा आत्मदर्शन के रूप मे विशेष रूप से चित्रित किया गया है। हिन्दी काव्य की परम्परा मे आलम्बन के रूप मे प्रकृति का चित्रण बहुत कम हुआ है।

मातृभूमि के प्रति अनुराग भी किसी-न-किसी रूप मे प्रकट हुआ है। लका-विजय के पश्चात् राम को जन्मभूमि की सुध आती है। ये लक्ष्मण से कहते है—

अपि स्वर्णमयी लका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

—वाल्मीकि रामायण

भारत की महिमा का वर्णन पुराणो मे बहुत आता है।

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूमे भवन्ति भूयः पुरषाः सुरत्वात्॥

सूर और तुलसी ने भी स्वदेश के माहात्म्य का वर्णन किया है। वर्तमान कवियो ने अपनी काव्य-रचनाओ मे स्वदेश प्रेम के जो स्वर झकृत किये है, वे उन्हे पूर्ववर्ती कवियो से ही विरासत मे मिले है। इससे सिद्ध है कि प्रकृति तथा स्वदेश के प्रति प्रेम की भावना वैदिक युग से ही प्रारभ हो जाती है। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त इस दिशा मे सबसे प्रथम प्रयोग है। वही परम्परा अपने विविध रूपो मे पल्लवित होती हुई आधुनिक काल तक के कवियो को उत्प्रेरित करती आई है।

तृतीय अध्याय

आधुनिक काव्य : वस्तु तथा उपादानों की परंपरा

काव्य-वस्तु तथा उपादानों की परम्परा

प्रस्तुत अध्याय मे काव्य की वस्तु तथा उपादानो की परम्परा का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। वस्तुगत परम्परा से उन वर्ण्य-विषयो का ग्रहण है, जिनको सस्कृत एव हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियो ने अपनी रचनाओ मे स्थान दिया है तथा जिनका आधार इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र आदि ग्रन्थ हैं। इन विषयो को निम्नाकित वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है :—

(क) पौराणिक विषय
(ख) ऐतिहासिक विषय
(ग) धार्मिक विषय
(घ) प्राकृतिक विषय
(ड) कामशास्त्रीय विषय

(क) पौराणिक विषय

सर्व प्रथम पौराणिक विषयो की परम्परा का अध्ययन किया जाता है। इनको श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है—पात्र तथा वस्तु वर्णन। पात्रो के तीन वर्ग किए जा सकते हैं—(१) दिव्य (२) दिव्यादिव्य तथा (३) अदिव्य।

दिव्य पात्रो मे देवी-देवताओ का स्थान है। देवताओ मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र तथा देवियो मे लक्ष्मी, सरस्वती, सीता, पार्वती, राधा और दुर्गा मुख्य है। दिव्यादिव्यो मे अवतारो की गणना है। मुख्य अवतार दस है—राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, परशुराम, मत्स्य, कच्छप, वराह, बुद्ध और कल्कि। काव्यो मे इन्ही अवतारो का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। पाँच पाण्डव, हनुमानादि देव-सभव पात्र है। अदिव्य पात्रो मे यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, असुर, दैत्य, दानव, भूत, प्रेत, बैताल आदि को परिगणित किया जा सकता है।

वस्तु-वर्णन मे राज-वशो का वर्णन, चौदह भुवन, तीनलोक, सात समुद्र, चौदहरत्न, सृष्टि, प्रलय, नन्दन वन, दिग्गज, दिग्पाल, ४९ पवन, सुमेरु, कैलास, शेषनाग, कल्पतरु, कामधेनु, चिन्तामणि, अष्टसिद्धि, नवनिधि, अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य आदि मुख्य है।

आलोच्य काल से पूर्व सस्कृत एव हिन्दी साहित्य मे पौराणिक काव्य-परम्परा अत्यन्त समृद्ध रूप मे मिलती है। सस्कृत के रघुवश, कुमारसभव,

अदिव्य पात्रो मे रखे जा सकते हैं। सूर, तुलसी आदि भक्त कवियो के साहित्य मे इनका वर्णन प्रचुरता से मिलता है। आलोच्यकाल के दैत्यवश कृष्णायन, मधुपुरी और शर्वाणी मे इनका स्थल-स्थल पर वर्णन हुआ है। दैत्यवंश महाकाव्य मे हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कन्द-दैत्यवश के छः राजाओ की कथा का वर्णन है। कवि ने कथावस्तु का आधार भागवत, हरिवश तथा वाल्मीकि रामायण को बनाया है। इस काव्य मे दैत्यवश के राजा नायक है और देवताओ को प्रतिनायक के रूप मे चित्रित किया गया है। इस प्रकार कवि ने परम्परागत आदर्श को बदलने का प्रयत्न किया है। इसी से दैत्य राजाओ को सदगुणो से युक्त एव उदात्त रूप मे चित्रित किया है। दैत्यो को परम्परा से अधम कोटि मे स्थान मिला है। प्रस्तुत काव्य के दैत्यो के वर्णन मे परम्परा से पूर्ण विच्छेद प्रकट होता है।

वस्तु वर्णन—

नीचे लिखे काव्यो की कथावस्तु विविध पुराणो से सग्रहीत है :—

दैत्यवंश—

इसमे दैत्यवश के राजाओ की गुण-गाथा का वर्णन है। यह अठारह सर्गों का प्रबन्ध काव्य है। भागवत, हरिवश और वाल्मीकि रामायण से कथावस्तु का सग्रह किया गया है। इसमे समुद्र मथन, देवासुर-सग्राम, वामन का बलि वचन तथा उषा-अनिरुद्ध-आख्यानो मे अलौकिक घटनाएँ भरी पडी है।

कृष्णायन—

प० द्वारिकाप्रसाद मिश्र रचित कृष्णायन की कथावस्तु श्रीमद्भागवत, हरिवश तथा महाभारत पर आधारित है। इसकी कृष्ण सबधी कथाओ मे पौराणिक प्रथा के अनुकूल अलौकिक चमत्कारो का वर्णन प्रथम अवतरण काण्ड मे ही कृष्ण के बाललीला वर्णन मे असभव व्यापारो का वर्णन है। केशी, वक, व्योम, तृणावर्त, अघासुर आदि का वध, गोवर्धन धारण, दावानल पान और कालियनाग नाथन ऐसे ही प्रसग है।

पुरुषोत्तम—

तुलसीराम शर्मा रचित यह आठ सर्गों का काव्य है। यह भी पौराणिक काव्य है, जिसकी कथावस्तु का आधार भागवत है।

गंगावतरण—

यह १३ सर्गों का काव्य है जिसके रचयिता जगन्नाथदास 'रत्नाकर' है। इसके कथानक का आधार भागवत का नवाँ स्कन्ध है, जिसके आठवें और नवे अध्यायो मे राजा सगर की कथा, गगावतरण और भगीरथ के वृत्तान्त का वर्णन है। सूर और तुलसी के काव्यो मे गगा की महिमा वर्णित है। पद्माकर जी की 'गगालहरी' एक प्रसिद्ध रचना है। भारतेन्दु जी ने भी सत्य हरिश्चन्द्र नाटक मे गगा का वर्णन किया है। इस परम्परा के ये ही उत्कृष्ट पग-चिह्न है। इसी कथानक के आधार पर रत्नाकर जी ने एक सानुबन्ध प्रौढ काव्य की रचना की है।

उद्धव शतक—

जगन्नाथदास रत्नाकर रचित उद्धव शतक का कथानक भागवत पर आधारित है[1]। भागवत मे उद्धव-गोपी-सवाद एव भ्रमर गीत अत्यन्त संक्षिप्त रूप से वर्णित है, किन्तु इस लघु कथानक के आधार पर हिन्दी मे अनेक काव्यो की रचना हुई है। इस परपरा के सबसे पहले कवि सूरदास है। सूर का भ्रमर गीत सबसे अधिक प्रसिद्ध है। नन्ददास का भ्रमर गीत भी अत्यत ललित एव सरस है। आधुनिक काल मे इसी प्रसग को लेकर अयोध्यासिह उपाध्याय तथा सत्यनारायण कविरत्न ने भी सुन्दर काव्य की रचना की है।

आलोच्यकाल मे रत्नाकर जी के अतिरिक्त वियोगी हरि, डा० रमाशकर शुक्ल 'रसाल' तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र ने इस परम्परा को अपने-अपने ढग पर विकसित किया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य मे भ्रमर गीत की अत्यन्त रोचक एव सरस परम्परा का विकास हुआ है।

मधुपुरी—

गयाप्रसाद द्विवेदी के 'मधुपुरी' काव्य का कथानक भागवत के दशम् स्कध के तृतीय अध्याय से सगृहीत है। कथा के आरभ मे पापभाराक्रान्त पृथ्वी गो रूप धारण कर देवी-देवताओ के साथ सिन्धु तीर पर भगवान कृष्ण की स्तुति करती है। तत्पश्चात् भगवान के अवतार का हेतु वर्णन किया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा का वर्णन परम्परानुगत पद्धति पर हुआ है।

१—श्रीमद्भागवत, १०।४७

विषपान—

सोहनलाल द्विवेदी रचित 'विषपान' विशुद्ध पौराणिक काव्य है जिसकी वस्तु योजना का आधार भागवत है। समुद्र-मथन और शंकर के गरलपान की कथा भागवत के अष्टम स्कध के सप्तम अध्याय मे वर्णित है। इस घटना का लोक मानस के साथ पूर्ण साधारणीकरण पाया जाता है। मध्यकालीन कवियो ने स्फुटिक कविताओ मे इसका यत्र-तत्र उल्लेख किया है[1]।

शर्वाणी—

अनूप शर्मा रचित 'शर्वाणी' सात भागो मे विभाजित है। यह पौराणिक काव्य है। इसमे भगवती की प्रार्थना, चरणार्चन, मन्द मुस्कान, दृष्टिपात, चक्र वर्णन, कृपाण और महिषासुर के वध का वर्णन है। दुर्गा सप्तशती का कथानक मार्कण्डेय पुराण मे वर्णित है। दुर्गा की वन्दना तथा प्रासगिक वर्णन मध्यकालीन साहित्य मे अनेक स्थानो पर मिलते हैं। 'शर्वाणी' इसी परम्परा का विकसित प्रबन्ध काव्य है।

शक्ति—

मैथिलीशरण गुप्त की रचना है। इस कथानक का आधार भी दुर्गा-सप्तशती है। इसमे शक्ति द्वारा महिषासुर के वध की घटना का वर्णन है।

विवेचन—

कथावस्तु की दृष्टि से उपर्युक्त काव्यो का उपजीव्य श्रीमद्भागवत है। कृष्णायन, पुरुषोत्तम, मधुपुरी तथा द्वापर मे कृष्ण की कथा का वर्णन है। भगवान कृष्ण की सरस एव रोचक लीलाओ का वर्णन कृष्ण भक्त कवियो का सबसे प्रिय विषय रहा है। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कविगो ने भी राधा-कृष्ण की ललित लीलाओ का ही वर्णन किया है। अतः यह परम्परा अत्यन्त पुष्ट एव स्फीत है। आधुनिक युग के भारतेन्दु, हरिऔध एव आलोच्यकाल के रत्नाकर, वियोगी हरि, सत्यनारायण, गयाप्रसाद द्विवेदी तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र जैसे प्रतिभावान् कवियो ने कृष्ण काव्य परपरा को समृद्ध किया है। गगावतरण और विषपान जैसे विषयो का मुक्तक की शैली मे तो वर्णन होता

१—'अमी पियावत मान बिनु 'रहिमन' मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबो भलो, जो विष देइ बुलाय॥'

आया है, किन्तु आलोच्यकाल मे इन पर खण्ड काव्यो की रचना हुई। इसी प्रकार दुर्गा की कथा को लेकर पहले किसी स्वन्तत्रकाव्य की रचना नही हुई थी, किन्तु आलोच्य काल मे 'शक्ति' और 'शर्वाणी' दो काव्यो की रचना हुई है।

अलौकिक वस्तु वर्णन—

सृष्टि और प्रलय का वर्णन प्रायः सभी पुराणो मे मिलता है। हिन्दी काव्यो मे इन विषयो का वर्णन स्फुट रूप से ही मिलता है। भागवत के सृष्टि वर्णन मे द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव आदि को सृष्टि का उपादान कारण माना गया है। भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर पचभूत, इन्द्रिय, मन तथा माया के तीनो गुण सृष्टि की रचना करने मे तत्पर होते हैं[1]।

कामायनी के आशा सर्ग का सृष्टि वर्णन इससे भिन्न है। प्रसाद जी ने प्रकृति मे चेतन शक्ति का प्रादुर्भाव दिखाकर मनु के हृदय मे अह के आश्रित आशा का स्फुरण दिखाया है। आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्र मे अह की वृत्ति को मूल वासना के रूप मे स्वीकार किया गया है। अन्य प्रवृत्तियो का इससे प्रादुर्भाव माना जाता है। मनु के हृदय मे भी सर्वप्रथम 'अह' की वासना का स्फुरण होता है। इसके पश्चत् आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा आदि वृत्तियो का उत्तरोत्तर विकास होता है।

भागवत का सृष्टि-वर्णन दार्शनिक चिन्तन का फल है। उसका आधार वैदीक्त पुरुष-सूक्त है। कामायनी का सृष्टिवर्णन आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तो के अनुकूल है।

कामायनी के प्रथम सर्ग मे प्रलय (जल-प्लावन) का दृश्य वर्णित है। यह भी भागवत के प्रलय से भिन्न है। भागवत मे नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक चार प्रकार के प्रलय का वर्णन है[2]। प्रसाद जी ने इनमे से केवल भौतिक प्रलय का चित्रण किया है, जिसका आधार शतपथ का प्रलय वर्णन है[3]। किन्तु प्रसाद जी ने इसमे बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। कामायनी के प्रलय वर्णन मे प्रलय के कणो का आकर्षण विहीन होना बताया है तथा आकाश से भौतिक कणो की वृष्टि का वर्णन है। परमाणुओ मे

१—भागवत, २।५।३१-३२

२—भागवत १२।४।३८

३—शतपथ १।८

आधुनिक वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से आकर्षण की शक्ति है, जिससे वे गतिशील है। इनका आकर्षण-हीन होना ही प्रलय है। ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त से प्रभावित होकर प्रसाद जी ने प्रलय का ऐसा वर्णन किया है। कामायनी का प्रलय वर्णन न तो शतपथ से मिलता है और न पुराणो से। इससे सिद्ध है कि विज्ञान के अणुवाद से प्रभावित होकर कवि ने अपनी समर्थ कल्पना से प्रलय का ऐसा वर्णन किया है।

क्षीर-समुद्र, चौदह रत्न (कल्पतरु, ऐरावत, वाजि, रभा, कामधेनु, कौस्तुभ, शख, धनु, लक्ष्मी, चन्द्र, वारुणी, अमृत, विष, धन्वन्तरि), शेष, कूर्म, मन्दराचल का वर्णन 'दैत्यवश' के समुद्र-मन्थन प्रसग मे मिलता है[१]।

भगवान कृष्ण के विराट् रूप का वर्णन कृष्णायन के गीता काण्ड मे आया है, जिसमे पचमहाभूत, अष्टवसु, द्वादश आदित्य, विश्वेदेवा, एकादश रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पितृगण, सिद्धगण सपूर्ण चराचर विश्व स्थित है[२]। कोल, कमठ, भूधर, दिग्गज, दिग्पाल, तीनलोक-चौदहभुवन, सूर्य-रथ, चन्द्र, तारागण, पवन, सिन्धु, ब्रह्मलोक, स्वर्ग, पाताल इन सब वस्तुओ का वर्णन गगावतरण के प्रसग मे हुआ है[३]।

पौराणिक कथावस्तु, विषय एव उपादानो को लेकर काव्य रचना करने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है। सस्कृत के कालिदास, माघ, भारवि, बाण आदि सस्कृत के महारथियो से लेकर मध्यकालीन हिन्दी के भक्त कवि, रीतिकालीन कवि, भारतेन्दु, हरिऔध तक सभी कवियो ने इस परम्परा के विकास मे योग दिया है। आलोच्यकाल मे सत्यनारायण, वियोगी हरि, रत्नाकर, सोहनलाल द्विवेदी, हरदयालु सिंह, गयाप्रसाद द्विवेदी और द्वारकाप्रसाद मिश्र ने इस ओर विशेष रुचि प्रकट की है। पौराणिक कथानक एव विषयो के आधार पर आलोच्यकाल मे प्रबन्ध काव्य, एकार्थ काव्य, मुक्तक एव गीत-काव्य सभी प्रकार की रचनाओ का सृजन हुआ है, जिससे हिन्दी साहित्य गौरवान्वित हुआ है।

किन्तु आधुनिक युग की वैज्ञानिक एव बौद्धिक काव्य-प्रवृत्ति ने मध्य-कालीन पौराणिक विश्वासो एव आस्थाओ को झकझोर डाला है। फलतः आधुनिक युग के कवि इस ओर से उदासीन होते जा रहे है। प्रगतिवादी ए

१—दैत्यवश ३।५०-५२

२—द्वारिकाप्रसाद मिश्र : कृष्णायन, पृ० ५८२-८३।

३—जगन्नाथदास रत्नाकर : गंगावतवरण, ७। ४-७

प्रयोगवादी कवियो ने तो पौराणिक विषयो का एक साथ बहिष्कार कर दिया है। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे परम्परावादी कवियो ने भी साकेत[1] और प्रियप्रवास[2] मे अति मानवीय और अलौकिक व्यापारो को छोड दिया है अथवा उनकी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्य काल मे पौराणिक वस्तु-परम्परा उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। मुक्तक एव गीतकाव्य मे इन विषयो पर लिखना अब समाप्त-सा ही हो गया है। यह वैज्ञानिक युग की अतिशय तार्किकता एव बौद्धिमता के विद्रोह का परिणाम है।

(ख) ऐतिहासिक विषय

ऐतिहासिक कथानको के आधार पर रचित काव्य-ग्रन्थो की परम्परा हिन्दी साहित्य के प्रारभिक युग से चली आती है। इसको ऐतिहासिक काव्य-परम्परा कह सकते है। नीचे आलोच्यकाल की ऐतिहासिक काव्य-परम्परा का विवेचन किया जाता है।

आलोच्य काल से पूर्व इस परम्परा मे नीचे लिखे काव्य-ग्रन्थ पाये जाते है :—

(१) बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह)
(२) पृथ्वीराज रासो (चन्द बरदाई)
(३) जयचन्द प्रकाश (भट्ट केदार)
(४) आल्हा (जगनिक)
(५) कीर्तिलता (विद्यापति)
(६) पद्मावत (मलिक मुहम्मद जायसी)
(७) वीरसिंह चरित (केशवदास)
(८) जहाँगीर जस चन्द्रिका (केशवदास)
(९) गोरा-बादल की कथा (जटमल)
(१०) शिवा बावनी (भूषण)
(११) छत्रसाल दशक (भूषण)
(१२) छत्र प्रकाश (गोरेलाल)
(१३) सुजान चरित्र (सूदन)

१—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, द्वितीयावृत्ति, पृ० ३९४।
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास, १२।६७

किया है। इसके अतिरिक्त शिलालेख, चित्र एवं मूर्तिकाल मे भगवान् बुद्ध की कथाओ को इतना स्थान मिला है कि यह विषय लोक-चित्त के लिए पूर्ण रूप ने साधारणीकृत हो चुका है। वर्तमान काल मे अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ एव मैथिलीशरण गुप्त 'यशोधरा' की रचना करके इसी परम्परा को विकसित किया है।

४—**नूरजहाँ**—यह १८ सर्गों का प्रबन्ध काव्य है, जिसके रचनाकार गुरुभक्त सिंह हैं। इसकी कथावस्तु मुगल वश के इतिहास से सम्बन्धित है। काव्य के क्षेत्र मे यह कथानक बिलकुल नवीन है, क्योकि इस कथानक के आधार पर किसी दूसरे ग्रन्थ की रचना नही हुई है। इस काव्य का नायक जहागीर है, जो धीर ललित कहा जा सकता है। उसके चरित्र मे स्वच्छन्द प्रेम मे विकास हुआ है। वह पहले अनारकली को और बाद मे नूरजहाँ को अपने प्रेम की तृप्ति का साधन बनाता है। नूरजहाँ भी अन्त मे उसके प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। स्वच्छन्द प्रेम भारतीय परम्परा मे कोई नवीन वस्तु नही है। रीतिकाल के सम्पूर्ण साहित्य मे इसी का प्राचुर्य है।

इस काव्य के अन्तर्गत विमलराय और सर्व सुन्दरी के चरित्रो मे कर्तव्य सेवा, त्याग और आत्मा के अमरत्व के आदर्श प्रतिफलित हुए है[१]। इस प्रकार नवीन कथानक होते हुए भ। आदर्श की दृष्टि से इसकी कथा-वस्तु परम्परानुगत काव्यो की कोटि मे ही आती है।

भट्ट जी के तक्षशिला मे वीरत्व की भावना ओतप्रोत है। इस काव्य मे तक्षशिला के सास्कृतिक गौरव एव मगध के राजाओ के ओज तथा पराक्रम का वर्णन है। इससे यह काव्य परम्परागत ऐतिहासिक काव्यो की श्रेणी मे ही आता है। इसी प्रकार 'हल्दीघाटी' के राणा प्रताप, 'आर्यावर्त' के पृथ्वीराज, 'विक्रमादित्य' के चन्द्रगुप्त, (शकारि), 'जौहर' की पद्मिनी, 'मौर्य-विजय' के चन्द्रगुप्त, 'सिद्धराज' के जयसिंह, 'प्रणवीर प्रताप' के राणा प्रताप, 'झासी की रानी 'लक्ष्मीबाई मे आत्म-सम्मान, स्वातत्र्य-प्रेम, देशोद्धार, जातीय अभिमान तथा वीरत्व के आदर्श की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। ये आदर्श परम्परागत वीरत्व के आदर्शों से भिन्न नही है, क्योकि वीरगाथा काल के समस्त काव्य इसी आदर्श से अनुप्रेरित है तथा रीतिकाल के भूषण, सूदन और गोरेलाल आदि कवियो ने इसी परम्परा की अभिवृद्धि की है। आलोच्य काल के उपर्युक्त काव्य-ग्रन्थ इसी परम्परा की प्रगति के चिह्न है। देश-प्रेम का भाव इनमे विशेष है।

१—गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : नूरजहाँ, पृ० ९२–९३।

इसके अतिरिक्त अशोक, पृथ्वीराज, प्रताप, विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त, लक्ष्मीबाई और पद्मिनी की जीवन गाथाओ से हिन्दी जगत् इतना परिचित है कि इनके साथ लोक मानस का पूर्णतः साधारणीकरण हो चुका है। कथानको के नवीन होने पर भी आदर्श एव उद्देश्य की दृष्टि से ये नवीन नही है। अतएव ये सभी काव्य परम्परागत ऐतिहासिक काव्य परम्परा की श्रेणी मे ही आते है।

(ख) ऐतिहासिक वस्तु-वर्णन—

राज परिवार—इसमे राजा, रानी और राजकुमार का प्रमुख स्थान है। महाकाव्यो मे इनका वर्णन अवश्य किया जाता है, साहित्य मे यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली आती है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के आरम्भ मे 'कौन्वस्मिन्साम्प्रत लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्' इत्यादि सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति के विषय मे पूछे जाने पर नारद जी ने इक्ष्वाकु वश के राम के चरित्र मे जिन उदात्त गुणो का वर्णन किया है, उनमे एक आदर्श राजा के गुणो का वर्णन है। राजा दशरथ, रामादि राजपुत्र और कौशिल्या आदि रानियो के चरित्र आदर्श रूप मे चित्रित है। कालिदास ने रघुवश के राजाओ के विमल चरित्र का वर्णन करने मे इसी परम्परा को विकसित किया है। किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध तथा नेषध मे राजपरिवार की आदर्श परम्परा का पूर्ण विकास हुआ है।

हिन्दी साहित्य के पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, रामचरित मानस एव रामचन्द्रिका मे प्राचीन परम्परा का अनुसरण दिखाई पडता है।

काव्य कल्पलतावृत्ति के अनुसार राजा के वर्णन मे विद्या, नीति, शक्ति, बल, चोरो का नाश, प्रजा का शासन, प्रजा-प्रेम, धर्म, अर्थ, काम, सग्राम, प्रस्थान, शस्त्र, शास्त्र, अरि-विजय, पर्वत-वास, मित्र-मडल, तेज, लक्ष्मी, दान, कीर्ति, गुण, रूप आदि का उल्लेख किया जाता है[1]। कवि कल्पलता और कवि-प्रिया मे इन्ही गुणो का वर्णन है। कविप्रिया मे राजा की शक्ति, ऐश्वर्य और प्रसिद्ध को अधिक महत्त्व दिया गया है।

'नल-नरेश' के राजा नल[2], 'सिद्धार्थ' के राजा शुद्धोदन[3], 'वैदेही वन-

---

१—काव्यकल्पलता वृत्ति १।५। ४७-४६

२—नल-नरेश, २।२८

३—सिद्धार्थ, पृ० २।

वास' के राजा रामचन्द्र[१], 'दैत्यवंश' के हिरण्यकशिपु[२], 'कृष्णायन'[३] के महाराज युधिष्ठिर,[४] 'विक्रमादित्य' के चन्द्रगुप्त[५] (शकारि), 'सिद्धराज' के जयसिंह[६], 'कुणाल' के अशोक,[७] 'मौर्य-विजय' के चन्द्रगुप्त मौर्य[८] चरित्र मे विद्या, नीति, धर्म, शक्ति, प्रजाप्रेम, अरि-विजय, तेज, लक्ष्मी, युद्ध, प्रस्थान और शूरता का पूर्ण विकास हुआ है। इन काव्यो मे राजा के वर्णन मे शत-प्रतिशत परम्परा का अनुसरण किया गया है।

'हल्दीघाटी' के राणा प्रताप तथा 'आर्यावर्त' के पृथ्वीराज मे शक्ति, शौर्य, सग्राम, प्रस्थान, पराक्रम, दान, दया, तेज और गुण तो है, किन्तु विवेक, शत्रु-नाश, विजय, कोष, नीति, लक्ष्मी और मित्र-मंडल का अभाव है, जिसके कारण उन्हे युद्ध मे विजय प्राप्त नही होती है। इन काव्यो मे पचास प्रतिशत परम्परा की बाते मिलती है।

दैत्य-वश[९], अगराज[१०] और साकेत-सन्त[११] मे क्रमशः राजा बलि, कर्ण तथा भरत के राज्य-शासन का वर्णन है। इन प्रसगो मे गुरुकुलो की स्थापना, शिक्षा-प्रसार, सैनिक-शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा-विभाग, औषधालय, कृषि, सहकारी कोष, सिचाई-विभाग, स्वराज्य-स्थापना, सत्य-अहिंसा, न्याय-युक्त शासन, समानाधिकार, सर्वोदय, अछूतोद्धार, किसान-मजदूरो के प्रति सहानुभूति तथा ग्राम-सुधार के वर्णन पर गाँधी-दर्शन एव आधुनिक युग के शासन-सुधारो का प्रभाव है। यह प्राचीन परम्परा का युगानुकूल नवीन विकास है।

१—वैदेही वनवास, पृ० २५
२—दैत्यवंश पृ० ३।
३—कृष्णायन, पृ० ७८३।
४—कृष्णायन, पृ० ७८३।
५—बिक्रमादित्य, पृ० २०१।
६—सिद्धराज, पृ० ११०।
७—कुणाल, पृ० २३।
८—मौर्य विजय, पृ० ५।
९—दैत्य-वंश, द्वितीय सर्ग
१०—अंगराज, तीसरा सर्ग
११—साकेत-सन्त, चौदहवाँ सर्ग

कामायनी[१] के मनु तथा नूरजहाँ[२] के जहागीर मे परम्परा-विहित गुणों का अभाव है। शासक के रूप मे मनु निरकुश अधिकार भोगना चाहते है तथा इडा पर भी बलात्कार करना चाहते हैं—

"मै शासक मैं चिर स्वतन्त्र, तुम पर भी मेरा —
हो अधिकार असीम, सफल हो जीवन मेरा ॥"

ये सब लक्षण उच्छृंखल प्रवृत्ति और उद्दाम लालसा के परिचायक हैं, जिससे मनु शासक के रूप मे भी सफलता नही पाते। जहाँगीर प्रजा-पालन से अधिक प्रेम-पालन मे दत्त-चित्त रहता है। नूरजहाँ के प्रेम मे उन्मत्त होकर वह कह उठता है—

"राज्य करो तुम, मूर्ति तुम्हारी रहूँ देखता मैं प्रतियाम।
अपने हाथो से नित केवल, मुझे पिला देना दो जाम ॥"

वह प्रेमी के रूप मे सफल है, किन्तु राजा के परम्परागत आदर्श से च्युत है। इस प्रकार इन दोनो काव्यो के राजाओ का चित्रण परम्परा अनूकूल नही है।

कविकल्पलता[३] के अनुसार राज-पत्नी मे पति-प्रेम, लावण्य, शील, शृगार, काम, लज्जा, चातुर्य, दाक्षिण्य, प्रेम, मान, पति-व्रत आदि गुणो का वर्णन किया जाता है। शृगार के वर्णन मे नख-शिख आवश्यक होता है। शृगार वर्णन की यह परम्परा है कि पुरुषो के शृगार का वर्णन मस्तक से आरम्भ होता है तथा देवी-देवताओ का चरणो से। माता के तुल्य देवियो के शृगार वर्णन करना वर्जित है।

'कामायनी'[४] की श्रद्धा, 'नल-नरेश' की दमयन्ती[५] 'सिद्धार्थ' की यशोधरा[६] 'वैदेही-वनवास' की सीता,[७] 'कृष्णायन' की द्रौपदी,[८] 'साकेत-सन्त' की

१—जयशकर प्रसाद : कामायनी (प्रथम संस्करण) पृ० १६४।
२—गुरुभक्त सिह : नूरजहाँ, पृ० १५५।
३—कविकल्पलता ३।५-७
४—जयशकर प्रसाद : कामायनी, प्रथम संस्करण, श्रद्धा सर्ग पृ० ५७
५—नल नरेश, ३।७२
६—सिद्धार्थ, पृ० २।
७—वैदेही-वनवास, पृ०
८—कृष्णायन, पृ० ७८३।

माण्डवी[1] के चरित्र मे पति-व्रत, शील, प्रेम, सौन्दर्य, लज्जा, चातुर्य एव दाक्षिण्य के गुण मिलते है। दमयन्ती तथा यशोधरा के शृ गार मे नख-शिख की पद्धति का अनुसरण किया गया है। नख-शिख का वर्णन अन्यत्र कही नही मिलता। यह परम्परा आजकल लुप्त प्राय है।

'कामायनी' की इडा, 'नूरजहाँ' की नूरजहाँ आर्यावर्त की सयोगिता और कविरानी, 'विक्रमादित्य' की ध्रुवदेवी और 'कुणाल' की तिष्यरक्षिता का वर्णन परम्परा-विहित नही है। इडा मे पति-प्रेम, शील, लज्जा और पातिव्रत का अभाव है। वह बुद्धिमती, तार्किक एव सन्देहशीला है। उसका जीवन दर्शन बुद्धिवाद और विज्ञानवाद के आश्रित है[2]। नूरजहाँ विवाह से पूर्व ही जहाँगीर मे आसक्त हो जाती है तथा शेर अफगन की मृत्यु के बाद वह फिर जहाँगीर को अपना प्रेम अर्पण करती है। इस प्रकार वह अपने सतीत्व की रक्षा करने मे असमर्थ है[3]। पृथ्वीराज की पत्नी सयोगिता तथा कवि चन्द की पत्नी कविरानी दोनो के चरित्र मे पुरुषोचित कठोर गुणो का विकास हुआ है। उनमे कोमल वृत्तियो का अभाव है। आर्यावर्त के कवि ने इन दोनो वीरागनाओ को पृथ्वीराज के बन्दी हो जाने पर प्रतिशोध के हेतु युद्ध का सगठन करते हुए तथा शत्रु पर विजय प्राप्त करते हुए चित्रित किया है। इनके चरित्र मे स्वाभिमान, शौर्य और वीरत्व का पूर्ण विकास हुआ है[4]। विक्रमादित्य की पत्नी ध्रुवदेवी को भी इसी रूप मे चित्रित किया गया है। वह शको को परास्त कर देश से बाहर निकालने के लिए चन्द्रगुप्त को अपना सहचर चुनती है[5]। ये वर्णन परम्परा के विरुद्ध है। इस पर आधुनिक युग के बुद्धिवाद तथा नारी आन्दोलन का प्रभाव है। यह आन्दोलन पाश्चात्य आदर्श से प्रेरित है, जिसमे समानाधिकार स्वर मुखर है। अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता मे लज्जा और शील का अभाव है। उसमे पतिव्रत एव पति प्रेम का भी अभाव है। उसमे वासना, निर्लज्जता और प्रतिशोध की

१—साकेत-सन्त, पृ० १८७।

२—'हो तुम ही हो अपने सहाय।
जो बुद्धि कहै उसको न मान कर फिर किसको नर शरण जाय।'
कामायनी, पृ० १७१।

३—नूरजहाँ, पृ० १४३।

४—आर्यावर्त, पृ० ६४-६५

५—विक्रमादित्य, पृ० ५५।

भावना प्रधान है[१] । इससे सिद्ध है कि यह वर्णन परम्परा से बाहर है ।

कविकल्पलता के अनुसार राजकुमार को शस्त्र चलाने मे चतुर, शास्त्र-ज्ञाता, शोभायुक्त, कला-प्रेमी, बलवान्, गुणवान्, वाद्य मे निपुण, राज-भक्त, रूपवान वर्णन किया जाता है[२]। कविप्रिया के अनुसार उसे विनोद प्रिय, आचार-युक्त और उदार भी होना चाहिये [३] ।

राजकुमार सिद्धार्थ,[४] 'साकेत' के राम,[५] 'दैत्यवश' मे कुमार स्कन्द,[६] 'कुणाल' के राजकुमार कुणाल,[७] कृष्णायन के अभिमन्यु और वैदेही-वनवास के लव-कुश मे बल, विद्या, शक्ति, सौन्दर्य, धनुर्विद्या, विनय, भक्ति तथा सदाचार-परम्परानुगत सभी लक्षण विद्यमान है । इनके चरित्र मे परामपरा के शत-प्रतिशत लक्षण घटित होते है ।

'नूरजहाँ' के राजकुमार सलीम, 'हल्दीघाटी' के शक्तिसिंह और दैत्यवश के प्रह्लाद के चरित्र मे अनैतिक आचरण,[८] राज्य-द्रोह,[९] कुल-द्रोह[१०] एव स्वेच्छाचार की प्रवृति प्रधान है । इस कारण बल, वीर्य, शोभा से युक्त होकर भी इनमे परम्परागत आदर्श की रक्षा नही हुई है । अतएव इनका चरित्र परम्परा से बहिर्भुत समझना चाहिए ।

(ग) धार्मिक विषय

काव्य मे धार्मिक विषयो का वर्णन तभी से आरभ होता है, जब से काव्य का जन्म हुआ है । वाल्मीकि की रामायण मे धर्म का सैद्धान्तिक निरूपण अनेक प्रसगो मे हुआ है । इस महाकाव्य मे धर्म के विविध पक्षो के स्वरूप का

१—कुणाल, पृ० ४ ।
२—कविकल्पलता १।३।६
३—कविप्रिया ८।६
४—सिद्धार्थ, पृ० ४८-४६ ।
५—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० ३६ ।
६—दैत्यवंश, पृ० १६४-६५ ।
७—कुणाल, पृ० १६-२० ।
८—नूरजहां पृ० २६ ।
९—हल्दी घाटी, पृ० ३८ ।
१०—दैत्यवंश, पृ० २६ ।

उद्‌घाटन अत्यन्त मार्मिक शैली मे हुआ है। धर्म के स्वरूप,[१] सत्य, शील, कर्त्तव्य,[२] तप, त्याग, अस्तेय, अपरिग्रह, सयम, ज्ञान, वैराग्य, आचार, दैव, नीति,[३] वर्ण एव आश्रम-धर्म के सभी अगो पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। सस्कृत के रघुवश, किरात, माघ, नैषध आदि महाकाव्यो मे ज्ञान, योग, वैराग्य, नीति, अद्वेत तत्त्व तथा धर्म के शास्त्रमय एव व्यावहारिक पक्ष का विशद् वर्णन पाया जाता है।

हिन्दी-साहित्य की प्रचुर काव्य-राशि आध्यात्मिक विषयो से ओतप्रोत है। इसका कारण यह है कि अधिकतर हिन्दी-कवि भक्त हुए हैं। सन्त काव्य मे ज्ञान, योग, भक्ति, प्रेम, वैराग्य, सत्-असत्, जीव-ईश्वर, ससार की अनित्यता तथा वेदान्त-दर्शन आदि आध्यात्मिक विषयो का प्रकृष्ट वर्णन मिलता है। कबीर, दादू, सुन्दरदास की रचनाओ मे जीव, ईश्वर, जगत्, माया, मोक्ष, सम्बन्धी वर्णन का प्राचुर्य है।

तुलसी का मानस तो धार्मिक सिद्धान्तो और नैतिक शिक्षाओ का भडार है। केशव की 'रामचन्द्रिका' मे धर्म के विविध अगो एव नैतिक उपदेशो का यथातथ्य वर्णन है। रीतिकाल मे यद्यपि शृगारी कविता का प्राधान्य है, तथापि इस काल के अधिकाश कवियो ने किसी-न-किसी रूप मे प्रेम, भक्ति, नीति एव सदाचार के प्रति दृढ विश्वास प्रकट किया है। गुरु गोविन्द सिंह, नागरीदास, भगवत रसिक, दीनदयाल गिरि आदि कवियो ने धर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य सम्बन्धी आध्यात्मिक विषयो का वर्णन किया है। वृन्द, गिरिधर, घाघ और वैताल इस काल के नीतिकार है।

नीचे आलोच्यकाल के उन ग्रथो का उल्लेख किया जाता है, जिनको धार्मिक विषयो के अध्ययन के लिए चुना गया है :—

महा काव्य—

बुद्ध चरित, साकेत, कामायनी, सिद्धार्थ, कृष्णायन, साकेत-सन्त और अगराज।

खंड काव्य—

जयद्रथ वध, सिद्धराज, पथिक, मिलन, तुमुल, मौर्य-विजय, जौहर, तुलसीदास, कुरुक्षेत्र।

१—वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा कांड १८।१५

२—वही, अरण्य कांड, ६६।५-७

३—वही, युद्ध कांड, २१।१४-१६

मुक्तक काव्य—

हरिऔध सतसई, वीर सतसई, राम की शक्ति पूजा, अर्चना, झरना, पाथेय, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, मानसी।

नीचे लिखे वर्गीकरण के अनुसार धार्मिक विषयो का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है :—

१—अध्यात्म तत्त्व तथा दर्शन

२—धर्म

३—नीति तथा उपदेश

सबसे पहले शास्त्रो मे वर्णित अध्यात्म पर विचार किया जाता है। उपनिषदो मे निर्गुण ब्रह्म के विषय मे विस्तृत विचार हुआ है। यद्यपि ब्रह्म की दो सत्ताएँ है[1]—व्यक्त और अव्यक्त,तथापि उनमे अव्यक्त सत्ता पर ही अधिक विचार किया गया है। ब्रह्म को सर्व व्यापक मानते हुए उसे मूल चेतना बताया गया है। यह सबमे ओतप्रोत है तथा उसी की ज्योति से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित है।[2] परम पुरुष के विराट् स्वरूप के वर्णन मे युलोक को सिर, चन्द्र-सूर्य को नेत्र, दिशाओ को कान, वेद को वाणी, वायु को प्राण एव विश्व को हृदय बताया गया है।[3] ईश्वर अनन्त शक्ति है तथा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है। जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि से सहस्रो समान रूप वाली चिनगारियाँ उत्पन्न होती है, उसी प्रकार अविनाशी ईश्वर से नाना पदार्थ प्रकट होते है और उसी मे लय हो जाते है।[4]

वेदान्त दर्शन मे जीव और जगत की सत्ता का निरास करके केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की गई है। 'सर्व खल्विद ब्रह्म,' 'अयमात्मा ब्रह्म,' 'नेह नानास्ति किचन्' आदि उपनिषद् वाक्यो के आधार पर आत्मैवय का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जीव और ईश्वर की एकता करके अद्वैत की स्थापना की गई है। इसके अनुसार व्यावहारिक दशा मे जगत् भी है, जीव-ईश्वर मे भेद भी है और उपास्य-भाव-सम्बन्ध भी है। ज्ञान से व्यावहारिक दशा का बोध होने पर मोक्ष होता है। तब जीव ब्रह्म मे लीन हो जाता है।

विशिष्टाद्वैत मे चित्र, अचित्र और ईश्वर तीन तत्त्व है। यद्यपि ये तीनो पृथक्-पृथक् है, तथापि एक-दूसरे को छोडकर नही रह सकते। ईश्वर अशी है,

१—बृहदारण्यक २।३।१

२—मुण्डक २।२।१०

३—वही २।१।४

४—वही २।१।१

चित्र और अचित्र उसी के अश है। योग दर्शन मे चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा साधक की स्वरूप मे स्थिति मानी गई है।[१] इसके लिए अष्टाग योग की साधना की जाती है। योग मे षट्चक्र है, जिनमे क्रम-क्रम से ध्यान द्वारा साधक को आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है।

निष्कर्ष यह कि दार्शनिक विषयो के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, बन्ध, मोक्ष आदि का विचार है। यद्यपि यह सब ज्ञान का विषय है तथापि काव्यो से भी जीव-ईश्वर के सम्बन्ध की मधुर कल्पना का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि चिन्तन के क्षेत्र मे जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र मे वही रहस्यवाद है।

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो तथा छायावादी रचनाओ मे परम सत्ता के सौन्दर्य का चित्रण, अव्यक्त के प्रति प्रेम, जिज्ञासा, कुतूहल, जगत् की अनित्यता, अद्वैतवाद, मायावाद एव जीव और ब्रह्म के मधुर सम्बन्ध तथा आध्यात्मिक विषयो का वर्णन अनेक स्थलो पर मिलता है। नीचे इन्ही बातों का विवेचन किया जाता है :—

प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार, सियारामशरण, हरिकृष्ण प्रेमी की रचनाओ मे दार्शनिक विषयो का काव्यमय वर्णन पाया जाता है।

अध्यात्म क्षेत्र मे पहली अवस्था का साधक अव्यक्त और विश्व के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल एव आश्चर्य का भाव रखता है। 'कौन तम के पार रे कह' (निराला), कौन तुम मेरे हृदय मे, पथ देख बिता दी रैन, मै प्रिय पहचानी नही (महादेवी), मौन निमत्रण (पन्त), होली की रात, बिन्दु (प्रसाद) मे अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा तथा कुतूहल है। कामायनी के 'आशा' सर्ग मे सृष्टि के आदि तत्त्वो को देखकर मनु के हृदय मे यही भाव उठता है। उदयशकर भट्ट की 'मानसी' मे 'विश्व के प्रति जिज्ञासा एव कुतूहल है।

अव्यक्त सत्ता मे आस्था उत्पन्न हो जाने पर साधक अखिल विश्व मे उसी के विराट स्वरूप को देखता है। उसे सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ मे उसी का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है तथा उससे मिलने के लिए साधक के हृदय मे प्रेम का आविर्भाव होने लगता है। प्रसाद की झरना, लहर, पन्त की विश्वछवि, विश्व व्याप्ति, एक तारा, स्वर्णकिरण, सम्मोहन तथा स्वर्णधूलि की 'आर्ष वाणी' की कविताएँ महादेवी की नीरजा की 'अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर, जो विभावरी, बसन्त रजती, रामकुमार वर्मा की 'यह तुम्हारा हास आया' गोपाल-

---

१—योग दर्शन १।२

शरण सिंह की ज्योतिष्मती, निराला की अर्चना एव सियारामशरण के 'पाथेय'[1] के गीतो मे इसी का वर्णन प्रधान है।

निराला और पन्त के काव्य मे अद्वैत सत्य की झलक मिलती है। अर्धना मे 'खुल गया रे अब अपना मन', 'पास ही रे हीरे की खान', परिमल मे 'जागो फिर एक बार', 'अधिवास', 'कण' कविताओ मे अद्वैत तत्त्व का ही प्रतिपादन है। पन्त की स्वर्ण किरण मे 'पूषण', 'व्यक्ति और विश्व' स्वर्णधूलि मे 'अन्तर्लोक', 'ज्योतिझर', रामकुमार की 'एक दीपक किरण-कण हूं, 'निराला की 'तुक और मै 'विशिष्टाद्वैत की ओर इगित करती है। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' मे योग की ध्यान-पद्धति का वर्णन है।

जगत् की अनित्यता और परिवर्तनशीलता का वर्णन परिमल की 'पतनोन्मुख', 'शेष' तथा पन्त की 'परिवर्तन' कविता मे हुआ है। निराला की 'माया तथा गोपालशरण सिंह की 'भूल भुलैया', 'अज्ञान', महादेव की 'टूट गया वह दर्पण निर्मम, रचनाओ मे वेदान्त के मायावाद की झलक पूर्ण रूप से विद्यमान है। श्यामनारायण पाडेय के 'तुमुल'[1] और जयद्रथ वध[2] की युधिष्ठिर कृत कृष्ण-वन्दना मे सृष्टि, ईश्वर एव अध्यात्म तत्त्व की विशद रूप से समीक्षा की गई है। साकेत-सन्त मे राजा दशरथ के दिवगत होने पर शोक-विह्वल भरत के प्रति वशिष्ट के ज्ञानोपदेश मे जीवन, मरण, आत्मा की अमरता तथा आनन्दमयता और जगत् की अनित्यता का विचार है[3]। इसी प्रकार कृष्णायन के आरोहण काड मे मैत्रेय के प्रति भगवान् कृष्ण के उपदेश मे अध्यात्म तत्त्व का सम्यक् निरूपण हुआ है। ससार का स्वरूप, उसकी अनित्यता, अविर्भाव-तिरोभाव, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, जीव-ईश्वर, बन्धमोक्ष, जड-चेतन, निर्गुण-सगुण, आत्म अनात्म इत्यादि विविध आध्यात्मिक विषयो का रहस्य इस प्रसग मे निरूपित है[4]। कामायनी के आनन्द सर्ग मे कैलास-यात्रा के प्रसग मे श्रद्धा के प्रति मनु के उपदेश मे उसी अनिर्वचनीय आध्यात्मिक ज्ञान का निर्वचन है[5]।

आधुनिक छायावादी-रहस्यवादी कवियो ने सन्त कवियो की तरह ही दार्शनिक विषयो पर काव्य रचना की है, किन्तु प्राचीन और नवीन कवियो की

१—तुमुल, पृ० ७२।
२—जयद्रथ वध इस्कीसवॉ संस्करण, पृ० ६८।
३—साकेत-सन्त ५।६६-२०।
४—कृष्णायन, ८८५-६५
५—कामायनी (प्रथम संस्करण) पृ० २८७-८६।

वस्तु-प्रतिपादन शैली मे महान् अन्तर है। सन्त कवि भक्त और साधक भी थे, अतएव उनकी वर्णनशैली मे साधना-पक्ष उभरा हुआ दिखाई पडता है। आधुनिक छायावादी कवियो मे साधना और रहस्यानुभूति का अभाव है। यह इनके स्वाध्याय का प्रतिफल है। प्राचीन कवियो ने दार्शनिक विषयो को विस्तारपूर्वक वर्णन किया है तथा अज्ञात के प्रति विविधि भाव-सम्बन्धो को स्थापित किया है। छायावादी कवियो ने रहस्य का वर्णन साकेतिक रूप मे किया है जिसमे वस्तु की केवल झलक मात्र दिखाई पडती है। सन्त कवियो की वस्तु-प्रतिपादन शैली साम्प्रदायिक तथा परम्परागत है। इसके विपरीत आधुनिक कवियो का वर्णन बहुत कुछ रुढि-युक्त तथा स्वतत्र है। आलोच्य काल के छायावादी, रहस्यवादी कवियो का अध्यात्म-वर्णन प्राचीन आवरण को हटाकर नये रूप मे प्रगट हुआ है। यह पुरानी वस्तु का नया सस्कार है।

धर्म—

यह एक व्यापक विषय है। इसके अन्तर्गत लोकहित के सम्पूर्ण कार्यों का समावेश हो जाता है। वैयक्तिक साधन से लेकर लोक-मगल तक के सब प्रयत्न इसकी परिधि मे आ जाते है। वर्णाश्रम धर्म, कर्म-फल, पुनर्जन्म, सत्य, सेवा, आचार, त्याग, तप, दान आदि सभी मे धर्म का रूप प्रस्फुटित होता है।

बुद्ध चरित, साकेत, कामायनी, सिद्धाथ, कृष्णायन, साकेत-सन्त, कैकेयी और कुरुक्षेत्र मे इस परम्परा का विशद वर्णन है। पथिक, मिलन, यशोधरा, जौहर, तुमुल, स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि मे भी यह परम्परा नये रूप मे विद्यमान है।

आत्म-पयम, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, जगत् की अनित्यता, आचार, कर्मफल, पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा, त्याग, तप, सेवा, परोपकार, लोक-सग्रह का विशद वर्णन सिद्धार्थ[1] बुद्ध चरित,[2] साकेत-सन्त,[3] कृष्णायन, कैकेयी, कुरुक्षेत्र, पथिक मिलन मे पाया जाता है। शास्त्र-धर्म, लोक-धर्म, युग धर्म, आपद्धर्म, नित्यधर्म का सबसे सुन्दर, विशद् तथा विस्तृत वर्णन कृष्णायन मे मिलता है। वर्णधर्म, आश्रम धर्म, त्याग, सत्य, अपरिग्रह, इन्द्रिय, जय तथा लोक-सग्रह

१—सिद्धाथ २६३,
२—बुद्ध चरित्र पृ० १७४
३—साकेत सन्त १३ ४०

का प्रौढ एव विशद वर्णन साकेत-सन्त,[१] कामायनी[२] और कृष्णायन[३] मे पाया जाता है। धर्म के व्यवहार-पक्ष मे सेवा, समता, निस्वार्थता, कर्त्तव्य-परायणता का वर्णन साकेत,[४] कुरुक्षेत्र,[५] कैकेयी और पथिक[६] मे बहुत अच्छा मिलता है। परम्परानुगत धर्म के सभी अगो का वर्णन कृष्णायन मे मिलता है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, श्रद्धा, सेवा, आनन्द का काव्यमय वर्णन कामायनी मे पाया जाता है[७]। भगवद्गीता और वैदिक धर्म के विविध अगो का वर्णन कृष्णायन के गीता काड और स्वर्णधूलि की आर्षवाणी मे पाया जाता है। नारी धर्म के अन्तर्गत पातिव्रत, तप, त्याग और आत्मोत्सर्ग का वर्णन जौहर,[८] साकेत-सन्त और यशोधरा मे अकित है।

धर्म के लोक-पक्ष को लेकर आलोच्यकालीन कविता मे मानव-धर्म की प्रतिष्ठा हुई है। पथिक, मिलन और स्वप्न काव्यो मे दोनो से प्रेम, पीडितो के प्रति सहानुभूति, सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन, देश-सेवा, त्याग और मानव-प्रेम के आदर्श का चित्रण है। साकेत मे भी लोक-हित के लिए व्यक्ति के आत्मार्पण को महत्त्व दिया गया है .—

निज हेतु बरसता नही व्योम से पानी,
हम हो समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।

—साकेत।

साकेतकार ने राम के चरित्र मे जो उच्चादर्श स्थापित किये है, उनमे दीन-हीन और पीडितो की सेवा, लोक-हित-साधन एव नरता मे ही ईश्वरता की प्राप्ति का उद्घोष है। पहले धर्म के द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की कामना की जाती थी, अब इसी भूतल पर स्वर्ग की प्रतिष्ठा करना धर्म है। आधुनिक युग मे राष्ट्र-प्रेम, देश-भक्ति धर्म के प्रधान अग हो गए है। साकेत मे राम के द्वारा इसी मानवधर्म की प्रतिष्ठा करायी गई है।

१—साकेत सन्त १३।४३
२—कामायनी (प्रथम संस्करण) १९६
३—कृष्णायन पृ० ८२१
४—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० २१६
५—कुरुक्षेत्र, पृ० १०१।
६—पथिक (तेरहवाँ संस्करण) पृ० ३०-३१।
७—कामायनी, रहस्य सर्ग पृ० २६२।
८—जौहर (प्रथम संस्करण) पृ० ८९।

सन्देश यहाँ मै नही स्वर्ग का लाया,,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

—साकेत

देश-प्रेम, आर्य-सस्कृति और भारतीयता की रक्षा साकेत-सन्त मे भी राम को चिन्ता का विषय है। चित्रकूट से लौटते हुए भरत को राम ने यही उपदेश दिया है। कुरुक्षेत्र मे दिनकर का कवि भी मानव-धर्म के प्रदीप की लौ जलाना चाहता है तथा इसी जगत मे सत्य, साम्य, सेवा और शान्ति के आदर्शों का विकास चाहता है। इससे स्पष्ट है कि धर्म का प्राचीन आदर्श साम्प्रदायिक विकास चाहता है। रूढियो से मुक्त होकर स्वतत्र रूप मे भी विकसित हुआ है। अब धर्म वैयक्तिक साधना की वस्तु होकर समष्टिगत न होकर समष्टिगत हो गया है। उसका स्वरूप रूढियो के जाल से बहुत कुछ छूट गया है। लोक, परलोक, भाग्यवाद अन्धविश्वास तथा वाह्याडम्बरो को छोडकर उसमे राष्ट्र-प्रेरित मानवादर्शों का विकास हुआ है। व्यवहार-पक्ष मे वह स्वदेशानुराग, समाज-सुधार, साम्प्रदायिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, दलितोद्धार, आर्थिक समानता के कार्यों मे प्रतिफलित हुआ है। समष्टि मे आधुनिक धर्म का मेरुदण्ड है, मानव-प्रेम यह सब प्रकार के जाति, वर्ण, सम्प्रदाय तथा राष्ट्र की सकुचित भावनाओ से विनिमुक्त है। पन्त का गीत-विहग मानवता के स्वर मे गा उठता है :—

मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता,
स्वाधीन देश की गौरव गाथा गाता।

—पन्त (उत्तरा)

साकेत, साकेत-सन्त, पथिक, मिलन, वैदेही-वनवास, स्वर्ण किरण, उत्तरा, युगवाणी आर्यावर्त, जन नायक मे धर्म का यही नया रूप प्रस्फुटित हुआ है।

निष्कर्ष यह कि परम्परा-विहित शास्त्रीय धर्म का तात्विक निरूपण मुख्यतः बुद्धचरित्र, सिद्धार्थ, कृष्णायन, साकेत-सन्त मे ही पाया जाता है। अन्यत्र बहुत कम है। वस्तुतः आलोच्यकाल मे शास्त्र धर्म का वर्णन बहुत कम हुआ है, किन्तु युग-धर्म का विशेष। युग के प्रभाव ने धर्म के व्यवहार-पक्ष को कही अधिक महत्त्व प्रदान किया है। इस कारण आधुनिक काव्यो मे धर्म का अधिकतर समाज, राष्ट्र एव सर्वोदय के स्तर पर वर्णन हुआ है। सक्षेप मे परलोकवाद की भूमि को छोडने पर धर्म लोक-सामान्य भूमि पर प्रतिष्ठित हुआ है। यही पुराने धर्म का नया रूपान्तर है। अयोध्यासिह, मैथिलीशरण, पन्त, प्रसाद, दिनकर,

रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण के काव्यों मे जीवन-सापेक्ष धर्म का नया रूप विकसित हुआ है।

नीति—

धर्म के अन्तर्गत नीति तथा उपदेश का भी स्थान है। नीति, शिक्षा एवं उपदेश धर्म के व्यवहार-पक्ष मे आते है, क्योकि इनमे व्यवहारोपयुक्त बातो का समावेश होता है। नाथूराम 'शकर' के दोहो मे, हरिऔध के चौपदो मे, मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वर्गीय सगीत' मे और वियोगी हरि की 'वीर-सत्सयी' मे नीति की बातो का सुन्दर वर्णन है। प्रबन्ध काव्यो के अन्तर्गत रामचरित चिन्तामणि, कृष्णायन,[१] दैत्यवश,[२] अगराज,[३] रश्मिरथी,[४] कुरुक्षेत्र,[५] पथिक[६] और सिद्धराज[७] मे नीति शिक्षाओ के रत्न-कण बिखरे पडे है।

रामनरेश त्रिपाठी की 'द्विविधा', 'प्रेम', 'विश्व-सुषमा' आदि स्फुटिक रचनाओ मे, सियारामशरण की दूर्वादल, आर्द्रा, उन्मुत, मृण्मयी रचनाओ मे, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'सत्य की उपासना', 'क्रान्ति मे शान्ति', बुझा हुआ दीपक, भवानीप्रसाद की 'असाधारण' स्नेह शपथ, मुक्ति बोध की 'नूतन अह' और 'है महान्' स्फुटिक रचनाओ मे नीति एव शिक्षा का सुन्दर वर्णन है।

काव्यो मे धर्म के दो रूप मिलते है—एक शास्त्रीय और दूसरा व्यावहारिक। पहले मे धर्म का तात्विक वर्णन प्रधान है, दूसरे मे धर्म के वाह्य पक्ष का। युग और परिस्थिति के अनुसार धर्म के वाह्य पक्ष मे सदैव परिवर्तन होता आया है। मध्यकालीन काव्य-ग्रन्थो मे धर्म भक्ति के आश्रित हो गया था तथा उसमे पुराणानुमोदित रूढियो एव अन्धविश्वासो का समावेश हो गया था। मत्र-तत्र, जादू-टोना, ऋद्धि-सिद्धि के अद्भुत चमत्कारो को धर्म का सर्वस्व माना जाता था। अवतारवाद, परलोकवाद तथा वैयक्तिक साधना का पक्ष

१—कृष्णायन, पृ० ८१९।
२—दैत्यवश २।२८-२९।
३—अंगराज, पच्चीसवाँ सर्ग। छद २-५।
४—रश्मिरथी, षष्ठ सर्ग,
५—कुरुक्षेत्र, पचम सर्ग, पृ० ११४-११५।
६—पथिक, २।१६-२०
७—सिद्धराज (प्रथम सस्करण) पृ० २७।

उसमे प्रबल हो गया था। रामचरितमानस, रामचन्द्रिका तथा अन्य भक्ति काव्यो मे वर्णित धर्म मे इन्ही बातो को प्रधानता दिखाई पडती है। भक्त कवियो ने धर्म को व्यक्तिनिष्ठ एव भावात्मक रूप मे देखा है, जिसमे परलोक, वैराग्य एव जीवन से निवृत्ति के सिद्धातो पर अधिक बल दिया गया है। आधुनिक युग मे पौराणिक धर्म एव विश्वास खडित होने लगे है। वैज्ञानिक युग के प्रभाव से धार्मिक विश्वास हिल उठे है। युग के प्रभाव से आधुनिक काव्यो मे से चातुर्वर्ण्य व्यवस्था परलोकवाद, अवतारवाद एव पौराणिक विश्वास हट गये है। भावात्मकता का स्थान बौद्धिकता ने ग्रहण कर लिया है तथा व्यक्ति-धर्म के स्थान पर समाज-धर्म आ बैठा है। धर्म का नया रूप रूढि, सम्प्रदाय और पुराणो के प्रभाव से मुक्त हो गया है। साम्प्रदायिक घेरे से निकल कर वह राष्ट्रीय धर्म हो गया है। शास्त्र की अपेक्षा अब वह जीवन से अनुप्रेरित है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्य काल मे धार्मिक विषयो की परम्परा का नया सस्कार हुआ है। इसके विकास मे आधुनिक युग के शत-प्रतिशत कवियो का योगदान है। राष्ट्र-धर्म के रूप मे यह सर्वमान्य हो चुका है। प्रगतिवादी कवियो ने इसे समाज-धर्म के रूप मे अपनाया है, तथा प्रयोगवादी कवियो ने स्व-रति के रूप मे, वस्तुतः ये मानव-धर्म के ही अवान्तर रूप है।

(घ) प्राकृतिक विषय

परम्परा—प्रकृति अनादि तत्त्व है। पुरुष के साथ उसका चिरकाल से सम्बन्ध है। साख्यमत मे पुरुष के उपभोग के लिए उसका सृजन हुआ है। वह पुरुष के क्रीडा-कलाप की मनोज्ञ रगस्थली है। पुरुष के मनोविनोद के हेतु वह विविध रूप एव रगो मे प्रकट होती है और अनन्त छवियाँ धारण करती है। सृष्टि के सत्-असत्, शिव-अशिव और रूप-कुरूप—सम्पूर्ण पदार्थ प्रकृति के परिणाम है। यह समग्र जगत् जड-चेतन भेद से द्विविध रूप है। जड वर्ग मे गिरि, वन, सरित्, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, षट् ऋतु आदि आते है और चेतन वर्ग मे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, नर-नारी आदि प्राणि-जात है। प्रकृति मानव की सहचारिणी नर्तकी के सदृश है, जो उसकी प्रीति और आनन्द के हेतु नाना रूपो मे प्रकट होती है।

प्रकृति के दो भेद और है—सूक्ष्म और स्थूल। पहला अन्तः प्रकृति और दूसरा बाह्य प्रकृति। अन्तः प्रकृति मे मन, बुद्धि और अहकार तथा उनकी समस्त चेष्टाओ का स्थान है। इसी से जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापार सचालित होते है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि सब अन्तः प्रकृति के क्षेत्र मे घटित

होते है। मानवीय मन की प्रवृत्तियो मे रति, भय, विस्मय और करुणा का प्रमुख स्थान है। मनुष्य का मन इन्ही से प्रेरित होकर स्व-कार्य मे प्रवृत्त होता है। प्रकृति के विभिन्न रूप जब मनुष्य के सामने आते हैं, तब वे उसके हृदय को प्रेम, भय, आश्चर्य अथवा विषाद से अभिभूत कर देते है। प्रकृति का कोई भी पदार्थ जब ऐन्द्रिय सवेदन का विषय बनता है, तब वह राग या विराग की अनुभूति अवश्य दे जाता है। प्रकृति के कार्य विविध रूपो मे प्रकट होते है। मनुष्य जब प्रकृति के कार्यों के निकट सम्पर्क मे आता है, तब वह कभी त्रस्त और कभी उल्लसित होता है। उषा, ज्योत्स्ना, पुष्प-विकास आदि से उसके हृदय मे उल्लास छा जाता है, मेघाच्छन्न आकाश, इन्द्रधनुष आदि से वह आश्चर्य-चकित होता है एव उल्का-पात, झझावात, वज्र-निर्घोष मे वह सत्रस्त हो उठता है। इस प्रकार मनुष्य का वाह्य और आन्तरिक समग्र व्यवहार प्रकृति से ही परिचालित है। इससे सिद्ध है कि मानव और प्रकृति का प्रगाढ सम्बन्ध है।

वैदिक वाङ्मय मे प्रकृति के विविध रूपो का दर्शन मिलता है। इन्द्र, वरुण, सूर्य, सोम, अग्नि, उषा आदि के मत्रो मे देवत्व की भावना है। उषा मे सुन्दरी के धर्मों का आरोप कर अत्यन्त हृदयग्राही भावो का वर्णन किया गया है, अनेक मत्रो मे प्रकृति का आलकारिक वर्णन है। कही प्रकृति को प्रतीक रूप मे चित्रित किया गया है। वैदिक मत्रो मे प्रकृति के साथ पूर्ण तामात्म्य पाया जाता है। उनके लिए प्रकृति प्राणदायिनी शक्ति है। वह चैतन्य-धर्म-समन्वित है।

आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण मे प्राकृतिक विषयो का सविस्तार वर्णन किया है। उनके प्रकृति-वर्णन को आचार्य शुक्ल ने यथातथ्य शुद्ध एवं स्वतन्त्र बतलाया है। परन्तु ध्यान से देखने पर विदित होता है कि उन्होने मानव-कथा-प्रसगो मे ही प्रकृति का उपयोग किया है। रामायण के वर्षा-वर्णन के प्रसग मे राम की विरह-व्यथा का भी उल्लेख हुआ है।[1] अन्यत्र मानव-साहचर्य मे ही प्रकृति का उपयोग हुआ, किन्तु उत्तरवर्ती कवियो की तुलना मे इन्होने प्रकृति मे मानवीय भावो की उद्भावना कम दिखाई है। इसी कारण वाल्मीकि का प्रकृति वर्णन अन्य कवियो की अपेक्षा अधिक शुद्ध, सश्लिष्ट एव स्वतन्त्र माना गया है। कालिदास के प्रकृति वर्णन की यह विशेषता है कि प्रकृति मानव-क्रिया-कलापो की प्रतिच्छाया के रूप मे दृष्टिगत होती है। मानव-हृदय मे जो हर्ष, विषाद, करुणा, प्रेम, घृणा आदि भाव उत्पन्न होते है, वे ही

१—वा० रा० किष्किन्धा कांड २८।२७-२९।

कालिदास की प्रकृति मे प्रतिबिम्बित दिखाई पडते है। मेघदूत मे यक्ष का सदेश-वाहक मेघ अलकापुरी को जाते हुए नदी, पर्वत, वन, पुष्पो का मित्र एव हितेच्छु चित्रित किया गया है। यही नही यात्रा-पथ मे मेघ के लिए शुभ शकुनो की योजना भी की गई है। अनुकूल पवन उसे प्रेरणा देता है, सगर्व चातक मधुर-मधुर शब्द करता है तथा बलाकाएँ गर्भाधान के सुख की इच्छा से उसकी सेवा करती है, क्योकि मेघ सन्तप्तजनो का कष्ट निवारण करता है। प्रकृति मूक अवश्य है, पर वह मनुष्य के सुख-दुःख को पहचानती है तथा सुहृद का सा व्यवहार करती है। कालिदास का ऋतु-वर्णन भी सजीव है। ऋतुएँ उनके लिए जीवित अनन्त प्राणियो मे अन्यतम है। मनुष्यो के प्रति उनमे सौहार्द तो है ही, उनके माध्यम से हर्ष व प्रेम की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति भी दिखाई पडती है। किन्तु उत्तर कालीन सस्कृत के काव्यो मे प्रकृति-वर्णन की यह परम्परा लुप्त-सी हो गई है। प्रकृति का उपयोग अप्रस्तुत-विधान के रूप मे अधिकता से होने लगा है। श्रीहर्ष के नैषध मे प्रभात, सन्ध्या आदि के वर्णनो मे अलकारो की खिलवाड ही दिखाई पडती है।[१] सक्षेप मे सस्कृत कवियो का प्रकृति-वर्णन तीन रूपो मे पाया जाता है—

(१) प्रकृति का यथातथ्य वर्णन।

(२) प्रकृति मे मानवीय भावो का आरोप।

(३) प्रकृति का अलकार विधान के रूप मे विनियोग।

वाल्मीकि रामायण आदि महाकाव्य है। उसी के आधार पर महाकाव्य के लक्षणो का निर्माण हुआ है। सस्कृत के उत्तरवर्ती महाकाव्यो मे इसी आधार पर प्रकृति का वर्णन हुआ है। काव्य शास्त्र की परम्परा का पालन करने के लिए ही इन कवियो ने प्रकृति का वर्णन किया है। इसी से भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवियो के प्रकृति वर्णन मे वह नैसर्गिकता नही, जो वाल्मीकि, अश्वघोष तथा कालिदास के महाकाव्यो मे पाई जाती है। प्रकृति के अग-प्रत्यंगो का इन कवियो ने सूक्ष्म निरीक्षण किया है, इसके विविध रूपो के साथ हृदय का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है तथा उसको शुद्ध, सचेतन सत्ता के रूप मे ग्रहण किया है। इसीलिए उनके काव्यो मे प्रकृति अपने विशुद्ध रूप मे मानवीय चेतना से थिरकती हुई दृष्टिगोचर होती है। उनके काव्यो मे अन्तः प्रकृति और वाह्य प्रकृति मे पूर्ण समता हो गई है। प्रकृति का ऐसा शुद्ध वर्णन परवर्तीयकाल की रचनाओ मे नही दिखाई पडता। माघ और नैषधकार का

१—नैषध २२।२७ तथा १९।९।

प्रकृति वर्णन इसके सामने कृत्रिमतापूर्ण-सा लगता है। उसमे काव्य शास्त्र की परम्पराओ के निर्वाह का सचेष्ट प्रयत्न है। अथवा कल्पना शक्ति का अवाछित प्रदर्शन है। मुक्तक रचनाओ मे भी इसी प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है।

'काव्य कल्पलता वृत्ति', 'कवि कल्पलता' आदि कवि शिक्षा की अनेक पुस्तको मे वस्तु-वर्णन की परम्परानुगत बातो का परिगणन कर दिया है। पीछे के कवियो ने कवि-सम्प्रदाय मे प्रचलित इसी प्रणाली को आधार बनाकर प्रकृति-वर्णन के नाम पर वस्तु-परिगणन मात्र कर दिया है, इस कारण इसमे प्रकृति की ओर स्वाभाविक अनुराग दिखाई नही पडता। यदि किसी ने प्रकृति का वर्णन किया है तो उसमे केवल रूढिगत बातो का ही निर्वाह किया गया है।

सस्कृत-साहित्य के पतन-काल मे हिन्दी-साहित्य का प्रादुर्भाव होता है। अतएव सस्कृत-साहित्य की परम्पराओ का अनुवर्तन हिन्दी साहित्य मे भी होने लगता है। वीरगाथा काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रबन्ध काव्यो मे प्रकृति-वर्णन की प्रायः उन्ही परम्पराओ का अनुसरण होता आया है जो सस्कृत-साहित्य मे प्रचलित थी। केशव की 'कवि-प्रिया' कविशिक्षा की प्रसिद्ध पुस्तक है। सस्कृत की 'कवि कल्पलता' आदि पुस्तको के आधार पर ही इसकी रचना हुई है। कवि-सम्प्रदाय और काव्य-परम्परा की समस्त बातो का इसमे विस्तृत वर्णन है। रीतिकाल के कवियो ने प्रायः इन्ही बातो का अनुसरण किया है। इससे सिद्ध है कि सस्कृत के काव्य-शास्त्र और कवि-शिक्षा के ग्रन्थ हिन्दी के आचार्य तथा कवियो के भी उपजीव्य हो गए।

हिन्दी-साहित्य के प्रारभिक युग मे प्रकृति की ओर से कवियो का ध्यान छूट-सा गया था। उस युग के कवि राजा-महाराजाओ के आश्रित थे। वे अपने आश्रयदाताओ के बल-विक्रम और शौरुष का गौरव-गान करने मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते थे। प्रकृति के सौन्दर्य की ओर आँख उठाने का उन्हे अवकाश ही नही था। यदि काव्यो के बीच कही प्रकृति-वर्णन आया भी है तो वह रूढि मात्र है। उसमे हृदय का योग नही है।

निर्गुणमार्गी सन्त कवियो की रहस्यात्मक वानियो मे कही-कही प्रतीकात्मक शैली के आवरण मे प्रकृति का वर्णन मिलता है। अन्यत्र वे प्रकृति की ओर से उदासीन ही है। कबीर की रचनाओ मे प्रकृति सचेतन है, पर उस पर रहस्य का पर्दा पडा हुआ है—

काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी,
तेरे ही नाल सरोवर पानी।

इस पद मे 'नलिनी' जीवात्मा का और 'पानी' ब्रह्म का प्रतीक है,

जायसी ने भी अपने काव्य मे 'प्रकृति के रूप मे परमतत्त्व का ही दर्शन किया है। इसके अतिरिक्त अलकार विधान मे भी उन्होने प्रकृति का उपयोग किया है।

सूरदास एव अष्टछाप के अन्य कवियो की रचनाओ मे प्रकृति को यथेष्ट स्थान मिला है, क्योकि उनके उपास्य राधा-कृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन थी, जहाँ प्राकृतिक दृश्यो का आधिक्य है। कृष्ण की रास-क्रीडा, गो-चारण आदि का केन्द्र यमुना-पुलिन, वन-उपवन, करीलकुज, कदब-वृक्ष, गिरि गोवर्धन आदि ही तो हैं। परन्तु सूर ने प्राकृतिक सामग्री का उपयोग राधा-कृष्ण के सयोग एव विप्रलभ शृगार के उद्दीपन के रूप मे ही किया है। स्वतत्र रूप से प्रकृति का वर्णन सूर के काव्य मे कही पर नही है। परवर्ती कवियो ने भी नायक-नायिकाओ के रतिभाव को उद्दीप्त करने के लिए ही प्रकृति का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त अष्ट छाप के कवियो के अप्रस्तुत-विधान मे भी व्रज का प्राकृतिक वैभव छलका पडता है।

तुलसी के काव्यो मे प्रकृति का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। उन्होने राम-कथा के भीतर वन, वाटिका, सर, सरिता, ऋतु, पर्वत, समुद्र आदि विविध दृश्यो का स्वतत्रतापूर्वक वर्णन किया है। यद्यपि उन्होने प्रकृति का आलम्बन के रूप मे भी चित्रण किया है, तथापि उसमे राम-कथा का प्रभाव ही अधिक झलकता है। फिर भी प्रकृति के स्वतत्र वर्णन मे कवि का हृदय रमता हुआ दिखाई पडता है। पुष्प-वाटिका, चित्रकूट आदि ऐसे ही वर्णन है। किन्तु उनका प्रकृति-वर्णन अधिकतर मानवीय कथा प्रसग के ही अन्तर्गत है। सीताहरण के पश्चात् कवि ने प्रकृति का उपयोग अधिकतर विरह के भावो को उद्दीप्त करने के लिए किया है। तुलसी के वर्षा और शरद वर्णन मे मानव-जीवन के अमूल्य उपदेशो का अनुसधान किया गया है। अलकार विधान मे तो प्रकृति का उपयोग सर्वत्र ही मिलता है। लकाकाड के प्रारम्भ मे राम के विश्व-रूप वर्णन मे प्रकृति के पदार्थों मे परम तत्त्व का वर्णन मिलता है।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग विश्रामा॥
भृकुटि विलास भयकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस वेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥

तुलसी ने अन्तः प्रकृति के चित्रण मे भी सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। मानस के विविध पात्रो के चरित्र-चित्रण मे उनका यह कौशल सर्वत्र दिखाई पडता है।

रीति कालीन कविता मे शृंगारिक रचनाओ का बाहुल्य है। इसी से इसे शृगार-काल भी कहा जाता है। इस काल के कवि स्वभावतः प्रकृति की ओर उन्मुख नही हुए। जिन कवियो ने प्रकृति-वर्णन किया भी है, वह परम्परानुगत है। शृगार के अन्तर्गत प्रकृति से भावोद्दीपन का काम लिया गया है। इसके अतिरिक्त अलकार विधान मे भी प्रकृति का उपयोग हुआ है। सेनापति का ऋतु-वर्णन सबसे भिन्न है। उन्होने प्रकृति का सूक्ष्म एव स्वतत्र रूप से चित्रण किया है।

भारतेन्दु युग के कवियो ने प्रकृति-वर्णन की ओर बहुत कम ध्यान दिया है। भारतेन्दु जी मानव प्रकृति के चितेरे थे। उनकी रचनाओ मे स्वतंन्त्र प्रकृति-वर्णन को कही भी स्थान नही मिला है। उन्होने जो थोडा-बहुत प्रकृति-वर्णन किया है, वह अलकार-विधान एव शृगार को उद्दीपन-सामग्री के रूप मे ही है। इसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियो का भी प्रकृति की ओर ध्यान नही है। केवल श्रीधर पाठक इसके अपवाद है। उनकी रचनाओ मे प्राकृतिक दृश्यो का चित्रण स्वतन्त्र रूप मे मिलता है। उनकी वर्णन शैली भी सश्लिष्ट एव चित्रोपम है। घन-विनय, काश्मीर-सुषमा एवं हिमालय-वर्णन मे प्रकृति सजीव-साकार हो उठी है।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत पाँच रूपो मे प्रकृति का वर्णन पाया जाता है—

(१) प्रकृति का शुद्ध एव स्वतन्त्र रूप मे वर्णन
(२) शृ गार के अन्तर्गत उद्दीपन के रूप मे वर्णन
(३) अलकार-विधान के रूप मे वर्णन
(४) धार्मिक एव नैतिक उपदेशो के रूप मे वर्णन
(५) प्रकृति मे आत्म-दर्शन

आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रकृति वर्णन—

आलोच्य काल के नीचे लिखे काव्यो के आधार पर प्राकृतिक विषय-वर्णन की परम्परा का अध्ययन किया है।

(१) क—महाकाव्य—बुद्ध चरित, साकेत, नल नरेश, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, वैदेही बनवास, हल्दीघाटी, दैत्यवश, आर्यावर्त, कृष्णायन, साकेत-सन्त, विक्रमादित्य।

ख—खड काव्य—मौर्य विजय, जयद्रथ वध, पचवटी, सिद्धराज, पथिक, मिलन, स्वप्न, कुणाल, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी जौहर, नकुल, प्रणवीर प्रताप।

(२) मुक्तक—पल्लव, गु जन, स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, ग्राम्या, परिमल, झरना, अनामिका प्रभातफेरी, ठंडा लोहा, धूप के धान, तारसप्तक, दूसरा सप्तक।

काव्य मे पाये जाने वाले प्राकृतिक विषयो को कविप्रिया के आधार पर दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—स्थान-वर्णन और काल-वर्णन।

स्थान सम्बन्धी प्राकृतिक विषयो के अन्तर्गत देश, नगर, ग्राम, गिरि, वन-उपवन, आश्रम, समुद्र, सरोवर, नदी आदि का वर्णन आता है[१] तथा काल सम्बन्धी विषयो मे चन्द्र, सूर्य, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, अष्टयाम और बारहमासा आदि का वर्णन किया जाता है। आलोच्यकाल के उपर्युक्त प्रबन्ध काव्यो मे इन सभी वस्तुओ का वर्णन पाया जाता है। आधुनिक काल की मुक्तक रचनाओ मे इन विषयो का वर्णन सर्वथा नये रूप मे दिखाई पडता है। प्राकृतिक विषयो के वर्णन मे कही शत-प्रतिशत परम्परानुगत मार्ग का अवलम्बन किया गया है, कही आधुनिक युग के अनुकूल नया रूप प्रदान किया गया है और कही परम्परानुगत मार्ग का सर्वथा परित्याग कर दिया गया है।

(१) **प्राकृतिक विषयों का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप में वर्णन**—आलोच्यकाल मे वैज्ञानिक प्रगति एव बौद्धिक चेतना के उद्‌बुद्ध हो जाने के कारण कवियो का ध्यान शुद्ध व स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन की ओर अधिक जाने लगा है। इसका बहुत बडा कारण अँगरेजी साहित्य का प्रभाव है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, हरिऔध आदि कवियो ने प्रकृति का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप मे वर्णन किया है। इनके वाह्य प्रकृति के चित्रण मे प्रकृति के सूक्ष्म व्यापारो का यथातथ्य वर्णन है जिससे उनकी प्रकृति पर्यवेक्षण की दूरगामिनी दृष्टि का परिचय मिलता है। 'प्रिय प्रवास' के प्रारम्भ मे ही सन्ध्या के वर्णन मे आकाश की अरुणाभा, तरु-शिखरो की लालिमा, खग-वृन्द के कलरव, दिशाओ की शोभा, सरित-सरोवर की छटा, पृथ्वी की हरीतिमा आदि का अत्यन्त चित्रोपम शैली मे सागोपाग चित्र उतारा गया है। नवें सर्ग मे उद्धव की ब्रज-यात्रा के प्रसग मे कवि ने प्राकृतिक दृश्यो की शोभा का वर्णन शुद्ध व स्वतन्त्र रूप मे ही किया है किन्तु कही-कही नाम परिगणन की शैली से ही काम लिया गया है—

१—देखिये कविप्रिया पृ० ७।१

"जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फलसा जम्बीर और आँवला।
लीची दाडिम नारिकेल इमली और शिशपा इगुदी।
नारगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
श्रेणी बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खडे॥"

'प्रिय प्रवास' मे वर्णित वर्षा एव वसन्त के चित्रो मे भी प्रकृति का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप मिलता है।

'वैदेही-वनवास' मे प्रकृति-चित्रण का वाहुल्य है। प्रथम सर्ग का उषा वर्णन, पचम सर्ग का सन्ध्या वर्णन, अष्टम सर्ग का प्रभात वर्णन, चतुर्दश सर्ग का वसन्त वर्णन कवि की सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण-शक्ति के परिचायक है। वशिष्ठ और वाल्मीकि के आश्रम एव विन्ध्याचल कथा-वस्तु के अग बनकर आए है। इस काव्य मे कवि ने कथा-वस्तु की पृष्ठभूमि के रूप मे प्रकृति का चित्रण कर बिल्कुल नई दिशा दिखलाई है। इससे कथा-प्रसग एव घटनाओ को विकसित करने मे प्रकृति भी योग देती हुई दिखाई पडती है। 'वैदेही वनवास' के प्राय. हर एक सर्ग मे प्रकृति को कथा-वस्तु का पृष्ठाधार बनाकर उचित वातावरण का निर्माण किया गया है, जिससे प्रकृति घटनाओ के विकास मे गहरा रग देने मे सहायक हुई है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग के सूर्योदय वर्णन मे, पचम सर्ग के वन-मार्ग और पचवटी के वर्णन मे एव दशम सर्ग के प्रभात वर्णन मे शुद्ध व स्वतन्त्र पद्धति का अनुसरण किया गया है। गुप्त जी ने अधिकतर मानव-साहचर्य मे ही प्रकृति का वर्णन किया है। प्रकृति सर्वत्र हर्ष एव उल्लास मे थिरकती हुई दिखाई पडती है—

आओ कलापि निज चन्द्रकला दिखलाओ,
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खीच तनिक यो उसे घुमाते जाओ।
शुक पढो, मधुर फल प्रथम तुम्ही ने खाया,
मेरी कुटिया मे राजभवन मनभाया।

ऐसा प्रतीत होता है, प्रकृति का सम्पूर्ण वातावरण हर्षोन्मत्त है तथा शुक, पिक, मयूरादि मानव-चेतना को आनन्द से पूरित करने मे सहायता दे रहे है।

'कामायनी' आशा सर्ग के उषा वर्णन मे तथा आनन्द सर्ग के कैलास एव मानस वर्णन मे प्रकृति को सहज सुन्दर रूप मे चित्रित किया गया है। कवि ने प्रकृति वर्णन की परम्परा को नया रूप-रग दिया है। प्रसाद जी की प्रकृति

मानवीय चेतना से स्पन्दित है। उषा जयलक्ष्मी के समान उदित होती है। प्रकृति हँसती है, आलोक विखरता है, पराग क्रीडा करता है, वनस्पतियाँ जगती है, लहरे अँगडाई लेती है एव धरा-वधू मानवती नायिका का रूप धारण करती है। इसके अतिरिक्त उषा का आगमन शनै. शनैः क्रमवद्ध अवस्थाओ के आधार पर होता है। इधर उषा प्रकट होती है, उधर रात्रि का अन्धकार तिरोहित होता है। इसके पश्चात् सृष्टि मे नया विकास होता है, फिर आतप के प्रभाव से हिम का आवरण हटता है, फिर पेड-पौधो मे नई स्फूर्ति दृष्टिगोचर होती है, साथ-ही समुद्र मे लहरे उठने लगती है। प्राकृतिक वस्तुओ के क्रमिक वर्णन की ओर कवि ने पूर्ण रूप से ध्यान दिया है, जिससे समस्त वर्णन मे एकरूपता आ गई है। इसी प्रकार कैलास वर्णन मे प्रकृति का स्वच्छ, रमणीय एव चेतना-समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है,प्रकृति का कण-कण जीवित-जाग्रत है तथा आनन्दोल्लास से परिप्लुत है। कवि ने प्रकृति पुरुष मे एकात्मता करके अभेद-दर्शन की स्थापना की है। पुरुष के सान्निध्य से ही प्रकृति प्राणवन्त है—

समरस थे जड या चेतन, सुन्दर साकार बना था,
चेननता एक विलसती, आनन्द अखड घना था।

प्रसाद के प्रकृति वर्णन मे परम्परा को नया रूप मिला है। उन्होने प्रकृति मे नये सिरे से प्राण सचार किया है, जिसमे चेतना का सगीत है, भावो की समन्विति है और रूपो की चित्रोमता है।

'नूरजहाँ' मे शुद्ध व स्वतत्र प्रकृति वर्णन की छटा दिखाई पडती है। प्रथम सर्ग के यात्रा वर्णन और सोलहवे सर्ग के ग्राम वर्णन मे कवि ने गाँवो की यथातथ्य स्थिति का वर्णन किया है। किसानो का अलाव पर बैठना, मिट्टी के घर, मिट्टी के दीपक, चरखा चलाना, सूत कातना, पचायत करना, चौपाल का दृश्य, खेतो मे अरहर के कल्ले फूटना, सरसो का फूलना, हिरन खुरी, पोलगा आदि के वर्णन द्वारा कवि ने ग्राम्य वातावरण प्रस्तुत किया है। स्थानीय बानो के वर्णन (local colouring) ने कवि के प्रकृति प्रेम को गहरा रग दिया है। इसमे स्वदेशानुराग की झलक भी पाई जाती है।

सिद्धार्थ,[१] विक्रमादित्य,[२] दैत्यवश[३] और अगराज[४] मे चन्द्रोदय और

---

१ सिद्धार्थ ११४-१५,
२ विक्रमादित्य १८२,
३. दैत्यवंश १२।१-५,
४ अंगराज-चतुर्दश सर्ग,

सन्ध्या वर्णन स्वतत्र रूप मे हुआ है। दैत्यवश के अष्टदश सर्ग का गिरि-वर्णन, कृष्णायन मे रैवतक का वर्णन, बुद्ध चरित का हिमालय वर्णन, अगराज के चौथे सर्ग का महेन्द्राचल वर्णन शुद्ध प्रकृति वर्ण के अन्तर्गत है। हल्दीघाटी मे हल्दीघाटी पर्वत का स्वतत्रता की वलिवेदी के रूप मे चित्रण है। इसमे त्याग, वलिदान और स्वतत्रता का महत्त्व अकित है। इसमे राष्ट्रपिता एव मातृभूमि के गौरव का भाव अधिक है। इस वर्णन मे परम्परा को नया विकास मिला है। बुद्ध चरित्र के छठे सर्ग मे, नूरजहाँ के पाँचवे सर्ग मे दैत्यवश के अष्टादश सर्ग मे, साकेत-सन्त के दशम सर्ग मे, सिद्धार्थ के चौदहवे सर्ग मे, वैदेही बनवास के सप्तदश सर्ग मे स्वतत्र पद्धति पर वनो का वर्णन पाया जाता है। नदी-सरोवर, समुद्र, उपवन एव ऋतुओ का स्वतत्र वर्णन नूरजहाँ,[५] सिद्धार्थ,[६] वैदेही वनवास,[७] विक्रमादित्य,[८] दैत्यवश,[९] साकेत-सन्त[१०] कृष्णायन[११] हल्दी घाटी,[१२] बुद्ध चरित,[१३] और आर्यावर्त,[१४] मे मिलता है। इसी प्रकार मौर्य-विजय, जयद्रथ वध, पचवटी, रश्मिरथी, पथिक, मिलन, स्वप्न आदि काव्यो मे भी प्रकृति का शुद्ध एव स्वतत्र रूप मे वर्णन मिलता है।[१५]

प्रकीर्ण रचनाओ मे पत की 'प्रथम रश्मि,' नौका विहार, एक तारा, छाया, सध्या, चाँदनी, बसन्त श्री, बादल, हिमाद्रि, निराला की बासन्ती, सन्ध्या सुन्दरी, प्रथम प्रभात, प्रपात के प्रति, भारत भूषण की 'वह पहाडी साँझ, पूरा प्रभात, भवानी प्रसाद की मगल वर्षा, रघुवीर सहाय की सायकाल, वसन्त, नरेश कुमार की उषस्, गिरिजा कुमार की 'रुककर जाती हुई रात', 'क्वार की दोपहरी', माचवे की वसन्तागम, वृष्टि, राम विलास की प्रत्यूष के पूर्व, कतकी,

---

५ नूरजहाँ पृ० ८०
६ सिद्धार्थ पृ० ६८
७ वैदेही वनवास ११।१२
८. विक्रमादित्य पृ० १६६
९. दैत्यवंश १८।२३
१०. साकेत-सन्त १३।७-१३
११. कृष्णायन पृ० २५१
१२ हल्दी घाटी पृ० १७६-७७
१३ बुद्ध चरित पृ० १०२
१४ आर्यावर्त—तृतीय सर्ग
१५. मौर्य विजय—द्वितीय सर्ग

अज्ञेय की उषःकाल की भव्य शान्ति, 'भादो की उमस' मे प्रकृति के स्वच्छन्द रूप के दर्शन मिलते है।

आलोच्यकाल मे प्राकृतिक विषयो के वर्णन की परम्परा का बहुत अच्छा विकास हुआ है। प्रबन्ध काव्यो मे तो यह परम्परा अत्यन्त सुन्दर रूप मे मिलती ही है, प्रकीर्ण रचनाओ मे इसका रूप और अधिक प्रस्फुटित हुआ है। युग और परिस्थिति के अनुकूल इस परम्परा का नया सस्कार भी हुआ है। प्राकृतिक क्षेत्र के नये-नये विषयो की ओर कवियो का ध्यान गया है, जिससे वस्तु वर्णन का विस्तार हुआ है। प्रकृति को सूक्ष्म रूप मे चित्रित करने की दिशा मे कवियो को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही प्रकृति को मानवीय सुख-दुःख, विरह-मिलन की अनुभूतियो से अनुरजित करके चित्रित किया गया है। यद्यपि इससे शुद्ध प्रकृति वर्णन को क्षति पहुँची है, तथापि यह परम्परा के अनुकूल नया विकास ही माना जायगा। इसके अतिरिक्त प्रकृति के माध्यम से मातृ-भूमि की विविध रूपो मे झाँकी कराई गई है। प्रबन्ध काव्यो मे विविध कथा-प्रसगो के पृष्ठधारा के रूप मे भी प्रकृति का चित्रण पाया जाता है। कही-कही अन्तः प्रकृति और वाह्य प्रकृति मे एकरूपता स्थापित की गई है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल मे स्वतत्र प्रकृति वर्णन की परम्परा का विविध रूपो मे विकास हुआ है। पर प्रयोगवादी कवियो की रचनाओ मे प्रकृति का शुद्ध एव स्वतत्र रूप मे वर्णन बहुत कम मिलता है। जो थोडा-बहुत मिलता है, वह तथ्य-सग्रह मात्र है। उसमे प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध का अभाव है। प्रकृति का विशुद्ध वर्णन न कर उसमे अधिकतर मानवीय भावो का आरोप कर दिया गया है। निष्कर्ष यह है कि प्रबन्ध काव्य छायावादी काव्य रचनाओ मे इस परम्परा का युग और परिस्थित के अनुकूल सुन्दर विकास हुआ है, किन्तु प्रगतिवादी एव प्रयोग-वादी रचनाओ मे इसका ह्रास दिखाई पडता है।

(२) **प्रकृति मे मानवीय भावों का आरोप**—कवि-हृदय सवेदनशील होता है। वह विविध प्रकार के भावो की क्रीडा-भूमि है। कवि जब प्रकृति के नाना पदार्थों पर दृष्टि डालता है, तब वह सर्वथा निर्लिप्त नही रहता। उसके मन का वस्तुओ के साथ तादात्म्य हो जाना बहुत ही स्वाभाविक है। प्रकृति का सर्वथा शुद्ध एव तटस्थ भाव से वर्णन करना सबके लिये सभव नही होता। इसी कारण प्रकृति का शुद्ध वर्णन बहुत थोडे कवियो ने ही किया है। मानवीय सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, भय-विस्मय आदि भावो को उद्दीप्त करने के लिये ही अधिकतर प्रकृति का उपयोग हुआ है। हिन्दी साहित्य के आदि काल से ही यह प्रवृत्ति चली आ रही है।

शृगार रस की उद्दीपन-सामग्री के रूप मे प्रकृति का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। चन्द्र, चन्द्रिका, दक्षिण पवन, पक्षियो का कलरव, एकान्त स्थल, पुष्प-वाटिका लता-कुज, भ्रमरो का गुजन, कोकिल का गान, पपीहा की पुकार एव ऋतुओ आदि का उद्दीपन के रूप मे वर्णन होता है। ये पदार्थ सयोग दशा मे आनन्द बढाते है, किन्तु वियोग की अवस्था मे दुःख देते हैं। इस प्रकार शृगार के उभय पक्षो मे रति-भाव को उद्दीप्त करने के लिये प्राकृतिक वस्तुओ का वर्णन चिरकाल से होता आया है। प्रबन्ध, मुक्तक एव गीत-काव्यो मे सर्वत्र इसी परम्परा का प्राधान्य दिखाई पडता है।

पृथ्वीराज रासो मे नायक कन्नौज जाने के लिए उद्यत है। बसन्त का समय है। रानी पति को बाहर जाने से रोकती है—

मनरि अव फुल्लिग कदव रयनी दिघ दीस।
भबर भाव भुल्लै भ्रमत मकरदव सीस।
बहत बात उज्जलति मौर अति विरह अगिनि किय।
कुहकूहत कलकठ पत्र राषस रति अगिय।
पथ लगि प्रान पति बीनवौ नाह नेह मुझ चित धरहु।
दिन दिन अवद्धि जुव्वन घटै कत बसत न गम करहु॥

पृथ्वीराज रासौ, ६१।१०

जायसी का 'बारह मासा' बहुत प्रसिद्ध है। इसमे नागमती के साथ समस्त प्रकृति रोती है। सूर-रचित भ्रमर गीत मे प्रकृति का कण-कण चिन्ता, विषाद, दैन्य एव स्मृति-जन्य खिन्नता से उच्छ्वसित है। रीति काल के कवियो मे यह प्रवृत्ति चरम सीमा को पहुँच गई है।

आधुनिक काल मे प्रिय प्रवास की राधा, वैदेही वनवास की सीता, साकेत की उर्मिला, कामायनी की श्रद्धा, नूरजहाँ की अनारकली, अगराज की कर्ण-पत्नी, सिद्धार्थ की यशोधरा, दैत्यवश की उषा, साकेत-सन्त की माडवी, नल-नरेश की दमयन्ती, विक्रमादित्य की ध्रुवदेवी, कृष्णायन की गोपियाँ, कुणाल की तिष्यरक्षिता और यशोधरा की गोपा के विरह-मिलन के प्रसगो मे रति-भाव की उद्दीप्त करने के लिये प्रकृति का वर्णन किया गया है। प्रबन्ध काव्यो मे परम्परानुगत पद्धति के आधार पर ही चन्द्रोपालभ की योजना की गई है तथा दूत के रूप मे भ्रमर, चन्द्र, पवन, हस आदि को नियुक्त किया गया है। नल-नरेश मे चन्द्रमा को लक्ष्य कर दमयन्ती अपनी सखियो से कहती है—"हे सखियो, इस कलकी चन्द्रमा को कौन सुधाकर कहता है? मुझको तो यह अग्नि

का महान् गोला-सा दिखाई पडता है। इसकी जो किरण चान्द्रका को प्रफुल्लत करती है, वे मेरे लिये अगार क्यो बरसाती है।[१]

साकेत और वैदेही वनवास मे भी 'औषधीश' और 'सिता' के प्रति उपालभ दिये गये है। सिद्धार्थ मे हस का, नूरजहाँ मे मलयानिल का, मधुपुरी मे भ्रमर का, रावण महाकाव्य मे चन्द्रमा का और दैत्यवश और नल-नरेश मे हसो का दूत के रूप मे वर्णन है।

प्रकीर्ण रचनाओ मे भी इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। पत का कवि प्रकृति की निरूपम भगिमाओ मे विविध मानवीय भावो की झलक देखता है—उसे अम्बुधि के जल मे अथाह सौन्दर्य, आकाश की स्वच्छता मे आनन्द, चाँदनी मे अपना भोलापन, बादलो के गर्जन मे मधुर वार्तालाप, लहरो मे कल्पना, वृक्षो की छाया मे विषाद, नदी की गति मे प्यास और अन्धकार मे भयानक उन्माद दिखाई पडता है।

अम्बुधि के जल मे अथाह छवि, अम्बर मे उज्जवल आह्लाद,
ज्योत्स्ना मे अपनी अजानता, मेघो मे उदार सम्वाद।
विपुल कल्पनाये लहरो मे, तरु-छाया मे विरह-विषाद,
मिली तृषा सरिता की गति मे, तम मे अगम गहन उन्माद।

—अनग

इसी प्रकार वह सुमनो के हास मे, तुहिन अश्रु मे, मौन-मुकुल मे, अलि-गुजन मे, इन्द्र-धनुष मे, जलद-पख मे, खद्योतो की चमक मे, शिशु की स्थिति मे—एक भावना, एक रागिनी, एक प्रकाश देखता है।

'यमुना के प्रति' कविता मे निराला को अतीत की आकुल तान सुनाई पडती है। बीते हुये गौरवमय युग के सुखो की स्मृति कवि के हृदय को उत्पीडित करती है। यमुना को देखकर उसका हृदय विषाद-ग्रस्त हो उठता है। कहाँ ये आमोद-प्रमोद और कहाँ ये अवसाद-विषाद!

यमुने तेरी इन लहरो मे, किन अधरो की आकुल तान,
पथिक-प्रिया सी जगा रही है, उस अतीत के नीरव गान।

महादेवी को प्रकृति की सम्पूर्ण वस्तुओ पर विषाद का आवरण पडा हुआ दिखाई पडता है। प्रकृति का प्रत्येक परमाणु उनके लिये आन्तरिक पीडा की अभिव्यक्ति दे रहा है—

१—नल-नरेश ५।१२

जलते नभ मे देख असख्यक,
स्नेह-हीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल।

—महादेवी

'चाद-सितारो मिलकर गाओ', 'चाद सितारो मिलकर रोओ'—दोनो कविताओ मे बच्चन का कवि विरह-मिलन के भावो की अनुभूति मे तन्मय हो उठता है। 'तुम तूफान समझ पाओगे' कविता मे कवि विक्षुब्ध हृदय से गा उठता है—

गन्ध भरा यह मन्द पवन था,
लहराता इससे मधुवन था,
सहसा इसका टूट गया जो,
स्वप्न महान समझ पाओगे ?
तुम तूफान समझ पाओगे ?

—बच्चन।

'शरद सी तुम कर रही होगी कही शृ गार' कविता मे शिव मगल सिह सुमन को दु.ख एव नैराश्य की झलक दिखाई पडती है—

सुलगता आकाश, धरती पुलकमाना,
आज हरियाली गई पथ भूल।
हत उमगो का भला कोई ठिकाना,
खो गई सरि, खो गये दो कूल।

—शिवमगल सिह 'सुमन'

बसन्त प्राणो मे नवजीवन ढालता है। उसे देखकर हरवाये गा उठते है। सबका हृदय आशा से थिरक उठता है।

गारे गा हरवाये दिल चाहे वही तान
खेतो मे पका धान
मजरियो मे फैला आमो का गध ध्यान
आज बने हैं कल के ज्यो निशान,
फूलो मे फलने के है प्रमाण !

—माचवे।

'अज्ञेय' को सावन के मेघ देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो भूमि और मेघ प्रणय-मिलन मे निरत हो। यह दृश्य देखकर कवि का हृदय वासना से उद्दीप्त हो उठता है।

घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले
भूमि के कम्मित उरोजो पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छागया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र सा, यदि तडित से झुलसा हुआ सा।

—सावन-मेघ (अज्ञेय)

'जाडे की शाम' मे भारती थके हुए जीवन का अवसाद देखता है। शोषित-पीडित व्यक्ति की सन्ध्या 'मनहूस' दिखाई पडती है—

कोहरे की पाँखे फैलाती
मँडराती
यम की चिडियाँ सी
धीमे-धीमे
उतरी आती
यह जाडे की मनहूस शाम।

—धर्मवीर 'भारती'

आलोच्य काल के प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत-सभी काव्य रूपो मे इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। प्रकृति मे मानव धर्म का आरोप करके विविध प्रकार के भावो की अभिव्यजना की गई है। प्रबन्ध काव्यो मे अधिकतर प्रकृति का चित्रण विरह के भावो को उद्दीप्त करने के लिए हुआ है। प्रकृति मे विरह-मिलन के भावो की अभिव्यक्ति सर्वथा परम्परानुगत पद्धति पर आधारित है। प्रगीत काव्य मे इसका और अधिक विस्तार हुआ है। छायावादी कवियो ने प्रकृति के नाना रूपो मे चेतनधर्म का आरोप करके नए-नए भावो की अभिव्यक्ति की है। कही उसमे मृदुल-मधुर भावो की व्यजना है और कही उग्र एवं कठोर भावो की। कही बसन्त—समीर हृदय मे हर्ष, उल्लास एव प्रेम को जगाता है, तो कही बादल अपने भैरव गर्जन से हृदय मे उथल-पुथल मचा देता है। कही जूही की कली मे नायिका धर्म का आरोप करके रति-भाव को उद्दीप्त किया गया है और कही गेहूँ की बालो मे शोषणजन्य असन्तोष की भावना व्यक्त की गई है। निष्कर्ष यह कि प्रकृति की विविध रूपो मे चेतन धर्म के आरोप द्वारा रति हर्ष, चिन्ता उग्रता, विषाद, भक्ति, दैन्य, क्रोध, अधृति, असन्तोष आदि नाना भावो की व्यजना की गई हैं। वस्तुतः आधुनिक काल मे इस परम्परा का बहुमुखी विकास हुआ है।

(३) प्रकृति का अलकार-विधान के रूप मे वर्णन—काव्य की सुन्दर,

सुबोध एव हृदयग्राही बनाने के लिये अप्रस्तुत विधान आवश्यक होता है। अलकार-विधान अधिकतर सादृश्य या साधर्म्य मूलक होता है। दो वस्तुओ मे साम्य स्थापित करने के लिये प्रकृति के क्षेत्र से उपमानो को ढूँढ कर लाया जाता है। इस कारण अप्रस्तुत-विधान मे प्राकृतिक वस्तुओ का वर्णन आवश्यक हो जाता है। कवियो ने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के द्वारा उपमानो का सग्रह करने के लिये प्रकृति का कोना-कोना छान डाला है। बहुत से उपमान कवि परम्परा मे बार-बार प्रयुक्त होने से रूढ हो गये है। नारी प्राचीन काल से ही कवियो का परम प्रिय विषय है। उसके अग-सौन्दर्य का वर्णन प्राय. सभी कवियो ने किया है। इसके लिये प्रकृति से चुन-चुन कर उपमान लाये गये हैं। उसकी वेणी के लिये नागिन, नासिका के लिये कीर, नेत्रो के लिये मीन, मृग, खजन, अधरोष्ठ के लिये बिम्बा फल, नव पल्लव, दन्त-पक्ति के लिये कुन्दकली, मोता, दाडिम, दन्त-द्युति के लिये विद्युत आदि उपमानो की योजना की गई है। हाथ, पैर और मुख के लिये कमल तथा चन्द्रमा के उपमान लाये जाते है। दो वस्तुओ मे साम्य या वैषम्य प्रदर्शित करने के लिये प्रायः प्राकृतिक उपमानो से ही काम लिया जाता है।

वैदिक-साहित्य मे सादृश्य एव साधर्म्य मूलक अलकारो का स्रोत मिलता है—

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यो दिशः श्रोत्र वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदय विश्वमस्य पद्भ्या पृथ्वी ह्येष सर्व भूतान्तरात्मा॥

—मुण्डक १।४

पुरुष के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा गया है कि द्युलोक उस विराट पुरुष का सिर है, चन्द्र-सूर्य नेत्र है, दिशायें कान है और वाणी विस्तृत वेद है। वायु इसका प्राण और हृदय विश्व है। दोनो पैर भूमि हैं। यह पुरुष सब भूतो का अन्तरात्मा है यहाँ आकाश, चन्द्र-सूर्य, दिशा, वायु, पृथ्वी अप्रस्तुत के रूप मे आये है। कालिदास का अप्रस्तुत-विधान अत्यन्त प्रिय, आह्लाद कारक एव हृदयावर्जक है—

पर्याप्त पुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठ मनोहराभ्यः
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्र-शाखा-भुज-वन्धनानि।

—कुमार सभव

अर्थात् फूलो के गुच्छो के कुचो वाली, कोपलो के ओष्ठो से मनोहर दिखाई पडने वाली बेल-वधूटियो के साथ वृक्ष अपनी शाखाओ की भुजाएँ नीचे की ओर

झुकाकर आलिंगन करने लगे। इसमे कुच, होठ, वधू और भुजाओ के लिये क्रमशः स्तवक, प्रवाल, लता और शाखाओ के उपमान लाये गये है।

धर्म शास्त्र मे भी प्राकृतिक उपमानो से काम लिया गया है और साहित्य मे भी। भेद केवल इतना ही है कि शास्त्र का उद्देश्य उपमानो के द्वारा अर्थ को स्पष्ट करना है और काव्य का अलकार-विधान सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के लिये होता है। शास्त्र की उपमाये दीपक की तरह वस्तु तत्त्व प्रकाशित करती है, किन्तु काव्य की उपमाये चन्द्रिका की तरह हृदय को आह्लादित करती है।

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलीन वह निस-दिन यह विनसाय॥

इसमे व्यतिरेक के द्वारा सीता के मुख की शोभा शरद-कमल से विशेष बताई गई है। आलोच्यकाल के कवियो ने प्रतीक एव उपमानो की योजना मे प्राकृतिक वस्तुओ का उपयोग प्रचुरता से किया है।

साकेत मे कैकेयी की अवस्था का शब्द-चित्र अकित करते हुये तुषारावृत चन्द्र-कला, तरग माला, सिंहिनी और गोमुखी गगा को सादृश्य के लिये उपस्थित किया गया है।

सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृता यथा विधु-लेखा।
बैठी थी अचल तथापि असख्य तरगा,
वह सिंही अब थी ह हा! गोमुखी गगा।

—साकेत

छायावादी काव्य मे परम्परानुगत प्रतीक एव उपमानो को स्वच्छन्दता पूर्ण ग्रहण किया गया है—

शशि मुख पर घूँघट डाले, अचल मे दीप छिपाए,
जीवन की गोधूलि मे, कौतूहल से तुम आए।

—प्रसाद

इसमे मुख का शशि, नेत्रो का दीप तथा जीवन का गोधूलि से साम्य दिखाते हुये काव्यार्थ को कितना सुन्दर बना दिया है!

वसन्त-रजनी का शृगार करने के लिये महादेवी ने प्राकृतिक वस्तुओ को चुन-चुन कर उपस्थित किया है। वे रूपक की शैली मे कितना सुन्दर छवि-चित्र अकित करती हैं—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से,
आ बसन्त-रजनी।
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुठन;
मुक्ताहल, अभिराम बिछादे,
चितवन से अपनी!
पुलकती आ बसन्त-रजनी।

—महादेवी

यहाँ बसन्त-रजनी के लिये तारागण, चन्द्रमा, रश्मि, सित घन और मुक्ताफल शृगार के प्रसाधन आये है।

वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव तथा ब्रह्म मे अभेद है। महादेवी ने इसी तथ्य को कवि की भाषा मे कहा है—

मैं तुम से हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश।

प्रसाद का अप्रस्तुत-विधान अत्यन्त हृदय स्पर्शी होता है। उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है—

घिर रहे थे घुंघराले बाल, अश अवलबित मुख के पास,
नील घन-शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास ॥कामायनी॥

इसमे केशो को लघु, नील मेघ-खडो से उपमा दी गई है। इस उपमा से केशो की केवल सुकुमारता का ही बोध नही होता, घनता, स्निग्धता और आर्द्रता भी व्यजित होती है। ऋग्वेद मे उषा की स्तुतियो मे प्रभात का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। नरेश कुमार ने उसी के आधार पर किरन धेनुओ का वर्णन किया है—

उदयाचल से किरन धेनुएँ,
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
पूँछ उठाये चली आरही, क्षितिज जगलो से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमी का सारस सुना सुना बोली।

—नरेशकुमार

प्रगतिवादी कवियो ने प्रकृति से भद्दे प्रतीको को भी चुन लिया है—

सडी झीलो से उडते आज
लोभी माँस के बगुले
दबाए चोच मे मछली—

—शकुन्तला माथुर—ताजा पानी

इसमे 'सडी झील' 'बगले' और मछली, क्रमशः रूढिवाद, शोषक वर्ग और शोषित जन के प्रतीक हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से सिद्ध है कि आलोच्य काल के छायावादी काव्य मे अप्रस्तुत विधान के रूप मे प्रकृति का पर्याप्त वर्णन हुआ है। प्रबन्ध काव्यो मे भी इसका प्राचुर्य है। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियो ने प्रकृति की ओर कम ध्यान दिया है। इनकी प्रतीक योजना मे प्रकृति के जिन उपादानो का सग्रह किया गया है, वे घृणित एव कुरुचि पूर्ण हैं। इससे नयी कविता मे इस परम्परा का ह्रास हुआ है।

(४) **धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों के लिये प्रकृति वर्णन**—भारतीय काव्य परम्परा मे प्रकृति का सचेतन रूप मे अधिक वर्णन किया गया है। वह सदैव मानव के लिये स्फूर्ति और प्रेरणा का केन्द्र रही है। मानव ने उसे जितना वाह्य नेत्रो से देखा है उससे कही अधिक अन्तश्चक्षुओ से। वैदिक स्तुतियो मे प्रकृति देवता के रूप मे परिकल्पित है। उषम्, सविता-पर्जन्य, अग्नि, सोम आदि मे देव रूपो की भावना की गई है तथा उनसे विविध शिक्षाये ग्रहण की गई है। ज्ञान, बल, प्रकाश एव आनन्द की प्राप्ति के लिये वैदिक ऋषियो ने अग्नि देव का आह्वान किया है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्य स्मज्जु हुराण मेनो भूयिष्ठा ते नम उक्ति विधेम॥

—ईश उप०, १८

(हे अग्नि, प्रकाश स्वरूप, तू हमे ऐश्वर्य के लिये सुपथ से ले चल। हे देव, तू हमारे सब कामो को जानता है। इससे तू हमसे कुटिल पाप दूर कर। हम तुझे बहुत बार नमस्कार करते है)।

इस प्रकार के अनेक वेद-मत्र है, जिनमे ऋषियो ने प्राकृतिक वेदो से जीवन के लिये शक्ति, ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की है। प्रकृति से शिक्षा और उपदेश ग्रहण करने की प्रवृत्ति का स्रोत इन्ही प्रार्थनाओ मे ढूँढा जा सकता है।

भागवत के वर्षा और शरद वर्णन मे प्रकृति से बहुत सुन्दर-सु दर नैतिक शिक्षाओ का सार सग्रह किया गया है। यथा—

तपः कृष्णा देव पीढा आसीद्वर्षीयसी मही,
यथैव काम्य तपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम्॥

—भागवत १०।२०।७

ग्रीष्म के ताप से तपी हुई पृथ्वी वर्षा के जल से अभिषिक्त होकर फिर हरी भरी

हो गई, जैसे काम्य तपस्या से दुर्बल हुआ शरीर फल मिल जाने पर फिर पुष्ट हो जाता है।

निशा मुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।
यथा पापेन पाखण्डाः न हि वेदाः कलौ युगे॥ —भागवत १०।२०।८

रात्रि के समय बादलो के घोर अन्धकार मे जुगुनुओ की ज्योति चमकने लगी और ग्रहो का दिखलाई देना बन्द हो गया, जैसे कलयुग मे पाप की प्रबलता से पाखड मतो का प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त प्राय हो जाते है।

श्रीमद्भागवत के वर्षा और शरद वर्णन की परम्परा का हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि गोस्वामी तुलसीदास ने यथावत् अनुसरण किया है। मानस के वर्षा और शरद वर्णन मे उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति ही प्रधान है। तुलसीदास के बाद रहीम, केशव, बिहारी, दीनदयाल गिरि, वृन्द आदि कवियो के प्रकृति वर्णन मे इसी परम्परा का विकास पाया जाता है। एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

बरनत केसव सकल कवि, विषम गाढ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यो भई, सन्तत मिथ्या दृष्टि॥

आधुनिक काल मे द्विवेदी युग के कवियो मे इस परम्परा का अच्छा विकास दिखाई पडता है। इस युग मे कविता के क्षेत्र मे विविध परिवर्तनो के साथ-साथ एव उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति का बाहुल्य हे। महावीरप्रसाद द्विवेदी, सत्यनारायण, हरिऔध, नाथूराम 'शकर', रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण आदि कवियो के प्रकृति वर्णन मे धार्मिक एव नैतिक उपदेशो की झलक विद्यमान है—

जल तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो,
मलयानिल ज्यो प्रतिबुद्ध रहो। —मैथिलीशरण

हरिऔध जी की 'एक तिनका' 'एक बूँद', 'फूल और काँटा' कविताओ मे इसी परम्परा का विकास हुआ है।

देखो, फल स्वादिष्ट रसीले अपने आप न खाते है।
बाँट-बाँट सर्वस्व सवो को अचल प्रतिष्ठा पाते है।
छायावाद किया करते हैं, प्रखर ताप शिरधार,
सीखो, पादप सिखलाते है, करना पर उपकार।
—नाथूराम 'शकर'

छायावादी काव्य मे भी इस परम्परा के दर्शन मिलते हैं—

थके चरण-चिह्नो को अपनी नीरव उत्सुकता से भर,
दिखा रही हो अथवा जग को पर-सेवा का मार्ग अमर! —छाया (पन्त)

प्रसाद ने भी 'आत्मकथा' कवियो मे मधुपो के गुनगुनाने मे, पत्तियो के गिरने मे और इस अनन्त नीलिमा-पट पर जगमगाते हुए नक्षत्रो मे किसी व्यग्य मलिन उपहास की कहानी को दुहराते हुए सुना है—

मधुप गुन गुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,
मुरझा कर गिर रही पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गभीर अनन्त नीलिमा मे असख्य जीवन इतिहास–
यह तो–करते ही रहते है अपना व्यग्य मलिन-उपहास। —प्रसाद

निराला की 'जागो फिर एक बार' कविता मे प्रकृति देश-वासियो को जागरण का सन्देश सुना रही है—

प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हे,
अरुण पख तरुण-किरण
खडी खोलती है द्वार।
जागो फिर एक बार। —निराला

महादेवी के अनेक गीतो मे यह परम्परा अत्यन्त सुन्दरता से पल्लवित हुई है। उनके उपदेशो मे आध्यात्मिक रग है तथा उनमे विविध भावो के सकेत मिलते है।

जलते नभ मे देख असख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल!
विहँस-विहँस मेरे दीपक जल! —महादेवी

हरिकृष्ण 'प्रेमी' की 'पखी की पीडा' कविता मे त्रस्त पक्षी की पीडा के साथ पीडिता मानवता की तुलना करके प्रेम-पथ की ओर मुडने का सकेत दिया गया है। इसमे कवि धर्म और नीति की ओर न जाकर के यथार्थ की ओर आकर्षित हुआ है—

पखी नीड तुम्हारा ही क्या, सभी गरीबो के घर लुटते,
आज मानवो के खाने को, दो दाने भी सहज न जुटते।
पर यह सब कृत्रिम उवाल है, इसका दौरा चल न सकेगा,
हिम्मत मत हारो यह जग फिर, प्रेम-पथ की ओर मुडेगा।
—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

'आषाढस्य प्रथम दिवसे' कविता मे कविवर जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने आषाढ के प्रथम मेघ को नगी मानवता का देवदूत बताया है और उससे क्षुधित, पीडित मानवो का दुःख, दैन्य निवारण करने की याचना की है। दिनकर का कवि

'हिमालय के प्रति' कविता मे एक अजेय, निर्बन्ध, पौरुष युक्त, महान् आत्मा का दर्शन करता है। उसका विश्वास है कि यदि हिमालय करवट ले तो उसकी अँगडाई से पृथ्वी हिल सकती है। वह उसे भूतल के अन्धकार का नाश करने के लिए सिहनाद करने को प्रेरित करता है। बच्चन 'तुम तूफान समझ पाओगे' कविता मे क्रान्ति का आह्वान करता है। क्रान्ति मे प्रतिगामी शक्तियो का ध्वस हो जाता है और विरोधी तत्त्व नष्ट हो जाते है।

प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियो की वाणी मे प्रकृति जान-जागरण, नव निर्माण और पुरातन वस्तुओ का ध्वस करने के लिए आतुर दिखाई पडती है।

फिर मिट्टी मे जीवन की आशा जागी है
गलने है दकियानूसी मिट्टी के ढेले
पिछली फसलो की गिरी पड रही है मेडे
सारे अनबोए खेतो की उजली धरती
अब एक हुई, स्वीकार कर रही है नव जल
गुरु आज्ञा-सा

—रघुवीरसहाय —पहला पानी

नये कवियो को प्रकृति मे प्रगतिशील भावो की गूँज सुनाई पडती है। वे सम्पूर्ण प्रकृति-सूरज, चाँद, तारे, नदी, बादल मे एक अभिनव चेतना का दर्शन करते है। प्रकृति सब मनुष्यो का 'चलते-चलो' की प्रेरणा दे रही है—

नदियो ने चलकर ही
सागर का रूप लिया
मेघो ने चलकर ही
धरती को गर्भ दिया
रुकने का मरण नाम, पीछे सब प्रसार है।

—नरेशकुमार-जनगरवा

आधुनिक युग के कवियो मे हरिऔध, मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण आदि ने प्रकृति के विविध रूपो का वर्णन करके किसी-न-किसी धार्मिक या नैतिक उपदेश की ओर इगित किया है। छायावादी कवियो ने परम्परा को और अधिक विकसित किया है। उन्होने प्रकृति से जो सकेत ग्रहण किये है उनमे आध्यात्मिक रग है, लाक्षणिक छटा है और है भावना का माधुर्य। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियो की रचनाओ मे प्रकृति के माध्यम से जीवन के यथार्थ का उद्‌घाटन किया गया है। इन कवियो ने प्रकृति के अन्तस्तल मे आन्दोलन देखा है, सिहनाद सुना है, क्रान्ति को जगाया है एव पुरातन के ध्वस

पर नूतन-सृजन का गीत गाया है। निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल मे प्रकृति के द्वारा उपदेश वर्णन की परम्परा ने सर्वथा नया रूप ग्रहण किया है।

(५) **प्रकृति में आत्म-दर्शन**—अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, जल इत्यादि प्रकृति के सभी पदार्थों मे उस परम सत्ता का प्रकाश विद्यमान है। 'तस्य भाषा सर्वमिद विभाति' (मुण्डक २।१०) उसी की ज्योति सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करती है। श्रीमद्भगवद् गीता मे उस परम तत्त्व को पृथ्वी के समस्त भूतो की आत्मा कहा गया है।[१] सूर्य, अग्नि, तथा चन्द्रमा मे जो तेज है तथा जिससे अखिल लोक प्रकाशित है, वह सब परम तत्त्व का प्रकाश है।[२] समस्त वैदिक साहित्य मे यही 'भावना' व्याप्त है।

हिन्दी-साहित्य मे सबसे पहले कबीर है, जिन्होने प्रकृति मे उस आत्म-तत्त्व का दर्शन किया है। ब्रह्मवाद की भावना से प्रेरित होकर कबीर समस्त भूमडल मे उसी परम तत्त्व का दर्शन करते है। 'लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल'। उन्हे सम्पूर्ण जगत उसी अव्यक्त सौन्दर्य की अनुपम छटा से अनुप्राणित दिखाई पडता है। उस दिव्य ज्योति के विषय मे जायसी ने भी वर्णन किया है—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ जहँ विहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥
नयन जो देखा कमल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँसा भा, दसन मोति नग हीर॥

जायसी ग्रन्थावली पृ० ५०

जायसी को निखिल जगत उसी ज्योति से अनुरजित दिखाई पडता है। हर एक परमाणु मे उसी की दिव्य विभूति छिटक रही है।

सूर ने भी निखिल लोक मे ज्योति का दर्शन किया है—

नाथ तुम्हारी जोति अभास। करति सकल जग मे परकास॥
थ वर जगम जहँ लगि भए। जोति तुम्हारी चेतन किए॥

—सूर सागर दशम स्कन्ध पृ० १७१२

तुलसी सगुणोपासक भक्त होते हुये भी सम्पूर्ण जगत् को 'सीय राममय' देखते

१—भगवद् गीता १०।२१
२—वही १५।१३

हैं तथा 'जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू' कह कर अखिल विश्व मे उसी परम तत्त्व का आभास पाते हैं।

प्रकृति के नाना रूपो मे आध्यात्मिक-सौन्दर्य का दर्शन करने की परम्परा पूर्व मध्यकाल के कवियो मे तो बहुत मिलती है किन्तु रीतिकाल मे यह लुप्त-प्राय सी हो जाती है। इस काल के कवियो की दृष्टि प्रकृति की रम्य छटाओ मे दिव्य ज्योति का अवलोकन न कर सकी, स्थूल शारीरिक प्रेम के वर्णन पर ही टिकी रही।

आधुनिक काल के नवोत्थान की बेला मे कवि नवोन्मेष से प्रेरित हुये और वे पुनः आत्म तत्त्व की ओर झुके। हरिऔध जी प्रकृति के विविध रूपो मे उस अज्ञात कलाकार की निराली छटा देखते है—

जगमगाती गगन मडल विविध तारावली,
फूल फल सब रग के सब भाँति की सुन्दर कली।
सब तरह के पेड उनकी पत्तियाँ सांचे ढली,
अति अनूठे पख की चिडियाँ प्रकृति हाथो पली।

—प्रभुप्रताप

उसकी अनन्त ज्योति से रवि-शशि प्रकाश ग्रहण करते है—

पाते है रवि-शशि अनल, जिससे प्रखर प्रकाश,
कहो उसी को कहाँ से, लखे दीप उजास [१]

रामोपासक कवियो की परम्परा मे मैथिली शरण गुप्त का नाम अन्यतम है। उन्हे भी प्रकृति के सभी पदार्थों मे दिव्याभास दिखाई पडता है—

तू ही तू है विश्व मे राम रूप गुण धाम,
है तेरी ही सुरभि से सुरभित यह आराम।
आँखे उठती हैं जिस ओर, तू ही तू देखा जाता है।[२]

कवि 'शकर' सब वस्तुओ मे आत्म-तत्त्व का विकास-प्रकाश देखते हैं—

जिसमे तेरा नही विकास,
ऐसा कोई फूल नही है।
मैंने देख लिया सब ठौर,
तुझसा मिला न कोई और।[३]

१—सरस्वती, फरवरी १९१३, षोडशोपचार पूजा।
२—सरस्वती अगस्त १९१४, मैथिली शरण गुप्त।
३—नाथूराम 'शंकर' सत्य विश्वास।

वह परम तत्त्व कज-कज मे, सरोवर मे, जलद मे—प्रकृति की हर एक छटा में दृष्टिगोचर हो रहा है—

कज रूप मे कभी सरोवर मे तुम मिलते,
लता-अक मे कभी सुमन बनकर हो खिलते।
पाते तुमको कभी प्रकृति की नई छटा मे,
कभी देखते तुम्हे जलद की सजल घटा मे।[१]

छायावादी काव्य मे प्रकृति के माध्यम से उस अव्यक्त सौन्दर्य का निरूपण प्रचुर परिमाण मे हुआ है। पन्त का कवि नक्षत्रो से मूक सन्देश सुना करता है—

स्तब्ध ज्योत्स्ना मे जब ससार,
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलको पर सुकुमार,
विचरते है जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रो से कौन ?
निमत्रण देता मुझको मौन।[२]

निराला का कवि 'विन्दु' मे विश्व की कारण-सत्ता का दर्शन करता है—

विन्दु ! विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण ?[३]

महादेवी के गीत उस अव्यक्त प्रियतम के विरह-मिलन के भावो से सकुल हैं। वे विश्व के कण-कण मे उस अरूप का नर्तन देखती है। 'लय गीत मदिर, गति ताल अमर, अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।' गीत मे उसी अव्यक्त प्रियतम का दिव्य नृत्य दिखाई पड रहा है।

रामकुमार वर्मा ने मधु-मास के हास मे उसी दिव्य ज्योति का दर्शन किया है—

यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलो मे कौन-सा मधुमास आया ?

नक्षत्र-मडित आकाश से किसी की करुणा की किरणे चमकती आ रही है, पर उसका रूप अदृष्ट होने से कवि किसी की सुध मे बेसुध हो जाता है—

१—गोपाल शरण सिंह, भूल भुलैया।
२—सुमित्रा नन्दन पन्त, मौन निमंत्रण।
३—परिमल, 'कण'।

इस रत्न-जटित अबर को, किसने वसुधा पर छाया ?
करुणा की किरणें चमका, क्यो अपना रूप छिपाया ?
नभ के पर्दे के पीछे करता है कौन इशारे ?
सहसा किसने जीवन के खोले हैं बन्धन सारे ?[१]

छायावादी काव्य मे स्थल-स्थल पर अव्यक्त सौन्दर्य के कण बिखरे पडे है। प्रसाद का झरना, लहर, पन्त का गुजन, निराला का परिमल, महादेवी की नीरजा ऐसी ही रचनाओ का कोश है, जिनमे अव्यक्त सौन्दर्य का निरूपण हुआ है। किन्तु छायावादी कवियो के चित्रण मे मध्यकालीन कवियो की अपेक्षा नूतनता का रग है। सत तथा सूफी कवियो ने प्रकृति को साम्प्रदायिक घेरे मे होकर देखा है, छायावादी कवियो ने स्वच्छन्द रूप से। वे कवि दर्शन से प्रभावित है, ये कवि स्वच्छन्दतावाद से। उनके वर्णन मे आत्मानुभूति का रग है, इनके वर्णन मे शैली-शिल्प का। किन्तु प्रकृति निरीक्षण की जैसी व्यापक एव गभीर दृष्टि आधुनिक कवियो की है, वैसी पहले कवियो की नही। इसी से छायावादी काव्य धारा मे इस परम्परा का पूर्ण उन्मेष हुआ है।

छायावाद युग के पश्चात् प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कवियो ने इस परम्परा को बिल्कुल छोड दिया है। उनके काव्य मे अध्यात्म और परमतत्व के निरूपण को वायवी कल्पना कहकर दिया गया है। उत्तरवर्ती कवियो का दृष्टिकोण घोर वस्तुवादी हो चला है, अत. उसमे इस धारा का लुप्त हो जाना स्वाभाविक ही है।

उपसंहार—उपर्युक्त अध्ययन से पता चलता है कि प्रकृति वर्णन की परम्परा हिन्दी साहित्य के प्रारभिक युग से ही चली आ रही है। कवियो ने प्रकृति का वर्णन विविध रूपो मे किया है। सामन्तीय युग के कवियो का ध्यान वीरत्व की भावना को स्फूर्ति देने की ओर था। वे प्रकृति की ओर उन्मुख न थे। इसलिए उनका प्रकृति वर्णन प्रायः परम्परा का निर्वाह मात्र है। उसके साथ कवियो के हृदय का योग नही है। काव्यो के बीच-बीच मे प्राकृतिक विषयो का वर्णन या तो किसी विरहिणी की काम दशा को उद्दीप्त करने के लिए है या अलकार-विधान के रूप मे। सन्त कवियो ने अपनी साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के अनुसार प्रकृति मे परम तत्त्व के सौन्दर्य की निरूपम झलक देखी है अथवा किसी नीति या उपदेश का सार ग्रहण किया है। सूफी कवियो ने प्रकृति के विविध व्यापारो मे अव्यक्त सत्ता की झाकी की है और शृगार की उद्दीपन-सामग्री के

१—हरिकृष्ण 'प्रेमी' अनन्त के पथ पर।

रूप मे भी प्रकृति से काम लिया है। सगुणोपासक भक्त कवियो ने प्रकृति में सचेतन धर्म का आरोप किया है, कही आलम्बन के रूप मे प्रकृति का चित्रण किया है, कही उद्दीपन के रूप मे प्रकृति का वर्णन किया है, कही अलकार-विधान मे प्रकृति का उपयोग किया है और कही प्रकृति से धार्मिक एव नैतिक उपदेशो का सार ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त उसमे विराट पुरुष की अलौकिक छवि का भी चित्र उतारा गया है। रीतिकालीन कवियो ने अधिकतर प्रकृति का वर्णन दो रूपो मे किया है—विरहिणी नायिकाओ की व्यथा को उद्दीप्त करने के लिए और अलकार-विधान के हेतु। प्रकृति के अन्य रूपो के वर्णन की ओर ध्यान देना उनके लिए सभव न था क्योकि सामन्तीय युग मे अपने आश्रयदाताओ की मनस्तुष्टि का ही उन्हे बराबर ध्यान रखना पडता था।

आधुनिक काल मे राष्ट्रीय-सास्कृतिक जागरण के प्रभाव से और पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क मे आने से कवियो ने प्रकृति का स्वतत्र रूप मे वर्णन किया है। हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य मे प्रकृति का चित्रण विविध रूपो मे हुआ है। आलोच्यकाल मे प्रकृति का चित्रण स्वतत्र रूप मे ही अधिक हुआ है। प्रकृति मे मानव धर्म का आरोप करके उसको सचेतन रूप मे चित्रित करने की प्रवृत्ति इस युग के प्रायः शत-प्रतिशत कवियो मे दिखाई पडती है। प्राकृतिक विषयो को आधार बनाकर छायावादी कवियो ने प्रचुरता से काव्य-रचना की है। प्रकृति ही छायावादी काव्य का मुख्य विषय है। इसी कारण आलोच्य काल मे प्रकृति के व्यापक क्षेत्र से नए-नए विषयो को चुनकर विशाल काव्य राशि का सृजन हुआ है। इसके अतिरिक्त आधुनिक कवियो ने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रकृति का कोना-कोना झाँक लिया है। इस प्रकार प्रकृति के व्यापक क्षेत्र का अन्वेषण करने की रुचि छायावादी कवियो मे सबसे अधिक बढी हुई है। फलतः छायावादी काव्य मे प्रकृति के लघुतम कण से लेकर अनन्त आकाश तक विविध विषय एव उपादान आ गए है। प्रकृति का ऐसा यथार्थ, स्वतत्र एव चित्रोपम वर्णन हिन्दी साहित्य के पहले कवियो मे नही मिलता है।

निष्कर्ष यह है कि आधुनिक काल के प्रकृति चित्रिण मे सर्वांगीणता, स्फीतता, चित्रोपमता, व्यजकता एव हृदयग्राहिता सबसे अधिक है। यदि छायावादी कवियो ने प्रकृति के माध्यम से अन्तर्वृत्तियो का निरूपण किया है तथा उसकी विविध छवियो को सश्लिष्ट एव स्वतत्र रूप से चित्रित किया है तो प्रगतिवादी, प्रयोगवादी रचनाकारो ने प्रकृति के द्वारा चुटीले व्यग्य, नग्न सत्य एव यथार्थ तथ्यो का उद्घाटन अधिकता से किया है। राष्ट्रीय कवियो ने प्रकृति

से क्रान्ति और स्वातन्त्र्य का दान माँगा है। प्रकृति सतत परिवर्तनशील है और वह जीर्ण एव पुरातन वेश को उतार कर निरन्तर अभिनव रूपो मे अपने को सजाती-सँवारती रहती है, अतः प्रगतिवादी कवियो ने उससे सामाजिक वैषम्य, दरिद्रता, शोषण और उत्पीडन का समूल नाश करके नव निर्माण की आशा प्रकट की है। सक्षेप मे छायावादी कवियो की रचनाओ मे अन्त.प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनो मे एकरूपता स्थापित हो गई है। अतः इन कवियो का प्रकृति चित्रण हर एक दृष्टि से स्वस्थ, सफल एव हृदयग्राही है। उत्तर छायावादी युग के कवियो की प्रकृति मे मनोविकृतियो का चित्रण प्रधान हो गया है। इसमे प्रकृति के शुद्ध एव स्वतत्र वर्णन का अभाव है।

(ङ) कामशास्त्रीय विषय

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्रो मे चौसठ कलाओ का वर्णन किया है।[1] इनमे से कुछ तो विशुद्ध साहित्यिक हैं कुछ नायक-नायिकाओ की विलास-क्रीडाओ मे सहायक है, कुछ मनोविनोद की साधक है तथा कुछ दैनिक कार्यों की पूरक हैं। साहित्य मे इनका प्राचीन काल से ही वर्णन होता आया है। काव्य के अन्तर्गत शृ गार रस के विभाव-वर्णन मे इनका बहुत-से कवियो ने स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रयोग किया है।

सस्कृत के कालिदास,[2] भारवि,[3] माघ,[4] श्रीहर्ष,[5] जयदेव[6] आदि के काव्यो मे कामशास्त्रीय विषयो का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। विवाह के वर्णन मे प्राथमिक परिचय की तथा कौतुकागार की जो बाते काम सूत्रकार ने बताई है, कालिदास के कुमार सभव मे उन सबका वर्णन मिलता है। सूरत काल के विभ्रम विलासो को नैषधकार ने नल-दमयन्ती के सभोग-वर्णन मे घटित किया है। कामशास्त्र का कन्या-बिसभण व भाव-प्राप्ति के विषय भी नैषध मे देखने को मिलते है। जलकेलि, वन-विहार, गोष्ठी-समवाय के प्रसग किरात और माघ मे आये है। चुम्बन, आलिगन, मान, प्रणय-कलह के भेदोपभेद सभी का वर्णन गीत-गोविन्द और जानकी हरण मे मिलता है। इससे सिद्ध है कि

१—वात्स्यायन; कामसूत्र, प्रथम अधिकरण, तृतीय अध्याय।

२—कुमारसभव, ८।१-१०

३—किरातार्जुनीय ९।२५ ३०

४—शिशुपाल वध सर्ग सात आठ सपूर्ण

५—नैषध १६।९९

६—गीतगोविन्द, १२।६३

सस्कृत के काव्य-ग्रन्थो मे कामशास्त्र के विषयो का प्राचुर्य है। कीथ महोदय इस विषय मे लिखते है कि शृ गारिक कविता के लिए कामशास्त्र का ज्ञान कवियो के लिए आवश्यक समझा जाता था। इसके प्रमाण है कि कवि बनने की इच्छा रखनेवालो को कामसूत्रो का अध्ययन उतनी ही निष्ठा के साथ करना पडता था, जितना व्याकरण, काव्यशास्त्र तथा कोश का अध्ययन।[1]

आलोच्यकाल से पूर्व हिन्दी साहित्य मे इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। विद्यापति, जायसी, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, देव, पद्माकर, दास, घनानन्द, भारतेन्दु आदि के काव्यो मे रति-केलि, एकान्त विहार, चित्र, रचना, चन्द्रोदय, शीतल समीर, वन-विहार, सकेत स्थल, सुरापान, द्यूत क्रीडा, जलकेलि, प्रणय कलह, चुम्बन, आलिगन, सम्पीडन, नखक्षत, हिडोला, सगीत, वाद्य, नृत्य आदि विविध कामशास्त्रीय विषयो का वर्णन है। रीति-कालीन कविता मे, नायक-नायिका भेद, दूती, सखी, सहायक आदि का प्रचुरता से वर्णन किया गया है। आलम्बन के रूप मे नायिका के नख-शिख और षोडश शृ गार भी वर्णित है। इससे सिद्ध है कि साहित्य मे कामशास्त्रीय विषयो की परम्परा सुदीर्घ काल से चली आती है। तथा इसका काव्य से अच्छेद्य सम्बन्ध रहा है।

आलोच्यकाल के कामशास्त्रीय विषयो का विवेचन नीचे लिखे काव्यो के आधार पर किया गया है—

१—प्रबन्ध काव्य—बुद्ध चरित्र, साकेत, नल-नरेश, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, दैत्यवश, कृष्णायन, साकेत-सन्त, विक्रमादित्य, कुणाल, सिद्धराज।

२—पल्लव, गुजन, परिमल, अनामिका, आँसू, नीरजा, प्रभातफेरी, अपराजिता, मधुकलश, मधुशाला, ठढा लोहा, धूप के धान।

अध्ययन की सुविधा के लिए काव्य मे पाये जानेवाले कामशास्त्रीय विषयो को नीचे लिखे वर्गों मे बाँटा जा सकता है:—

१—रग-गृह

२—शृ गार के प्रसाधन

३—आमोद-प्रमोद के विषय

४—सुरत वर्णन

१—'ग-गृह वर्णन—

कामशास्त्र के प्रथम अधिकरण के चौथे अध्ययन मे नागरक वृत्त का

१—कीथ : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ५१।

प्रकरण आया है। इसमे नागरक के भवन के निर्माण और उसकी सज्जा के वर्णन से प्रकट होता है कि उसमे प्राकृतिक शोभा, सौन्दर्यमय विविध वस्तु-सग्रह और ललित कलाओ की अद्‌भुत व्यवस्था रहती है। उसके भवन के समीप नदी, तालाब या अन्य जलाशय होता है तथा उसका भवन वाटिका या फुलवाई मे स्थित होता है। वास्तुकला की दृष्टि से सब बातो का यथोचित ध्यान रखते हुए उसका निर्माण किया जाता है। उसमे वीणा, चौपड, चित्रकला सम्बन्धी वस्तुओ का सग्रह, चन्दन, माला और सुगन्धित द्रव्यो का भी सग्रह होता है। इससे प्रतीत होता है कि नागरक के भवन के निर्माण मे प्राकृतिक शोभा, मनोरजन के साधन तथा कलात्मक सौन्दर्य का विचार सम्यक् रीति से रखा गया है तथा उसका भवन स्वच्छ, सुन्दर एव शृ गारिक प्रसाधनो से युक्त एक उत्कृष्ट आवास होता है।

बुद्ध-चरित्र, सिद्धार्थ, नूरजहाँ, दैत्यवश, साकेत और कृष्णायन मे रग-भवन का वर्णन मिलता है। बुद्ध-चरित्र और सिद्धार्थ मे राजकुमार सिद्धार्थ के रगगृह के वर्णन मे उद्यान, लता-कु ज, नदी, झरना, कु ड, चित्रित भीतियाँ, सगमरमर की शिला, उपल निर्मित चन्द्रशाला, सुन्दर शिल्पकला, ग्रीष्मकला मे शीत आवास माणिक्य, हीर, मणिमडित स्तभ, स्वर्णमय पर्यंक, वीणा, मृदग, सगीत-वाद्य, नृत्य, पानभूमि, वीणा और वामाओ एव नर्तकियो का साहचर्य, अगर, धूप, कपूर, उशीर, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य तथा दीपको का उल्लेख किया गया है। यह सम्पूर्ण प्रसग शत-प्रतिशत कामशास्त्र के नागरक के रग-गृह के आधार पर वर्णित है।

नूरजहाँ मे राजकुमार सलीम का महल तथा कृष्णायन मे द्वारका के राजभवन के वर्णन मे शत-प्रतिशत परम्परानुगत वस्तुओ का उल्लेख पाया जाता है। इन प्रसगो मे सगमरमर के कलात्मक भवन, मणि-जटित आँगन, प्राकृतिक शोभा, चन्द्रकान्त एव सूर्यकान्त मणियो की योजना, सलिल यत्र, ग्रीष्मऋतु के योग्य निवास-स्थान, ललित कलाओ का विधान, उद्यानो का सौन्दर्य, पक्षियो का कलकल स्वर, सुगन्धित पदार्थ इत्यादि सभी वस्तुओ का वर्णन कामशास्त्रीय परम्परा के अनुकूल है।

साकेत, दैत्य-वश और साकेत-सन्त के वर्णनो मे सगीत, वाद्य, नृत्य, चित्रित भित्तियाँ, रत्न, चवर, आसन, चित्र-रचना, पायन्दाज, शुक-पढाने का उल्लेख है। दैत्यवश मे उषा और अनिरुद्ध के रग-भवनो के वर्णन मे सुसज्जित पलग, हेममडित विल्लोर के भवन, दुग्ध-फेन सी कोमल शय्या, गुलाब, पखे, मजन, पान, चौसर तथा परिचारिकाओ के साहचर्य का उल्लेख किया गया है।

इन प्रसगो मे उद्यान की शोभा, पक्षियो के कलरव, जल-यत्र, सरिता, सरोवर तथा आमोद-प्रमोद के विविध-साधनो का अभाव है। फिर भी इनमे पचास प्रतिशत परम्परा के विषयो का वर्णन है। इससे सिद्ध है कि इन भवनो की शोभा का वर्णन कामशास्त्र के रग-भवन के आधार पर ही किया गया है।

कामशास्त्र के रग-गृह मे कुशासन, वैदिका, मोमबत्तियो की पेटिका का भी उल्लेख है, किन्तु आधुनिक काव्यो मे इनको कही पर भी स्थान नही मिला है। वैज्ञानिक युग के प्रभाव से इन वस्तुओ का वर्णन अनावश्यक हो गया है।

२—शृंगार के प्रसाधन—

कामशास्त्र के अनुसार इसके अन्तर्गत प्रिया के कपोल और ललाट की शोभा बढाने के लिए भोजपत्र के काटे हुए पत्रो की रचना करना (विशेष कच्छेद्य), फूलो की शय्या बनाना (पुष्पास्तरण), दात और वस्त्रो को रगना (दशन वसनागराग) विविध प्रकार की मालाएँ गूँथना (माल्य ग्रथन विकल्पाः), वेष रचना (नेपथ्य प्रयोगाः), कानो के लिए आभूषण बनाना (कर्णपत्र भगाः), सुगन्धित धूप, दीप और बत्तियो का प्रयोग करना (गन्धयुक्तिः), उचित रीति से आभूषण पहनना (भूषण योजनम्), शरीर को विलास योग्य बनाने की कला (कौचुमार योगाः), आदि प्रयोग है।

स्त्री के सोलह शृगारो का वर्णन इस प्रकार है—उबटन, मज्जन, उज्जवल वस्त्र धारण, पैरो मे जावक लगाना, केश सवारना, माग मे सिन्दूर लगाना, मस्तक पर खौर देना, कपोलो पर तिल बनाना, केसर लगाना, मेहदी रचना, स्वर्ण के आभूषण धारण करना, फूलो से शरीर को सजाना, मुख को सुगन्धित करना, मिस्सी लगाना, ओठो को रगना और काजल लगाना।[1]

नल-नरेश में दमयन्ती के शृ गार का वर्णन है। इसमे शृंगार के समस्त उपकरण तथा द्वादश आभरणो का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। शारीरिक शुद्धि, उबटन, केशो का सवारना, बालो मे फूलो गू थना, अगराग, अजन, मेहदी रचना, दातो को रगना, ताम्बूल, सुगन्धित लेप इत्यादि सब बातो का वर्णन कामशास्त्रीय पद्धति पर हुआ है।[2] विक्रमादित्य मे रानी ध्रुवदेवी और उसकी सखियो की जल-क्रीडा का वर्णन है। इसके पश्चात् रानी ध्रुवदेवी शृगार

१—कविप्रिया, ४।१७

२—नल-नरेश सर्ग १५

करती है, जिसमे कामशास्त्रीय प्रसाधनो का वर्णन है। पराग पूर्ण केसर के झूमर कानो मे पहनना, पुष्पो के कर्णफूल बनाना, मुक्ताओ से माँग सवारना, होठो को लोध्र-कुसुम से अनुरजित करना, कपोलो पर विशेष कच्छेद्य (पत्रलेखा) रचना, अगर, गोरोचन, कुकुम आदि का अगराग लेकर कपोलो पर विन्दुओं द्वारा पुष्प-पत्रादि के चित्र आलेखित करना, रेशमी वस्त्र ओढना तथा रक्ताशुक धारण करने मे परम्परा की पचास प्रतिशत वस्तुओ का उल्लेख हुआ है। रानी ध्रुवदेवी के शृगार मे विशेष कच्छेद्य, दशनवसनागराग नैपथ्य प्रयोग और भूषण योजनम् कामशास्त्रीय कलाओ का उपयोग हुआ है।[1]

बुद्धचरित्र[2] मे रग-भवन की परिचारिकाओ के शृगार वर्णन मे केशों का प्रसाधन, अगो पर सुगन्धित द्रव्यो का लेप और सुन्दरवस्त्र पहनने का वर्णन है। सिद्धार्थ[3] मे विवाह के समय पर यशोधरा के शृगार मे अलक्तक, सिन्दूर ललाटिका और कुन्तलो की सजावट का वर्णन है। दैत्यवश[4] मे राज-कुमारी उषा के केश-कलाप उज्जवल वस्त्र और फूलो के शृगार का वर्णन है। कृष्णायन[5] मे रुक्मिणी और द्रोपदी के शृंगार मे शुभ वस्त्र, आभूषण, मणि, दशनो का रगना और केसर के सुगन्धित लेप का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि उक्त प्रसगो मे शृगारिक प्रसाधनो की परंम्परा का आशिक रूप मे ही पालन हुआ है।

३—मनोविनोद के विषय—

इसके अन्तर्गत गीत, वाद्य, नृत्य, चित्र-रचना, काव्य रचना तथा जुआ खेलना, जल-केलि, वन-विहार, गोष्ठी-विहार, एव सुरापान आते है। इनमे से पहले पाँच विषयो का उल्लेख कामशास्त्र की चौसठ कलाओं मे तथा अन्तिम पाँच का नागरक वृत्त प्रकरण मे उल्लेख हुआ है। कामशास्त्र मे इनके अतिरिक्त मनोविनोद की अन्य क्रीडाओ का भी वर्णन है, किन्तु साहित्य मे उनका व्यवहार न होने से यहाँ पर उनका उल्लेख नही किया है।

गीत, वाद्य, नृत्य, चित्र रचना, काव्यालाप का वर्णन, बुद्धचरित,[6]

१—विक्रमादित्य सर्ग ४२
२—बुद्ध चरित्र, पृ० ४५
३—सिद्धार्थ पृ० ८६।
४—दैत्यवंश १३।३०३४
५—कृष्णायन, पृ० २४४ तथा २६८।
६—बुद्धचरित्र, पृ० ४५

साकेत,[१] नूरजहाँ,[२] सिद्धार्थ,[३] दैत्यवश,[४] कृष्णायन,[५] साकेत-सन्त,[६] विक्रमादित्य,[७] कुणाल,[८] और सिद्धराज[९] मे पाया जाता है। शुक-सारिका-प्रलापन (तोता, मैना पढ़ाना) भी मनोरजन की एक कला है। विक्रमादित्य मे रानी ध्रुवदेवी के वन-विहार वर्णन मे तथा साकेत के प्रथम सर्ग के उर्मिला-लक्ष्मण-सवाद मे इसका भी उल्लेख हुआ है। कुणाल मे अक्षर-मात्रा-च्युतक, विन्दुमती, गूढार्थ पदक, कूटपद, प्रहेलिका की भी चर्चा है।[१०]

जुआ खेला, जल-केलि, वन-विहार,-गोष्ठी विहार, सुरापान, पुष्प चयन भी मनोरजन के साधन हैं। जुआ खेलने मे हाथ की सफाई और पासो को अनुकूल डालने का वर्णन होता है। जल-केलि मे तालाब, कमल, सुन्दर शोभा, प्रिय के साथ आलिगन, गोता लगाना, जल उछालना, नेत्रो का राग, हस-चक्रवाकादि का अपसरण, आभूषणो का गिर जाना आदि बातो का वर्णन किया जाता है[११]। बन-विहार मे मेढा, मुर्गा लड़ाना. नाटकादि देखना, जुआ खेलना, गीत, नृत्य, वाद्य आदि का वर्णन किया जाता है[१२]। गोष्ठी के वर्णन मे काव्य और कला की समस्याओ पर विचार किया जाता है तथा उत्तम कोटि के कलात्मक मनोरजनो का विधान किया जाता है[१३]। सुरापान मे व्याकुलता, स्खलित होना, निर्लक्ष्य वचन, लज्जा और मान की हानि, प्रेम की अधिकता, लाल नेत्र, सम्भ्रमादि का वर्णन होता है[१४]। पुष्प-चयन के वर्णन

१—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० १८
२—नूरजहा, पृ० २४।
३—सिद्धार्थ, पृ० १०२।
४—दैत्यवंश, पृ० १९७।
५—कृष्णायन, पृ० ९७।
६—साकेत-सन्त, पृ० २१
७—विक्रमादित्य पृ० २१५।
८—कुणाल, पृ० २७।
९—सिद्धराज पृ० १२९
१०—कुणाल, पृ० १७।
११—कवि कल्पलता १।३।४१
१२—कामशास्त्र १।४।२५
१३—वही, १।४।२०
१४—कविकल्पलता १।३।३९

मे फूलो को चुनना, प्रिय को पुष्प भेट करना, मान, ईर्ष्या, वक्रोक्ति, सम्भ्रम तथा आलिगन का उल्लेख किया जाता है[१]।

द्यूत-क्रीडा मे हाथो की सफाई और पासो को अपने अनुकूल डालने की कला का प्रदर्शन होता है। कृष्णायन मे शकुनि तथा युधिष्ठिर के जुआ खेलने मे इसका अच्छा वर्णन किया गया है[२]। शकुनि इस कला मे इतना चतुर है कि द्यूत-क्रीडा मे युधिष्ठिर सर्वस्व हार जाते है। द्यूत का अन्य किसी काव्य मे वर्णन नही है। चौसर-चौपड का वर्णन दैत्यवश और नूरजहाँ मे बहुत अच्छा मिलता है।

जल-केलि का वर्णन दैत्यवश,[३] विक्रमादिय[४] और सिद्धार्थ[५] मे मिलता है। इन प्रसगो मे प्रेमियो का परस्पर एक दूसरे पर जल उछालना, कमल, तालाब, प्रेमालिगन, गोता लगाना, शरीर की शोभा तथा मनोविनोद सभी बातो का वर्णन परम्परानुगत है। इन दोनो काव्यो के अतिरिक्त जल-केलि का वर्णन और कही नही है।

वन-विहार का वर्णन दैत्यवश[६] और नूरजहाँ[७] मे आता है। इन प्रसगो मे आमोद-प्रमोद, प्राकृतिक दृश्यो की शोभा, गाना, बजाना तथा काव्यालाप के मनोरजनो का वर्णन तो हुआ है, किन्तु मेढा-मुर्गा आदि लडाने तथा नाटक खेलने का नही। वस्तुतः मेढा-मुर्गा आदि लडाने का मनोरजन प्राचीन काल मे बहुत प्रचलित था। आजकल के विकसित युग मे मनोविनोद के ये साधन समय से पिछडे हुए हो गए हैं। अतएव इनका वर्णन किसी भी काव्य मे नही है।

गोष्ठी और मदिरापान का सबसे अच्छा वर्णन नल-नरेश[८] काव्य मे है। इसके अतिरिक्त और किसी काव्य मे नही है। नल नरेश के सोलहवें सर्ग मे पान गोष्ठी का वर्णन है। राजा ऋतुपर्ण सरयू के तीर पर अपने इष्ट मित्रो

१—वही १।३।४०
२—कृष्णायन, पृ० ४१८
३—दैत्यवंश १८।२१
४—विक्रमादित्य सर्ग ४२।
५—सिद्धार्थ, पृ० १०२।
६—दैत्यवंश १८।७
७—नूरजहां १३८-४०
८—नल नरेश, सर्ग १६।

के साथ एक गोष्ठी आयोजित करते है, जिसमे गुणी गायक मधुर सगीत सुनाते है। सभी साथियो के हाथ मे सुरापात्र है । राजा शीतल, सुगन्धित एव उन्मादिनी वारुणी के पान करने का सुख लूटने मे मग्न हो जाते है।

वस्तुतः द्यूत-क्रीडा और मदिरा-पान दुर्व्यसन है। प्राचीन काल मे मनोरजन के रूप मे इनका उपयोग किया जाता था, किन्तु आगे चलकर यह प्रथा दूषित हो गई तथा इसके अनिष्टकारी परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए। जुआ खेलने से ही पाण्डवो की दुर्गति हुई थी। इससे इनके प्रति स्वाभाविक ग्लानि हो गई। आधुनिक युग मे राष्ट्रीय सरकार ने भी इनको सामाजिक अपराध घोषित किया है। फलतः ये विषय आधुनिक काव्यो से वहिष्कृत हो गए है।

४. सुरत वर्णन—

इसके अन्तर्गत सात्विक भाव, सीत्कार, सकुचित नेत्र, काची, ककण और नूपुरो का स्वर, अधर-चुम्बन, नखक्षत आदि बातो का वर्णन किया जाता है। सात्त्विक भाव आठ है—स्तभ, स्वेद, रोमाच, हर्ष, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलाप। काची से विपरीत रति का ग्रहण है। सीत्कार से प्रगाढालिगन का भाव है। अधरो के चुम्बन और कुचो के मर्दन से क्रमशः दन्तक्षत और नखक्षत हो जाते है। सुरत के वर्णन मे इन सब बातो का उल्लेख किया जाता है।

वस्तुतः सभोग शृगार कामशास्त्र का विषय है। यद्यपि साहित्यशास्त्र मे भी शृगार के उभयपक्ष सभोग और विप्रलभ का निरूपण हुआ है तथापि कामशास्त्र मे इन विषयो का सूक्ष्म एव विस्तृत वर्णन होने से प्रकट होता है कि साहित्य के शृगार पर कामशास्त्र का गहरा प्रभाव है।

सुरत-वर्णन के सात्त्विक भाव, सलज्ज दृष्टि, चुम्बन, आलिगन, सीत्कार आदि का वर्णन साकेत,[१] कामायनी,[२] नूरजहाँ, सिद्धार्थ,[३] दैत्यवश और विक्रमादित्य[४] मे मिलता है। 'नूरजहाँ'[५] मे राजकुमार सलीम और अनारकली के रति केलि के प्रसग मे चुम्बन, आलिगन, सलज्ज दृष्टि, हर्ष, पुलक आदि का

१—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० २३-२४।
२—कामायनी (प्रथम सस्करण) पृ० ६४
३—सिद्धार्थ पृ० १०३
४—विक्रमादित्य, प० २२०
५—नूरजहां पृ० २५

वर्णन है। इसी प्रकार दैत्यवश[1] मे उषा-अनिरुद्ध के प्रथम मिलन मे सहवास, सभोग, रोमाच, वैवर्ण्य, स्तभ आदि सात्विक भावो का वर्णन है।

मुक्तक रचनाओ मे पन्त की 'प्रथम मिलन,' निराला की 'जूही की कली' बच्चन की मधुशाला, नरेन्द्र की प्रभात फेरी, अचल की अपराजिता, शमशेर की 'एक मुद्रा', भारती की 'गुनाह के गीत' आदि स्फुटिक कविताओ मे सुरत का वर्णन है।

नयी धारा की कविताएँ यद्यपि परम्परानुगत कामशास्त्र के विषयो के अन्तर्गत नही आती है, किन्तु इनमे आप आशिक रूप से सुरत का वर्णन आ गया है।

सुरत वर्णन की काची, ककण, नूपुरो की ध्वनि, दन्तक्षत और नखक्षत आदि बाते आधुनिक युग के काव्यो मे कही पर भी नही वर्णित है। विपरीत रति का वर्णन भी आजकल की कविता मे निषिद्ध हो गया है।

इस प्रकार आधुनिक युग के काव्यो मे सुरत का वर्णन प्रचुरता से मिलता है। हिन्दी-साहित्य के हर एक युग मे इस परम्परा को प्रधानता मिली है। आधुनिक युग के काव्यो पर भी इसी का प्रभाव सबसे अधिक है। प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत-काव्य के तीनो रूपो मे इसका एक समान महत्त्व दिखाई पडता है।

छायावादी कवियो ने रूढि का पल्ला छोडकर सुरत वर्णन के स्वाभाविक एव शिष्टजनोचित रूप को ग्रहण किया है। इसी कारण उनके काव्य मे विपरीत रति तथा दन्तक्षत, नखक्षत आदि का वर्णन नही है तथा सुरत का सकेत प्रतीको के माध्यम से करा दिया गया है। प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री,' पन्त की 'आसू,' निराला की 'जूही की कली' ऐसी ही रचनाएँ है, जिनमे सुरत का अप्रत्यक्ष वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी तथा रामकुमार वर्मा के काव्यो मे प्राचीन परम्परा का नया सस्कार हुआ है।

प्रगतिवादी कविता मे यह परम्परा पुनः अपने पूर्व रूप मे प्रकट होती है। नरेन्द्र, अचल, भगवतीचरण, बच्चन आदि की रचनाओ मे यह अपने सीधे-सादे रूप मे दिखाई पडती है। इन कवियो ने काम-प्रसक्ति, चुम्बन, आलिगन, मधुपान, आसव, हाला, प्याला, सगीत, नृत्य आदि अनेक कामशास्त्रीय

१—दैत्यवंश पृ० २३५।

विषयो का रूढि-मुक्त वर्णन किया है। परम्परा वही है, किन्तु अभिव्यक्ति में परिवर्तन हो गया है।

प्रयोगवादी रचनाओ मे यह अभिनव रूप मे प्रकट हुई है। इन कवियो ने कामशास्त्र की रीति-केलि यौन-वासना (सेक्स इस्टिक्ट) के रूप मे देखा है। वे उसे अतृप्त इच्छा का परिणाम मानते है। भारती, शमशेर, गिरिजाकुमार और अज्ञेय की रचनाओ मे रति की वासना को यौन-कुठा के रूप मे देखा गया है। कामशास्त्र के शृगारिक प्रसाधनो का स्थान आजकल क्रीम, पाउडर, सेट, लिपस्टिक, स्नो, वेसलीन, नेल पालिश आदि ने ले लिया है।

आलोच्यकाल मे कामशास्त्रीय परम्परा का स्वरूप केवल प्रबन्ध काव्यो मे ही मिलता है, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है। प्रगीत काव्य मे यह परपरा नये रूप मे प्रकट हुई है। छायावादी कवियो ने प्रतीकात्मक शैली मे, प्रगतिवादी कवियो ने प्रकृत रूप मे, तथा प्रयोगावादी कवियो ने यौन कुठा के रूप मे सुरत का ही वर्णन किया है।

निष्कर्ष यह कि कामशास्त्रीय परम्परा का विकास आलोच्यकाल मे विभिन्न रूपो मे हुआ है। प्रबन्ध काव्यो मे उसका रूप बहुत कुछ परम्परानुगत है। युग-प्रवृत्ति के अनुसार छायावादी, प्रगतिवादी एव प्रयोगवादी रचनाओ मे उसका नये रूप मे विकास हुआ है। राष्ट्रवादी काव्य मे उसका कही भी दर्शन नही मिलता है।

चतुर्थ अध्याय

रस-परम्परा

रस

प्रस्तुत अध्याय मे रस-परम्परा के विकास को सक्षिप्त रूप मे दिखाते हुए आलोच्य काल की कविता मे रस की स्थिति पर विचार किया गया है। पहले शृंगार रस की परम्परा का अध्ययन किया जाता है।

शृंगार रस की परम्परा—

सस्कृत के प्रबन्ध काव्यो मे तो शृ गार का वर्णन है ही, मुक्तक काव्यो मे उससे भी अधिक है। कालिदास, अश्वघोष, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष आदि महाकवियो ने प्रेम का विशद वर्णन किया है। अमरुक, भर्तृहरि, घटकर्पर, गोवर्धनाचार्य, जयदेव आदि कवियो की मुक्तक रचनाओ मे शृ गार की परम्परा चरम सीमा तक पहुँच गई है। प्रारभ से ही सस्कृत के प्रेम-काव्यो मे एक तो वर्णनात्मक तत्त्व की प्रधानता रही है, यथा—मेघदूत तथा घटकर्पर काव्य, दूसरे उपदेशात्मक तत्त्व की प्रधानता रही है यथा अश्वघोष का सौन्दरानन्द तथा भर्तृहरि का शृ गार शतक और तीसरे स्वच्छन्द प्रेम की, यथा—अमरुक शतक, आर्यासप्तशती एव गीतगोविन्द।

हिन्दी साहित्य मे भी शृ गार की परम्परा प्रारभिक युग से ही चली आ रही है। हर एक युग मे इसका भिन्न रूपो मे विकास हुआ है। सिद्ध कवियो ने युग-नद्ध के रूप मे, विद्यापति ने राधा-माधव के लीला-विलास मे, सन्त कवियो ने अव्यक्त-अगोचर के रूपकात्मक चित्रण मे, सूफी कवियो ने लौकिक कथाओ के सरस वर्णन मे, कृष्ण-भक्त कवियो ने राधा-कृष्ण की मनोहर केलियो मे रामोपासक कवियो ने सीता-राम की मर्यादापूर्ण भगिमाओ, मे रीतिकाल के कवियो ने नायक-नायिकाओ की उच्छृखलतापूर्ण अठखेलियो मे प्रेम का ही चित्रण किया है। प्रेमानुभूति वही है, विभाव-पक्ष मे अन्तर हो गया है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल से पूर्व शृ गार की परम्परा चरमोत्कर्ष को पहुँच चुकी थी।

शृ गार का वर्णन दो रूपो मे पाया जाता है—सभोग तथा विप्रलभ। अतः इस अध्याय मे पहले सभोग शृ गार का विवेचन किया जाता है। इसका अध्ययन निम्नाकित काव्य-ग्रन्थो के आधार पर किया गया है :—

महाकाव्य—

साकेत, नल-नरेश, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, दैत्यवश, वर्द्धमान, कृष्णायन, विक्रमादित्य, अगराज।

खड काव्य—

मधुपुरी, कुणाल।

मुक्तक तथा प्रगीत काव्य—

गुजन, परिमल, अनामिका, प्रभात फेरी, अपराजिता, ठडा लोहा, धूप के धान, तार सप्तक, दूसरा सप्तक।

यो तो शृ गार की परम्परा मे पाँच प्रकार की रति का वर्णन पाया जाता है—कान्ता विषयक, राजा विषयक, देव विषयक, पुत्र विषयक और सखा विषयक, किन्तु काव्यो मे कान्ता विषयक रति का ही वर्णन सबसे अधिक मिलता है। रीतिकालीन कविता मे इसी का प्राधान्य है। इसके अन्तर्गत पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका तथा नायक-नायिका की रति का वर्णन सबसे अधिक है। नायिकाओ के अनेक भेद है— स्वकीया, परकीया तथा गणिका। स्वकीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। नायिकाओ के आठ भेद हैं— स्वाधीन भर्तृका, वासकसज्जा, खडिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा प्रोषितभर्तृका और विरहोत्कठिता। रीतिकालीन कविता मे नायिकाभेद का पूर्ण विस्तार-प्रस्तार पाया जाता है। इसी कारण इसे शृ गार काल भी कहा जाता है, किन्तु आधुनिक काल मे चलकर यह प्रवृति बहुत कुछ बदल जाती है। आलोच्यकाल मे शृ गारिक प्रवृत्ति का तो यथेष्ट विकास हुआ है, किन्तु रति के आश्रय नायक-नायिका-भेद मे विशाल परिवर्तन हो गया है।

ग्र थ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सात्विक भाव	सचारी
१—साकेत पृ०२१	लक्ष्मण	उर्मिला	अग-शोभा, चित्राकन	प्रिया का कर थामना, चूमना, लज्जित होना		हर्ष व्रीडा
२—सिद्धार्थ पृ० १०३	यशोधरा	सिद्धार्थ	नेत्रो का सौदर्य, वीणा वादन, भ्रू भग	तीव्र श्वास, सलज्ज दृष्टि	वैवर्ण्य	चपलता, हर्ष, अभिलाष

ग्र थ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सात्विक भाव	सचारो
३–वर्द्धमान पृ०८५	महाराज सिद्धार्थ	रानी त्रिशला	वर्षा ऋतु, मन्द वायु, पक्षियो का कलरव	कम्प		हर्ष, आवेग
४–नूरजहाँ पृ० २५	सलीम	अनार-कली	रमणी-यौवन, मदहोश होना अग सौन्दर्य,नृत्य वाद्य, उद्यान,	स्तभ सुध बुध खोना, हृदय मथन		हर्ष, मद, औत्सुक्य
५–दैत्यवश १८।२४	राजा–रानी	राजा–रानी	उद्यान, पावस, झूला कठ गाना गान,वाद्य, नृत्य भौहे चलाना हसना आदि			हर्ष, आवेग
६–कामायनी पृ०१३६	मनु	श्रद्धा	निभृत स्थान अन्धकार	चुम्बन	कम्प	आवेग, औत्सुक्य
७–कृष्णायन पृ०९७	गोपियाँ	श्रीकृष्ण	बासुरी बजाना, नृत्य गीत, वाद्य, शरद	थिरकना, मुसकाना, शिथिल होना		हर्ष, औत्सुक्य
८–मधुपुरी १४।४६	कृष्ण	राधा	वसत, बाँसुरी बजाना चद्र प्रभा	चुम्बन, आलिंगन	स्तभ	अभिलाष हर्ष
९–विक्रमादित्य पृ०८	ध्रुव	देवी	विक्रमादित्य प्रभात, कलिया छिट कना,सुमन खिलना	गाढालिंगन	स्तभ	अभिलाष
१०–अगराज पृ०१४।३८	कर्ण	कर्ण-पत्नी	बसन्त, चन्द्रिका प्राकृतिक शोभा			,,
११–कुणाल पृ०४६	रानी तिष्यरक्षिता	कुणाल	नटवेष, अभिनय का सौन्दर्य	विक्षिप्त होना भटकना		मोह, आवेग
१२–प्रथम मिलन (पत)	कवि स्वय	नायिका	मुग्धा अग-सौन्दर्य, कुज ज्योत्स्ना, पान, स्पर्श, कोयल का शब्द चचलता, प्रगल्भता	आम्र मुख-सुधा का चुम्बन, आलिंगन		हर्ष, मद आवेग, चपलता
१३—प्रेयसी (निराला)	प्रेमिका	प्रेमी	उषःकाल, बसन्त प्रातःपवन, उपवन	अपलक दृष्टि	स्तभ	आवेग, जडता औत्सुक्य

ग्रथ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभव	साहित्य भाव	सचारी
१४-जूही की कली (निराला)	नायक (मलयपवन)	नायिका (कली)	चलित चितवन हँसना, खेलना हाव-भाव दिखलाना आदि	स्पर्श करना, झकझोरना, कपोलो को मसलना मसलना		आवेग, हर्ष,
१५-प्राप्ति (निराला)	कवि	प्रेमिका	स्पर्श, चुम्बन, आलिगन		स्वेद	
१६-गुजन (पत)	कवि स्वय	प्रेयसी	मन्द, सुगन्ध वायु			औत्सुक्य
१७-चाँद सितारो मिलकर गाओ (बच्चन)	प्रेमी प्रेमिका	प्रेमी प्रेमिका	चाद-सितारो	चुम्बन,		हर्ष
१८-मगल वर्षा (भवासीप्रसाद)	प्रेमी	प्रेमिका				हर्ष
१९-गुनाह का गीत (भारती)	कवि स्वय	प्रेमिका	आलिगन			
२०-केसर रग रगे आगन (शकुतला माथुर)	सखि		होली, तन की सुन्दरता			
२१-रूप-शिक्षा (नरेन्द्र)	कवि स्वय	प्रेमिका				अभिलाष
२२-चादनी (अचल)	कवि स्वय	प्रेमिक				औत्सुक्य
२३-आषाढस्य प्रथम दिवसे (अज्ञेय)	कवि स्वय	प्रेयसी				अभिलाष
२४-पानी बरसा (अज्ञेय)	पत्नी	पति				आवेग

ग्रथ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	साहित्य सचारी भाव
२५–कितनी बार कवि स्वय तुम्हे देखा (सुमन)		प्रेयसी			औत्सुक्य
२६–प्रिये, न ऐसा करना[१] कवि स्वयं (केदार)		प्रेयसी			अभिलाष
२७–इस रगीन साझ मे (गिरिजाकुमार)	कवि स्वयं	प्रेयसी			अभिलाष
२८–प्लेटफार्म पर (विदाई) भारत भूषण	,,	,,			,,
२९–प्रगल्भ प्रेम[२] (निराला)	,,	,,			,,
३०–तट पर[३] (निराला)	,,	,,			,,

आधुनिक हिन्दी कविता मे परम्परागत नायक और नायिकाओ के समस्त भेद लुप्त हो गए हैं। रीतिकालीन नायिका भेद और उनके सूक्ष्म वर्ग आधुनिक युग के किसी काव्य मे नही मिलते है। स्वकीया और परकीया की रति के उदाहरण तो बहुत मिलते हैं, किन्तु गणिका को कही स्थान नही मिला है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि साकेत,[४] सिद्धार्थ,[५] वर्द्धमान,[६] दैत्यवश,[७]

१—नींद के बादल पृ० ६।
२—अनामिका : निराला
३—वही
४—साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २१।
५—सिद्धार्थ, पृ० १०३।
६—वर्द्धमान पृ० ८५
७—दैत्यवंश, १८।२४।

कामायनी[१] और अगराज[२] मे स्वकीया की रति का वर्णन है, अन्यत्र परकीया की रति का। गणिका का कही उल्लेख नही है। स्वाधीन भर्तृका, वासकसज्जा आदि नायिकाओ के आठ प्रमुख भेदो का भी किसी काव्य मे वर्णन नही है।

शृगार की परम्परा मे नायिकाओ की तरह नायको के भी भेद हैं। अपनी स्त्री मे आसक्त को पति, पर स्त्री मे अनुरक्त को उपपति और हर एक नायिका मे प्रीति रखनेवाले को व्यभिचारी (वैषिक) कहते हैं। साहित्य दर्पण मे नायक के ४८ भेद किये है। धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत। दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ के अनुसार इनमे से प्रत्येक के चार-चार भेद हैं। इस प्रकार १६ भेद होते हैं। फिर इनमे से प्रत्येक के उत्तम, मध्यम और अधम के विचार से कुल ४८ भेद होते हैं।

मधुपुरी के कृष्ण, नूरजहाँ का सलीम दैत्यवश का अनिरुद्ध, धोरललित दक्षिण नायक है, क्योकि ये कला-प्रेमी एवं कोमल प्रकृति के हैं। 'साकेत' के 'लक्ष्मण' 'सिद्धार्थ' के सिद्धार्थ, 'विक्रमादित्य' के विक्रमादित्य, 'बर्द्धमान' के सिद्धार्थ और 'दैत्यवश' के स्कन्द धीरोदात्त अनुकूल नायक हैं। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्यो के नायक धृष्ट तथा शठ कोटि मे आते है, क्योकि इनके आचरण मे उच्छृखलता और स्वैराचार की प्रवृत्ति देखी जाती है।

पत, निराला, नरेन्द्र, अचल, बच्चन, गिरिजाकुमार, केदार एव भारती की कविताओ मे जिन प्रेमी-प्रेमिकाओ और नायक-नायिकाओ का वर्णन है, वह स्वतत्र, कल्पना प आधार पर है। इनमे शास्त्रीय लक्षण घटित नही होते है। पन्त की अप्सरा, भावी पत्नी के प्रति, निराला की सन्ध्या-सुन्दरी, तट पर, प्रेयसी, केदार की 'मेरी प्यारी सबसे सुन्दर,' भारती की 'गुनाह के गीत' की नायिकाएँ कवियो की कल्पना-प्रसूत सृष्टियाँ हैं। कवियो की मानस-सृष्टि की भौतिक जगत् की नारियो के साथ कोई तुलना नही हो सकती है। अवस्था, व्यापार एव कार्य की दृष्टि से आधुनिक कवियो की नायिकाएँ रीतिकालीन परम्परागत नायिकाओ से सर्वथा भिन्न हैं। यही भेद नायको मे लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त साकेत, सिद्धार्थ, दैत्य-वश और विक्रमादित्य के रति-प्रसगो मे शील, औचित्य एव मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा गया है, जिसका परम्परागत रीतिकालीन काव्य मे नितान्त अभाव है। इससे सिद्ध है कि आधुनिक युग की कविता मे इस ओर युगानुकूल नया विकास हुआ है। इसके तीन कोटि-क्रम है—

१—कामायनी, पृ० १३६।

२—अंगराज १४।३८

(१) **नायक एवं नायिकाओं के चारित्र्य में शील एवं मर्यादा का विचार**—प्रबन्ध काव्यो मे अधिकतर यही रूप दिखाई पडता है।

(२) **कल्पना-प्रसूत आदर्श नारियों का सृजन**—प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य की नायिकाएँ प्रायः मानसी-सृष्टिया है। छायावाद से प्रभावित कवियो ने इसी कोटि के कल्पित छाया चित्र बनाये है।

(६) **सामान्य नारियों का वर्णन**—इसके उदाहरण अधिकतर प्रगतिवादी-प्रयोगवादी रचनाओ मे मिलते है। अचल, बच्चन, नरेन्द्र, भगवतीचरण, अज्ञेय, सुमन, शमशेर, गिरिजाकुमार तथा भारती की कविताओ मे नायिकाओ के भौतिक एव मासल रूप का वर्णन प्रधान है। यह रीतिकालीन परम्परा के मेल मे होने पर भी परम्परा से बिलकुल भिन्न है, क्योकि इनका वर्णन स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति से प्रेरित है, जिस पर रीतिशास्त्र का कोई प्रभाव नही है।

शृगार के आलम्बनो के साथ ही आश्रय के क्षेत्र मे भी विस्तार हुआ है। परम्परागत काव्य मे आश्रय के रूप मे प्रेमी एव प्रेमिकाओ का ही अधिकतर वर्णन है। आलोच्यकाल मे इनके अतिरिक्त शील सम्पन्न राजा-रानी भी आश्रय के रूप मे चित्रित है। साकेत, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, दैत्यवश, विक्रमादित्य, अगराज मे राजा-रानी परस्पर आश्रय एव आलम्बन के रूप मे चित्रित है। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी शृगारिक रचनाओ मे अधिकतर स्वय कवि ही आश्रय है।

सभोग शृगार मे चुम्बन, आलिगन, षड्ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, जलकेलि, वन-विहार, प्रभात, मधुपान, रात्रि, हिडोला, अनुलेपन, वस्त्राभूषण आदि विविध वस्तुओ का उद्दीपन के रूप मे वर्णन किया जाता है[१]। आधुनिक काव्य मे उद्दीपन-सामग्री का और भी विकास हुआ है। चित्राकन, वीणा-वादन, अभिनय एव अन्य ललित कलाओ का प्रदर्शन भी आलोच्यकालीन काव्यो मे पाया जाता है। साकेत, सिद्धार्थ, दैत्यवश, कुणाल इसके उदाहरण है। परम्परागत उद्दीपन-सामग्री का उपयोग तो प्राय. सभी काव्यो मे पाया जाता है, जिसमे प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन प्रधान है। मधुपान का वर्णन किसी काव्य मे नही है।

शास्त्रीय दृष्टि से सात्विक भाव आठ है—स्तभ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, कप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलप[२]। इनके अतिरिक्त कायिक, वाचिक अनुभाव भी होते है, जिनकी सख्या अनियत है। परम्परागत काव्यो मे इनका पृथक्-

---

१—**विश्वनाथ : साहित्य दर्पण** ३।२११—१२

२—वही, ३।१३५-३६

पृथक् रसो के साथ स्वाभाविक रूप से चित्रण हुआ है। वस्तुतः अनुभाव ही रस के सच्चे व्यजक है। आलोच्यकाल की सभोग शृगार की कविता मे ये सर्वत्र पाये जाते है। सात्विको मे स्तभ, स्वेद, कप, वैवर्ण्य अधिकतर से आए है, सचारियो मे अभिलाष, हर्ष, आवेग, क्रीडा, चपलता, मद, औत्सुक्य, मोह, जडता की व्यजना प्रधानता से मिलती है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकालीन कविता मे विशेषतः प्रबन्ध काव्यो मे सभोग शृ गार की परम्परा का सुन्दर विकास हुआ है। आलम्बन के रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ चारित्रिक शील एव सौन्दर्य का भी चित्रण पाया जाता है। नायक-नायिकाओ के क्षेत्र मे सर्वथा नये टाइपो का विकास हुआ है। छायावादी काव्य की नारियाँ प्रायः सुकुमार कल्पना की मानसिक सृष्टि है। उद्दीपन सामग्री का भी पर्याप्त विकास हुआ है। अनुभाव और सचारियो के क्षेत्र मे अधिकतर परम्परा का ही निर्वाह हुआ। इससे सिद्ध है कि आधुनिक कविता मे भावो की अपेक्षा आश्रय एव आलम्बनो के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है।

रसाभास—

ऊपर दी हुई तालिका से स्पष्ट है कि विक्रमादित्य, अगराज, कुणाल मे रति का वर्णन रसाभास की कोटि मे आता है, क्योकि इन स्थलो मे रति की अभिव्यक्ति उभयनिष्ठ नही है। विक्रमादित्य मे रानी ध्रुव देवी प्रेमातुर है, किन्तु नायक विक्रमादित्य नही। वह अपने आदर्श से च्युत नही होता है। अवएव रानी की प्रेम-याचना निष्फल हो जाती है। अगराज मे कर्ण की पत्नी मे रति का उत्कर्ष प्रकट होता है, किन्तु उसका पति रणोद्यत होने से अपनी पत्नी के प्रेम को नही स्वीकार करता है। अतएव उभयनिष्ठ रति का प्रकर्ष न होने से ये रसाभास की कोटि मे आते है। कुणाल मे रानी तिष्यरक्षिता की रति की अभ्यर्थना अनुचित है, क्योकि कुणाल उसको माता की दृष्टि से देखता है। रानी के अनुचित प्रस्ताव को कुमार ठुकरा देता है। अनुचित रति होने से यह भी रसाभास है[1]। निराला की 'जूही की कली' मे निरिन्द्रिय वस्तुओ की रति का वर्णन है। नायक है मलय पवन और नायिका कली। वास्तविक नायक के धर्मों का अभाव होने से यह भी रसाभास मे आता है। धर्मवीर भारती के 'गुनाह के गीत' मे प्रदर्शित रति भी अनौचित्य का प्रकाशन है। अतः यहाँ भी रसाभास है।

१—विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, ३।२६४

विप्रलंभ शृंगार

विरह की परम्परा—

सस्कृत-साहित्य मे विरह का वर्णन प्रचुरता से मिलता है। प्रायः सभी महाकवियो ने किसी-न-किसी नारी के विरह का वर्णन किया है। कालिदास का मेघदूत विरही यक्ष के आँसुओ से आर्द्र है। अश्वघोष के बुद्धचरित मे विरहिणी यशोधरा की पीडा अकित है। नैषधकार ने नल के विरह मे दमयती की वेदना को उच्छ्वसित किया है। भवभूति के उत्तर रामचरित मे राम की दारुण व्यथा ने पत्थरो को भी रुला दिया है।

हिन्दी के कवियो मे विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, केशव, देव, बिहारी, घनानन्द, भारतेन्दु एव हरिऔध आदि अनेक समर्थ कवियो ने विरह की परम्परा को पल्लवित किया है। इससे सिद्ध है कि विरह-वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है।

परम्परागत विरह के वर्णन मे काव्य कल्पलता वृत्ति के अनुसार ताप, निःश्वास, मौन, शरीर की कृशता, कमल की शय्या, रात्रि का लम्बा होना, जागरण तथा शिशिर की उष्णता का उल्लेख किया जाता है[1]। साहित्य दर्पण-कार ने विरहिणी के अग तथा वस्त्रो की मलिनता, शिर पर एक वेणी का धारण करना, नि.श्वास-उच्छ्वास, रुदन, भूमिपात आदि बातो का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त शारीरिक व्याधि, सन्ताप, पीलापन, कृशता, अरुचि, व्याकुलता, मानसिक शून्यता, तन्मयता, उन्माद, मूर्च्छा तथा मरण का भी वर्णन है[2]। केशव की कविप्रिया मे विरह के समय श्वास, निशा और चिन्ता का बढना, रुदन करना, प्रतीक्षा करना, शरीर का काला, पीला, दुबला, गर्म और ठडा होना, भूख-प्यास और सुध-बुध का घटना, सुख, नीद तथा शरीर की शोभा का घटना कहा गया है। साहित्य दर्पणकार ने शारीरिक पीडा का प्रधानता से वर्णन किया है। काव्य कल्पलता वृत्ति मे विरहिणी की शारीरिक दशा के साथ मानसिक चेतना का भी वर्णन है। उन्होने दिवस-गणना, रात्रि की दीर्घता, जागरण और शीत-काल मे भी ताप के वर्णन द्वारा मानसिक वेदना की ओर इगित किया है। इस प्रकार काव्य कल्पलताकार ने शारीरिक और मानसिक दोनो पक्षो को प्रधानता दी है। केशवदास ने विरह के समय श्वास,

---

१—काव्यकल्पलतावृत्ति, १।५।८७

२—साहित्यदर्पण, ३।२०४–५।

रात्रि तथा चिन्ता का बढना बताया है। इससे मानसिक वेदना की ओर लक्ष्य है। रुदन और प्रतीक्षा से भी वही अभिप्राय है। विरहिणी के शरीर के काला, पीला, दुबला, गर्म और ठडा होने से, भूख-प्यास तथा सुध-बुध घटने से और सुख-नीद तथा शरीर की कांति नष्ट होने से शारीरिक दौर्बल्य प्रकट किया गया है। इस प्रकार केशव ने शारीरिक एव मानसिक प्रभावो को समान रूप से वर्णन किया है। इससे सिद्ध है कि विरह मे शारीरिक एव मानसिक दोनो ही दशाओ का वर्णन होता आया है।

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो मे विरह का वर्णन नीचे लिखे स्थलो पर पाया जाता है :—

'बुद्ध चरित' की यशोधरा, 'साकेत' की उर्मिला, 'नल-नरेश' की दमयन्ती, 'सिद्धार्थ' की यशोधरा, 'यशोधरा' की गोपा, 'वैदेही-वनवास' की सीता, 'दैत्यवश' की उषा, 'कृष्णायन' और 'उद्धवशतक' की गोपियो के विरह का वर्णन परम्परानुगत है। इन प्रसगो मे शारीरिक कृशता और मानसिक वेदना का मार्मिक वर्णन किया गया है। बुद्धचरित की यशोधरा काम-ज्वर से पीडित है। अतएव उसके अधर, कपोल, नेत्र तथा शरीर की शोभा क्षीण हो गई है। सम्पूर्ण देह पीली पड गई है, उसको चलना-फिरना दूभर हो गया है तथा नेत्रो की ज्योति मन्द है। रात्रि की विकरालता, प्रतीक्षा के दिवस एव प्रेम की प्रगाढता से मानसिक पक्ष का बोध होता है[1]। साकेत की उर्मिला तथा यशोधरा की गोपा के विरह मे काम-ज्वर से उद्भूत निश्वास, उच्छ्वास, पीलापन, भूख और नीद का घटना, सन्ताप, अरुचि, व्याकुलता, उन्माद, मूर्च्छा, दौर्बल्य, सुखदायक वस्तुओ की दु.खप्रद अनुभूति, समदु खिनी प्रोषित पतिकाओ के प्रति सहानुभूति, दिवस गणना, रात्रि की दीर्घता, शीतकाल की उष्णता, चन्द्रोपालभ तथा उद्दीपन के रूप मे छः ऋतुओ का वर्णन पाया जाता है। इन प्रसगो मे कवि ने प्रेमानुभूति के साथ पतिव्रता नारी के शील का भी चित्रण किया है। 'साकेत' की उर्मिला को परिजनो की सेवा, दुखीजनो के प्रति सहानुभूति तथा प्रियतम की शुभ कामना का निरन्तर ध्यान रहता है[2]। 'यशोधरा' की गोपा भी कुटुम्बीजनो के प्रति कर्तव्य-पालन, राहुल के लालन-पालन तथा गौतम की मगल कामना करती रहती है। दिवस-गणना, जागना,

---

१—बुद्धचरित, पृ० १६६–६७।

२—साकेत (द्वितीयावृत्ति), पृ० ३०५।

वाट जोहना, प्रिय का नाम जपना, स्वप्न देखना, प्रिय के ध्यान मे तन्मय होना से मानसिक क्षोभ प्रदर्शित किया गया है[१] ।

'नल-नरेश' की दमयन्ती 'सिद्धार्थ' की यशोधरा, 'वैदेही वनवास' की सीता, 'दैत्यवश' की उषा,[२] 'कृष्णायन[३] और 'उद्धव शतक' की गोपियो के विरह मे शारीरिक कृशता, अगो का पीला पडना, सन्तप्त होना, अविरल अश्रु ढालना, फूट-फूट कर रुदन करना, व्याकुल होना, मूर्च्छित होना, दीर्घ साँस लेना, देह की सुधबुध खोना, चिन्ता, प्रतीक्षा एव प्रिय की स्मृति का वर्णन हुआ है। इन सभी प्रसगो मे विरह के शारीरिक और मानसिक दोनो पक्षो का चित्रण है। सिद्धार्थ, वैदेही-वनवास, दैत्यवश और उद्धवशतक मे विविध ऋतुओ के वर्णन द्वारा विरह के भावो को उद्दीप्त किया गया है। सिद्धार्थ की यशोधरा विरहावस्था मे सरोज-कली, भ्रमर तथा रोहिणी नदी के समक्ष अपना दुःख निवेदन करती है तथा हस द्वारा अपने प्राणपति को सन्देश भेजती है।[४] उपर्युक्त काव्यो मे विरह की व्यजना नारियो मे दिखाई गई है तथा विरह का वर्णन शत-प्रतिशत रूढिगत है।

'नूरजहाँ' मे सलीम का, 'तुलसीदास' मे तुलसी का, 'दैत्यवश' मे इन्द्र का, 'रावण महाकाव्य' मे मेघनाद का और 'स्वप्न' काव्य मे बसन्त के विरह का वर्णन है। इन काव्यो मे विरह की व्यजना पुरुषो मे दिखाई गई है। नूरजहाँ के दसव सर्ग मे सलीम के विरह का वर्णन है। उसकी प्रेमिका मेहरुन्निसा शेर अफगन के साथ बगाल को चली गई है। राजकुमार सलीम उसके विरह मे इतना अधिक व्याकुल हो उठता है कि प्रेयसी के निकट सन्देश ले जाने के लिए मलय पवन को दूत बनाकर भेजता है। इस प्रसग मे सलीम की काम-बाधा का वर्णन है, जिसमे विरह की पीडा, तन्मयता, कसक, वेदना, स्मृति, अधीरता, लालसा का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन है। इसमे मानसिक वेदना का ही चित्रण प्रधान है, शारीरिक पक्ष की ओर कवि का ध्यान कम है।

'तुलसीदास' मे रत्नावली के वियोग मे तुलसी की विरह-दशा का चित्रण है। इस प्रसग मे विरह का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म है। इसमे केवल तुलसी की अन्यमनस्कता, उदासी, उन्मनता, मुग्धता आदि बातो का ही वर्णन किया गया

१—यशोधरा
२—दैत्यवश १२।३६-४४
३—कृष्णायन, पृ० २२४।
४—सिद्धार्थ, सर्ग १६।

है। परम्परा का आंशिक रूप मे पालन हुआ है क्योकि परम्परा का आधार न लेकर कविवर निराला ने स्वतत्र उद्भावनाओ का समावेश अधिक किया है[१]।

दैत्यवश महाकाव्य के सप्तम सर्ग मे शची के वियोग इन्द्र के विरह का वर्णन है। दैत्यो के भय से मानसरोवर मे छिपे हुए इन्द्र हस को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास भेजते है। इसमे इन्द्र की विरहानुभूति, तन्मयता, सन्ताप और काम-व्यथा का अत्यन्त सजीव चित्रण है। इसी प्रकार रावण महाकाव्य मे पातालपुरी मे स्थित सुलोचना के सौन्दर्य का दर्शन कर मेघनाद को पूर्वराग हो जाता है और वह काम-व्यथा से पीडित होकर चन्द्रमा को दूत नियुक्त करता है। इस चन्द्र-दूत के प्रसग मे मेघनाद के मदन-ज्वर का वर्णन अत्यन्त सरस शैली मे वर्णित है। इस वर्णन पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव है। स्वप्न नामक काव्य मे सुमना के वियोग मे वसन्त के विरह का वर्णन है। इसमे मानसिक उद्वेगो का ही वर्णन अधिक है तथा परम्परा का आशिक रूप से ही पालन हुआ है।

प्रबन्ध काव्यो के अन्तर्गत 'कामायनी' की श्रद्धा, 'वैदेही वनवास' की सीता और 'कुणाल' की तिष्यरक्षिता का विरह-वर्णन रूढि-मुक्त है। कामायनी के 'स्वप्न' सर्ग मे मनु के वियोग मे श्रद्धा के विरह का वर्णन है। यह वर्णन अत्यधिक काल्पनिक है तथा प्रसाद जी ने इस प्रसग मे प्रकृति का आधार लेकर स्वतत्र उद्भावनाओ का आश्रय लिया है। परम्परागत विरह के प्रसगो मे वस्तु-वर्णन की प्रधानता है, इसमे भावोद्गारो की। अतः यह वर्णन सर्वथा स्वतत्र पद्धति पर हुआ है। कुणाल मे तिष्यरक्षिता के विरह का वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त तथा कल्पनापूर्ण है। इसमे परम्परा की किसी बात को भी स्थान नही मिला है। समस्त वर्णन कवि की स्वतत्र कल्पना है। इसी प्रकार वैदेही-वनवास मे रूढिगत बातो का आश्रय न लेकर कवि ने स्वतत्र वर्णन किया है।

मुक्तक रचनाओ मे पन्त जी की 'ग्रन्थि,' उच्छ्वास तथा आसू, निराला जी की 'प्रेयसी', रेखा, प्रसाद का आँसू, द्वापर, की गोपी, महादेवी की नीरजा की कविताएँ, नरेन्द्र की 'मेरी याद' और 'विदा,' अचल की 'फागुन की रात,' 'अन्तिम भेंट' बच्चन के आकुल अन्तर और एकान्त सगीत के विरह गीत, सुमन की 'शरद सी तुम कर रही होगी कही शृगार,' गिरिजाकुमार की

१—तुलसीदास, छ० ७१-७५।

'विदा समय,' 'बीत चली सूनी की सूनी,' अज्ञेय की 'सावन-मेघ' और 'पानी बरसा' मे वियोग के भावो की व्यजना मिलती है।

उपरि निर्दिष्ट कविताओ मे विरह की व्यजना सर्वथा स्वतत्र एव नवीन है। परम्परागत विरह के वर्णन से इसका बिलकुल साम्य नही है। इन कविताओ मे विरहजन्य कृशता और दौर्बल्य का वर्णन करने की ओर ध्यान न देकर शरीर पक्ष की बिलकुल उपेक्षा की गई है, जिससे विरह का वर्णन वस्तु-सापेक्ष न होकर भावात्मक हो गया है। भावो की व्यजना कभी सूक्ष्म, कल्पनात्मक तथा अधिकतर प्रतीको के सहारे की गयी है। पन्त की ग्रन्थि तथा प्रसाद का आँसू विरह-काव्य है। इन दोनो ही काव्यो मे मानसिक घात-प्रतिघातो के बीच विरह की व्याकुलता का वर्णन किया गया है। ग्रन्थि मे भावोद्वेगो का चित्रण अन्योक्ति की पद्धति पर किया गया है—

शैव लिनि, जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल आलिगन करो तुम गगन को,
चन्द्रिके, चूमो तरगो के अधर
उडुगणो गाओ पवन वीणा बजा
पर हृदय सब भाँति तू कगाल है
देख रोता है चकोर इधर सिहर
वह मधुप बिधकर तडपता है, यही
नियम है ससार का रो हृदय रो।

—ग्रन्थि।

प्रसाद के आँसू मे विकल रागिनी का हाहाकार है, हृदय का रो रो कर सिसकना, झझा झकोर का गरजना, अभिलाषाओ का करवट बदलना तथा सुप्त व्यथाओ के जागने का वर्णन है। कवि ने स्मृति-पटल पर अकित प्रिय की मनोहर छवि का भी चित्राकन किया है। इसके अतिरिक्त हृदय के छालो के छिलने और फोडो के फूटने का भी वर्णन किया है, जिस पर फारसी शायरी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अभिप्राय यह कि इस वर्णन मे सर्वत्र सूक्ष्मता, भावात्मकता, लाक्षणिक मूर्ति-विधान एव प्रतीक-योजना का आश्रय लिया गया है। विरह के वर्णन मे प्राचीन कवियो ने स्वभावोक्ति का मार्ग अपनाया है। उसमे वियोग की बातो को सीधे प्रकार से कहा गया है। छायावादी काव्य मे विरह का वर्णन गूढ, साकेतिक एव प्रतीकात्मक है।

महादेवी के गीतो मे विरह की वेदना सम्पूर्ण सृष्टि मे व्याप्त दिखाई पडती है। किन्तु यह आध्यात्मिक विरह के भावो से सवलित है। उन्होने विरह

के भावो को उद्दीप्त करने के लिए विविध ऋतुओ का भी वर्णन किया है। इन गीतो मे ऋतुओ के आलकारिक वर्णन द्वारा विरह की अभिव्यजना की गई है।

१—मधुर पिक हौले बोल ! (वसन्त)
२—मै बनी मधुमास आली। (वसन्त)
३—यह पतझर मधुवन भी हो। (हेमन्त)
४—लाये कौन सदेश नये घन। (वर्षा)
५—मैं नीर भरी दुख की बदली। (वर्षा)
६—पावस घन सी उमड बिखरती (वर्षा)
शरद निशा सी नीरव घिरती। (शरद)

महादेवी के रूपकात्मक ऋतु वर्णनो मे विरह की व्यजना साकार हो गई है, किन्तु यह विरह के वर्णन का बिलकुल नया विकास है, जो परम्परागत ऋतु-वर्णन से सर्वथा भिन्न है। निष्कर्ष यह कि छायावादी कवियो के विरह-वर्णन सूक्ष्मता आलकारिकता, प्रतीकात्मकता एव प्रधान है। छायावादी काव्य मे इस पद्धति का नूतन विकास पाया जाता है।

नरेन्द्र की 'मेरी याद,' सुमन की 'शरद सी तुम कर रही होगी कही शृगार' बच्चन की 'चाद-सितारो मिलकर रोओ,' अचल की 'जब नीद नही आती होगी' कविताओ मे विरह का स्थूल एव अनावृत वर्णन है। इनमे परम्परागत विरह की वस्तुओ का वर्णन नही है, केवल भावो का प्रकाशन है तथा अनुमान के द्वारा प्रेमिकाओ की दशा का काल्पनिक चित्रण है। वस्तु की अपेक्षा मनोवेगो का चित्रण प्रधान है, जिनमे स्वप्नो के टूटने, अरमानो के बिखरने और आकुल अन्तर के तडपने का वर्णन अधिक है। नरेन्द्र की 'मेरी याद' मे नारी के विरह मे कल्पित वेदना का चित्रण है, खीझ है, और है भावी मिलन की लालसा। सुमन की 'शरद सी तुम कर रही होगी कही शृगार' मे कवि के आत्म-विरह का वर्णन है, जिसमे व्यथा, अश्रु, अन्तर्दाह, अन्तर की पीडा, प्रतीक्षा, वक्ष की धडकन, चिन्ता, क्रन्दन, मनुहार, उपालभ एव अन्तर्वेदना की विवृति है। इस वर्णन मे परम्परागत विरह की अनेक बातो का समावेश हो गया है, किन्तु इसमे कवि के आत्म-विरह का स्थापन है। इस प्रकार के आत्म-विरह को स्थापित करने की यह बिलकुल नई शैली है, जिसको परम्परा पर आधारित नही कहा जा सकता है। प्रगतिवादी कवियो की अन्य रचनाओ मे भी इसी पद्धति का अवलम्बन किया गया है। अचल की 'फागुन की रात,' बच्चन की 'इस पार प्रिये तुम हो, मधु है, उस पार न जाने क्या होगा,' गिरिजाकुमार

की 'बीत चली सूनी की सूनी' और 'इस रगीन साझ मे' इसी प्रकार के भावों का प्रकाशन है। अज्ञेय की 'सावन-मेघ' कविता मे विरह का प्रतीकात्मक वर्णन है। कवि ने नारी के विरह मे उत्तप्त श्वास, धमनियो मे उमडती हुई लहू की धार एव अभिशप्त प्यार का वर्णन प्रतीकात्मक शैली पर किया है; इसमे कुठा-ग्रस्त प्रेम का प्रकाशन है। इसी प्रकार अज्ञेय की 'पानी बरसा' मे बिरहातुर नायिका के हृदय की वेदना, अगो का फडकना तथा प्रिय के मिलन की उद्दाम लालसा की अभिव्यक्ति है। विरह की वेदना का ख्यापना स्वय नारी के मुख से ही होने के कारण इसमे रति की वासना प्रधान है। विरह के वर्णन की यह शैली बिलकुल नवीन है। इसमे परम्परा का आश्रय नाम मात्र को भी नही है।

ऋतु, बारहमासा और अष्टयाम—

विरह की परम्परा मे इनका वर्णन प्राचीन काल से होता आया है। रीतिकाल के बिहारी, देव, घनानन्द, पद्माकर आदि सभी प्रतिनिधि कवियो ने इनको स्थान दिया है। नागमती के विरह का वर्णन करने के लिए जायसी ने बारहमासा की योजना की है। लोक गीतो के बारहमासे प्रसिद्ध है। आलोच्यकाल मे अष्टयाम और बारहमासो के वर्णन की प्रथा लुप्त प्राय है। साकेत-सन्त के चतुर्दश सर्ग मे एक अष्टयाम का वर्णन आया है। इसमे राम के वियोग मे भरत की आठोयाम की दिनचर्या का वर्णन है। किन्तु इस प्रसग मे विरह की अपेक्षा भरत के शील, सेवा एव कर्त्तव्य-पालन की प्रधानता है। इस प्रकार यह परम्परागत अष्टयाम का नूतन विकास है। बारहमासो का वर्णन कही नही मिलता है। पन्त के 'उच्छ्वास' मे 'सावन-भादो' मे कवि के विरहोच्छ्वासो का वर्णन है। 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' शीर्षक से अनेक कविताएँ लिखी गई है, जिनमे अज्ञेय की कविता मे विरह का वर्णन पाया जाता है। अज्ञेय ने 'माघ-फागुन-चैत' शीर्षक से कविता लिखी है, किन्तु इनमे बारहमासे का अस्फुट रूप ही सामने आता है। ये कविताएँ परम्परागत बारहमासा से भिन्न आधुनिक युग की नवीन शैली मे वर्णित है।

उद्दीपन के रूप मे ऋतुओ का वर्णन साकेत, यशोधरा, नल-नरेश उद्धवशतक, वैदेही वनवास, साकेत-सन्त एव महादेवी के गीतो मे मिलता है। इन प्रसगो मे भिन्न-भिन्न ऋतुओ मे विरहिणी के विविध भावो की व्यजना की गई है। साकेत सन्त और वैदेही-वनवास का ऋतु वर्णन कथानक के पृष्ठाधार के रूप मे है। महादेवी का ऋतु-वर्णन सूक्ष्म एव आलकारिक है। उद्धव शतक

मे भी आलकारिक वर्णनो द्वारा विरह की व्यजना की गई है। इनमे वैदेही-वनवास, साकेत-सन्त और महादेवी के गीतो मे ऋतु वर्णन की शैली स्वतत्र एव नवीन है, क्योकि इन काव्यो मे प्रकृति का वर्णन स्वतत्र रूप से हुआ है। महादेवी के गीतो मे ऋतुओ का अस्फुट रूप ही सामने आया है। इस पर परम्परा का प्रभाव बिलकुल नही है। शेष काव्यो का ऋतु-वर्णन परम्परानुगत है। यशोधरा मे गुप्त जी ने विरहिणी यशोधरा की वियोगावस्था को छ. ऋतुओ मे वर्णन किया है। हर एक ऋतु विरहिणी की पीडा को उद्दीप्त करती है। इसके साथ ही हर एक ऋतु मे वह प्रियतम के रूप, गुण एव स्वभाव का सादृश्य ढूँढती है। कही-कही विरहिणी के तन और मन की दशा का ऋतुओ के साथ सादृश्य दिखाया गया है। इसमे तीन बाते प्रधान है—

१—ऋतुओ के प्रभाव से विरहिणी के ताप का बढना।

२—ऋतुओ मे प्रिय के गुण, धर्म एव रूप के सादृश्य का वर्णन।

३—विरहिणी के तन-मन के साथ ऋतुओ के सादृश्य का वर्णन।

उदाहरण के लिए ग्रीष्म की प्रचडता मे अपने ताप और प्रिय के तप के साम्य का वर्णन। इसी प्रकार वियोग की ऊष्मा से पृथ्वी भी जलती-सी दिखाई पडती है। साकेत के नवम् सर्ग मे वियोगिनी उर्मिला हर एक ऋतु मे प्रियतम के ही किसी-न-किसी गुण अथवा सौन्दर्य का दर्शन करती है। ऋतु के माध्यम से विरहिणी के हृदय के भावो की व्यजना अत्यन्त मधुर है।

दूत या सन्देशहर—

वियोगावस्था मे प्रिय के पास सन्देश ले जाने के लिए दूतो की योजना की जाती है। कालिदास का मेघदूत इस दिशा मे सबका पथ-प्रदर्शक है। श्रीहर्ष के नैषध मे हसदूत का एक अत्यन्त रोचक प्रसग आया है। इसके अतिरिक्त सस्कृत साहित्य मे इस परपरा का बहुत अच्छा विकास हुआ है। दास गुप्ता ने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे इनकी सख्या पचास के ऊपर बतलाई है—चन्द्र-दूत, पिकदूत, पवनदूत, पादाँदूत, उद्धवदूत, कपिदूत, भ्रमरदूत, काकदूत आदि[1]।

हिन्दी साहित्य मे भी इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। जायसी की नागमती 'भौरा और काग' के द्वारा प्रियतम के पास सन्देश भेजने का उपक्रम करती है। सूर के भ्रमर गीत मे उद्धव को दूत के रूप मे भेजा गया है। इसी प्रकार नन्ददास का भँवरगीत, हरिऔध का पवनदूत, सत्यनारायण 'कविरत्न' का

१—दास गुप्ता : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३७२।

भ्रमरदूत आलोच्यकाल के पहले ही लिखे जा चुके थे। इससे सिद्ध है कि वियोग के वर्णन मे दूत-काव्यो की एक समर्थ परम्परा का विकास हुआ है।

आलोच्यकाल मे दूत या सन्देशहरो की योजना अनेक काव्यो मे मिलती है। बुद्धचरित की यशोधरा प्रियतम के पास सन्देश ले जाने के लिए 'गगन चर' को भेजती है। सन्देश मे दैन्य एव मरण की सूचना है।[२] नल-नरेश मे 'हस-दूत' का प्रसग है। राजा नल का प्रिय करने के लिए हस दमयन्ती के पास जाता है तथा नल के रूप, गुण एव सौन्दर्य की और प्रेमी को आकर्षित करता है। यह प्रसग नैषध के आधार पर वर्णित है तथा इसमे प्राचीन परम्परा का पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है। दैत्यवश के सातवे सर्ग मे हस-दूत का एक अन्य प्रसग है। एक समय देवराज इन्द्र को दैत्यो से परास्त होकर इन्द्रपुरी से पलायन करना पडता है। वे मानसरोवर मे छिपकर प्राण बचाते हैं। अपनी प्रियतमा से विमुक्त होकर इन्द्र को असीम दु ख भोगना पडता है। तब वे हसो के द्वारा अपनी पत्नी को सन्देश भेजते है। इस प्रसग मे कवि ने कालिदास की पद्धति का अनुसरण करते हुए हसो के यात्रा-मार्ग का वर्णन किया है। 'हो तुम हस के वसिन मे विधि के वर वाहन आप सुहाये,' मे मेघदूत के यक्ष की 'जात वशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकाना, जानामि त्वा प्रकृति पुरुष काम रूप मघोन' की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। काम-ज्वर से पीडित इन्द्र के सन्देश दैन्य, स्मृति, अभिलाष एव औत्सुक्य की व्यजना अत्यन्त मार्मिक है। मार्ग के दृश्यो की योजना मे कामोद्दीपक प्रसगो का ही प्रचुरता से वर्णन है।

रावण महाकाव्य के सातवे सर्ग मे चन्द्रदूत का वर्णन है। इस प्रसग मे मदन-ज्वर से पीडित मेघनाद पातालपुरी मे स्थित सुलोचना के पास सन्देश पहुँचाने के लिए चन्द्रमा को दूत बना कर भेजता है। इसमे मेघदूत की परम्परा का ही सफलतापूर्वक अनुसरण किया गया है।

रावण महाकाव्य के—

"रथ चक्र के नेमि फिरै तर-ऊपर, त्यो मग मे चलिबे के हितै।

क्रम काल कौ लै जग त्यो नर की, फिरती रहै भाग्य की रेखा नितै।"

पद्य मे मेघदूत के—'नीचैर्गच्छ त्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' का ही सफल अनुवाद हुआ है।

सिद्धार्थ के सोलहवे सर्ग मे विरहिणी यशोधरा तपस्या रत सिद्धार्थ के पास सन्देश ले जाने के लिए हस को दूत बना कर भेजती है। विरहिणी यशोधरा

१—बुद्ध चरित, पृ० १६८।

प्रियतम के श्री-चरणो मे पत्रिका छोडने तथा क्रेकारो की ध्वनि से उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए हस को प्रेरित करती है।

नूरजहाँ के दसवे सर्ग मे राजकुमार सलीम मलयानिल को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी मेहरुन्निसा के पास भेजता है। मेहर की शेर अफगन से शादी हो जाने पर वह सुन्दरी बगाल को चली गई है। इधर सलीम उसकी रूप-माधुरी से मतवाला होकर असीम वेदना का अनुभव करता है। इस प्रसग मे मलयानिल को सन्देश प्रदान करते हुए कामोद्दीपक दृश्यो की सुन्दर योजना की गई है। आशा, अभिलाष, औत्सुक्य, उद्वेग आदि सचारियो की व्यजना सुन्दर है।

'मधुपुरी' काव्य के १९ वे सर्ग मे कवि ने राधा के विरह मे एक सन्देश काव्य की योजना की है। श्रीकृष्ण की वियोग-व्यथा से पीडित राधा जी भ्रमर को दूत बनाकर प्रियता के पास भेजती है। राधा के सन्देश मे प्रिय के लिए आँसुओ का अर्घ्य है, स्नेह की तरलता है तथा करुणा की आर्द्रता है।

इससे सिद्ध है कि आधुनिक काल मे दूतो के द्वारा सन्देश भेजने की परम्परा का सुन्दर विकास हुआ है। इन प्रसगो मे परम्परा की पद्धति पर चलते हुए नई उद्भावनाओ का विकास करने के लिए कवियो को अच्छा अवसर मिला है।

चन्द्रोपालंभ —

वियोग के वर्णन मे चन्द्रोपालभो की परम्परा बहुत प्राचीन है। सस्कृत-साहित्य मे श्रीहर्ष का चन्द्रोपालभ अद्वितीय है[1]। कालिदास एव भवभूति ने भी इस विषय पर पर्याप्त लिखा है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे चन्द्रमा पर अनेक उक्तियाँ मिलती है। पडितराज जगन्नाथ ने कहा है कि भू-मडल को अपनी प्रखर किरणो से भस्म करता हुआ यह अग्नि का गोला उदित हो रहा है। इसे शशाक कौन कहता है[2] ?

१—"मुखरय स्व यशो नव डिण्डिम जल निधे कुल मुज्ज्वलयाधुना।
अपि गृहाण बधूवध पौरुषं हरिण लाछन ! मुंच कदर्थनाम् ॥
—नैषधीयचरितम् ४।५३
अपने यश का नव डिडिम घोष सुनाओ तथा अब अपने कुल समुद्र का नाम उज्ज्वल करो। हे चन्द्रमा, स्त्री का वध कर पुरुषार्थ दिखाओ, पर यह पीडा मत दो।

२—"अंगार प्रखरैः करैः कवलयन्नेत-मही मण्डलम्।
मार्तण्डोऽयमुदेति केन पशुना लोके शशांकीकृतः ॥" —जगन्नाथ।

हिन्दी-काव्य मे जायसी, सूर,[१] तुलसी, बिहारी,[२] केशव, घनानन्द, पद्माकर[३] आदि अनेक कवियो ने वियोगियो की पीडा पहुँचाने वाले चन्द्रमा पर व्यग्य कसे है।

आलोच्यकाल की कविता मे इसके छुटपुट उदाहरण मिल जाते है। नल-नरेश मे विरह से पीडित दमयन्ती चन्द्रमा को देखकर सखियो से कहती है—'हे सखियो! इस कलकी चन्द्रमा को कौन सुधाकर कहता है? मुझको तो यह अग्नि का महान् गोला प्रतीत होता है। इसकी जो किरणे कुमुद को प्रफुल्लित करती है, वे मेरे लिए अगार क्यो बरसाती है[४]।"

साकेत की उर्मिला को ऐसा प्रतीत होता है कि यह चन्द्रमा अपनी किरणो से वियोग के अकुरो को ही पल्लवित करता है।

"सखि, मेरी धरती के करुणाकुर ही वियोग सेता है,
यह औषधीश उनको स्व करो से अस्थिसार देता है।"

—साकेत, नवम् सर्ग।

वैदेही-वनवास की सीता अपने प्रवास काल मे चन्द्रिका को देखकर विविध भावो मे मग्न है। पहले तो वे उसके गुणो पर मुग्ध होती है, फिर उपालभ देती है[५]। किन्तु इस प्रसग मे कुछ नई उद्भावनाएँ द्रष्टव्य है। विरहिणी सीता (चन्द्रिका) के गुणो की ओर ही देखती है तथा सादृश्य द्वारा

१—"नाहिन होत चन्द कर ढरिबो।"

—सूरदास।

२—"हौं ही बौरी विरह बस, के बौरो सब गाव।
कहा जानि ए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नांव॥"

—बिहारी।

३—"हाल ही तू बिरह बिचारी बजबाल ही पै,
ज्वाल से जगावत जुबाल सो जुन्हाई के।
एरे मतिमन्द चन्द्र, आवति न तोहि लाज,
ह्वै के द्विजराज काज करत कसाई के॥"

—पद्माकर।

४—नल-नरेश, ५।१२-१८

५—हा प्रायः वियोगिनी तुम से, व्यथिता बनती रहती है।
देख तुम्हारे जीवन-धन को, मर्म वेदना सहती है।"
: वैदेही बनवास, १०।३८

उसके दिव्य गुणो को धारण करने की आकाक्षा करती है। इस प्रकार हरिऔध जी ने परम्परा को नई दिशा की ओर मोड दिया है।

काम दशाएं—

वियोग मे काम दशाओ को भी दिखाया जाता है। दस काम दशाएँ इस प्रकार है—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मरण। नीचे इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है :—

(१)अभिलाष—प्रिय से मिलन की स्पृहा।

अनमने फागुन दिवस ये हो रहे है प्राण कैसे,
आज सन्ध्या से प्रथम ही भर चला उर लालसा से।
आज तो मधुमास रे मन[1]।

(२) चिन्ता—प्रिय की प्राप्ति के अभाव से उत्पन्न ध्यान का नाम चिन्ता है। इसमे सूनापन, सन्ताप, ऊँचो सॉस लेना आदि होते है—

क—न तो आज कुछ कहती है वह ओर न कुछ सुनती है,
अन्तर्यामी यह जाने, क्या गुनती-बुनती है।"
—द्वापर (गोपी)

इसमे राधा की विरह-दशा का चित्रण है। प्रिय के ध्यान मे उसे सब कुछ भूल गया है। चिन्ता का भाव-व्यजित है।

ख—विचारती हूँ सखि, मै कभी-कभी,
अरण्य मे है प्रिय लौट आते।
छिपे छिपे आकर देखते सभी,
कभी स्वय भी कुछ दीख जाते[2]।"

वियोगिनी उर्मिला प्राणपति के ध्यान मे निमग्न होकर प्रिय के दर्शन का सा सुख लूटती है। इसमे चिन्ता की व्यजना है।

(३) स्मृति—सदृश वस्तु के दर्शन तथा चिन्तन आदि से पहले के अनुभूत सुख-दु:ख आदि विषयो का स्मरण ही स्मृति है। इसमे भोंहे चढना, एकटक देखना आदि अनुभाव है।

क—आलि, इस वापी मे हस बने बार-बार बिहरे
सुध कर उन छीटो की मेरे ये अग आज भी सिहरे"
—साकेत—नवम् सर्ग।

१—अंचल : अपराजिता, पृ० ७२।

२—मैथिलीशरण गुप्त . साकेत, नवम् सर्ग।

ख—निज पलक मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से उर से मृगेक्षणि ने उठा,
एक पल निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी। —ग्रन्थि—पन्त।

(४) **गुण-कथन**—प्रिय के गुणो का कथन करना।

क—प्रिय, प्राणो की प्राण!
न जाने किस गृह मे अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान।
नवल कलिकाओ की सी वाण,
बाल-रति-सी, अनुपम, असमान—
न जाने कौन, कहाँ अनजान,
प्रिये, प्राणो की प्राण!
—भावी पत्नी के प्रति—पन्त।

इसमे प्रियतमा के गुणो का बार-बार कथन है।

ख—प्रेम पद्मिनी! प्रेम-लता! हे प्राण-वल्लभे! हे प्राणेश्वरि!
मेरी प्रिय सद्मिनी! कहा हो? हे मेरे जीवन की सहचरि!
मै पुकारता हूँ पर मेरी ही ध्वनि सुन पडती है फिर कर।
मानो प्रिया-विहीन जानकर करता है उपहास आज घर।
—स्वप्न ४।१

नायक प्रियतमा के विरह मे बार-बार उसका गुणानुवाद करता है।

(५) **उद्वेग**—किसी घटना के कारण, प्रिय या अप्रिय बात को सुन कर हृदय जब शान्त स्थिति को छोडकर उत्तेजित हो उठता है, तब उसे उद्वेग कहते है। व्याकुल होना, स्तभ कप आदि इसमे कार्य होते है :—

उद्धव, कहो नही लौटा क्यो, हाय हमारा राजा?
बजा यहाँ उसके विरुद्ध था, क्या विप्लव का बाजा?
—द्वापर—गोपी।

प्रियतम कृष्ण के न जाने पर गोपियो की व्याकुलता मे उद्वेग प्रकट हो रहा है—

(६) **प्रलाप**—विरह-व्यथा से पीडित होकर निरुद्देश्य बक-झक करना।

क—अभी विलोक एक अलि उडता, उसने चौक कहा था—
सखि वह आया, इस कलिका मे क्या कुछ शेष रहा था?
—द्वापर—गोपी

इसमे विरह की वेदना से पीडित राधा के प्रलाप की व्यजना है—

ख—धिक् ! तथापि हो सामने खडे ?
तुम अलज्ज से क्यो यहाँ अडे ?
जिधर पीठ दे दीठ फेरती,
उधर मै तुम्हे ढीठ, हेरती !

—साकेत—नवम् सर्ग

विरहिणी उर्मिला विरह से कातर होकर सब ओर लक्ष्मण को ही देखकर निरुद्देश्य प्रलाप करती है।

(७) उन्माद—काम, शोक, भय आदि से चित्त का भ्रान्त होना। इसमे हँसना, रोना, प्रलाप करना आदि कार्य होते है।

क—लो, वह आप आ रही देखो, 'सखो,' 'सखी' चिल्लाती।
पर उद्धव उद्धव की ध्वनि भी, है यह कैसी आती ?

—द्वापर—गोपी

कृष्ण के विरह मे राधा का चित भ्रान्त है, अतएव वह सखो-सखो, उद्धव-उद्धव चिल्लाती हे। इसमे उन्माद की व्यजना है।

ख—स्वजनि, क्या कहा-वे यहाँ कहाँ ?
तदपि दीखते है जहाँ तहाँ ?
यह यथार्थ उन्माद, भ्रान्ति है ?
ठहर तो मिटा क्षोभ, शान्ति है।

—साकेत—नवम् सर्ग

विरहिणी उर्मिला भ्रान्तिवश अपने प्राणपति को सर्वत्र देखती है। इसमे उन्माद की दशा स्फुट है।

(८) व्याधि—लम्बी साँसे चलना, पाण्डुता तथा कृशता इसके लक्षण है—

क—मेरी दुर्बलता क्या दिखा रही तू अरी, मुझे दर्पण मे ?
देख निरख मुख मेरा वह तो धुधला हुआ स्वय ही क्षण मे।"

—साकेत—नवम् सग

ख—हृदय, यह क्या दग्ध तेरा चित्र है ?
धूप ही है शेष अब जिसमे रहा।
इस पवित्र दुकूल से तू दैव का
बदन ढकने के लिये क्यो व्यग्र है ?

—ग्रन्थि

पहले उदाहरण मे सुख की तथा दूसरे मे हृदय की व्याधि ग्रस्त दशा का वर्णन है।

(९) **जड़ता**—चिन्ता, उत्कठा, विरह, इष्ट-अनिष्ट के देखने-सुनने से चित्त की विमूढात्मक वृत्ति का नाम जडता है। इसमे अपलक देखना, चुप रहना आदि अनुभाव है।

क—आठ पहर चौसठ घडी, स्वामी का ही ध्यान।
छूट गया पीछे स्वय, उससे आत्मज्ञात॥

—साकेत-नवम् सर्ग

ख—किधर जाय, पग धरें कहाँ हम, सीधे शूल पडे है,
अब भी कुजो मे क्रीडा के, सूखे फूल पडे हैं।

—द्वापर-गोपी

कृष्ण के वियोग मे गोपियो के चित्त की किंकर्त्तव्यविमूढ दशा का वर्णन है।

(१०) **मरण**—चित्तवृत्ति की ऐसी दशा, जिसमे मरण की सी पीडा का अनुभव हो। इसमे प्राण-वियोग उचित नही क्योकि भाव-दशा मे शरीर और प्राणो के सयोग से ही कार्य होते है[1]।

क—जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला,
तब पहुंचा विरही मतवाला,
सती-हीन ज्यो शूली।

—साकेत-नवम् सर्ग

ख—स्वामी मुझको मरने का भी दे न गए अधिकार,
छोड गए मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार।
जिये जल-जल कर काया री।
मरण सुन्दर बन आया री। —यशोधरा

इन प्रसगो मे विरह की अवस्था मे मृत्यु की सी ही पीडा का वर्णन है। अतएव दशम् अवस्था है।

१—"रोगादिजन्या मूर्च्छा रूपा मरण प्रागवस्था मरणम्। न चात्र प्राण वियोगात्मकं मुख्य मरणमुचितम् ग्रहीतुम्। चित्त वृत्यात्मकेषु भावेषु, कार्य सहवर्तितया शरीर प्राणयोगस्य हेतुत्वात्।

रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ० ३११।
प० बदरीनाथ झा कृत टीका सहित।

साकेत के नवम् सर्ग मे, द्वापर के गोपी प्रकरण मे, कामायनी के लज्जा और स्वप्न सर्गों मे तथा ग्रन्थि, आँसू, स्वप्न, तुलसीदास, अपराजिता, मधुबाला, आकुल अन्तर, प्रवासी के गीत, यशोधरा आदि रचनाओ मे विप्रलम्भ शृ गार के अन्तर्गत दश काम दशा, विविध सचारी एव शारीरिक कृशता के उदाहरणो का प्राचुर्य है। इन प्रकरणो मे विरह की अन्तर्दशाओ का सम्यक् वर्णन पाया जाता है।

आलोच्यकालीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्यो मे शृ गार के उभय-सयोग और विप्रलम्भ-सम्यक् रूपेण अभिव्यजित है। छायावादी काव्य मे विप्रलम्भ शृ गार की अभिव्यक्ति प्रधान है, किन्तु उसकी शैली गूढ, सूक्ष्म एव साकेतिक है। प्रगतिवादी रचनाओ मे सभोग शृ गार का प्राचुर्य है। नायक-नायकाओ के सूक्ष्म भेदोपभेदो को छोडकर रीतिकाल तथा प्रगतिवादी काव्य की शृ गारिक अभिव्यक्ति मे पूर्ण समानता है। दोनो काव्यधाराओ मे प्रेमाभिव्यक्ति उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द है। किन्तु यह समानता केवल सभोग शृ गार के क्षेत्र तक ही सीमित है। विप्रलंभ शृ गार की अभिव्यक्ति मे पर्याप्त अन्तर है। प्रगतिवादी कवियो ने परम्परागत विरह वर्णन की रूढियो का एकदम परित्याग कर दिया है तथा स्वच्छन्द प्रेम का मार्ग अपनाया है।

प्रबन्ध काव्यो मे शृ गार रस की दृष्टि से नल-नरेश, सिद्धार्थ, दैत्यवश, वर्द्धमान, उद्धव शतक, यशोधरा और नूरजहाँ अत्यन्त समृद्ध है क्योकि इन काव्य ग्रन्थो मे वस्तु की सश्लिष्ट योजना के अन्तर्गत शृ गार रस की पूर्ण अभिव्यक्ति को यथेष्ट अवकाश मिला है। साकेत की वस्तु-योजना इतनी सकुचित है कि शृ गार का पूर्ण विकास नही हो सका है। उसकी कथावस्तु मे विभिन्न पात्रो के भावोद्गारो के अतिरिक्त और कुछ नही है। इस कारण उसमे शृ गारान्तर्गत सचारियो के भाव-सीकरो का ही सस्पर्श है, शृ गाराम्बुधि मे निमज्जित होने का आनन्द नही। प्रिय प्रवास मे जैसा शृ गार का माधुय छलकता है, वैसा साकेत मे नही। साकेत के नवम् सर्ग मे विप्रलभ का सौन्दर्य अवश्य है, पर वर्ण्य वस्तु के अभाव के कारण सचारियो का ही दर्शन-दिग्दर्शन मात्र है। रस की परिणति के स्थल बहुत कम है।

आँसू, ग्रन्थि, नीरजा, अपराजिता, प्रवासी के गीत, हिल्लोल जैसी शृ गारिक रचनाओ मे रस की पूर्ण अभिव्यक्ति नही मिलती है। मुक्तक एव प्रगीत काव्यो मे कथा-वस्तु का आधार क्षीण होने से रस की पूर्णता नही आ सकती है। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एव सचारियो मे से दो-एक तत्त्व ही आ पाते है। अतएव रस अपुष्ट दशा मे ही रह जाता है। छायावादी, रहस्यवादी

तथा प्रगतिवादी कवियो ने अधिकाश मे मुक्तक एव प्रगीत काव्यो का ही सृजन किया है। अतः इनकी रचनाओ मे अधिकतर भावो का ही उन्मीलन हुआ है, शृ गार का पूर्णोत्कर्ष बहुत कम है। इसके अतिरिक्त आधुनिक कवियो ने रस-दृष्टि से काव्य मे रस की रचना नही की है। इसी कारण रस के सम्पूर्ण अव-एव एकत्र सघटित नही मिलते है।

प्रयोगवादी-प्रगतिवादी कवि सिद्धान्तः रस के विरुद्ध हैं। इसी से इनके काव्य मे रस को स्थान नही मिला है। इनके काव्य मे यो तो शृ गार ही प्रधान है, किन्तु कविजन आलम्बन का ही वर्णन करके छुट्टी पा लेते है। प्रयोगवादी कवि रति के महत्त्व को स्वीकार तो करते है, किन्तु उनके काव्य मे इसकी सम्यक् प्रतिष्ठा नही हो सकी है। उनकी कविता मे आलम्बन या उद्दीपन ही दिखाई पडते है या केवल अनुभावो का ही वर्णन है अथवा कही पर सचारियो की ही प्रदर्शनी लगाई गई है।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे ही शृ गार की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। उनमे प्राचीन रूढियो को भी उचित स्थान मिला है तथा उद्दीपन एव अनुभावो मे यथेष्ट विकास भी हुआ है। उनमे काम दशाओ एव विरह की अन्य रूढियो का भी दर्शन मिलता है। मुक्तक एव प्रगीत काव्यो मे रस की पूर्ण सामग्री के अभाव मे उसकी केवल झलक दिखाई पडती है। प्रयोगवादी रचनाओ मे रस एव भाव-व्यजना को पूर्णरूप से वहिष्कृत कर दिया गया है।

हास्य रस

हास्य की परम्परा—

सस्कृत-साहित्य मे शृ गार, वीर, करुण के समान हास्य रस की कोई समर्थ परम्परा नही मिलती है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा अन्य प्रबन्ध काव्यो मे यत्र-तत्र हास्य रस की झलक मिलती है। सस्कृत के सुभाषित ग्रन्थो मे हास्य रस के प्रकीर्ण श्लोक पाये जाते है। इनमे हास्य की अत्यन्त सरस व्यजना मिलती है। देखिए एक वृद्ध की इस हास्य की उक्ति मे कितनी रोचकता है—

"पाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दन्तावलिर्विगलिता न च मे विषाद.।
एणी दृशो युवतयः पथि मा विलोक्य,
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपात. [१]।"

१—काशीनाथः सुभाषित रत्न भाडागारम्, पृ० ३८०।

शिर के बाल सफेद हो गए, कपोलो पर झुर्रियाँ पड गई, दाँत टूट गए, किन्तु इन बातो का मुझे कुछ भी दुःख नही है। हाँ, मृगनयनी युवतियाँ मार्ग मे जाते देखकर जब मुझसे पूँछती हैं कि बाबा कहाँ जाते हो? तो निश्चय कहता हूँ कि मेरे ऊपर वज्र-सा गिरता है।

हिन्दी-साहित्य मे हास्य रस की परम्परा का विकास अपनी स्वतत्र पद्धति पर हुआ है। डा० नगेन्द्र इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखते है—"हिन्दी ने जहाँ सस्कृत-प्राकृत की और रीति-नीति उत्तराधिकार मे प्राप्त की वहाँ हास्य की सामग्री भी थोडो-बहुत अपनायी। परन्तु धीरे-धीरे सभ्यता और समाज मे परिवर्तन होते रहने के कारण हिन्दी का हास्य उसके शृ गार की भाँति उसी परम्परा का अन्धानुयायी न रह सका और उसका जो यत्किचित विकास हुआ, वह स्वतत्र ही हुआ[१]।"

हिन्दी के प्रारभिक युग मे हास्य रस का एकान्त अभाव-सा है। आगे चलकर कबीर के साहित्य मे हास्य और व्यग्य का अच्छा विकास हुआ है। सूर के भ्रमरगीत तथा तुलसी के मानस और कवितावली मे शिष्ट एव स्मित हास्य के दर्शन मिलते है। इसके पश्चात् रीतिकाल मे रहोम, गग, बिहारी, सेनापति, बोधा, ठाकुर, पद्माकर, बेनी कवि की रचनाओ मे यत्र-तत्र इसकी झलक मिलती है।

कबीर ने सामाजिक कुरीतियो तथा पाखडो को अपने तीक्ष्ण व्यग्यो का विषय अवश्य बनाया है, किन्त अन्य कवियो के हास्य रस के विषय अधिकतर इष्ट-देवो के उपालभ, पेटू, स्वार्थी और सूम ही रहे है।

भारतेन्दु युग मे परिस्थिति और समाज मे एक नया परिवर्तन आया, जिससे हास्य रस के आलम्बन भी परिवर्तित हुए। ढोगी देशभक्त, लीडर, वेदान्ती, पुराणपन्थी, खुशामदी लोग तथा फैशन के गुलाम इस युग मे हास्य रस के विषय बने हैं। देश की दुर्दशा और सामाजिक अधोगति पर भारतेन्दु जी ने अत्यन्त चुटीले व्यग्य किए है। भारत-दुर्दशा, अन्धेरनगरी इसके ज्वलन्त प्रमाण है।

हास्य रस—

दशरूपककार ने विकृत आकृति, वचन, वेष को हास्य रस का आलम्बन बताया है। यह उत्तम, मध्यम, अधम प्रकृति भेद से छः प्रकार का है—(१) स्मित, जिसमे नेत्र खिले हो (२) हसित, जिसमे कुछ दाँत दिखाई देते हो (३)

१—डा० नगेन्द्र : हिन्दी कविता में हास्य रस, वीणा, नवम्बर, १९३७, पृ० ३३

विहसित जिसमे मधुरता हो (४) उपहसित जिसमे सिर झूमने लगे (५) अपहसित जिसमे आँखो मे आँसू आ जावे तथा (६) अतिहसित जिसमे अग विक्षिप्त होते हो। स्मित और हसित उत्तम, विहसित और उपहसित मध्यम तथा अपहसित और अतिहसित अधम प्रकृति के पात्रो का हास्य होता है। निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि और मूर्च्छा आदि इसके सचारी है।[1]

वाग्भट्ट ने विकृत वेश आदि को विभाव कहा है, नासिका, कपोल, होठो का मुलकना, नेत्रो का खुलना, स्वेद, मुख पर लाली दौडना, पेट पकडना आदि अनुभाव और निद्रा, अवहित्था, तन्द्रा, लज्जा, आलस्य आदि व्यभिचारी होते है।[2]

केशव मिश्र ने चेष्टा, अग, वेश आदि की विकृति को हास्य का विषय बताया है। उत्तम कोटि के हास्य मे कपोल और नेत्र उल्लसित होते है, मध्यम मे मुंह फट जाता है और अधम श्रेणी के हास्य अट्टहास का शब्द होता है।[3]

साहित्य दर्पणकार ने हास्योत्पादक विकृत आकृति, वचन और चेष्टाओ को आलम्बन और उसकी चेष्टाओ को उद्दीपन कहा है। नेत्र सकुचित होना, मुसकाना आदि इसके अनुभाव है और निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि व्यभिचारी होते है। हास्य की तीन प्रकृतियाँ तथा छः भेद दशरूपक के समान ही है।

अन्य रसो की भाँति हास्य रस मे आश्रय का प्रत्यक्ष उल्लेख नही होता है विभावादि की सामर्थ्य से ही उसका आक्षेप कर लिया जाता है। विभावादि के साधारणीकरण द्वारा सामाजिको को उसकी अनुभूति हो जाती है।[4] काव्य प्रकाशकार ने भी इसे स्वीकार किया है।[5]

हास्य रस के छः भेद और तीन प्रकृतियो के विषय मे प्रायः सभी आचार्य एक मत है। विकृत आकार, वचन और वेश को आलम्बन के रूप मे सभी ने स्वीकार किया है। आलम्बनगत चेष्टाओ को सभी ने उद्दीपन माना है। मुख, नेत्र और कपोलो के खिलने, सकुचित होने और लाली दौडने को सभी ने अनुभाव बताया है। सचारियो मे निद्रा, आलस्य, अवहित्था, श्रम, ग्लानि, मूर्च्छा

१—दशरूपक, ४।७६-७७।
२—काव्यानुशासन, अध्याय ५।
३—अलंकार शेखर, २०।१६-१७।
४—साहित्यदर्पण ३।२१४-२१
५—काव्यप्रकाश ४।३७ की टीका (वामन कृत)

आदि के विषय मे सब सहमत हैं। इसी आधार पर आधुनिक काल के काव्यों में हास्य रस का विवेचन किया जाता है।

आलोच्यकालीन काव्यो मे आए हुए हास्य रस के प्रसगो मे हास्य के समस्त शास्त्रीय लक्षण घटित होते है। इन प्रसगो मे सर्वत्र आलम्बन के विकृत रूप, आकार, वेश, वचन तथा चेष्टाओ का वर्णन पाया जाता है। अनुभावो का वर्णन भी यथा सभव शास्त्रीय पद्धति पर हुआ है। सचारी भावो मे प्रायः अवहित्था, हर्ष, ग्लानि एव लज्जा आदि की व्यजना प्रधान है। साकेत,[१] कृष्णायन[२] यशोधरा,[३] एव जयद्रथ वध[४] मे स्मित रूप उत्तम पात्रो का हास्य है, सिद्धार्थ,[५] साकेत-सन्त[६] और सिद्धराज[७] मे विहसित और अवहसित रूप मध्यम पात्रो का हास्य तथा दैत्यवश,[८] नूरजहाँ,[९] विक्रमादित्य,[१०] रावण महाकाव्य,[११] परिमल[१२] एव अनामिका[१३] प्रसगो ने अपहसित एव अतिहसित रूप अधम पात्रो का हास्य है।

कृष्णायन के अवतरण काड मे कृष्ण की बाल लीलाओ के प्रसगो मे हास्य रस की प्रचुर सामग्री मिलती है। इन प्रसगो मे हास्य रस के अन्तर्गत विनोद, व्यग्य, उपालभ एव परिहास की मधुर व्यजना प्रच्छन्न है। यहाँ केवल एक ही उदाहरण दिया जाता है—

'पायी माखन भरी कमोरी। खान लगे प्रभु चोरी चोरी॥
चितवत चहुँ दिसि कहुँ कोउ नाही। लखी खभ आपनि परिछाही॥

१—साकेत पृ० १३,
२—कृष्णायन पृ०,
३—यशोधरा पृ० ५३,
४—जयद्रथ वध पृ० ६२
५—सिद्धार्थ पृ० २१,
६—साकेत सन्त ८।८-९,
७—सिद्धराज पृ० १२८,
८—दैत्यवश ३।३८,
९—नूरजहाँ पृ० १११
१०—विक्रमादित्य पृ० ४६
११—रावण महाकाव्य ६।२६-२७
१२—परिमल—पंचवटी प्रसंग ३
१३—अनामिका, (सरोज स्मृति) पृ० १२६।

पूछत, 'को तुम ? कवन पठावा ? अब लगि केतिक माखन खावा ?
हसी ठठाय सुनत ब्रज बाला। भागे भय-विह्वल नदलाला ॥'

—कृष्णायन।

कृष्ण का चोरी-चोरी मक्खन खाना आलम्बन है, चारो ओर देखना उद्दीपन है। ब्रजवाला का ठहाका मारना अनुभाव तथा हर्ष सचारी है। ठहाका मारकर हँसने मे अतिहसित हास्य का रूप है जो अधम कोटि के पात्र मे व्यजित हुआ है।

दैत्यवश और विक्रमादित्य काव्यो मे भी हास्य रस का प्राचुर्य है। दैत्यवश का लक्ष्मी-स्वयवर और विक्रमादित्य मे वीरसेन की उक्तियो मे हास्य रस की सरस व्यजना मिलती है।

आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे हास्यरस का पूर्णोत्कर्ष हुआ है।

मुक्तक काव्यो मे हास्य रस—

नाथूराम शकर की कविता मे हास्य रस अत्यन्त चुटीला बन कर आया है। सामाजिक कुप्रथाओ और फैशन परस्ती पर इन्होने अत्यन्त तीखे व्यग्य-वाण छोडे है[1]।

'ईश गिरिजा को छोड यीशु गिरजा मे जाय,
शकर सलोने मैन मिस्टर कहावेगे।'

इस प्रसिद्ध छन्द मे फैशन परस्तो को आलम्बन बनाकर तीव्र व्यग्य किया गया है। शकर जी ने बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, मूर्तिपूजा आदि विषयो को लेकर जो कठोर व्यग्य किए है, वे भारतेन्दु की परम्परा के विकसित चिह्न हैं।

निराला जी ने भी ढोगी भक्तो को हास्य का विषय बनाया है। अनामिका की 'दान' कविता मे से एक उदाहरण दिया जाता है—

'मेरे पडोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन,
झोली मे पुए निकाल लिए,
बढते कपियो के हाथ दिए,
देखा भी नही उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,

१—नाथूराम शकर शर्मा : अनुराग रत्न, पृ० २३६।

चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मै—'धन्य, श्रेष्ठ मानव !'

वृद्ध-विवाह को आलम्बन बनाकर 'सरोज स्मृति' कविता मे निराला जी ने एक कटु व्यग किया है—

'ये जो जमुना के से कछार
पद फटे विबाई के उधार ।
खाने के मुख ज्यो, पिये तेल,
चमरौधे जूते हो सकेल
निकले, जी लेते, घोर गन्ध,
उन चरणो को मैं यथा अन्ध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नही शक्ति ।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नही चाह ।'

—अनामिका

इसके पश्चात् 'कुक्कुरमुत्ता' मे निराला जी ने हास्यरस के सर्वथा विषयो की सर्जना की है, जिनका परम्परागत पद्धति से कोई सम्बन्ध नही है । अतएव वह एक स्वतत्र परम्परा है, जिसका प्रयोगो मे विवेचन किया जायगा ।

हरिशकर शर्मा ने अपनी हास्य रस की रचनाओ मे भारतेन्दु युग के प० प्रतापनारायण मिश्र की परम्परा को पुनरुज्जीवित किया है ।

आपने 'अल्हडराम की रे रे' शीर्षक से तृप्यन्ताम् पर कविता लिखी है । हिन्दू जाति की अवनति पर व्यग्य करते हुए आपने कहा है—

'हिन्दू सुनो खोल कर कान,
हो जाओ बिलकुल वीरान ।
ऋषि मुनियो को जाओ भूल,
काटो दैविक धर्म बबूल, तृप्यन्ताम् ।[1]

आपने 'चमर पच' कविता मे पचो की अच्छी खबर ली है । 'अगुआ' की आत्मकथा,' 'चवन्नी का चमत्कार' कविताओ मे ढोगी देश-भक्तो का मार्मिक चित्र उतारा गया है ।

१—हरिशंकर शर्मा : चिड़ियाघर, पृ० २५ ।

बेढब बनारसी,[१] कान्तानाथ पाडे 'चोच,' 'बचनेश,' बेधडक बनारसी, और गोपाल प्रसाद व्यास[२] ने हास्यरस की धारा का यथेष्ट विकास किया है। इनकी कविताओ मे राजनीतिक, सामाजिक एव पारिवारिक जीवन के सुन्दर व्यग्य चित्र है। श्रीनारायण चतुर्वेदी, देवराज 'दिनेश' ने अपनी कविताओ मे मधुर हास्य की सृष्टि की है। चतुर्वेदी जी ने अधकचरे साहित्यकारो को और 'दिनेश' जी ने आधुनिक कवियो को हास्यरस का आलम्बन बनाया है।

मुक्तक कविताओ मे हास्य व्यग्य एव वाग्विदग्धता की जो नई धारा चली है, यह कोई सर्वथा नूतन प्रयोग नही है। सामाजिक कुरीतियो, धार्मिक आडम्बरो एव जातीय ढोगो को हास्य का विषय बनाने का मार्ग कबीरदास बहुत पहले खोल चुके थे। कबीर के साहित्य मे इन विषयो पर अत्यन्त मार्मिक व्यग्य मिलता है। आलोच्यकाल से पूर्व भारतेन्दु युग मे कबीर की परम्परा का और अधिक विकास हुआ है। भारतेन्दु युग के कवियो ने धर्म, जाति, भाषा, देश, नारी, शिक्षा आदि विविध विषयो पर हास्य-व्यग्य की कठोर वर्षा की है। आलोच्यकाल के मुक्तककार भारतेन्दु युग के कवियो की परम्परा मे आते हैं। नये युग मे हास्य व्यग्य के विषयो की कुछ और वृद्धि हो गई है। हास्य के नये आलम्बनो मे भक्त, पुजारी, नेता, मत्री, डाक्टर, वकील और कवि भी आ गए है। यह भारतेन्दु युग की हास्य-परम्परा का ही नूतन विकास है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे हास्य रस की शास्त्रीय परम्परा के शत-प्रतिशत लक्षण घटित होते है। मुक्तक रचनाकारो ने कबीर एव भारतेन्दु युग के कवियो की परम्परा को आगे बढाया है, जिसमे हास्य के साथ व्यग्य एव वाग्विदग्धता की प्रधानता है।

करुण रस

करुण की परम्परा—रामायण मे आदि कवि वाल्मीकि ने करुण रस को ही स्थापित किया है, क्योकि 'शोक ही श्लोक रूप मे प्रकट हुआ'—ऐसा उन्होने स्वय कहा है। उसका परिपाक अन्त तक—सीता के अत्यन्त वियोग पर्यन्त उसका निर्वाह किया गया है[३]। कालिदास के काव्यो मे भी शोक का यथेष्ट विकास

१—देखिये, बेढब की बहक,

२—देखिये, गोपालप्रसाद व्यास : अजी सुनो।

३—'रामायणे हि करुणोरसः स्वयं आदिकविना सूत्रित.। शोक श्लोकत्व-मागत इत्थेव वादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्त वियोग पर्यन्तमेव एव प्रबन्धमुपन्यस्यता।'—ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत की पाँचवी कारिका की वृत्ति।

हुआ है। रघुवश मे इन्दुमती के दिवगत हो जाने पर राजा अज का विलाप तथा कुमार सम्भव मे कामदेव के भस्म होने पर रति का विलाप करुण रस के उत्कृष्ट प्रसग है। भवभूति की दृष्टि मे करुण की ही एक मात्र सत्ता है। अन्य रस उसी के रूपान्तर है—'एको रसः करुण एव' कहकर उन्होने करुण रस को ही प्रधान माना है।

हिन्दी-साहित्य मे शृ गार और वीर के पश्चात् करुण रस की भी पुष्ट परम्परा है। जायसी, सूर, तुलसी, केशव आदि महाकवियो की रचनाओ मे करुण रस के प्रसग अनेक स्थलो पर मिलते है। रामचरितमानस मे राम-वन-गमन, अशोक वाटिका मे सीता, जटायु-मरण, दशरथ की मृत्यु और लक्ष्मण की मूर्च्छा के प्रसगो मे शोक की व्यजना चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। भारतेन्दु की कविताओ मे भी अनेक स्थलो पर करुणा की झलक विद्यमान है। सत्य हरिश्चन्द्र और भारत-दुर्दशा मे शोक की पूर्ण व्यजना मिलती है। हरिऔध जी के प्रिय प्रवास मे करुण का वेग अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।

करुण रस का विवेचन—

शृ गार के पश्चात् करुण ही सबसे अधिक तीव्र, व्यापक एवं प्रभावोत्पादक है। काव्यो मे चिरकाल से इसका महत्त्व चला आता है क्योकि इसकी सवेदना बडी तीव्र एव मार्मिक होती है तथा उसका प्रभाव सुख की अपेक्षा कही अधिक स्थायी होता है। इसका कारण यह है कि करुण मे सह-अनुभूति की मात्रा अधिक होती है। अन्य रसो मे भी यही बात है। हम किसी दुखी को देखकर दुखित होते है और सुखी को देखकर सुख का अनुभव करते है। इसी प्रकार भयभीत को देखकर भाग खडे होते है, आश्चर्य मे मुग्ध व्यक्ति को देखकर स्वय तदवत् आचरण करने लगते है—यह सब सह-अनुभूति के कारण है। इससे सिद्ध है कि सह-अनुभूति मे समानुभूति का भाव प्रच्छन्न रहता है। करुण मे इसका प्रादुर्भाव विशेषरूप से लक्षित होता है।

सह-अनुभूति सामाजिक गुण है। इसमे पर दुःख कातरता, उदारता, सवेदनशीलता आदि गुणो का समावेश रहता है। अपने प्रिय की सभी वस्तुएँ प्रिय होती है। प्रिय के अनिष्ट की आशका से ही हृदय सिहर उठता है। प्रेमी अपने प्रिय के साथ इतना तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि उसके वियोग मे तद्वत अनुभूति से व्याकुल हो उठता है। समानुभूति का भाव जड-चेतन सभी के साथ हो सकता है। नित्य के सहचर पेड-पौधे, जीव-जन्तु, लता-गुल्म सभी के वियोग मे दुःखानुभूति होने लगती है।

करुण का आधार शोक है। इष्ट-नाश एव अनिष्ट की प्राप्ति से चित्त मे जो विकार उत्पन्न होता है, उसे शोक कहते हैं। साहित्य दर्पणकार ने इसके अतिरिक्त बन्धु-वियोग, विभव-नाश मे भी शोक व्याप्ति मानी है[१]। भाव यह है कि जिनके साथ हृदय का रागात्मक सम्बन्ध हो चुका है, वे चाहे जड हो, चाहे चेतन उनके नाश से, विपत्ति से, वियोग से मन मे जो दुःखात्मक अनुभूति होती है, वही शोक है। इच्छा, आशा-अभिलाषा का विघात भी शोक को जन्म देता है।

किन्तु शोक और सहानुभूति मे अन्तर है। शोक का भाव सीमित तथा सहानुभूति का असीमित होता है। सहानुभूति के पात्र विश्व के स्थावर-जगम सभी प्राणी हो सकते हैं, परन्तु शोक के नही। शोक मे इष्ट जनो का वियोग ही आता है। प्रिय का अनिष्ट देखकर हमे शोक होता है, किन्तु किसी पडोसी की मृत्यु पर हमे सहानुभूति ही होती है। इसी कारण प्रिय अथवा इष्ट जनो से माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पति, बन्धु, परिजन आदि का ग्रहण है। यदि इष्ट जनो के नाश की परिधि से बाहर करुण रस को प्राणी मात्र के साथ महानुभूतिमूलक मान ले तो शोक का भाव असीम हो जायगा। काव्य की परम्परा मे शोक को सीमित रूप मे ही ग्रहण किया गया है तथा इष्ट नाश, अनिष्ट की प्राप्ति मे ही उसको आबद्ध कर लिया गया है।

आधुनिक युग के प्रबन्ध काव्यो मे करुण रस की परम्परा का यथेष्ट विकास हुआ है। दैत्यवश,[२] अगराज,[३] जयद्रथ वध,[४] साकेत[५] मे इष्ट नाश सबधी करुण के, नूरजहाँ,[६] जौहर,[७] कुण्डल,[८] साकेत[९] मे अनिष्ट-प्राप्ति सबधी

१—एवं बन्धु वियोग विभव नाशादावप्युदाहार्यम् ॥ साहित्यदर्पण ३।२२५

२—दैत्यवंश १७।२०

३—अगराज पृ० २७०

४—जयद्रथवध पृ० २१

५—साकेत पृ० १६१

६—नूरजहाँ पृ० १२७-२८

७—जौहर पृ० ८८

८—कुणाल पृ० १०५

९—साकेत पृ० ११२

करुण के, सिद्धार्थ,[१] कृष्णायन,[२] कुरुक्षेत्र,[३] तुमुल,[४] साकेत-सन्त[५] मे बन्धु-वियोग सबधी करुण के; रावण महाकाव्य,[६] हल्दी घाटी,[७] आर्यावर्त मे पराभव, राज्य नाशादि सबधी करुण के अत्यन्त दयस्पर्शी उदाहरण मिलते है। आश्रय और आलम्बन के क्षेत्र मे भी विस्तार हुआ है। पहले अधिकतर पति-पत्नी की मृत्यु एव बन्धु-वियोग मे ही शोक का भाव सीमित हो गया था। आजकल राजा-प्रजा, पुत्र, पिता, बन्धु के प्रति भी शोक की व्यजना मिलती है। इन्ही प्रसगो मे अनुभाव और सचारियो का प्रसार भी अधिक हुआ है। इन काव्यो मे करुण रस की परम्परा का शत-प्रतिशत अश मे निर्वाह हुआ है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो मे करुण रस की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है तथा उसका यथोचित विकास भी हुआ है।

प्रबन्ध काव्यो से बाहर मुक्तको के क्षेत्र मे भी विषाद की प्रभूत सामग्री मिलती है, किन्तु इसके आश्रय, आलम्बनादि परम्परानुगत नही है। अतएव इनका अध्ययन परम्परा ने बहिर्भूत होने के कारण प्रयोग के अन्तर्गत किया जायगा।

रौद्र रस

स्थायी भाव ... क्रोध
आलम्बन ... शत्रु
उद्दीपन ... . मुष्टि प्रहार, शस्त्र चालन, छेदना, विदारना, लडना आदि
अनुभाव ... रोमाच, स्वेद, कप, भ्रू-भग, ओष्ठ दशन, भुज ताडन, तर्जन, आत्म-श्लाघा, शस्त्रो का प्रयोग, क्रूरता के कार्य आदि।

१—सिद्धार्थ पृ० २००
२—कृष्णायन पृ० ६६६
३—कुरुक्षेत्र पृ० ६
४—तुमुल पृ० ७४
५—साकेत सन्त ३।३६
६—रावण—सर्ग १४
७—हल्दीघाटी पृ० १७८-७६

सचारी ·· · मोह, अमर्ष, उग्रता, आवेग, उत्साह
विवोध, चपलता आदि।

हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत रौद्ररस के प्रसगो मे प्रायः आश्रय एव आलम्बन के रूप मे वीरो एव प्रतिपक्षी नायको का ही वर्णन आया है। पद्मावत के गोरा-बादल खड मे, रामचरितमानस के राम-रावण युद्ध मे एव शिवा बावनी के शिवा-औरगजेब के सग्राम-वर्णन मे सर्वत्र प्रतिपक्षी योधाओ को ही आलम्बन के रूप मे चित्रित किया है। साथ-ही रौद्र रस के लिए युद्ध के प्रसग ही उपयुक्त समझे जाते हैं, क्योकि ऐसे अवसरो पर ही रौद्र रस की व्यजना का उत्कर्ष अच्छा होता है।

आधुनिक काल के प्रबन्ध काव्यो मे रौद्र रस का उत्कर्ष पूर्ण रूप मे हुआ है। रौद्ररस के सभी प्रसग युद्धस्थल से सम्बन्ध रखते है तथा इनके आश्रय-आलम्बन परम्परानुगत है। वर्तमान काल की प्रयोगवादी, प्रगतिवादी एव राष्ट्रीय रचनाओ मे रौद्र रस की प्रभूत सामग्री मिलती है, किन्तु उसके आश्रय एव आलम्बन सर्वथा नवीन एव आधुनिक युग की परिस्थितियो से उद्भूत है। अत-एव परम्परा से वहिर्भूत होने के कारण ये प्रयोग के अन्तर्गत रौद्र रस के स्वतत्र विकास के रूप मे अन्यत्र दिखाये जायेगे। साकेत,[१] हल्दीघाटी,[२] दैत्यवश,[३] आर्यावर्त,[४] कृष्णायन,[५] जौहर,[६] अगराज,[७] विक्रमादित्य[८] आदि प्रबन्ध काव्यो मे शत-प्रतिशत अश मे परम्परा के दर्शन मिलते है। इनके आश्रय-आलम्बन योधा, प्रतिपक्षी एव सैनिक आदि है। इस प्रकार विभाव पक्ष की सभी बाते प्राचीन परम्परा के अनुकूल है। अनुभावो मे मुख एव नेत्रो की लालिमा, भौहे टेढ़ी करना, भुजाओ का ताडन, शस्त्रो का प्रदर्शन, ललकार, गर्जन-तर्जन एव सात्विको मे स्तभ, स्वेद, रोमाच, कम्प आदि तथा अमर्ष, उग्रता, आवेग, विवोध, चपलता और मद-सचारी भाव भी मिलते है।

१—साकेत पृ० ४१८-१९।
२—हल्दी घाटी पृ० १२७,
३—दैत्यवंश पृ० ६।२५,
४—आर्यावर्त पृ० २०
५—कृष्णायन पृ० ७००,
६—जौहर पृ० ५५,
७—अंगराज २१।१२७-२९
८—विक्रमादित्य पृ० १७२।

इससे सिद्ध है कि आधुनिक कविता रौद्र रस की दृष्टि से पूर्णतः समृद्ध है तथा उसमे परम्परा की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। यह केवल प्रबन्ध काव्यो को ही दृष्टि मे रखकर कहा गया है। अन्यत्र मुक्तक रचनाओ मे रौद्र रस का स्वतत्र विकास हुआ है, जिसका विवेचन अन्यत्र किया जाएगा।

वीर रस

वीर रस की परम्परा—वीरगाथा काल के चन्द आदि कवि, तुलसी, केशव, भूषण, गोरेलाल, सूदन, जोधराज तथा पद्माकर आदि कवि इस धारा के प्रधान कवि है।

आधुनिक हिन्दी-काव्य मे वीर रस की परम्परा का अध्ययन करने के लिए नीचे लिखे काव्यो को चुना गया है :—

महाकाव्य—

साकेत, तक्षशिला, कामायानी, हल्दीघाटी, दैत्यवश, आर्यावर्त कृष्णायन, जौहर, विक्रमादित्य, अगराज।

खण्ड काव्य—

जयद्रथ वध, सिद्धराज, वीर प्रताप, अभिमन्यु वध, रश्मिरथी, तुमुल, प्रणवीर प्रताप, मौर्य विजय।

मुक्तक—

वीर सतसई, मनहर वीर ज्योति, झाँसी की रानी, पानीपत (श्री अनूप शर्मा)

वीर रस—

साहित्यदर्पणकार ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीरः' लक्षण देकर वीर रस को अन्य रसो से उत्तम माना है। इनके अनुसार इसका स्थायीभाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रग सुवर्ण के सदृश होता है। इसमे जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव होते है और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते है। युद्ध के सहायक (धनुष, सैन्य आदि) का अन्वेषणादि इसके अनुभाव होते हैं। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमाचादि इसके सचारी भाव है। इसके चार भेद हैं, यथा—(१) दान वीर (२) धर्म वीर (३) दया वीर और (४) युद्ध वीर[१]।

१—साहित्य दर्पण ३।२३२-३४।

वीर रस के भेदो के विषय मे आचार्यों का मतभेद है। अग्निपुराण मे वीर रस के केवल तीन ही भेद माने गए है। उनमे दया वीर को स्थान नही है। धनञ्जय ने दशरूपक मे इसके तीन ही भेद माने है। इनमे धर्म वीर का स्थान नही है। रसगगाधरकार पडितराज जगन्नाथ ने भी वीर रस के चार भेद स्वीकार किए है। इन्होने चार प्रकार का उत्साह माना है, किन्तु आगे चलकर उन्होने यह भी कह दिया है—"वस्तुतः शृ गार रस की तरह वीर रस के भी अनेक भेद हो सकते है, यथा—सत्य वीर, पाण्डित्य वीर, बल वीर और क्षमा वीर आदि। इसका कारण भी स्पष्ट है। उत्साह के अनेक रूप होते है। यदि विचार करके देखे तो उत्साह के जितने स्वरूप हो सकते है, वीर रस के भी उतने ही भेद होगे।

वास्तव मे उत्साह ऐसा व्यापक भाव है कि वह जीवन की किसी भी चेष्टा मे व्यक्त हो सकता है। जब किसी भी कार्य मे उत्साह का प्रदर्शन हो सकता है, तब उसकी सीमा भी कैसे बाँधी जा सकती है? उत्साह का प्रदर्शन तो हर एक मानव प्रवृत्ति मे हो सकता है। कार्य करने का अभिनिवेश तथा शौर्य प्रदर्शित करने की प्रबल इच्छा को उत्साह कहते है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, क्रोध, प्रेम, क्षमा, सत्य, करुणा, अहिसा आदि हर एक भाव मे उत्साह को प्रदर्शित किया जा सकता है। मन, वचन एव कर्म से सम्पादित होने वाले किसी भी असाधारण कार्य मे मनुष्य के शौर्य का प्रदर्शन सभव है। इस दृष्टि से जिस व्यक्ति की मानसिक शक्ति का असाधारण विकास हुआ है, उसे बुद्धि शूर, जिसकी वाणी मे बल है, उसे वाक्शूर तथा जिसमे साहस के कार्य करने की शक्ति हो, उसे कर्म शूर कह सकते है। इसीलिए महाभारत मे 'शूरा बहुविधा. प्रोक्ता.' कहा गया है।

किन्तु इस प्रकार की मान्यता से वीर रस के वृत्त मे सभी रसो का अन्तर्भाव हो जाता है। यह अनुचित है क्योकि अन्य रसो के स्थायीभाव भिन्न है। इससे अतिरिक्त वीरत्व की स्थिति सर्वत्र मानने से अनवस्था दोष आ जाता है। इससे वीर रस के अनन्त भेद मानना उपयुक्त नही है। फलतः आचार्यों ने वीर रस को सीमित कर दिया है। साहित्यदर्पणकार की तरह पडितराज जगन्नाथ ने भी उसको चार प्रकार का ही माना है। अतः परम्परानुगत इसी वर्गीकरण को मानकर आधुनिक काव्यो से वीर रस के उदाहरण दिए जाते है :—

ग्रन्थ का सदर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभव	सचारी
१—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० ४१५	युद्धवीर भरत शत्रुघ्न	रावणादि निशाचर		शख-भेरियो की ध्वनि, शस्त्र उठाना	हर्ष, आवेग

ग्रन्थ का सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
२—कामायानी प्र० स० पृ० २०१	मनु (राजा) युद्धवीर	प्रजापक्ष	अपमान, भर्त्सना	शस्त्र उठाना टकार, श्वास लेना आदि	अमर्ष, गर्व आवेग
३—दैत्यवश पृ० ६८-६६	राजाबलि	इन्द्र	शक्ति, पराक्रम, सेना का पलायन	तिरस्कार, अधिक्षेप, शौर्य-प्रदर्शन	अमर्ष, उग्रता, हर्ष
४—हल्दीघाटी पृ० ११५	राणा प्रताप (दयावीर)	बदी मान सिंह	मस्तक झुकना पानी-पानी होना	दया	चिन्ता, गर्व
५—आर्यावर्त, षष्ठ सस्करण पृ० ६५	आर्य सेनापति	यवन दल		वीरत्व का प्रदर्शन, शस्त्र धारण करना आदि	हर्ष, मद
६—कृष्णायन पृ० ६२२-२३	भीम	कौरव दल	गर्जना, बल, प्रताप दिखाना, सेना, रण वाद्य, धनुष-वाण का शब्द	दर्प, शौर्य, शक्ति गर्जन, मारना आदि	रोमाच गर्व, हर्ष
७—विक्रमादित्य सर्ग ३४	चन्द्रगुप्त	शक सेनापति	सेना द्वारा आक्रमण	युद्ध, प्रस्थान	हर्ष, चपलता, औत्सुक्य
८—अगराज, पृ० १८७	पाडव-सेना	कौरव दल	सेना, शख, सिंहनाद गर्जन	गर्जन, वाद्य बजाना, विरुदावली गाना	मद, आवेग हर्ष
६—जौहर (१६ वी चिनगारी)	राजपूत सेना	यवन दल	गर्जन, तर्जन, आक्रमण	बल, विक्रम और शक्ति का परिचय	हर्ष, धृति श्रम

ग्रन्थ का सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
१०—जयद्रथ अभिमन्यु वध (प्रथम सर्ग)	कौरव-सेना	चक्रव्यूह रचना रिपु सेना	शौर्य-प्रदर्शन	चपलता, हर्ष, आवेग, उत्सुकता	
११—सिद्ध-सिद्धराज राज (दि० सर्ग)	जगदेव	युद्ध लडना, धराशायी होना	हाँक मारना	उग्रता, अमर्ष	
१२—तुमुल लक्ष्मण (१२वाँ सर्ग)	मेघनाद	बल प्रदर्शन, ललकारना	वाण छोडना शक्ति-प्रदशन	उग्रता, अमर्ष	
१३—रश्मिरथी पृ० १६२	कर्णार्जुन	कर्णार्जुन	गर्जन, वाणवर्षा, रक्तरजित शरीर		युद्ध करना
१४—मौर्य-विजय	हिन्दू सेना	ग्रीक दल	भयकर युद्ध	रणकौशल दिखाना	हर्ष, आवेग
१५—सिद्धार्थ पृ० ५८	सिद्धार्थ (दयावीर)	घायल हस	व्यथा	पक्षी को गोद मे लेना, गले लगाना, चूमना	विषाद
१६—सिद्धराज पृ० ४५-४६	सिद्धराज (दयावीर)	मूर्च्छित जगदेव	अचेत होना	दया, उपचार तर्क की आज्ञा आदि	
१७—साकेत पृ० ३८५	भरत (दयावीर)	आहत हनुमान	दारुण आर्त्त-नाद, मूर्च्छित होना	रुदन करना	विषाद
१८—अगराज ८।९-१०	कर्ण (दानवीर)	भिक्षुकगण	दीनदशा	प्रिय वाणी, दया दृष्टि	हर्ष, गर्व
१९—हल्दीघाटी पृ० १८२	भामाशाह	असहाय राणा प्रताप	विपत्तिग्रस्त जीवन	आँसू गिराना, गद्गद होना	हर्ष, आवेग
२०—तक्षशिला ४।५०	युवराज (धर्मवीर)	प्रजा	सुख-शाति की स्थापना	प्रजा हित मे लगे रहना	हर्ष
२१—प्रणवीर प्रताप पृ० ४४-४५	झाला-मन्ना	यवन सेना	युद्ध	रक्ताक्त होना	हर्ष धृत गर्व

ग्रन्थ का सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
२२–साकेत पृ० ३७१	भरत	चरण पादुकाएँ	रत्न-दीप	पूजा-निरत	चिंता आत्मलीन
२३–बुद्धचरित्र पृ० १२८	गौतम बुद्ध (धर्मवीर)	तत्त्व विचार	एकान्त, वन धार्मिक कृत्य	ध्यान,सुध बुध भूलना	विबोध
२४–साकेत-सन्त १४।६	भरत (धर्मवीर)	सत्सग	धार्मिक कृत्य सध्या, उपासना	शाति स्थिरता	धृति, मति विबोध
२५–दैत्यवश १२।३८	बलिराज (दानवीर)	बाल ब्राह्मण		दान के प्रति उत्साह	हर्ष, गर्व
२६–दैत्यवश १।४६	प्रह्लाद (धर्मवीर)	पीडित मुनि वृन्द	हाहाकार	सत्याग्रह, उत्साह का प्रदर्शन	उग्रता, गर्व

मुक्तक काव्यों में वीर रस—

ऊपर के उदाहरणो के अतिरिक्त मुक्तक काव्यो मे भी उत्साह की सुन्दर व्यजना मिलती है। भगवानदीन 'दीन' का वीर पचरत्न, वियोगी हरि की वीर सतसई, अनूप शर्मा की 'स्वतत्रता का आवाहन' और 'पानीपत', सुभद्राकुमारी की 'झाँसी की रानी', मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वर्गीय सगीत' मे उत्साह की व्यजना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इसके अतिरिक्त त्रिशूल, सेवकेन्द्र, अम्बिकेश, केशव तथा रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' की फुटकर कविताओ मे वीरत्व के भावो का सुन्दर प्रकाशन पाया जाता है। इन प्रसगो मे वीर रस को सर्वा गपूर्ण व्यजना तो नही है, किन्तु हर्ष, गर्व, मति, धृति, तर्क, स्मृति, उग्रता, आवेग, औत्सुक्य, रोमाच आदि भावो की व्यजना सफल है।

ऊपर दिये हुए उदाहरणो से स्पष्ट है कि आधुनिक काल की कविता मे वीर रस की परम्परा का यथेष्ट विकास हुआ है तथा उसके चारो भेदो पर काव्य-रचना मिलती है। चित्र मे १९ और २५ सख्या के काव्यो मे दानवीर, ४, १६,१७, १८ मे दयावीर, २१,२३, २४ और २६ मे धर्मवीर तथा शेष सख्याओ के काव्यो मे युद्धवीर की सर्वा गपूर्ण सामग्री विद्यमान है। तालिका से स्पष्ट है कि वीररस के आश्रय, आलम्बन तथा उद्दीपन सामग्री का पर्याप्त विकास हुआ है तथा रस की पूर्ण सामग्री विद्यमान है। इससे सिद्ध है कि प्रबन्ध काव्यो मे वीर रस का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। मुक्तक एव स्फुटिक रचनाओ मे वीररस के केवल सचारियो का ही प्रदर्शन है।

भयानक रस

भयानक की परम्परा—

हिन्दी साहित्य में रौद्र और वीर रस की भाँति भयानक रस की परम्परा भी मिलती है। आलोच्यकाल से पूर्व जिन काव्यो मे रौद्र और वीर रस मिलता है, उन्ही मे भयानक रस भी। अतएव पुनरावृत्ति से बचने के लिए यहाँ उनका नामोल्लेख करना आवश्यक नही समझा गया है।

आलोच्यकाल के अन्तर्गत भी जिन प्रबन्ध काव्यो मे रौद्र और वीर रस मिलता है, उन्ही मे भयानक रस भी। भयानक रस का निरूपण दशरूपककार ने इस प्रकार किया है—

रौद्र शब्द के सुनने से अथवा रौद्र मूर्ति के देखने से भय स्थायी के प्रादुर्भूत होने पर भयानक रस उत्पन्न होता है। इसमे कप, स्वेद, स्वरभग, वैवर्ण्य आदि अनुभाव होते है तथा दैन्य, सभ्रम, मोह एव त्रास आदि व्यभिचारी भाव होते है।[१]

वाग्भट्ट के अनुसार पिशाचादि के विकृत स्वर को सुनने एव उसे देखने से तथा स्वजनो का नाश देखने से भयानक रस उत्पन्न होता है तथा शून्य गृह, वन आदि से उद्दीप्त होता है। हाथ काँपना, चचल दृष्टि से देखना, हाथ मलना, कठ और होठ सूखना, मुँह फीका पडना, रग बदलना, स्वरभग आदि इसमे अनुभाव होते है तथा इसके सचारी हैं—शका, अपस्मार, मरण, त्रास, चपलता, आवेग, दैन्य, और मोह आदि। स्त्री तथा नीच पुरुषो मे इसकी उत्पत्ति स्वाभाविक रूप से होती है।[२]

साहित्य दर्पण मे भयानक रस की उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है—

जिससे भय की उत्पत्ति हो, वह आलम्बन तथा उसकी घोर चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। इसके अनुभाव है—वैवर्ण्य, गद्‌गद् स्वर, प्रलप, स्वेद, रोमाच, कप तथा सब ओर आँखें फाड-फाड कर देखना आदि तथा इसके सचारी भाव जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दैन्य, शका, अपस्मार, भ्रान्ति एव मरण आदि होते है। स्त्री, बालक एव नीच नायक इसके आश्रय होते है।

उपर्युक्त आचार्यों के मतो मे आलम्बन के विषय मे कोई बडा मतभेद नही है। भयानक रूप या विकट स्वर से इसकी उत्पत्ति है। वाग्भट्ट ने स्वजनो

१—दशरूपक ४।८०।

२—वाग्भट्ट : काव्यानुशासन, अध्याय ५।

के नाश को भी आलम्बन माना है। दशरूपककार ने उद्दीपनो का उल्लेख नही किया है। वाग्भट्ट ने शून्य गृह, अरण्य आदि को तथा साहित्यदर्पणकार ने आलम्बन की घोर चेष्टाओ को आलम्बन बताया है। वाग्भट्ट ने बाह्य वस्तुओ को उद्दीपन रूप मे ग्रहण किया है तथा साहित्यदर्पणकार ने आलम्बन गत बातो को। यही दोनो का अन्तर है। अनुभावो और सचारियो मे कम और अधिक के सिवाय कोई अन्तर नही है। साहित्यदर्पण के अनुभाव और सचारियो की सख्या सबसे अधिक है।

नीचे आलोच्यकाल के काव्यो से भयानक रस के उदाहरण तथा उनकी सामग्री का विश्लेषण किया जाता है :—

भयानक रस

ग्रन्थ सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
१—दैत्यवश ७।१	देवसेना के वीर	भूतादि के दृश्य	असहाय दशा	आतकित होना	त्रास, दैन्य
२—नूरजहाँ पृ०२६	अनारकली	अकबर	खटका, तलवार दिखाना	मूर्च्छित होना भू-पात	त्रास, अपस्मार
३—विक्रमादित्य पृ० ५७	ध्रुवदेवी	शक सेना	राजा का बदी होना	भयभीत होना	शका, दैन्य
४—अगराज २१।१३७	सेना	कर्ण का, वज्र बाण	अग्नि वर्षा	हाहाकार, धैर्यनाश	त्रास
५—हल्दीघाटी पृ० १६६	राणा के बच्ची-बच्चे	यवन-दल	अरण्यवास, भूख की पीडा	चिल्लाना, रोना विलापकरना	दैन्य
६—जौहर पृ० ५५	यवन सिपाही	गोरा-बादल	शस्त्रादि सचालन	भू-पात, कप	त्रास, आवेग
७—कृष्णायन पृ० ६२	ग्वाल-बाल	अरिष्टासुर	भयकर रूप	व्याकुलता, पलायन, मरण	त्रास, अपस्मार
८—रावण महाकाव्य १३।३१	राक्षसवृन्द	राम का भयकर युद्ध	रावण का सिर कटना	पलायन, घबडाना	त्रास, आवेग
९—आर्या-	यवन सैनिक	पृथ्वीराज	रौद्र मूर्ति	कप, पलायन,	त्रास,

ग्रन्थ सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
१०—रश्मि- रथी पृ० १२०-२१	पाडव सेना	कर्ण	काल रूप	कप,कोलाहल, व्यग्रता	त्रास आवेग
११—सिद्ध- राज पृ० ४४	सैनिक	सिद्धराज	प्रचड नाद	भयभीत होना, जडीभूत होना	अपस्मार जडता,त्रास
१२—जयद्रथ वध पृ० ६७	जयद्रथ	अर्जुन	रौद्र मूर्ति	भय से व्याकुल होना, प्रलाप	त्रास, दैन्य, मरण
१३–कुणाल पृ० ११०-११	रानी तिष्य-रक्षिता	अशोक	नग्न असि	मूर्छित,पतित, गद्‌गद् स्वर	अपस्मार, मरण,त्रास
१४—तुमुल पृ० ५८	मेघनाद की सेना	लक्ष्मण	भयकर वाण वर्षा	स्वरभग, आतक चिल्लाना	त्रास, दैन्य
१५—विपपान पृ० ३४	देव दानव	कालकूट	विषाक्त लहरे	पलायन भागना,स्तभ	भ्रान्ति, मोह
१६—मौर्य विजय२।३६	यूनानी सैनिक	चन्द्रगुप्त	भयकर युद्ध	अस्तव्यस्त होना भागना, पीठ दिखाना	भ्रा ति, त्रास
१७—कुरुक्षेत्र पृ० ७६	नर-नारी	महाभारत	महानाश	भय, आतक, उदासी	मरण

विवेचन—

साहित्यदर्पणकार ने 'स्त्री नीच प्राकृतिः' द्वारा भयान— रस के आश्रय स्त्री एव नीच पुरुष बताए है, किन्तु दैत्यवशकार ने दैत्यो के द्वारा देवताओ की पराजय का वर्णन कर देवताओ मे भय की दशा का वर्णन किया है। यह व्यतिक्रम नये युग के प्रभाव के कारण है। वस्तुत. दैत्यवश के कवि ने देवताओ से अधिक दैत्यो के उत्कर्ष का चित्रण किया है, जिसके फलस्वरूप भय की स्थिति देवताओ मे दिखाई गई है। दैत्यो का प्रभुत्व स्थापित हो जाने पर इन्द्र अमरावती तक को छोडकर भागने को विवश होते है।

ऊपर दिये हुए काव्यो के प्रसगो मे भयानक रस की अविकल सामग्री उपलब्ध होती है। प्रबन्ध काव्यो के अन्तर्गत शत-प्रतिशत अश मे रस का पूर्णोत्कर्ष हुआ है। आश्रय के रूप मे स्त्री, बालक, नीच पुरुष एव ऊँच पुरुष सभी आ गए है। चित्र मे दो, तीन और तेरह सख्या के उदाहरणो मे स्त्रियो को,

सख्या पाँच और सात के उदाहरणो मे बालको को, शेष काव्यो मे सेना के वीर सिपाहियो को तथा दैत्यवश मे देवताओ को भय के आश्रय के रूप मे चित्रित किया गया है।

तालिका से स्पष्ट है कि विभाव एव अनुभावो का वर्णन परम्परानुगत है। संचारियो मे त्रास, दैन्य, अपस्मार, शका, आवेग, भ्रान्ति, जडता, मरण आदि सभी की मार्मिक व्यजना हुई है।

इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे भयानक रस का पूर्णोत्कर्ष हुआ है। इस दिशा मे जो स्वतत्र विकास हुआ है, उसका प्रयोगो के अध्याय मे अन्यत्र उल्लेख किया जायगा।

वीभत्स रस

वीभत्स की परम्परा—

इस रस की कोई स्वतत्र परम्परा नही है। रौद्र, वीर एव भयानकादि रसो की भाँति काव्यो मे वीभत्स रस प्रचुरता से नही आया है। प्राय. युद्ध वर्णन के प्रसगो मे ही इसकी अभिव्यक्ति हुई है। जिन प्रबन्ध काव्यो मे रौद्र, वीर, भयानक रस मिलते है, उन्ही मे यत्र-तत्र वीभत्स रस के भी स्थल दिखाई पड जाते हैं।

आलोच्यकाल के निम्नाकित प्रबन्ध काव्यो मे वीभत्स रस के प्रसग आए हैं :—

महाकाव्य—

दैत्यवश, कृष्णायन, विक्रमादित्य, हल्दीघाटी, जौहर, अगराज, आर्यावर्त।

खडकाव्य—

जयद्रथ-वध, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी।

वीभत्स रस—

दशरूपककार ने जुगुप्सामूलक अपवित्र, कृमि एव दुर्गन्ध युक्त वस्तुओ से इसका उत्पन्न होना बताया है। रुधिर, अँतडी, चर्बी, मास, मज्जादि से यह उद्दीप्त होता है। वैराग्य के कारण नारी के जघन, स्तनादि मे घृणा प्रकट करना, नाक-मुँह सिकोडना आदि इसमे अनुभाव होते है तथा आवेग, व्याधि, शका आदि इसमे सचारी है।[1]

१—दशरूपक ४।७३

वाग्भट्ट ने अप्रिय एवं उत्कट व्रण, जिनमे दुर्गन्ध युक्त कृमि, कीटादि हो, उनके देखने-सुनने से इसकी उत्पत्ति बताई तथा अग-सकोच, हृदय, मुख एव नासिका को सिकोडना, ढँकना, थूकना आदि को अनुभाव कहा है। अपस्मार, मोह, व्याधि आदि इसके सचारी हैं[१]। केशव मिश्र लक्षण का इसी मे अन्तर्भाव हो जाता है[२]।

साहित्यदर्पणकार ने जुगुप्सा को स्थायी भाव, दुर्गन्ध, मास, रुधिर, भेद आदि को आलम्बन, इनमे कृमि-कीटादि पडने को उद्दीपन बताया है। थूकना, मुँह बिगाडना, आँख मूँदना आदि इसके अनुभाव होते है तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके सचारी हैं।[३]

उपर्युक्त लक्षणो मे प्रायः समानता है। वीभत्स रस के अगो के पृथक्-पृथक् वर्णन मे थोडा-बहुत अन्तर है। साहित्यदर्पण के लक्षण मे सभी का अन्तर्भाव हो जाता है। दशरूपककार ने नारी के सुन्दर अगो मे घृणा करने को वीभत्स के अन्तर्गत माना है, शान्त के अन्तर्गत नही, क्योकि उनके अनुसार शान्त रस से नही, वीभत्स से वैराग्य उत्पन्न होता है। शेष अगो के वर्णन मे पूर्ण समानता है।

नीचे इसी मानदड से आलोच्यकालीन काव्यो के आधार पर वीभत्स रस की परम्परा का विवेचन किया जाता है :—

वीभत्स रस

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
१—दैत्यवश ६।२	मृत वीरो के शव	रुधिर मास, आँते चरबी और मुड धारण	दृष्टा का मुँह-नाक सिकोडना	आवेग, मोह
२—हल्दीघाटी पृ० १५८-५९	रणभूमि की लाशे	विष्टा, मल, खोपडी, मास रुधिर, सडी-गली अस्थियाँ, दुर्गन्ध	,,	अपस्मार मरण

१—काव्यानुशासन, अध्याय ५।
२—अलकार शेखर, २०।२४
३—साहित्यदर्पण ३।२३९-४२

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
३—जौहर पृ ११०	शरीर की बोटियाँ	रुधिर, मुड आदि	दृष्टा का मुँह-नाक सिकोडना	मरण
४—विक्रमादित्य पृ० १८३	लाशे	साँस रुकना, नाडी छूटना, लोथे पटना	,,	मोह
५—कृष्णायन पृ० ७४२	दुःशासन का शव	हृदय को चीरना, रक्त पान, रक्त मे सन जाना	,,	आवेग
६—कृष्णायन पृ० ७५२	शव-समूह	मु डो के ढेर, शोणित, चर्बी अस्थियो के अम्बार, अगभग क्षत-विक्षत शरीर आदि	,,	मोह अपस्मार
७—अगराज २१।२७१ -७५	रणभूमि पर लाशो के ढेर	टूटे-फूटे कुभ-स्थल, रक्त-स्राव, खडित ललाट, वक्ष आदि	,,	ग्लानि, निर्वेद
८—जयद्रथ-वध पृ० ८९	योद्धाओ की लाशे	शरीर की बोटियाँ, फूटी आँखे, घायल, क्षत-विक्षत शव, रु ड-मुड, रक्त-कीच	,,	मोह अपस्मार
९—आर्यावर्त पृ० ११	रण-क्षेत्र के शव	मास, दुर्गन्ध, घायल हाथी, घोडे और पैदल	,,	आवेग, ग्लानि
१०—कुरुक्षेत्र पृ० ७४	लाशो के ढेर	सडती हुई विपाक्त गध, विदीर्ण अग	,,	निर्वेद, ग्लानि
११—रश्मिरथी पृ० १६१ -६२	युद्धभूमि पर लोथो का दृश्य	लहू स सने शरीर, हाथी और घोडो के शवो के ढेर	,,	उद्वेग, ग्लानि

विवेचन—

वीभत्स रस की अभिव्यक्ति अधिकतर प्रबन्ध काव्यो मे ही पाई जाती है। आधुनिक काल के उपर्युक्त काव्यो मे वीभत्स की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। ये प्रसग प्रायः युद्ध-भूमि से सम्बन्धित है। हल्दीघाटी, कृष्णायन, अगराज, दैत्यवश एव जयद्रथ वध के वीभत्स रस के प्रसगो मे विभाग पक्ष का वर्णन अत्यन्त सजीव है।

हास्य तथा वीभत्स मे अन्य रसो की भाँति आश्रय नही होता है। इन रसो मे आश्रय का स्थान स्वय श्रोता या पाठक ग्रहण करता है। रस गगाधरकार ने कहा है कि आश्रय के न होने पर भी उसका आक्षेप कर लिया जाता है[१]।

आधुनिक युग के प्रबन्ध काव्यो के ऊपर दिखाए हुए प्रसगो मे शत-प्रतिशत अशो मे वीभत्स रस का पूर्ण प्रकर्ष मिलता है। इससे सिद्ध है कि विभाव, अनुभाव एवं सचारियो से पुष्ट वीभत्स की व्यजना का आधुनिक प्रबन्ध काव्यो मे पूर्णोत्कर्ष हुआ है।

अद्भुत रस

अद्भुत की परम्परा—

अद्भुत रस की परम्परा का विकास भक्ति काव्य मे अधिक हुआ है। अवतारो के अलौकिक प्रभाव, लीला एव माया वर्णन के प्रसगो मे इसका पूर्णोत्कर्ष दिखाई पडता है। सूर और तुलसी के साहित्य मे अद्भुत रस की प्रकृष्ट व्यजना मिलती है।

अद्भुत रस—

दशरूपककार ने अलौकिक पदार्थों के वर्णन मे अद्भुत रस की प्रतिष्ठा दिखाई है, जिसका स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य है। इसके अनुभाव है— साधुवाद, अश्रु, वेपथु, स्वेद एवं गद्गद् स्वर तथा हर्ष, आवेग, धृति आदि इसके सचारी है[२]।

वाग्भट्ट के अनुसार दिव्य दर्शन, अभीष्ट की प्राप्ति, देव, विमान, माया. इन्द्रजाल, अतिशय शल्य कर्म आदि इसके विभाव है, आँखे फटना, अपलक

१—काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास; श्लोक ४२ की टीका।

२—दशरूपक ४ ७८-७९

दृष्टि से निहारना, रोमाच, अश्रु, स्वेद, साधुवाद, दान, विस्मय प्रकट करना, अंगुलि, भ्रमण आदि इसके अनुभाव हैं तथा हर्ष, आवेग, जडता आदि व्यभिचारी हैं[१]।

केशव मिश्र ने असभव वस्तुओ के दर्शन, श्रवण से अद्भुत रस की उत्पति मानी है। नेत्र-विकार, रोमांच, स्वेद, नेत्रो से एक टक देखना, साधु-साधु की वाणी का उच्चारण करना इसके अनुभाव है[२]।

साहित्य दर्पणकार ने अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय, देवता, गधर्व तथा वर्ण पीत बतलाया है। अलौकिक वस्तु का वर्णन इसका आलम्बन तथा उसकी महिमा का कथन उद्दीपन है। इसके अनुभाव स्तभ, स्वेद, रोमाच, गद्गद् स्वर, सभ्रम, नेत्रो का विकसित होना आदि है तथा इसके सचारो वितर्क, आवेग भ्रान्ति, हर्ष आदि होते है[३]।

अद्भुत रस के विषय मे थोडे-बहुत के अन्तर से सभी आचार्यो के मत समान है। वाग्भट्ट का विभाव पक्ष का वर्णन सबसे अधिक विशद है। अन्य आचार्यो ने विभावो का वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त कर दिया है, अलौकिक वस्तु-वर्णन मात्र। वाग्भट्ट ने विभावो मे दिव्य दर्शनादि विविध अद्भुत वस्तुओ का उल्लेख किया है। इनके अनुभाव तथा सचारियो मे अन्य मतो का अन्तर्भाव हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वाग्भट्ट का लक्षण सबसे अधिक व्यापक एव विशद है।

नीचे इसी मानदण्ड से आलोच्य काल के काव्यो मे अद्भुत रस के समस्त अगो का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

अद्भुत रस

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
१—साकेत पृ० ३८४-८५	आकाश से तारका सा टूटना	मायावी राक्षस-सा दीखना	चौक पडना, 'हरे हरे' कहना	वितर्क आवेग
२—कृष्णायन पृ० २५	कृष्णावतार	अद्भुत चमत्कार, कालिय नाग नाथना	गद्गद् होना, अश्रु, आनन्द	हर्ष, आवेग

१—काव्यानुशासन अध्याय ५।

२—अलंकार शेखर २०।२५-२६

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सचारी
३—कृष्णायन पृ० ६२	कृष्णलीला	शरीर का विस्तार	रोमाच, अश्रु	वितर्क
४—कृष्णायन पृ० ६५	कृष्ण की माया	दावानल पान	आश्चर्य-प्रसन्नता, रीझना	हर्ष वितर्क
५—कृष्णायन पृ० ८२	कृष्ण की लीला	गोवर्धन-धारण	निर्निमेष देखना, सहायक होना	हर्ष
६—कृष्णायन पृ० ५८३	कृष्ण का विश्व-रूप	अनन्त बाहु, सूर्य-चन्द्र नेत्र, सर्वव्यापक	विनय, प्रार्थना, स्तुति करना	हर्ष,आवेग
७—दैत्यवश १।४७	नृसिंह अवतार	हिरण्यकशिपु का वध, अलौकिक तेज	आनन्द बढ़ना, आश्चर्य होना	हर्ष
८—दैत्यवश १२।४१-४३	वामन अवतार	साढे तीन पग मे त्रिलोकी को नापना	दुन्दुभी बजाना गुणगान करना	हर्ष
९—सिद्धार्थ पृ० २८	बुद्धावतार	सम्पूर्ण पृथ्वी पर अलौकिक तेज प्रकट होना	नेत्रो का धन्य होना	हर्ष
१०—सिद्धार्थ पृ० ६३-६४	सिद्धार्थ	बुद्ध का अलौकिक तेज प्रकट होना,	रोमाच, आश्चर्य, स्तभ, प्रणाम, स्तुति, गुणानुवाद	हर्ष, वितर्क
११—रावण महाकाव्य ३।४७-४८	रावण का तप	ब्रह्म का प्रकट होना	वर माँगना	हर्ष
१२—रावण १२।३८	रावण की सभा	देवताओ की उपस्थिति	चकित होना	वितर्क
१३—कामायनी पृ० २४-२५	विराट प्रकृति	प्रकृति मे अलौकिक चमत्कार	आश्चर्य, कुतूहल	वितर्क, आति

१४—गगावतरण ६।१४–१५	ब्रह्मा का प्रकट होना	देवताओ का सान्निध्य	नेत्र उघाडना, अश्रु रोमाच, प्रणाम, स्तुति	हर्ष
१५—गगावतरण ६।३७–३९	महादेव	अलौकिक रूप	चकित होना, चारो ओर देखना	भ्राति, हर्ष
१६—गगावतरण ७।४०	शकर	अलौकिक प्रभाव	कृतार्थ होना	हर्ष
१७—जयद्रथ वध पृ० ५१	बैकुण्ठ	अलौकिक दृश्य	पुलकित होना, आश्चर्य होना	हर्ष, वितर्क
१८—कुणाल पृ० ११३	कुणाल	फूटी आँखो मे ज्योति का प्रकाशित होना	पुलक, गद्‌गद् होना	मोह, वितर्क
१९—विष-पान पृ० ४३	शकर	कालकूट पीना	आश्चर्य होना जय जयकार	हर्ष, वितर्क
२०—जौहर पृ० ११५	अष्टभुजा वाली दुर्गा	अलौकिक चमत्कार	भयभीत होना, मूर्च्छित होना	जडता भ्रान्ति
२१—अगराज १।६	भगवान भास्कर	अलौकिक तेज, ज्योतिर्मय रूप	आश्चर्य, प्रणाम, स्तुति	भ्राति
२२—राम की शक्तिपूजा	भगवती दुर्गा	ज्योतिर्मय रूप	प्रणाम, स्तुति	हर्ष

विवेचन—

आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे अद्‌भुत रस का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। विशेषत: कृष्णायन, गगावतरण और दैत्यवश मे अनेक स्थलो पर इसकी अभिव्यक्ति हुई है। कृष्णायन के अवतरण काड मे भगवान कृष्ण की बाल लीलाओ मे अद्‌भुत रस की सरस व्यजना मिलती है। गगावतरण मे अद्‌भुत रस की व्यजना अत्यन्त सजीव, पुष्ट एव सर्वा गपूर्ण है। ब्रह्मा, महादेव एव अन्य देवताओ के दिव्य दर्शन तथा अलौकिक चमत्कारो के वर्णन मे तथा भागीरथी के ओजस्वी एव अलौकिक वेग के वर्णन मे अद्‌भुत रस की प्रकृष्ट व्यजना है। कृष्णायन और गगावतरण के कवियो ने अद्‌भुत रस की सम्पूर्ण

साधन-सामग्री की पूर्ण मनोयोग के साथ वर्णन किया है। इन काव्यो मे विभावो का वर्णन अत्यन्त सजीव एव प्रभावोत्पादक है।

तालिका मे दिखाए हुए सभी काव्यो मे निर्दिष्ट स्थलो पर अद्‌भुत रस के समस्त अवयव पाये जाते है। इससे सिद्ध है कि इन सन्दर्भों मे रस की व्यजना पूर्ण है। जौहर काव्य मे अष्टभुजी काली का दर्शन कर बादशाह अलाउद्दीन का भयभीत होकर मूर्च्छित होना वर्णित है। इस प्रसग मे विस्मय के साथ भय की दशा का मिश्रण हो गया है। अतएव इसे शुद्ध अद्‌भुत रस कहने मे सन्देह है। अन्यत्र अद्‌भुत रस को व्यजना विशुद्ध एव सफल है। इससे सिद्ध है कि प्रबन्ध काव्यो मे अद्‌भुत रस की परम्परा का शत-प्रतिशत अश मे विकास हुआ है। प्रबन्ध काव्यो मे क्षेत्र से बाहर अद्‌भुत रस के उदाहरण प्रायः नही मिलते है।

शान्त रस

शान्त की परम्परा—

हिन्दी-साहित्य मे शान्त रस की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है तथा हर एक युग म इसने किसी-न-किसी रूप मे साहित्य को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। इस धारा का सबसे अधिक उज्जवल रूप सन्त काव्य और भक्ति काव्य मे दिखाई पडता है। कबीर, सूर एव तुलसी के साहित्य मे इसी की प्रधानता है। रीतिकाल मे शृ गार का आधिक्य हो जाने से इसका रूप कुछ दब-सा गया है, किन्तु उसकी सतत प्रवहमान धारा का बिलकुल लोप कभी नही हुआ है। रीतिकाल के प्राय. सभी कवियो ने शृ गार के साथ-साथ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की ओर भी अपनी स्वाभाविक रुचि प्रदर्शित की है। इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल से पूर्व शान्त रस की एक समर्थ परम्परा का विकास हुआ है।

शान्त रस—

वाग्भट्ट के अनुसार वैराग्य, ससार से भय, तत्त्वज्ञान, विरक्तो की पद-वन्दना, भगवत्कृपा आदि इसके विभाव है। यम, नियम, अध्यात्म, शास्त्र चिंतन आदि इसके अनुभाव है तथा धृति, स्मृति आदि इसके व्यभिचारी है। इसका स्थायी भाव शम है[१]।

केशव मिश्र के अनुसार इसके विभाव है—सम्यक् ज्ञान का उदय, निस्पृह नायक, राग-द्वेष का परित्याग तथा श्रेष्ठ ज्ञान का प्रादुर्भाव है। पश्चात्ताप,

---

१—काव्यानुशासन, अध्याय ५।

शरीरादि सम्पूर्ण वस्तुओ के प्रति विरक्ति, विवेक, चित्त की स्थिरता, योग आदि इसके अनुभाव है[१] ।

साहित्य दर्पणकार के अनुसार शम स्थायी भाव, अनित्यता, सम्पूर्ण पदार्थो की निस्सारता तथा परमात्म स्वरूप का चिन्तन आदि इसके आलम्बन हैं। पवित्र आश्रम, हरिक्षेत्र, तीर्थ, रमणीय वन एव महात्माओ का सत्सग आदि इसके उद्दीपन हैं। रोमाच, भूत, दया आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति आदि इसके सचारी हैं।[२]

आचार्यों के उपर्युक्त मतो मे प्रायः एकरूपता है। सभी ने 'शम' स्थायी भाव माना है। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार स्थायीभाव निर्वेद है। 'शम' को स्थायी मान लेने पर 'निर्वेद' सचारियो मे चला जाता है, जो उसका उचित स्थान है। 'निर्वेद' सचारी होने से उसको स्थायी भाव मानना अनुचित है—यही विचार कर साहित्यदर्पणकार ने शान्त रस का स्थायी 'शम' को माना है, क्योकि 'शम' की अनुभूति मे स्थायित्त्व होता है। किन्तु आचार्य मम्मट ने 'शम' के स्थान पर 'निर्वेद' को स्थायी कहा है। यही समीचीन है। वास्तव मे यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो रति के विपरीत या निर्वेद भी स्थायी भाव दशा है। विरति या वैराग्य की वृत्ति दो कारणो से उत्पन्न होती है, तत्त्वज्ञान से अथवा कामना की अतृप्ति से। पहली दशा मे यह स्थायी वृत्ति के अन्तर्गत है तथा दूसरी अवस्था मे अस्थायी के। फलतः निर्वेद का भाव यदि तत्त्वज्ञान का फल है, तो स्थायी अन्यथा सचारी है। 'शम' कोई स्थायी भाव नही कहा जा सकता क्योकि वह निर्वेदजन्य है। जिस प्रकार 'रति' स्थायी भाव है और 'हर्ष' उसका परिणाम है, उसी प्रकार 'निर्वेद' स्थायी भाव है तथा 'शम' उसका परिणाम है। एव स्थायी 'निर्वेद' तत्त्वज्ञान जन्य है और व्यभिचारी 'निर्वेद' इष्टनिष्ट वियोगजन्य।[३] यही दोनो का अन्तर है। निष्कर्ष यह है कि 'शम' की अपेक्षा 'निर्वेद' को शान्त रस का स्थायी मानना अधिक मनोवैज्ञानिक है।

वीररस के अन्तर्गत दयावीर से शान्त रस भिन्न है क्योकि पहले मे अभिमान की स्थिति बनी रहती है, किन्तु दूसरे मे उसका अभाव हो जाता है।

१—अलंकार शेषर २०।२७-२८

२—साहित्यदर्पण ३।२४५-४६

३—'निर्वेद स्थायि भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः
काव्यप्रकाश सूत्र ४७ ।

आलोच्य कालीन प्रबन्ध काव्यो मे शान्त रस की परम्परा का सम्यक् प्रस्तार-विस्तार पाया जाता है। इसके लिए निम्नांकित काव्य-ग्रन्थ दृष्टव्य हैं—साकेत[१] मे जीवन के आदर्शों का वर्णन, कामायनी[२] मे अखड आनन्द, ज्ञान की प्राप्ति का वर्णन, सिद्धार्थ[३] मे महात्मा बुद्ध के धार्मिक उपदेशो का वर्णन, दैत्य वश[४] मे बाण के उग्र तप, अरण्य-निवास पचाग्नि सेवन का वर्णन, कृष्णायन[५] मे युधिष्ठिर के धार्मिक आदर्श—शान्ति, धर्म, निर्लोभता आदि का वर्णन, साकेत-सन्त[६] मे वशिष्ठ के उपदेश मे आत्मा के अमरत्व और ससार के मिथ्यात्व का वर्णन, आर्यावर्त[७] मे चन्द द्वारा जगत् की निस्सारता और जीवो के मृत्यु-क्रम का वर्णन, कुरुक्षेत्र[८] मे युधिष्ठिर के पश्चाताप का वर्णन, रश्मिरथी[९] मे धर्म की महत्ता का वर्णन, कुणाल[१०] मे अशोक का काषाय-ग्रहण, जयद्रथ वध[११] मे अर्जुन के प्रति कृष्ण का उपदेश, वैदेही वनवास[१२] मे सीता का उपदेश, तुलसीदास[१३] मे तुलसी का आत्मबोध, यशोधरा[१४] मे सिद्धार्थ का गृहत्याग, ससार की नश्वरता आदि।

कृष्णायन, साकेत-सन्त, बुद्ध चरित, सिद्धार्थ और कुरुक्षेत्र मे शान्त रस के अनेक प्रकरण आए है। कृष्णायन का गीता काड और आरोहण काड शान्त रस से समृद्ध है। कृष्ण और भीष्म के उपदेशो मे शान्त रस की सम्यक अभिव्यजना मिलती है। साकेत-सन्त के पाँचवे, बारहव और चौदहवे सर्गों मे

१—साकेत पृ० २१७
२—कामायनी पृ० २५४
३—सिद्धार्थ पृ० २७५
४—दैत्यवंश १७।४६-४७
५—कृष्णायन पृ० ४७८
६—साकेत सन्त ५।१६-१७
७—आर्यावर्त पृ० १०६
८—कुरुक्षेत्र-पंचम सर्ग
९—रश्मिरथी पृ० १२५-२६
१०—कुणाल पृ० १२१
११—जयद्रथ-वध ३४
१२—वैदेही-वनवास १४।८०
१३—तुलसी दास छन्द ६१
१४—यशोधरा पृ० १६।

वशिष्ठ, भरद्वाज तथा अन्य ऋषियो के उपदेशो मे और भरत के स्वधर्माचरण मे शान्त रस की निष्पत्ति होती है। बुद्धचरित और सिद्धार्थ काव्यो मे महात्मा बुद्ध के तप, आराधन एव उपदेशो के प्रकरणो मे शान्तरस परिव्याप्त है। कुरुक्षेत्र के सभी सर्गों मे आद्योपान्त शान्त रस प्रधान है। युधिष्ठिर की आत्मग्लानि, पश्चात्ताप, विरक्ति एव प्रक्षोभ के पीछे शान्त रस का प्रोद्-भास है।

प्रबन्ध काव्यो से बाहर मुक्तक एव प्रगीत काव्यो मे भी शान्त रस का उच्छल प्रवाह बहता है। पन्त जी की परिवर्तन, एकतारा, नौका विहार, तथा स्वर्णकिरण की जिज्ञासा, द्वा सुपर्णा, सविता, श्री अरविन्द दर्शन एव स्वर्णोदय कविताओ मे जिज्ञासा एव तत्त्व दर्शन का अभिलाष है। निराला जी की जागो फिर एक बार, अधिवास, राम की शक्तिपूजा तथा तुम और मै कविताओ मे शान्त रस की व्यजना मिलती है। निराला जी की गीतिका के गीत सख्या बारह, पच्चीस, छब्बीस, तैतालीस, इक्यासी और बयासी मे कवि ने आध्यात्मिक ज्ञान के पटलो को उघाडने का प्रयत्न किया है। इनमे शान्त रस का पूर्ण सचार है। सियारामशरण के पाथेय की 'यात्रा,' 'आह्लाद', 'जाग्रत', 'परदेशो', तिमिर पर्व, 'अमर' आदि कविताओ मे, सोहनलाल द्विवेदी की 'वासव-दत्ता', प्रसाद जी की 'ले चल मुझे भुलावा देकर,' 'धर्म नीति,' 'कुरुक्षेत्र,' 'भक्ति-योग' तथा एकान्त मे कविताओ मे शान्त रस के सीकर छलकते है।

उपर्युक्त मुक्तक रचनाओ मे आश्रय का स्थान कही-कही स्वय कवि ने ले लिया है। आलम्बन के रूप मे भक्ति, ज्ञान, माया, जिज्ञासा, शान्ति एव आत्म-स्वरूप का अनुसन्धान है। चाहे इनमे शान्त रस के समस्त अवयव न हो, किन्तु निर्वेद का भाव स्फुट है।

बीसवी शताब्दी मे मानव-बुद्धि विज्ञान की ओर झुकी हुई है। विज्ञान वस्तु की भौतिक सत्ता को परम सत्य मानता है, जिससे वर्तमान काल मे धार्मिक विश्वास खडित होने लगे है। वैराग्य का भाव धर्म के साथ जुडा हुआ है। धर्म परलोक मे विश्वास करता है। विज्ञान परलोक की अपेक्षा प्रत्यक्ष जनता मे अधिक आस्था रखता है। आजकल धर्म के ऊपर विज्ञान का प्रभुत्व स्थापित हो गया है। वैज्ञानिक प्रभाव ने धर्म वैराग्य, श्रद्धा, विश्वास, जप, तप, ईश्वराराधन की आस्था को निर्बल कर दिया है। आलोच्यकाल की कविता पर भी इसका प्रभाव लक्षित होता है। प्रगतिवादी, प्रयोगवादी एव राष्ट्रीय काव्य-धारा मे शान्तरस का स्रोत बिलकुल सूख गया है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो मे शान्त रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। छायावादी काव्य मे उसका नवीन विकास हुआ है और प्रगतिवादी एव राष्ट्रीय कविताओ मे शान्त रस को बिलकुल स्थान नही मिला है।

वात्सल्य रस

वात्सल्य की परम्परा—

हिन्दी साहित्य मे वात्सल्य को कोई प्रारभिक युग से चली आती हुई परम्परा नही मिलती है। केवल सूर का ही इसमे सबसे अधिक अभिनिवेश है। इस महाकवि ने कृष्ण के बालचरित को आधार बनाकर विपुल काव्य-राशि खडी कर दी है, जिससे हिन्दी-साहित्य मे इस रस की निष्पत्ति पूर्णावस्था को पहुच गई है। इसके पश्चात् दूसरा स्थान तुलसी का है। इनके मानस, कवितावली और गीतावली मे वात्सल्य का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। इन्ही दो महाकवियो के साहित्य मे इस रस का चमत्कार है। रीतिकाल के कवियो की शृ गार मे प्रवृत्ति हो जाने से वात्सल्य की बिलकुल उपेक्षा हो गई है। आगे चलकर अयोध्यासिह उपाध्याय के प्रिय प्रवास मे इसकी व्यजना अत्यन्त मधुर है। यही इसकी सूक्ष्म परम्परा है। स्वल्प कवियो ने ही इसे अपनाया है, किन्तु उनके काव्यो मे इसकी अभिव्यक्ति चरम सीमा को पहुँच गई है, इस विषय मे दो मत नही हो सकते।

वात्सल्य रस—

काव्यप्रकाशकार तथा उनके अनुयायियो ने वात्सल्य को रस नही माना है, भावो मे स्थान दिया है[१]। साहित्यदर्पणकार ने मुनीन्द्र सम्मत वत्सल रस को स्वीकार किया है, क्योकि इसमे उत्कट चमत्कार विद्यमान है। उत्कट चमत्कारिता ही इसके रसत्व का हेतु है।

वात्सल्य का स्थायी भाव स्नेह है। पुत्रादि के प्रति रति इसका आलम्बन तथा उसकी चेष्टाएँ एव विद्या, शौर्य, दया आदि उद्दीपन विभाव है। आलिगन, अग-स्पर्श, शिर को चूमना, निहारना, पुलक, आनन्द, अश्रु आदि इसके अनुभाव है तथा इसके सचारियो मे शका, हर्ष, गर्व आदि है[२]। सूर-तुलसी ने जिस वात्सल्य की सृष्टि की है, उसमे ये सभी शास्त्रीय लक्षण घटित होते हैं, अतएव

१—काव्यप्रकाश ४।३५

२—साहित्यदर्पण ३।२५१–५३

इसी को मानदण्ड मानकर नीचे आलोच्यकाल के काव्यो मे वात्सल्य रस का विवेचन किया जाता है—

पन्त जी की 'बालापन' और 'शिशु' कविताओ मे वात्सल्य भाव की मनोहर विवृति है—

कौन तुम गूढ गहन अज्ञात !
अहे निरुपम, नवजात ।
खेलती अधरो पर मुसकान,
पूर्व सुधि सी अम्लान,
सरल उर की सी मृदु आलाप,
अनवगत जिसका गान ।

—शिशु-पन्त

इस कविता मे केवल विभावो का ही वर्णन है, अनुभाव और सचारियो का नही । इससे रस की पूर्ण व्यजना नही हो सकी है । स्नेह की पूर्ण व्यजना के अभाव मे यह केवल भाव मात्र है ।

सुभद्रा कुमारी की 'मेरा नया बचपन' 'बालिका का परिचय', 'इसका रोना', 'राखी' और 'मातृ-मन्दिर मे' कविताओ मे वात्सल्य की अनूठी व्यजना हुई है । यहाँ एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा ।

मा ओ कह कर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी ।
कुछ मुँह मे कुछ लिए हाथ मे, मुझे दिखाने लाई थी ॥
पुलक रहे थे अग, दृगो मे कौतूहल था छलक रहा ।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा ॥

इनकी 'राखी' कविता मे भैया कृष्ण के लिए बहिन सुभद्रा ने राखी भेजी है । इसमे भाई के प्रति बहिन के स्नेह का भाव व्यजित हुआ है । साहित्यदर्पणकार ने इसे भी वात्सल्य मे ही रखा है, क्योकि वात्सल्य के आलम्बन पुत्रादि मे 'आदि' से भ्राता का ग्रहण है[१] ।

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो मे वात्सल्य रस के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं । इसके लिए निम्नाकित काव्य-ग्रन्थ दृष्टव्य हैं—कामायनी[२] मे श्रद्धा के पुत्र, मानव का वर्णन, सिद्धार्थ[३] मे कुमार सिद्धार्थ की बाल-क्रीडाओ का

१—साहित्यदर्पण ३।२५१
२—कामायनी पृ० २७९
३—सिद्धार्थ पृ० ३५

वर्णन, नूरजहाँ मे[१] बालिका मेहरुन्निसा की क्रीडाओ का वर्णन, दैत्यवश[२] मे राजकुमारी उषा का वर्णन, कृष्णायन[३] मे कृष्ण-लीलाओ का वर्णन, हल्दी-घाटी[४] मे प्रताप के खेल-कूदो का वर्णन, कुणाल[५] मे बालक कुणाल की अंग-छबि का वर्णन, यशोधरा[६] मे मे राहुल के सौन्दर्य का वर्णन, वैदेही वनवास[७] मे लव-कुश की चचलताओ का वर्णन आदि।

आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे वात्सल्य के जिन प्रसगो का उद्‌घाटन किया गया है, उनमे इस रस के सभी अगो का पूर्ण विन्यास है। विभाव, अनुभाव और सचारियो की योजना पूर्ण है, अतएव रसानुभूति निर्बाध रूप से होती है। कृष्णायन के अवतरण काड मे कृष्ण की बाल लीला के प्रसगो मे वात्सल्य का अजस्र स्रोत बहता है। इनमे वात्सल्य के सभी अगो का सन्निवेश होने से रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। सिद्धार्थ मे राजकुमार सिद्धार्थ की बाल-केलिओ के वर्णन मे कवि ने लोरियो की रचना की है, जिनमे माधुर्य छलकता है—

'मुझे देख राजा, मुझे देख राजा,
प्रफुल्लाब्ज-से नेत्र से देख, राजा,
मुदा मीन-सी आँख से देख राजा,
मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा।

इसी प्रकार नूरजहा की लडकी लैला को गोद मे लेकर सर्व सुन्दरी लोरी गाती है, जिससे वात्सल्य की व्यजना मे बहुत सहायता मिलती है। कुणाल के बाल-चरित के वर्णन मे कवि ने जिन लोरियो की रचना की है, उनमे वात्सल्य का पूर्ण उन्मेष है। यशोधरा के राहुल-जननी के गीतो मे वात्सल्य का अविरल स्रोत छलकता है। इसी प्रकार द्वापर के नन्द, यशोदा और देवकी के प्रकरणो मे पुत्र विषयक रति की व्यजना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। वस्तुतः कृष्णायन, सिद्धार्थ, यशोधरा, द्वापर और मुकुल वात्सल्य के विचार से अत्यन्त समृद्ध काव्य है।

१—नूरजहाँ पृ० २०
२—दैत्यवंश १३।२०-२८
३—कृष्णायन पृ० २६ वही पृ० ३७, वही पृ० ४०
४—हल्दीघाटी, पृ० १६८-६६
५—कुणाल पृ० १४
६—यशोधरा पृ० ४७
७—वैदेही वनवास १५।१३

यद्यपि आधुनिक युग मे वात्सल्य के कवि गिने-चुने हैं, तथापि इसमें सन्देह नही कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यो मे इस रस की उत्कृष्ट व्यजना मिलती है। सुभद्राकुमारी चौहान तथा सोहनलाल द्विवेदी की स्फुटिक रचनाओ मे वात्सल्य की परम्परा का अच्छा विकास हुआ है।

उपसंहार

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो मे रस की सामग्री प्रचुरता से विद्यमान है। इन प्रकरणो मे रस की शास्त्रीय परम्परा के सभी लक्षण घटित होते हैं। शृ गार के सभोग और विप्रलभ-उभयपक्षो का विस्तार-प्रस्तार सबसे अधिक हुआ है। प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत काव्यो मे समान रूप से शृ गार का ही प्राचुर्य है। छायावादी काव्य मे विप्रलभ, शृगार तथा प्रगतिवादी कविता मे सभोग शृ गार की अधिकता सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होती है। शृगार की परम्परा जितनी स्फीत एव समृद्ध है, उतनी अन्य रसो की नही। इसके पश्चात् वीर, रौद्र, करुण एव शान्त रस का स्थान है। रौद्र एव वीर रसो की व्यजना मे बहुत कुछ नया विकास हुआ है। इसमे आश्रय, आलम्बन तथा सचारी भावो का स्वतत्र विकास हुआ है, जिसका अध्ययन प्रयोगो मे किया गया है। हास्य, अद्‌भुत, वात्सल्य, वीभत्स एव भयानक रसो के उदाहरण अपेक्षाकृत कम पाये जाते हैं। प्रबन्ध काव्यो मे हास्य का शिष्ट रूप प्रस्फुटित हुआ है। उसमे शास्त्रीय लक्षण भी मिलते है। अन्यत्र आशिक रूप मे ही परम्परा के लक्षण दिखाई पडते हैं। इस काल मे हास्य के अन्तर्गत व्यग्य का भी प्रवेश हो गया है जिस पर युग की द्वन्द्वात्मक कटुता का गहरा रग है।

सभी रसो के आश्रय एव आलम्बनो मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। इनके विकास मे युग की प्रवृत्ति एव परिस्थितियो ने बहुत सहायता की है। निष्कर्ष यह कि प्रबन्ध काव्यो मे रसो के शत-प्रतिशत लक्षण मिलते हैं, अन्यत्र आशिक रूप मे ही परम्परा का निर्वाह हुआ है। प्रयोगवादी रचनाओ मे रस का प्रवाह लुप्त हो गया है।

पंचम अध्याय

काव्य-रूपों की परम्परा

काव्य-रूपों की परम्परा

इस अध्याय मे परम्परानुगत काव्य-रूपो का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी मे काव्य के तीन रूप पाए जाते हैं—प्रबन्ध, मुक्तक तथा प्रगीत काव्य। प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। इसी परम्पराएँ नियत है, जिनका लक्षण ग्रन्थो मे भी उल्लेख हुआ है। इन नियमो को यथासभव सभी महाकाव्यकारो ने ध्यान मे रखा है। हिन्दी-साहित्य मे पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, रामचरितमानस तथा रामचन्द्रिका को महाकाव्य के गौरव से मडित किया गया है।

आलोच्यकाल मे परम्पराओ के अध्ययन के लिए लिखे महाकाव्यो को आधार बनाया गया है :—

साकेत (मैथिलीशरण गुप्त), नल-नरेश (पुरोहित प्रतापनारायण), सिद्धार्थ (अनूप शर्मा), वैदेही बनवास (अयोध्यासिंह उपाध्याय), हल्दीघाटी (श्यामनारायण पाण्डेय), दैत्यवश (हरदयालु सिंह), कृष्णायन (द्वारकाप्रसाद मिश्र), साकेत-सन्त (बलदेवप्रसाद मिश्र), विक्रमादित्य (गुरुभक्त सिंह) तथा अगराज (आनन्दकुमार)।

महाकाव्य का लक्षण—महाकाव्य का लक्षण अनेक आचार्यों ने प्रस्तुत किया है। इनमे दडी तथा विश्वनाथ की परिभाषाएँ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। दोनो आचार्यों ने क्रमशः काव्यादर्श (१।१४-२०) और साहित्य दर्पण (६।३१५२५) मे महाकाव्य के जिन लक्षणो का वर्णन किया है, उनमे पूर्ण समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दडी का लक्षण ही आधारभूत है, विश्वनाथ ने उसी को पल्लवित किया है। विश्वनाथ के लक्षण की यह विशेषता है कि उसमे पूर्ववर्ती आचार्यों की परिभाषाओ का समाहार हो जाता है। अतएव यहाँ इसी लक्षण का विवेचन किया जाता है।

महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। इसका आशय यह कि उसमे अवान्तर कथाओ को उपन्यस्त किया जाता है, जिसके लिए सर्गों की रचना की जाती है। उसका स्वरूप प्रबन्धात्मक होता है। इससे मुक्तक का परिहार हो जाता है।

महाकाव्य का नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय, जिसमे धीरोदात्त नायक के गुण हो अथवा एक ही कुल के अनेक राजा भी हो सकते है। शिशुपाल-वध के नायक देवता कोटि के हैं, नैषध का नायक वीर क्षत्रिय है तथा रघुवश मे एक

ही वश के अनेक राजा नायक है। साहित्य दर्पण के अनुसार नायक त्यागी, कृती, कुलीन, सुन्दर, रूप-यौवन-सम्पन्न, उत्साही, दक्ष, लोकानुरक्त तथा तेज, चातुर्य एव शीलयुक्त होना चाहिए[१]। धीरोदात्त नायक आत्म-श्लाघा-रहित, क्षमावान्, गम्भीर, शक्तिमान्, स्थिर, विनयशील तथा दृढव्रती होना चाहिए[२]। इसमे सद्वश' और 'कुलजा.' शब्द ध्यान देने योग्य है। इसका तात्पर्य आभिजात्य से है। इससे सिद्ध है कि नायक देव कोटि का हो अथवा सद्वशोद्भव।

शृगार, वीर तथा शान्त मे से एक रस प्रधान हो, अन्य रस गौण रूप से हो। दडी ने रस के साथ भावो को भी लिया है। देव, मुनि, गुरु, नृप एव पुत्रादि विषयक रति को भाव कहते है। कान्तादि विषयक रति शृ गार के अन्तर्गत है। रस और भाव मे यही अन्तर है। महाकाव्य मे दोनो का उन्मेष होता है। रस और भाव की मैत्री है क्योकि भाव के बिना रस और रस के बिना भाव की कल्पना नही की जा सकती।

'न भाव हीनो अस्ति रसो न भावो रस वर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिरनयो रस भावयो.[३] ॥'

महाकाव्य की कथा मे नाटक-सन्धियो की भी योजना रहती है। इनकी सख्या पाँच है—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निवर्हण[४]। नाटक की तरह काव्यो मे भी इनकी योजना उचित है।

महाकाव्य की कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध अथवा सज्जनाश्रित होनी चाहिए। इतिहास से आशय महाभारत से है। रामायण और पुराणादि का भी इसमे अन्तर्भाव हो जाता है। कथानक का सग्रह इन्ही ग्रन्थो की कथाओ मे से होना चाहिए। इससे कल्पित कथावस्तु का परिहार हो जाता है। यदि महाकाव्य इतिहास-प्रसिद्ध ख्यातवृत्त पर आधारित होता है तो उसके साथ लोकचित्त का आसानी से साधारणीकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त उससे जातीय गौरव एव स्वाभिमान का भाव जागरित होता है। कल्पित कथानक तथा सज्जनेतर कथाओ के वर्णन से यह सभव नही है। अतएव उनका निषेध है।

महाकाव्य के अध्ययन से चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष मे से किसी एक फल की उपलब्धि होती है। इसमे महाकाव्य उद्देश्य आ जाता

१—साहित्य दर्पण ३।३०
२—वही ३।३१
३—वही ३।२६१ की टीका।
४—भरत-नाट्य शास्त्र, १६।३५

है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कलाओ मे विलक्षणता, कीर्ति और प्रीति की उपलब्धि से ही भारतीय दृष्टि से काव्य की सार्थकता मानी गई है[१]। इसी से भारतीय काव्य का उद्देश्य आदर्शमूलक सिद्ध होता है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ मे आशीर्वाद, नमस्कार अथवा काव्य-वस्तु का निर्देश होता है। आशीर्वाद से इष्ट जनो की शुभाशसा का, नमस्कार से दैन्य का तथा वस्तु निर्देश से भाव है, वर्ण्य वस्तु के साक्षात् कथन का। इनमे से किसी एक से ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है।

कही-कही खल-निन्दा और सज्जन-स्तुति का भी वर्णन पाया जाता है। एक सर्ग मे एक प्रकार के ही छन्द होते हैं तथा अन्त मे छन्द बदल जाता है। न अधिक छोटे तथा न अधिक बडे कम-से-कम आठ सर्ग होने है। किन्तु यह नियम अनिवार्य नही, क्योकि महाकाव्यो मे विपरीत-क्रम भी मिलता है। रामचरित मानस मे केवल सात ही काड है। किसी-किसी सर्ग मे नाना कथाओ का वर्णन होता है, जैसे शिशुपाल वध का चतुर्थ सर्ग तथा किरातार्जुनीय का पचम सर्ग। सर्ग के अन्त मे आगामी कथा को सूचित किया जाता है।

दडी ने कथावस्तु के अलकृत और असक्षिप्त होने का वर्णन किया है। इससे तात्पर्य यह है कि वस्तु वर्णन की शैली अलकृत हो तथा कथा का वर्णन विस्तृत हो। सक्षिप्त वर्णन महाकाव्य की लघुता का परिचायक है। महाकाव्य के वस्तु वर्णन के विषय मे (अध्याय २) मे लिखा जा चुका है। आचार्य दडी का कथन है कि वस्तुओ के वर्णन मे कुछ बातो का वर्णन होने पर भी महाकाव्य की हानि नही होती है। इससे सिद्ध है कि छन्द, अलकार, सर्ग एव वस्तु-वर्णन के सम्बन्ध मे कोई कठोर एव अनिवार्य नियम नही है। ये केवल साधारण नियम है। वस्तुतस्तु महाकाव्य मे काव्य-सम्पत्ति अपेक्षित है। यदि महाकाव्य की वस्तु मे गुण, अलकार एव रस-बोध का पूर्ण सामर्थ्य है तो अन्य वस्तुओ के न्यून होने पर भी महाकाव्य को क्षति नही पहुँचती। महाकाव्य के लक्षणो को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—महाकाव्य की आत्मा तथा उसका शरीर।

(१) **महाकाव्य की आत्मा**—इसमे महाकाव्य के आदर्श तथा रस को लिया जा सकता है, जिसमे नायक, प्रख्यात कथा एव शृगारादि रस प्रधान है।

१—धर्मार्थं काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च, साधु काव्य निषेवणम्॥ भामह॥

(२) महाकाव्य का शरीर—इसमें मगलाचरण, सर्ग-रचना, छन्द, वस्तु-वर्णन, नाटक सन्धियो का स्थान है।

उपर्युक्त कसौटी के आधार पर आलोच्यकाल के महाकाव्यो का विवेचन किया जाता है :—

सबसे पहले महाकाव्य के नायक पर विचार किया जाता है। नायक दिव्य, अदिव्य अथवा दिव्यादिव्य तीन कोटियो मे विभक्त किए जा सकते हैं। दिव्य नायक देव कोटि के होते है, जैसे शिव, इन्द्र आदि। अदिव्य नायक मनुष्य कोटि के होते है, जैसे, वत्सराज, नल, पृथ्वीराज आदि। दिव्यादिव्य नायको मे अवतारो की गणना की जाती है, जैसे, राम, कृष्ण आदि। ये भी वीर, रौद्र, शृ गार, शान्त रस की प्रधानता से धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित और प्रशान्त चार प्रकार के होते है।[१] इस दृष्टि से विचार करने पर साकेत, कृष्णायन तथा सिद्धार्थ के नायक क्रमशः राम, कृष्ण तथा बुद्ध दिव्या-दिव्य (अवतार) नायक है। इनके चरित्रो मे मानवेतर अलौकिक गुणो का विकास हुआ है। साकेत के राम निर्गुण ब्रह्म के अवतार है। वे भू-भार हरण के लिए धरा-धाम मे प्रकट हुए हैं।[२] 'कृष्णायन के कृष्ण धर्म-सस्थापक एव लोक-रक्षक है। वे सर्वगुण-सम्पन्न है तथा अनासक्त भाव से कार्य करते है। वे आर्य-नीति के पालक है। जन्म के साथ-ही उनकी अलौकिक शक्ति का परिचय मिल जाता है।[३] सिद्धार्थ के नायक गौतम भी अनादि, अनन्त शक्ति के साकार विग्रह है। समस्त उपाधियो का परित्याग कर वे भुवन-मोहन बाल रूप मे माता के गर्भ से प्रकट होते है।[४] जन्म के पूर्व ही से प्रकृति मे अलौकिक व्यापार घटित होने लगते है। उनके अलौकिक प्रभाव से पृथ्वी मे धर्म का प्रभात छा जाता है तथा सब प्राणियो का हृदय अमृत के

१—काव्य प्रकाश ७।८२।१८।

२—हो गया निर्गुण सगुण साकार है।
ले लिया अखिलेश ने अवतार है। —साकेत

३—बिनु अवलम्ब मातु पितु जाना। सहसा प्रकट भये भगवाना॥
निमिषहिं महँ शिशु वेश दुरावा। रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा॥
—कृष्णायन

४— तज समस्त अनादि अनन्तता, अमित उच्च उपाधि-विहीन हो,
भुवन-मोहन बाल-वरूप से, प्रभु लसे जननी-कृत-क्रोड मे।
—सिद्धार्थ, पृ० ३३

तुल्य शीतल हो जाता है। इस प्रकार इन तीनो महाकाव्यो मे दिव्यादिव्य नायको की परम्परा पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुई है।

अदिव्य श्रेणी मे धीरोदात्त, आदर्श गुण सम्पन्न पराक्रमी क्षत्रिय वीर आते है। 'नल-नरेश' के नायक नल, 'वैदेही वनवास' के रामचन्द्र, 'हल्दीघाटी' के वीर प्रताप, 'दैत्यवश' के हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, बलि, स्कन्द आदि छहो राजा, 'साकेत-सन्त' के भरत, 'विक्रमादित्य' के चन्द्रगुप्त तथा 'अगराज' के कर्ण धीरोदात्त नायक हैं। ये सभी नायक शूर, बलवान्, गभीर, विनीत, त्यागी, प्रियदर्शन, दक्ष, कर्म-प्रवण, तेजोयुक्त, दृढ, उच्च कुलोत्पन्न, स्थिर तथा धार्मिक है। इनके चरित्र उदात्त है तथा उनके जीवन मे मानवीय आदर्शों की रक्षा तथा निर्वाह हुआ है।

'वैदेही-वनवास' के रामचन्द्र एक श्रेष्ठ एवं कुशल राजा के रूप मे चित्रित हैं। लोकाराधन उनके जीवन का मूल मत्र है। जनहित के लिए वे महान् कष्टो को भी झेलने के लिए उद्यत रहते है। प्रजा मे शान्ति का प्रसार करने के लिए वे सतत उद्योग करते है।[1]

'विक्रमादित्य' के नायक चन्द्रगुप्त आर्य सस्कृति के पुजारी, कला-प्रेमी तथा राष्ट्रोद्धारक हैं। उनमे कुछ नये गुणो का भी विकास हुआ है जो परम्परा-गत नायको मे नही पाए जाते हैं। वे राष्ट्रीय नेता के रूप मे चित्रित है। वे भारत की बिखरी हुई शक्तियो को एकत्र कर विदेशियो को देश से बाहर निकालने मे समर्थ होते है। शको का विध्वस कर वे भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप मे सगठित करते है। वे राष्ट्र-निर्माता, शूर, नीतिज्ञ, शक्तिशाली तथा सौन्दर्य-युक्त हैं।[2] 'अगराज' के कर्ण मे भी नवयुगोचित नायक के गुणो का विकास हुआ है। प्रजाहित, सर्वोदय की भावना, सत्य, अहिंसा आदि सद्-गुणो के आधार पर वे देश का पुनर्निर्माण करने मे सफल होते है।[3]

१—पठन कर लोकाराधन मंत्र, करूँगा मैं इसका प्रतिकार।
साध कर जन-हित साधन-सूत्र, करूँगा घर-घर शान्ति प्रसार॥
—वैदेही बनवास ३।९७

२—जननी है वही पुकार रही, बलि होने का प्रण करो अटल।
आओ हम दोनों चलें वीर, माता की लाज बचा लेवें।
हो एक जन्म भू का अखंड, शृंगार सहर्ष सजा देवें॥ -विक्रमादित्य

३—अंगराज, ३।२२-२३।

'दैत्यवश' की रचना कालिदास-प्रणीत रघुवश के आधार पर हुई है। इसमे दैत्यवश के राजाओ के उदात्त चरित्रो का वर्णन है। जिनमे बलि, वाणासुर और स्कन्द प्रधान है। कवि ने दैत्य वश के सभी राजाओ को धीरोदात्त नायक के रूप मे चित्रित किया है। इनके विषय मे सबसे बडी आपत्ति यह है कि ये सद्वशोद्भूत नही है। दैत्यवश मे जन्म लेने के कारण ये प्रख्यात वश के नायकों की श्रेणी मे नही आते तथा नायक के लिए 'रूढ़वश' होना परम्परया अनिवार्य है। परम्परागत काव्यो मे इनके मलिन स्वभाव और दूषित आचरणो का ही सर्वत्र वर्णन मिलता है, किन्तु दैत्यवशकार ने इन राजाओ के चरित्र को उज्ज्वल रूप मे अकित किया है। कवि-वर्णन के आधार पर ही इनको नायक के परपरानुगत आदर्शों की श्रेणी मे ग्रहण किया गया है।

कथा-वस्तु—महाकाव्य की कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध अथवा सज्जनाश्रित होनी चाहिए। इतिहास से तात्पर्य महाभारत से है, किन्तु रामायण, पुराणादि ग्रथो से भी कथा-वस्तु का चयन किया जा सकता है। सज्जनाश्रित से ऐसे कथानको का ग्रहण है, जो लोक-प्रचलित श्रेष्ठ पुरुषो की कथाओ पर आधारित होते है, जैसे, अश्वघोष का बुद्धचरित्र अथवा जायसी का पद्मावत।

आलोच्य महाकाव्यो मे नल-नरेश, कृष्णायन तथा अगराज का कथानक महाभारत से लिया गया है।

नल-नरेश का कथानक महाभारत के वन-पर्व से लिया गया है। नल-दमयन्ती की मूल कथा के प्राचीन स्रोत महाभारत[१] और कथा सरित्सागर[२] है। नल-नरेश का कथानक उन्नीस सर्गों मे समाप्त होता है। कवि ने इसमे महाभारत के नलोपाख्यान का अनुवाद-सा कर दिया है। इस पर आधुनिक युग का कोई प्रभाव नही है।

प्रबन्ध काव्य के लिए सानुबन्ध कथा की आवश्यकता होती है। इससे नल-नरेश का प्रबन्ध-कौशल सराहनीय है। इसके कथानक मे पच सन्धियो का विधान पाया जाता है। हस से दमयन्ती के रूप-लावण्य की प्रशसा सुनकर राजा नल के हृदय मे पूर्वराग उत्पन्न हो जाता है। यहाँ से लेकर नल और दमयन्ती के विवाह होने तक 'मुख सन्धि' है। तदनन्तर कलि का कोप, नल की द्यूत-क्रीडा, नल और दमयन्ती का वन-गमन, नल द्वारा मैत्री का परित्याग एव मैत्री के करुण-क्रन्दन तक 'प्रतिमुख' सन्धि है। इसके पश्चात् सुदेव ब्राह्मण

१—महाभारत, वन पर्व, अध्याय ५३-७९।

२—कथा सरित्सागर, नवम् अलंकारवती लम्बक, छठी तरंग।

चेदि नगर मे पहुँच कर दमयन्ती के साथ निषध को लौटता है। यह गर्भ सन्धि है। राजा नल के शरीर से कलि का बाहर होना तथा सम्पूर्ण रहस्य के प्रकट होने तक 'अवमर्श' सन्धि है। अन्त मे नल-दमयन्ती का मिलन हो जाता है। इसमे फलागम तथा कार्य के साथ 'निर्वहण' सन्धि है।

कृष्णायन के प्रथम तीन काडो की कथा-वस्तु का मुख्य आधार भागवत का दशम् स्कन्ध और हरिवश पुराण का विष्णु पर्व है। अन्तिम चार काडो मे वर्णित घटनाओ की योजना महाभारत पर आधारित है। असुरो के अत्याचार से पीडित पृथ्वी के कष्ट निवारण के लिए श्रीकृष्ण का अवतार, उनके बाल-चरित एव अलौकिक कार्यो का वर्णन भागवत के अनुसार ही है। द्वारका काड मे कृष्ण के रुक्मिणी, सत्यभामा, सुभद्रा आदि विविध स्त्रियो के साथ विवाहो का वर्णन है। गीता काड मे भगवद्गीता का पूरा अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। जय काड मे महाभारत के युद्ध का वर्णन है तथा अन्तिम आरोहण काड मे युधिष्ठिर के राज्याभिषेक, भीष्म के उपदेश तथा कृष्ण के स्वर्गारोहण की कथा का वर्णन है। इस महाकाव्य का प्रबन्ध-कौशल सराहनीय है। इसमे पच सधियो का निर्वाह भी हो जाता है।

अगराज का कथानक भी महाभारत पर आधारित है। अगराज कर्ण के जीवन से सबधित घटनाओ को महाभारत से चुनकर कवि ने अपनी स्वतत्र बुद्धि के अनुसार इसमे चित्रित किया है। कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए उसके विपक्षियो के चरित्र को कवि ने विकृत रूप मे अकित किया है। पाण्डवो के अग्रज युधिष्ठिर तथा कृष्ण के चरित्र को कवि ने बहुत कुछ परिवर्तित रूप मे उपस्थित किया है। कर्ण की मृत्यु को अतिरजित रूप मे चित्रित किया गया है।

दैत्य वश मे अष्टादश सर्ग हैं। इस काव्य की प्रमुख कथाओ मे समुद्र-मथन, देवासुर-सग्राम, अमरावती विजय, बलि-वचन, उषा-अनिरुद्ध-आख्यान, विरोचन और वाणासुर का स्वर्ग-गमन तथा स्कन्द का राज्य-वर्णन आदि मुख्य है। दैत्य वश के छः राजाओ का वर्णन होने से कथा-क्रम का निर्वाह आसानी से हो गया है। इसमे किसी एक राजा के जीवन-वृत्त का वर्णन न होने से न तो सकलन त्रय-स्थान, काल और घटना को अन्विति हो सकी है और न नाटकीय सधियो का निर्वाह ही हो सका है।

दैत्य वंश की कथा-वस्तु का आधार प्रसिद्ध भागवत पुराण है। इस महाकाव्य के अष्टादश सर्गो मे दैत्यवश के छः प्रतापी राजाओ के इतिवृत्त का वर्णन है—हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाणासुर और स्कन्द। दैत्यवश से राजाओ को कथाओ को महाकाव्य का आधार बनाना परपरागत

आदर्शो के विरुद्ध है, क्योकि इन राजाओ के प्रति लोक-हृदय मे स्वाभाविक ग्लानि का भाव प्रतिष्ठित हो चुका है। न इनके चरित्रो मे धीरोदात्त नायक के गुण है तथा न इनका प्रख्यात वश है। किन्तु आधुनिक युग ने निम्न, साधारण एव असभ्य जातियो के नायको को अधिक सहानुभूति प्रदान की है। माइकेल मधुसूदनदत्त मेघनाद वध लिखकर नये लेखको का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर चुके है। दैत्य वशकार ने भी नई परिस्थिति से प्रेरित होकर इस महाकाव्य की रचना की है। अतएव इस पर नवयुग की आभिजात्य विरोधी प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु इस महाकाव्य का कथानक परम्परागत आदर्शो की सीमा से वहिर्भूत है, इसमे कोई सशय नही है।

साकेत, वैदेही बनवास और साकेत-सन्त के कथानको को रामायण से लिया गया है। वाल्मीकि और कालिदास द्वारा प्रवर्तित राम-काव्य-धारा का सस्कृत-साहित्य मे अच्छा विकास हुआ है। हिन्दी-साहित्य मे तुलसी और केशव ने राम-कथा को आधार बनाकर इसे चरमोत्कर्ष तक पहुँचा दिया है। आधुनिक काल मे रामचरित्र चिन्तामणि, साकेत, रामचन्द्रोदय, साकेत-सन्त तथा वैदेही-वनवास इसी काव्य परपरा के विकसित पग-चिह्न है। साकेत के कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण के कथा-प्रसग का वर्णन विस्तार से किया है। पहले ही सर्ग मे लक्ष्मण और उर्मिला का प्रेमालाप कुछ अधिक विस्तार से वर्णित है। नवाँ और दसवाँ सर्ग विरहिणी उर्मिला की वियोगावस्था का वर्णन करने के हेतु दिये गये है। इससे कथा के विकास को अत्यधिक क्षति पहुँची है। राम-कथा की अन्य घटनाओ को एकादश और द्वादश सर्गो मे एक साधारण पात्र और हनुमान के द्वारा तथा वशिष्ठ की दिव्य दृष्टि द्वारा सकेत रूप से दिखा दिया गया है। इस प्रकार साकेत की मूलकथा की पूर्ति अन्य पात्रो द्वारा करा दी गई है। इससे घटनाओ का विकास स्वाभाविक रूप मे नही होने पाया है। इसमे सदेह नही कि महाकाव्य के विचार से साकेत का कथानक अत्यत निर्बल सिद्ध हुआ है।

साकेत के नवे सर्ग से बारहवे सर्ग तक कथा-विकास की गति इतनी शिथिल हो जाती है कि सानुबन्ध-कथा-निर्वाह का नियम भग हो जाता है। तुलसी के मानस मे राम के बनवास की घटनाओ के वर्णन के कारण कथा-वस्तु मे जो रोचकता और सजीवता आ गई है, साकेत के अन्तिम चार सर्गो मे उसको असतुलित ढग से कह दिया गया है। इससे कथा-वस्तु के सम्बन्ध-निर्वाह को बहुत आघात पहुँचा है। कथा-वस्तु के विकास मे पच सन्धियो का विचार भी नही रखा गया है।

वैदेही-बनवास की कथा रामायण और भवभूति के उत्तर रामचरित-

नाटक पर आधारित है। रामायण के उत्तरकाड मे, रघुवश के चतुर्दश सर्ग मे और उत्तर रामचरित मे सीता के द्वितीय बनवास की घटनाओं का वर्णन है। हरिऔध जी ने वैदेही-बनवास की कथा के चित्रण मे अपनी स्वतत्र उद्भावनाओ का भी परिचय दिया है। वन को भेजने की परिस्थिति का पूरा ज्ञान सीता जी को प्रारम्भ मे ही हो जाता है। जानकी जी राम की आज्ञा को शिरोधार्य कर लेती है और लोकाराधन के हेतु वन जाने को सहर्ष प्रस्तुत हो जाती हैं। कथा मे यह परिवर्तन करके हरिऔध जी ने सीता एव राम के जीवनादर्श को अत्यधिक ऊँचा उठा दिया है।

वैदेही-बनवास का कथानक घटनाओ की दृष्टि से अत्यन्त शिथिल है। लवणासुर-बध, राम का अश्वमेध, वृत्रासुर-वध, सीता का भूमि-प्रवेश आदि अनेक घटनाओ का वर्णन वाल्मीकि रामायण मे आता है[१]। वैदेही-वनवास मे इनका कोई उल्लेख नही है। कवि ने सती सीता और मर्यादा-रक्षक राम के चरित्र मे आर्य-सस्कृति के महान् आदर्शो की प्रतिष्ठा की है। सीता जी के बन-वास से सबधित घटनाओ का इतने विस्तार से वर्णन किया गया है कि अन्य कथाओ का विन्यास नही हो सका है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सर्ग के अन्दर प्रकृति-वर्णन तथा विचार एव सिद्धान्तो का निरूपण बहुत हुआ है, जिससे कथा की गतिशीलता वाधित हुई है। इन्ही बातो से इसके लघु कथानक मे मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियो का समावेश नही हो सका है। किन्तु इसका कथानक प्रख्यात एव परम्परानुमोदित है, इसमे कोई सदेह नही।

साकेत-सन्त की कथा-वस्तु चौदह सर्गो मे विभाजित है। इसकी कथा का आधार रामायण है। कथा प्रख्यात है। कवि ने स्वतत्र उदभावनाओ को भी स्थान दिया है, जिनमे सामयिकता की झलक विद्यमान है। रामायण के अनुसार राजा दशरथ राम के अभिषेक से पूर्व भरत को जान-बूझकर ननिहाल भेज देते है। इस काव्य मे मामा के आग्रह पर भरत ननसाल को जाते है, जिससे दशरथ निर्दोष सिद्ध होते है। दूसरे भरत जी को ननसाल मे ही कैकेयी के षड्-यत्र का पता चल जाता है तथा मन्थरा को विघ्न-स्वरूप नही खडा किया जाता है। तीसरे राजा दशरथ की मृत्यु होने पर कैकेयी उनके साथ सती होने का सकल्प करती है। कवि ने प्रायश्चित द्वारा उसके चरित्र मे सुधार का प्रयत्न किया है। चौथे भरत के राम से मिलने को प्रस्थान करने की सूचना कोलो द्वारा

१—देखिये वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, सर्ग ६९, ९१, ८५, ९७।

पहुँचा दी जाती है, जिससे लक्ष्मण को रोष प्रकट करने का अवसर नही आता है। काव्य के प्रारम्भ और अन्त मे भरत तथा माण्डवी के मिलन का प्रसग रखा गया है। साकेत मे भी पहले और अन्तिम सर्ग मे लक्ष्मण तथा उर्मिला का सवाद रखा गया है। साकेत-सन्त के कवि ने भी उसी का अनुसरण करते हुए भरत-माण्डवी के रोचक सवाद की योजना की है। साकेत-सन्त की मूल-कथा मे कवि ने सामयिक दृष्टि से नये परिवर्तन किए है। किन्तु इस काव्य की कथा के बीच मे सिद्धान्त एव विचारो का निरूपण इतना अधिक है कि कथा का समुचित विकास नही हो पाता है। कथा के नायक भरत है, जो राम की अनुपस्थिति मे अयोध्या का राज्य सम्हालते है। उनके चरित्र मे मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियो का आकलन नही हो सका है। चौदहवे सर्ग मे भरत की दिनचर्या वर्णित है। इसमे कथा-सूत्र विच्छिन्न है। केवल गीतो का सग्रह है। अभिप्राय यह है कि साकेत-सन्त का कथानक प्रख्यात होने पर भी महा-काव्य के लिए अल्प है।

सिद्धार्थ, हल्दीघाटी तथा विक्रमादित्य के कथानक सज्जनाश्रित कथा की कोटि मे आते है। सिद्धार्थ अठारह सर्गों का महाकाव्य है। इसमे महात्मा बुद्ध की जीवन-कथा का वर्णन है। गौतम बुद्ध का स्थिति-काल (५६७-४८७ ई० पू०) माना जाता है। जातको मे इनके जीवन की अनेक कथाओ का वर्णन पाया जाता है। अश्वघोष का बुद्ध चरित, ऐडविन आर्नाल्ड का लाइट ऑव एशिया तथा रामचन्द्र शुक्ल के बुद्धचरित के आधार पर इस प्रबन्ध काव्य का प्रणयन हुआ है। महात्मा बुद्ध का लोक-विश्रुत चरित्र महाकाव्य की रचना के लिए सर्वथा उचित है। कवि ने बुद्ध को अवतार रूप मे चित्रित किया है। उनके जन्म तथा निर्वाण के अवसर पर अलौकिक घटनाओ के वर्णन से इस तथ्य की सूचना मिलती है। बुद्धावतार एक महान् प्रयोजन की सिद्धि के लिए हुआ है। उनके प्रादुर्भाव से भूतल पर अहिंसा, सत्य, प्रेम, दया आदि धर्म के सभी अगो का विकास होता है तथा अज्ञान, अधर्म एव हिंसा आदि का समूल नाश हो जाता है। सिद्धार्थ का चरित्र धीरोदात्त नायक के गुणो से मडित है। इस प्रकार सिद्धार्थ का इतिवृत्त महाकाव्य की रचना के लिए सफल सिद्ध हुआ है। हिमालय के उपकूल मे अवस्थित कपिल-वस्तु के राजा शुद्धोदन की कथा से लेकर सिद्धार्थ के जन्म और यशोधरा के विवाह तक 'मुख सन्धि है।' सिद्धार्थ को वैराग्य की तीव्रता के कारण महाभिनिष्क्रमण का सकल्प होता है। यहाँ तक 'प्रतिमुख' है। इसके पश्चात् यशोधरा के विलाप से लेकर भगवान् बुद्ध के समाचार मिलने तक 'गर्भ एव अवमर्श' सधियाँ है। अन्त मे यशोधरा और ग्राम-

वासियो मे भगवान् का मिलन होने मे 'निर्वहण' सन्धि है। इस प्राकर सिद्धार्थ के कथानक मे नाटकीय सन्धियो की योजना भी है।

हल्दीघाटी मे मुगलवश के प्रतापी सम्राट अकबर और मेवाड के राणा प्रताप के इतिहास-प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन है। कवि ने राणा प्रताप के वीरत्वपूर्ण चरित्र का वर्णन सत्तरह सर्गों मे समाप्त किया है। प्रताप के चरित्र मे धीरोदात्त नायक के सभी गुण प्रस्फुटित हुए है। उनका चरित्र शौर्य, तेज, पराक्रम, धैर्य, उत्साह, प्रतिज्ञा-पालन, कर्त्तव्य-परायणता आदि सद्गुणो का आकर है। किन्तु हल्दीघाटी का कथानक महाकाव्य के विचार से अत्यन्त दोषपूर्ण है। इसकी कथा-वस्तु अत्यन्त क्षीण, विच्छिन्न तथा देश-काल की अन्विति से हीन है। इसके प्रारभ मे नमस्कार, प्रस्तावना, परिचय, प्रताप, चित्तौड, झाला-मान्ना, चेतक, हल्दीघाटी, भाला आदि विषयो पर मुक्तक कविताएँ हैं। प्रारभ की स्फुटिक रचनाओ के पश्चात् प्रथम सर्ग प्रारभ होता है। सत्तरहवे सर्ग के उपरान्त परिशिष्ट है। सानुबन्ध कथा का अभाव सपूर्ण काव्य मे दृष्टिगोचर होता है। युद्ध-वर्णन पर ध्यान केद्रित हो जाने से अन्य घटनाओ का निर्वाह बिलकुल नही हुआ है। कथा-वस्तु मे पच सन्धियो का भी विचार नही मिलता है। राणाप्रताप के जीवन की केवल युद्ध सबधी घटनाओ का ही वर्णन होने से कथा मे व्यापकता नही है। इससे हल्दीघाटी का कथानक अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है।

विक्रमादित्य की कथावस्तु चवालीस सर्गों मे विभाजित है। इसके कथानक का मूल आधार 'देवीचन्द्र गुप्त' नाटक है, जिसके रचयिता छठी शताब्दी के विशाखदत्त माने जाते है। यद्यपि इस नाटक की मूल प्रति अप्राप्य है, तथापि इसके उद्धरण गणपतिचन्द्र कृत नाट्य दर्पण, वाणकृत हर्षचरित तथा भोज-कृत शृ गार-प्रकाश मे बिखरे हुए मिलते है। इस कथानक की पुष्टि हिन्दू-मुसलमानो द्वारा लिखित अन्य स्रोतो से भी होती है।[1] विक्रमादित्य का कथानक प्रख्यात तथा शुद्ध ऐतिहासिक है। कथा का नायक वीर विक्रमादित्य है, जो धैर्य, उत्साह, तेज, प्रताप, स्वाभिमान आदि उदात्त गुणो से युक्त है। चन्द्रगुप्त के राज्य-शासन की सुचारुता, समृद्धि और विशालता को सिद्ध करने लिए अनेक शिलालेख[2] ताम्रपत्र और विदेशी विवरण साक्षी है। कवि ने इन

१—राज रामनरायन सेलेटोर, लाइफ इन द गुप्त एज, पृ० १६।

२—मथुरा का स्तम्भ-लेख इ० स० ३८०, उदयगिरि गुहा लेख, साँची का लेख, मेहरौली का स्तम्भ लेख, प्रभावती (चन्द्रगुप्त की

सभी स्रोतो की सहायता से इस महाकाव्य की कथावस्तु का विकास किया है। पच सधियो के विचार से भी कथानक अत्यन्त सफल है। इसकी कथावस्तु मे जीवन का विशाल चित्रपट अकित है। इसके कथानक मे एक दोष है। २९वे सर्ग मे चन्द्रगुप्त को रानी ध्रुवदेवी तथा रामगुप्त द्वारा प्रदत्त राज्य-सिंहासन की प्राप्ति हो जाती है। इसके पश्चात् जितने भी सर्ग हैं, उनमे कोई नवीन घटना नही हैं। उन्हे केवल कलेवर-वृद्धि के लिए ही जोडा गया है। फलागम के पश्चात् शेष सर्गों की योजना का कोई महत्त्व नही रह जाता है।

रस—शास्त्रीय परम्परा के विचार से महाकाव्य मे शृ गार, वीर या शान्त रस मे से कोई एक रस अगी होता है। अग रूप से शेष रसो का उन्मेष होता रहता है। इस दृष्टि से परीक्षा करने पर साकेत, नल-नरेश, सिद्धार्थ, दैत्य वश और विक्रमादित्य मे शृंगार रस प्रधान है, हल्दीघाटी, कृष्णायन तथा अगराज मे वीर रस अगी है तथा साकेत-सत एव वैदेही बनवास मे करुण रस का उत्कर्ष अधिक है। नीचे उपर्युक्त महाकाव्यो मे रस एव भावो का निरूपण किया जाता है।

साकेत मे शृ गार रस प्रधान है। शृ गार के सयोग और विप्रलभ-दोनो पक्षो का पूर्ण परिपाक हुआ है। प्रथम सर्ग के उर्मिला-लक्ष्मण-प्रेमालाप मे सयोग शृ गार पूर्ण रूप से व्यजित होता है। नवम् सर्ग मे विप्रलभ का उत्कर्ष है। इसमे विरह की दशाओ के अन्तर्गत अभिलाष,[१] चिन्ता, स्मृति,[२] उन्माद,[३] प्रलाप[४] एव व्याधि[५] का पूर्ण उन्मेष है। चिन्ता, विषाद,[६] औत्सुक्य,[७] स्मरण,[८] मति, धृति,[९] भ्रम, स्वप्न,[१०] मोह,[११] निर्वेद आदि सचारी भावो की व्यजना भी अत्यन्त मार्मिक है।

कुमारी) का दानपत्र, गुप्त राजाओं की मुद्राएँ तथा फाहयान का यात्रा-विवरण।

१—देखिए साकेत (द्वितीयावृत्ति), पृ० ३०६।
२—वही, पृ० २७२।
३—वही, पृ० ३१६।
४—वही, पृ० ३१७।
५—वही, पृ० ३२०।
६—वही, पृ० २५५।
७—वही, पृ० ३०५।
८—वही, पृ० ३०८।
९—वही, पृ० ३२२।
१०—वही, पृ० २६६।
११—वही, पृ० २६१।

राम-वन-गमन, दशरथ-मरण एव लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर करुण रस का परिपाक हुआ है। साकेत मे रण-सज्जा के प्रसग मे तथा राम-रावण युद्ध मे वीर रस का प्रकर्ष है। अन्तिम सर्ग मे वीर, रौद्र, भयानक और अद्‌भुत रस के सुन्दर स्थल आए है। इससे सिद्ध है कि साकेत मे शृगार का प्राधान्य है और गौण रूप से अन्य रसो की स्थिति है।

नल-नरेश मे शृगार रस प्रधान है। दमयन्ती के सौन्दर्य की कथा सुन कर नल को पूर्वराग हो जाता है। दमयन्ती भी हस से राजा नल के वीरत्व एव सौन्दर्य का वृत्तान्त सुनकर काम-बाधा से पीडित हो जाती है।[१] इस सम्पूर्ण प्रसग मे विप्रलभ शृ गार की मर्मस्पर्शी अभिव्यजना मिलती है। नल और दमयन्ती के शृ गार-वर्णन मे कवि ने परम्परागत सभी उपकरणो को प्रस्तुत किया है।[२] अन्य रस गौण रूप से आए हैं।

सिद्धार्थ मे शृ गार के उभय पक्ष-सयोग और विप्रलभ—की प्रधानता है। 'सयोग' और 'राग' नाम के सर्गों मे सयोग शृ गार का पूर्ण उत्कर्ष है। सिद्धार्थ और यशोधरा के विवाह, दाम्पत्य-विहार, वसन्तोत्सव की दाम्पत्य क्रीडाओ मे सयोग शृ गार की अतुल सामग्री प्रस्तुत की गई है। सोलहवे सर्ग मे यशोधरा की विरहावस्था का वर्णन है। इस सर्ग मे आदि से अन्त तक यशोधरा की वियोग-व्यथा का मर्मस्पशी चित्रण है। विरहिणी का क्रमशः सरोज-कली, भ्रमर तथा रोहिणी नदी से अपने दैन्य का वर्णन, हस द्वारा पति को सदेश और सखियो द्वारा प्राणपति के लौटने का समाचार आदि प्रसगो मे विप्रलभ की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। सिद्धार्थ के दूसरे सर्ग के अकेले उषा-वर्णन के प्रसग मे सभी रसो का समावेश पाया जाता है[३]।

सिद्धार्थ के बाल-लीला वर्णन मे वात्सल्य एव बुद्ध भगवान् के धर्मोपदेश के प्रसगो मे शान्त रस का पूर्ण स्रोत छलकता है। इस प्रकार रसोत्कर्ष की दृष्टि से सिद्धार्थ अत्यन्त सफल है।

दैत्य वश मे शृगार और वीर रस प्रधान है। लक्ष्मी-स्वयवर और अष्टादश सर्ग के वसन्त-वर्णन के प्रसग मे सयोग शृ गार की मधुर व्यजना पाई जाती है। स्वयवर मे लक्ष्मी जब विष्णु के कठ मे जयमाला पहनाती है, तब उनके सात्विक भाव उत्पन्न हो जाता है और रोमाचित हो जाने से मूक हो जाती

१—नल-नरेश, ५। ३-७।

२—वही, पंद्रहवाँ सर्ग।

३—सिद्धार्थ, पृ० २०।

हैं। इस प्रसग मे विष्णु आलम्बन तथा लक्ष्मी आश्रय है। सखियो के विनोद, विलासादि उद्दीपन, है, कम्प, अवाक् होना, कृशता आदि अनुभाव है तथा लज्जा, हर्ष सचारी हैं। रति स्थायी सब अगो से पुष्ट होकर सयोग शृंगार की व्यजना कर रहा है। असुरो से हार कर इन्द्र मानसरोवर मे जा छिपता है। इस सपूर्ण प्रसग म विप्रलभ की योजना अत्यन्त सुन्दर है। अनिरुद्ध के वियोग मे उषा को काम-पीडा सताती है, इस प्रसग मे भी विप्रलभ शृ गार अभिव्यजित है। देवासुर संग्राम के सपूर्ण प्रसग मे रौद्र, वीर, भयानक एव वीभत्स रस की अभिव्यजना मिलती है। हास्य रस के लिए लक्ष्मी-स्वयवर मे बूढ़े ब्रह्मा एव महादेव के रेखा-चित्र दर्शनीय हैं।

विक्रमादित्य प्रेम प्रधान काव्य है। इसमे शृगार के अन्तर्गत सयोग एव विप्रलभ दोनो पक्षो का अच्छा विकास हुआ है। प्रथम सर्ग मे ही विक्रमादित्य का दर्शन कर ध्रुवदेवी के हृदय मे रति का स्फुरण होता है। इस प्रसग मे विक्रमादित्य आलम्बन, ध्रुवदेवी आश्रय है। विक्रमादित्य का अग-सौन्दर्य उद्दीपन, एकटक देखना, तृप्त होना आदि अनुभाव तथा अवहित्था, औत्सुक्य सचारी है। रति स्थायी सब अगो से पुष्ट है।

चन्द्रगुप्त के वियोग मे रानी ध्रुवदेवी के विरह वर्णन मे विप्रलम्भ शृ गार की व्यजना अत्यत मार्मिक है। आर्य-सेना और शको के युद्ध वर्णन मे वीर रस का उन्मेष होता है। अन्य रसो मे हास्य, करुण एव शान्त रस है।

कृष्णायन वीर रस प्रधान महाकाव्य है। इसमे वीर रस के युद्ध, दान, दया, धर्म चारो रूपो का पूर्ण उत्कर्ष पाया जाता है। कृष्ण का सपूर्ण जीवन वीर रस से ओतप्रोत है। बाल्यकाल मे असुरो के सहार से लेकर महाभारत के युद्ध पर्यन्त उनके समस्त कार्यों मे वीर रस का पूर्ण उन्मेष दिखाई पडता है। कालिय नाग पर विजय प्राप्त करने मे युद्धवीर, रुक्मिणी के क्रर व्यवहार को क्षमा करने मे दयावीर, सुदामा को अतुल सपत्ति भट करने मे दानवीर तथा शिशुपाल का वध करने मे धर्मवीर का रूप प्रकट हुआ है। जय काड मे वीर रस का पूर्ण प्रकर्ष दिखाई पडता है। अन्य रसो मे शृ गार, हास्य, करुण, अद्भुत एव शान्त रस सभी यथास्थान आए है।

अगराज वीर रस प्रधान है। इस काव्य के उत्तरार्ध मे महाभारत के युद्ध की घटनाओ का प्राचुर्य है। इसमे वीर रस उत्ताल तरगो मे प्रवाहित होता है। कर्णार्जुन युद्ध के प्रसग मे इसकी प्रधानता है। इन्ही स्थलो पर रौद्र, भयानक एव वीभत्स का उन्मेष हुआ है। शृ गार की व्यजना कर्ण और उसकी

पत्नी के प्रेमालाप मे है। अन्तिम सर्ग मे शान्त रस का उद्रेक है, जब आत्म-ग्लानि मे डूबे हुए पाडव निर्वेद की अवस्था मे हिमालय को प्रस्थान करते है।

हल्दीघाटी के नायक राजा प्रताप है, जिनका समग्र जीवन युद्ध रस मे डूबा हुआ है। प्रारभिक सर्ग के मृगया वर्णन मे तथा अन्तिम सर्गों के राजपूत-मुगलो के युद्ध वर्णन मे उत्साह की पूर्ण व्यजना मिलती है। सपूर्ण काव्य वीर रस से ओतप्रोत है। अन्य प्रसगो मे रौद्र, भयानक एव वीभत्स का उद्रेक पाया जाता है।

साकेत-सन्त मे करुण रस का स्रोत प्रवाहित है। पहले सर्ग की कथा भरत-मान्डवी के प्रेमालाप के साथ प्रारभ होती है। इस प्रसग मे सयोग शृ गार का अविरल स्रोत छलकता है, किन्तु फिर इसके कही दर्शन नही होते हैं। सपूर्ण काव्य मे राम के वियोग मे एक गहन विषाद-सा छा जाता है। चित्रकूट पर राम से भेट करने को जाते हुए भरत की दशा के वर्णन मे करुण रस की धारा प्रवाहित होती है। भरत के चित्रकूट से लौटने पर भी एक करुण विषाद छाया रहता है। वशिष्ठ के धर्मोपदेश तथा चित्रकूट पर नीति, धर्म एव ज्ञान के निरूपण के प्रसगो मे शान्त रस की प्रतिष्ठा हुई है। वस्तुतः इस काव्य मे करुण और शान्त रस ही प्रधान है।

वैदेही-बनवास का कथानक करुण रस प्रधान है। सीता जी के वनगमन के अवसर पर 'कातरोक्ति' प्रसग मे तथा सीता विषयक लक्ष्मण के सदेश-कथन मे करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।[३] अन्य रसो मे शृ गार, वात्सल्य, शान्त रस गौण रूप से आए है।

उपर्यक्त विवेचन से सिद्ध है कि उपर्यकित महाकाव्यो मे रस का पूर्ण सचार हुआ है। निर्दिष्ट स्थलो मे रस-पोषक सामग्री प्रचुरता से मिलती है। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एव सचारियो की योजना रसानुकूल है। साकेत-सन्त और वैदेही बनवास मे सास्कृतिक विचारो, नीति एव धर्म के सिद्धान्तो का उन्मीलन अधिक हुआ है। अतएव इन दोनो महाकाव्यो मे रस की सहायक सामग्री अपेक्षाकृत अव्यवस्थित है।

महाकाव्य का शरीर—महाकाव्य के वाह्य स्वरूप के अन्तर्गत भी अनेक परपराएँ चली आती है। इनमे मगलाचरण, सर्ग रचना, छन्द और वस्तु

---

३ —**वैदेही बनवास**, ६।५४ तथा ६।६

वर्णन का प्रमुख स्थान है। नीचे आधुनिक काव्यो मे इन्ही का विवेचन किया जाता है।

मगलचरण—महाकाव्य के प्रारभ मे नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक मगल का विधान है। साकेत, नल नरेश, दैत्य वश, हल्दीघाटी, कृष्णायन तथा अगराज का प्रारभ नमस्कारात्मक मगल से होता है। कृष्णायन के मगल मे घनश्याम की वन्दना की गई है। कवि ने बन्दीगृह मे उत्पन्न होने वाले कृष्ण का अभिवादन किया है। कवि स्वय बन्दी रह चुका है तथा भारतमाता भी उन दिनो बन्दिनी थी, जिस समय इस काव्य का प्रणयन हुआ था। भगवान् कृष्ण ने जननी तथा जन्म भूमि की मुक्ति के हेतु कारावास मे जन्म लिया था। वे युगावतार थे। बन्दीगृह मे उत्पन्न होनेवाला देवता ही बन्दिनी माता को सकट से छुडाने मे समर्थ हो सकता है, क्योकि उसको कष्टो की अनुभूति हो चुकी होती है। उसमे वीरत्व का जैसा उद्रेक होता है, वैसा और किसी मे नही। इस दृष्टि से कृष्णायन का मगल युग की परिस्थिति पर भी प्रकाश डालता है। यही इसमे नवीनता है[1]।

सिद्धार्थ, साकेत-सन्त तथा विक्रमादित्य के आरभ मे वस्तु निर्देशात्मक मगलो की योजना की गई। इनमे कथा-वस्तु अथवा कथा के प्रधान पुरुष का निर्देश पाया जाता है। पहले दो महाकाव्यो मे कथा-वस्तु का और तीसरे मे कथा के प्रधान पुरुष का निर्देश किया गया है।

वैदेही-बनवास का आरभ प्रकृति-वर्णन के साथ होता है। इसमे प्रभात की शोभा का चित्रण है। हरिऔध जी के प्रियप्रवास के आरभ मे भी सध्या का वर्णन है। प्रकृति-चित्रण को कथा-भूमि का पृष्ठाधार बनाकर काव्य-रचना करने की शैली आधुनिक है। वैदेही-बनवास के लगभग हर एक सर्ग के आरभ मे किसी-न-किसी प्रकार से प्राकृतिक दृश्य का चित्रण पाया जाता है। यह परपरा से भिन्न नया विधान है।

सर्ग रचना—महाकाव्य के लिए कम-से-कम आठ सर्गों का विधान है। उपर्युक्त सभी महाकाव्यो मे सर्गों की सख्या आठ से अधिक है। केवल कृष्णायन मे सात सोपान हैं। रामचरितमानस मे भी सात काड हैं। मानस की तरह कृष्णायन का चित्रपट भी अत्यन्त विशाल है। यह मानव-जीवन की

१—जन्मेउ बन्दी धाम, जो जन जननी मुक्ति हित।
बन्दहुँ सोई घनश्याम, मैं बन्दी बन्दिनि तनय॥
—कृष्णायन, अवतरण कांड

विभिन्न परिस्थितियो का उद्‌घाटन करता है। अतएव आठ सर्गों की सख्या उपचार मात्र है। हल्दीघाटी की कथा-वस्तु सत्तरह सर्गों मे विभाजित होने पर भी जीवन के केवल एक पक्ष का उद्‌घाटन करती है। सर्ग भी अत्यत छोटे, नाम मात्र के है। अन्य काव्यो की सर्ग सख्या यथोचित है।

छन्दो-विधान—महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग मे एक समान छन्दो के प्रयोग का विधान है। सर्ग के अन्त मे उसे बदल दिया जाता है। कृष्णायन को छोड कर शेष सभी महाकाव्यो मे इस नियम का निर्वाह हुआ है। कृष्णायन मे आदि से अन्त तक दोहा, चौपाई तथा सोरठो के अतिरिक्त और कोई छन्द व्यवहृत नही हुआ है। पद्‌मावत और रामचरितमानस की रचना-पद्धति का अनुसरण करते हुए इसको दोहा-चौपाइयो मे ही लिखा गया है। दैत्य वश की रचना ब्रजभाषा के अनुकूल कवित्त-सवैया मे हुई है। किसी-किसी सर्ग मे दोहा-चौपाई की पद्धति अपनाई गई है।

वस्तु-वर्णन—इन महाकायो मे परपरा-विहित सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, प्रभात, वन, पर्वत, ऋतु, समुद्र, युद्ध, आक्रमण, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, आश्रम, यज्ञ, सयोग, वियोगादि के वर्णन भी आए हैं। सिद्धार्थ, दैत्यवश, साकेत-सन्त एव कृष्णायन मे प्राकृतिक दृश्यो का चित्रण प्रचुरता से मिलता है। अगराज के उत्तरार्द्ध मे सेना, युद्ध, मत्र, प्रस्थान आदि का वर्णन अत्यत विस्तृत एव प्रभाव-वर्द्धक है। खल-निन्दा और सज्जन-प्रशसा नल-नरेश और कृष्णायन के अतिरिक्त अन्य महाकाव्यो मे नही है।

विवेचन—आलोच्य काल मे अनेक महाकाव्यो की रचना हुई है, किन्तु इनमे ऐसे काव्यो की सख्या अल्प ही है जिनमे महाकाव्य की प्राण-प्रतिष्ठा हो सकी है। महाकाव्य के मूल तत्व चार है—(१) सानुबन्ध कथा, (२) प्रख्यात नायक, (३) रस तथा (४) वस्तु-वर्णन। हिन्दी-काव्य-परम्परा मे यद्यपि अनेक महाकाव्य है, तथापि रामचरितमानस के सदृश कथा-वस्तु की व्यापकता चरित्र की गरिमा, रसात्मक बोध एव कलात्मक सौष्ठव अन्य महाकाव्यो मे नही पाया जाता है। आधुनिक काल के महाकाव्यो मे भी प्रायः यही दोष खटकता है। साकेत, साकेत-सन्त, वैदेही-बनवास, नल-नरेश और हल्दीघाटी मे कथा-वस्तु की की सश्लिष्ट योजना का अभाव है। महाकाव्य की कथा-वस्तु का चित्रपट इतना विशाल होता है कि वह मानव जीवन के विभिन्न पार्श्वों को स्पर्श करता है। घटनाओ का वैविध्य महाकाव्य के कथानक को पूर्णता प्रदान करता है। तुलसी के मानस मे यह गुण है कि उसमे घटनाओ की योजना सतुलित है और उनको बडे कौशल से एक दूसरे के साथ गूँथा गया है। आलोच्य काल के

महाकाव्यो मे कृष्णायन तथा सिद्धार्थ को छोडकर शेष सभी काव्यो मे कथानक सकीर्ण, घटनाएँ असतुलित तथा सश्लिष्ट वर्णन का अभाव पाया जाता है। साकेत की कथा-वस्तु इस दृष्टि से असगठित है, साकेत-सन्त मे सिद्धान्तो एव विचारो के ऊहापोह मे कथा-वस्तु विशृखलित हो गई है तथा प्रकृति-चित्रण कथा-वस्तु के विकास मे सहायक नही है। वैदेही-बनवास मे प्रकृति-चित्रण के आधिक्य ने मूल कथा को ही दबा दिया है। इसमे सूक्ष्मतर घटनाओ का अभाव है तथा जीवन की अनेक रूपता का दर्शन नही है। नल-नरेश मे महाकाव्य की समस्त सामग्री जुटाई गई है, किन्तु वह परम्परा का पालन भर है। उसमे महाकाव्यत्व नही आ सका है। कथानक प्रसिद्ध है, नायक प्रख्यात है, रसोन्मेष भी है और वस्तु-वर्णन भी है। किन्तु सब कुछ मात्र परम्परा का निर्वाह है। काव्य-चेतना का सजग उन्मीलन कही पर नही हुआ है।

विक्रमादित्य का कथानक अपेक्षाकृत विशाल है। इसमे उद्देश्य की एकात्मता है। राष्ट्र के निर्माण तथा आर्य सस्कृति की रक्षा के लिए नायक सतत् प्रयत्नशील दिखाई पडता है। किन्तु इसके कथानक मे घटनाओ की अन्विति नही है। कथानक के मार्मिक स्थलो की अवहेलना की गई है तथा असबद्ध स्थलो का अनुचित विस्तार किया गया है। बारहवाँ सर्ग इसका उदाहरण है। उन्तीसवें सर्ग के पश्चात् कथा-वस्तु बिलकुल विकसित नही होती है। ग्रन्थ के विस्तार के लिए अनपेक्षित सर्गों की योजना की गई है।

हल्दीघाटी तथा अगराज मे युद्ध की घटनाओ का वर्णन विस्तार से हुआ है, अतएव मूल कथा का यथोचित विकास नही हुआ है। जीवन के नाना पक्षो का उद्घाटन इन काव्यो मे नही हो पाया है। इसके अतिरिक्त इन काव्यो मे मानवता के लिए कोई महान् सदेश भी नही है। अगराज मे कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए विपक्षी पाण्डवो के आदर्श को विकृत रूप मे चित्रित किया गया है। महाभारत के समय से प्रचलित युधिष्ठिर एव कृष्ण के आदर्श चरित्र को एकदम उलट देना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। कथानक की विशृखलता और उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण ये दोनो महाकाव्य के स्तर के ग्रथ नही हैं।

दैत्यवश शरीर से महाकाव्य-सा लगता है। सर्ग-रचना, छन्द, अलकार, वस्तु-वर्णन की दृष्टि से यह सब प्रकार सपन्न है। रस की धारा भी इसमे अजस्र प्रवाहित होती है, किन्तु इसके नायक दैत्य नरेश है। कवि ने अत्याचारी दैत्य राजाओ को आदर्श रूप मे अकित किया है। इसमे दैत्यो को देवता-स्थानीय बनाने का सतत् प्रयत्न दिखाई पडता है। इसी कारण हिरण्याक्ष-वध, प्रह्लाद का

स्वधर्म पालन तथा समुद्र-मंथन की घटनाओ को नया रग दिया गया है। यह सब प्रचलित प्राचीन आदर्शों से वहिर्भूत है। इस महाकाव्य मे किसी महान् सदेश की स्थापना भी नही हो सकी है। अतः यह महाकाव्य के स्तर को नही पहुँचता है।

सिद्धार्थ मे सानुबन्ध कथा है। कथा का प्रवाह समन्वित है। नायक धीरोदात्त है, जिसने अहिंसा, समता एव सत्य के साक्षात्कार द्वारा मानवता का विकास किया है। नायक को चारो पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। इसका सदेश है, जीवन मे सत्य, समता एव विश्व मैत्री की स्थापना। शृ गार रस अगी है। सर्ग रचना, छन्द, अलकार एव वर्णन-शैली के विचार से सिद्धार्थ एक सफल महाकाव्य है।

कृष्णायन भी एक प्रौढ रचना है। कवि ने कृष्ण के महान् चरित्र प्रबध काव्य का रूप दिया है। इसका प्रबन्ध कौशल, कलात्मक सौष्ठव, रसात्मक बोध एव वस्तु वर्णन अभूतपूर्व है। अतः यह एक महान् काव्य है।

प्रबन्ध की कलेवर-वृद्धि के भय से महाकाव्यो की यह परीक्षा सक्षिप्त रूप मे की गई है। अधिक विस्तार मे जाना अभीष्ट भी नही है।

(२) खण्ड-काव्य—

आलोच्यकाल मे खड काव्यो की सख्या भी प्रचुर है। जयद्रथ वध, पचवटी, सिद्धराज, वन-वैभव, वक-सहारादि (मैथिलीशरण गुप्त), मौर्य विजय, नकुल, (सियाराम शरण), कुणाल, विषपान वासवदत्ता (सोहनलाल द्विवेदी), अभिमन्यु बध (रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'), तुलसीदास (निराला), जौहर (सुधीन्द्र), चित्तौड की चिता (रामकुमार वर्मा), तुमुल, जौहर (श्यामनारायण पाडेय), प्रणवीर प्रताप, तपस्वी तिलक, (गोकुलचन्द्र शर्मा)।

वर्गीकरण—परम्पराओ के विचार से महाकाव्य और खण्डकाव्य के स्वरूप मे कोई अन्तर नही है। खण्डकाव्य महाकाव्य का ही लघु रूप होता है, जिसमे जीवन के किसी एक पक्ष की घटनाओ का वर्णन होता है। सुविधा के विचार से खण्डकाव्य की परम्पराओ को चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) चरित नायक, (२) सानुबन्ध कथा, (३) रस और (४) वस्तु-वर्णन।

१—देखिए, साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३२९
'खण्ड काव्यंभवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारिच'—अर्थात् खण्डकाव्य मे महाकाव्य के किसी एक अंश का वर्णन होता है।

खण्ड-काव्य की कथा-वस्तु का आधार चरित नायक है। उसी के जीवन की कथा को चित्रित किया जाता है। मैथिलीशरण के जयद्रथ-वध, पच-वटी, सिद्धराज, वन-वैभव, वक-सहार आदि इस दृष्टि से अत्यन्त सफल है। 'जयद्रथ-वध' के अर्जुन, 'पचवटी' मे लक्ष्मण, 'प्रणवीर प्रताप' के प्रताप और 'सिद्धराज के सिद्धराज तीनो ऐतिहासिक चरित नायक है। इनके चरित्रो मे ओज, बल, शील एव शक्ति का चरम विकास हुआ है। आत्म-सयम, प्रतीज्ञा-पालन और कर्तव्य-परायणता के सौन्दर्य से इनका चरित्र विभूषित है। मौर्य-विजय के चन्द्र-गुप्त, 'नकुल' के नकुल, 'कुणाल' के कुणाल, 'अभिमन्यु-वध' के अभिमन्यु'तुमुल', के लक्ष्मण, 'प्रणवीर प्रताप' के प्रताप सभी उदात्त नायक है। इनके चरित्र पाठको के हृदय मे स्फूर्ति, साहस एव सेवा की भावना को सजग करते है। निराला के तुलसीदास भी आदर्श नायक है, जो लोकोत्तर चारित्रिक सौन्दर्य को लेकर अवतीर्ण हुए है।

अनुबन्ध-सहित कथा का होना खण्डकाव्य की मुख्य आवश्यकता है। कथा के समुचित विकास के लिए पात्रो की योजना करनी पडती है। इसमे एक ही छन्द हो सकता है और विविध छन्द भी हो सकते है। सानुबन्ध कथा के निर्वाह की दृष्टि से जयद्रथ वध, पचवटी, सिद्धराज, कुणाल, नकुल, प्रणवीर प्रताप, मौर्य-विजय, अभिमन्यु-वध सुन्दर है। पचवटी मे सवादो की योजना से मनोरजकता आ गई है।

खण्डकाव्य मे शृ गार, वीर, करुण मे से किसी एक रस की पूर्ण व्यजना होनी चाहिए। जयद्रथ-वध, अभिमन्यु वध, मौर्य-विजय, प्रणवीर प्रताप, तुमुल और जौहर मे वीर रस की व्यजना हुई है। कुणाल मे शृगार और करुण प्रधान है। शेष काव्यो मे भावो के छीटे ही उडते है, पूर्ण रस परिपाक नही होता है। तुलसीदास रस-परिपाक की दृष्टि से निर्बल काव्य है, किन्तु तुमुल, सिद्धराज, अभिमन्यु-वध, जयद्रथ-वध आदि काव्यो मे वीर रस की पूर्ण अभि-व्यक्ति हुई है। पचवटी, सिद्धराज, अभिमन्यु-वध, जयद्रथ-वध, मौर्य विजय, नकुल, जौहर और तुमुल वस्तु-योजना की दृष्टि से सफल खण्डकाव्य हैं।

आधुनिक युग के खडकाव्यो मे परम्पराओ के निर्वाह के साथ विकास भी हुआ है। यह नया विकास कल्पना प्रसूत कथानको की सृष्टि, नाटकीय सवादो को योजना एव भावो की मनोरम अभिव्यक्ति के रूप मे दिखाई पडता है।

(३) मुक्तक काव्य—

मुक्तक काव्य रूप के अध्ययन के लिए निम्नाकित पुस्तको को चुना गया है :—

माधवी, मानवी, सचिता, ज्योतिष्मती, कादम्बिनी (गोपालशरण सिंह), प्रेम शतक, प्रेम पथिक, प्रेमाजलि (वियोगी हरि) वीर क्षत्राणी, वीर बालक, नवीन वीन (लाला भगवान दीन)' वीर सतसई (वियोगी हरि), चौखे चौपदे, पद्य प्रसून (हरिऔध), मातृभूमि, भारत भारती, स्वर्गीय सगीत (मैथिलीशरण), झरना, आँसू (प्रसाद), नये पत्ते (निराला)।

वर्गीकरण—मुक्तक काव्यो को विषय-वस्तु के विचार से निम्नाकित पाँच भागो मे बाँटा जा सकता है—(१) भक्ति और प्रेम, (२) वीरता एव उत्साह (३) नीति एव शिक्षा, (४) व्यग्य एव हास्य और (५) प्रकृति-वर्णन।

आलोच्यकाल की प्रवृत्ति यद्यपि गीति-काव्य की ओर विशेष उन्मुख है, तो भी मुक्त काव्य-रचना कम नही हुई है। रीतिकालीन समस्त परम्परा आधुनिक युग के मुक्तको मे मिलती हैं। कुछ नए प्रयोग भी हुए हैं जो यथास्थान दिखाए जायगे।

भक्ति और प्रेम-विषयक मुक्त रचनाएँ ठाकुर गोपालशरण सिंह के काव्य-सग्रहो मे प्रचुरता से मिलती है। माधवी, मानवी, सचिता ज्योतिष्मती, कादम्बिनी आदि ऐसी ही रचनाएँ है। सचिता की पहली कविता ही मे प्रेम की महिमा वर्णित है। जब हृदय मे प्रेम अधिष्ठित हो जाता है, तब उदारता, का आविर्भाव होता है और हृदय मे से ईर्ष्या, द्वेष, कपट, कामादि विकास सब निकल भागते है तथा जीवन मे निरुपम आनन्द-सगीत गूंजने लगता है। कवि के भक्ति सबधी उद्‌गार, चित-चोर, प्रार्थना, अन्तिम प्रार्थना, हृदयोद्‌गार, प्रकाश, खेल, (सचिता) तथा तुम और मैं, हृदयेश, अटल सबध, लालसा, निवेदन, आत्म समर्पण, याचना (ज्योतिष्मती) आदि कविताओ मे प्रकट हुए है। वियोगी हरि की प्रेम-शतक, प्रेम, पथिक और प्रेमाञ्जलि रचनाओ मे प्रेम का स्रोत वैसा ही उद्वेलित होता है जैसा मध्यकाल के भक्त कवियो की वाणी मे।

वीरता एव शौर्य के भावो की व्यजना लाला भगवानदीन के वीर बालक, वीर क्षत्राणी आदि मुक्तको मे अत्यत प्रभाववर्द्धक हैं। वीर सतसई (वियोगी हरि) तो वीर भावो की व्यजना के लिए आधुनिक युग की अन्यतम रचना है। इसमे वीरत्त्व की व्यजना सत्यव्रती मे भी की गई है। धर्म के सरोवर मे जो सत्य का कमल प्रस्फुटित हुआ है, उससे सत्यवीर हरिश्चन्द्र के पुण्य-पराग का सौरभ दिग्-दिगन्त को सुगन्धित कर रहा है। वर्तमान काल मे वही हरिश्चन्द्र गान्धी-रूप से प्रकट हुआ है। इसी प्रकार भीष्म, अभिमन्यु, प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई आदि वीर-वीरागनाओ की प्रशस्ति मे

वीर भावो की सशक्त व्यजना हुई है। हरिऔध की 'कर्मवीर' कविता भी इसका अच्छा उदाहरण है। रसिकेन्द्र की 'मनहर-वीर ज्योति' मे युद्धवीर के जीवन के विविध पक्षो का अत्यत ओजस्वी वर्णन है। इसमे ऐतिहासिक वीरो के शौर्य-वर्णन के साथ-साथ वर्तमान काल के वीरत्व के आदर्श भी उपस्थित किए गए है। इसके लिए सर्वत्र घनाक्षरी छन्द व्यवहृत हुआ है जो वीरत्व की व्यजना के लिए परपरा से चला आता है।

नीति एव शिक्षा के विषय आधुनिक युग की प्रवृत्ति के अनुकूल नही है। फिर भी मैथिलीशरण के 'स्वर्गीय सगीत, हरिऔध के 'चौपदे,' नाथूराम शकर' के दोहे तथा स्फुटिक रचनाएँ और रामनरेश त्रिपाठी की अनेक फुटकर कविताओ मे इस विषय का वर्णन पाया जाता है।

अन्योक्ति, व्यग्य, उक्ति-वैचित्र्य एव अलकारो का चमत्कार 'शकर,' 'रत्नाकर', 'हरिऔध', जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' की 'कल्लोलिनी और नवोदिता' और 'सनेही' की फुटकल कविताओ मे मिलता है। परन्तु अब वह परपरा उपेक्षित-सी है। केवल व्यग्य अवश्य मिलता है, अन्योक्ति, उक्ति-वैचित्र्य एव अलकारो का उपयोग अब परपरागत पद्धति पर नही होता है। व्यग्य ने भी नया रूप ले लिया है। पूँजीपति, साम्राज्यवादी, सामन्तवादी मनोवृत्ति के पोषको पर आजकल जो व्यग्यपूर्ण कविताएँ लिखी जाती है, उनमे राजनीतिक वर्गीय चेतना का ही प्रकाशन होता है। निराला, (नए पत्ते) अचल, बच्चन, नरेन्द्र, अज्ञेय, भारती आदि कवियो की व्यग्योक्तियाँ परपरानुगत शैली कविताओ से बिलकुल भिन्न है। इनके व्यग्य का स्वरूप भी बदला हुआ है।

शुद्ध 'प्रकृति' विषय को लेकर मुक्तको की रचना तो अल्प है। गोपाल शरण सिंह, अनूप शर्मा, गुरुभक्त सिंह आदि थोडे से कवियो ने ही मुक्तक के रूप मे प्रकृति-वर्णन की ओर रुचि प्रदर्शित की है। छायावादी कवियो मे पन्त ने इस ओर विशेष रुचि रखी है। इनकी बालक, झरना, प्रथम रश्मि, नौका-विहार, सान्ध्य तारा, छाया, चाँदनी, हिमाद्रि आदि रचनाओ मे प्रकृति का चित्रण शुद्ध रूप मे पाया जाता है। अन्य कवियो मे इस प्रकार के वर्णन का अभाव है।

रीतिकाल के अनेक कवियो ने मुक्तक रूप मे रीति-ग्रथो की रचना की थी। यह परिपाटी आधुनिक काल मे समाप्त हो गई है, क्योकि काव्यालोचन के लिए अब गद्य का माध्यम स्वीकृत हो चुका है।

सतसई काव्य-परंपरा—

सतसई-साहित्य की एक सुदीर्घ परपरा है। साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा यह लोक-जीवन के अधिक निकट है। इसमे व्यावहारिक जीवन की सुख-दु.ख, विरह-मिलन एव हर्ष-विषाद की छोटी-छोटी घटनाओ का वर्णन किया जाता है। सतसई काव्यो मे प्रेम, भक्ति धर्म, नीति, आचार आदि विषयो का अत्यत सजीव तथा मार्मिक वर्णन पाया जाता है। इनमे मानव-जीवन को सबसे अधिक प्रभावपूर्ण शृ गारिक क्रीडाओ तथा नायक-नायिकाओ की विलास-कथाओ का स्वच्छन्दता से वर्णन किया गया है।

सप्तशती और शतक लिखने की परपरा स्रोत सस्कृत-साहित्य मे मिलता है। प्राकृत मे हाल की 'गाथा सप्तशती' के अनुकरण पर शृ गार रस की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुई। आर्या सप्तशती और अमरुक शतक इसी के परिणाम हैं। गाथा सप्तशती की छाया प्रायः सभी सतसई काव्यो पर दिखाई पडती है। हिन्दी मे बिहारी की सतसई भी इससे प्रभावित है।

सतसई साहित्य मुक्तक काव्य-रूप है। यह लोक-जीवन के सत्य को उद्‌घाटित करने मे सबसे अधिक सशक्त है। ग्राम्य जीवन की सस्कृति, जीवन-चर्या और भाषा का सतसई साहित्य से निकटतम सबध है।

हिन्दी के सतसईकारो ने सस्कृत-शैली का ही अनुकरण किया है। इनमे दोहे को बहुत अधिक महत्त्व मिला है। अडतालीस मात्रा के इस लघु छन्द मे बडे-से-बडे भाव को सफलतापूर्वक व्यजित किया जा सकता है। बिहारी के दोहो मे रस-व्यजना का पूर्ण उत्कर्ष दिखाई पडता है। दोहे का महत्त्व बिहारी से पहले रहीम के समय मे ही स्थापित हो चुका था।[1]

हिन्दी सतसई-साहित्य की परपरा मे तुलसी सतसई, रहीम सतसई, बिहारी सतसई, मतिराम सतसई, वृन्द सतसई, शृ गार सतसई (भूपति), चन्दन सतसई (सन्दल), भाषा सप्तशती (नवल सिंह कायस्थ), राम सतसई (रामसहाय), सुकवि सतसई (प० अम्बिकादत्त व्यास), विक्रम सतसई (बैताल कवि) आदि प्रसिद्ध रचनाएँ है।

सतसई लिखने की परपरा आधुनिक काल मे भी जीवित है। इस क्षेत्र मे वियोगी हरि की 'वीर सतसई' ब्रजभाषा' मुक्तक-रूप का श्रेष्टतम उदाहरण

१—'दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नर-कुंडली, सिमिटि कूदि चलि जाहिं॥'
—रहीम

है। ब्रजभाषा मे वीर भावो की सफल व्यजना का यह अभिनव प्रयास है। 'हरिऔध सतसई' सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई,' जगन सिंह सेगर की किसान सतसई' और रामेश्वर 'करुण की' करुण सतसई' इसके अन्य उत्कृष्ट पग-चिह्न हैं। इस प्रकार सतसई-परम्परा हिन्दी-साहित्य मे अत्यन्त समृद्ध रूप मे मिलती है। इसमे विभिन्न युगो का भारतीय जीवन एव लोक-रुचि का प्रतिबिम्ब झलकता है।

शैली की दृष्टि से मुक्तक काव्य रचनाओ मे कवित्त सवैया का प्रयोग परपरानुगत है। आधुनिक कवियो मे गोपालशरण सिंह, अनूपशर्मा, रत्नाकर, वियोगी हरि, रसिकेन्द्र आदि कवियो ने अपनी मुक्तक रचनाओ मे कवित्त-शैली का उपयोग किया है। हरिऔध, शकर, सनेही एवं हितैषी के सवैया प्रसिद्ध है।

सख्यापरक मुक्तको की रचना मे पचक, अष्टक, दशक, शतक आदि स्फुट काव्य आधुनिक युग मे भी लिखे गए हैं। नाथूराम शकर, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर,' दुलारेलाल आदि ने अनेक सख्यापरक काव्यो की रचना की है।

इससे स्पष्ट है कि आधुनिक काल मे मुक्तक काव्य-परपरा अक्षुण्ण है।

केवल रीति-ग्रथो को काव्य-बद्ध करने की प्रथा समाप्त हो गई है। किन्तु वर्तमान हिन्दी-साहित्य मे मुक्तक काव्य परपरा उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। छायावाद, प्रगतिवाद के कवियो ने परपरागत मुक्तक काव्यो की ओर बिलकुल रुचि नही दिखाई है। गीतिकाव्य को प्रधानता मिल जाने से कवित्त-सवैया की शैली लुप्तप्राय हो गई है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी रचनाओ मे परपरानुगत मुक्तक शैली पूर्णरूप से वहिष्कृत है। जिन मुक्तककारो का ऊपर निर्देश हुआ है, वे वाद-क्षेत्र के बाहर के कवि हैं। मुक्तको के ये कवि विशेषतः प्रबन्ध काव्य के ही कवि है। केवल मुक्तककारो की सख्या अत्यत विरल है। रीतिकाल मे इस परपरा का जैसा स्वस्थ विकास हुआ था, उसको देखते हुए वर्तमान काल मे मुक्तक काव्य की प्रगति नगण्य है। वस्तु तथा शैली दोनो ही दृष्टियो से यह परपरा वर्तमान हिदी काव्य मे लुप्त-सी हो गई है।

(४) प्रगीत काव्य—

वाद्य-यत्र पर गाई जाने योग्य रचना को गीति काव्य कहते है[1]। महादेवी जी के अनुसार सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने-चुने

१—देखिए, ऐंसाइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका, जिल्द १४।

शब्दो मे स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है[१]।

प्राचीन परम्परा—आलोच्य काल से पूर्व गीत-परम्परा तीन रूपो मे प्रचलित थी (१) प्रेम प्रधान सन्त काव्य की परम्परा, (२) भक्ति-प्रधान सगुण काव्य परम्परा और (३) वीर गीत काव्य परम्परा।

सन्त काव्य परम्परा मे प्रेम-भावना की प्रधानता है। सन्त कवियो की रहस्यवादी काव्य-परम्परा मे परोक्ष-सत्ता के प्रति प्रेम प्रकट किया गया है।

सगुण-भक्ति की परम्परा का विकास दो दिशाओ मे हुआ है—कृष्ण तथा रास भक्ति। इसका प्रारम्भ विद्यापति के गीतो से होता है।

वीर गीतो की परम्परा हिन्दी-साहित्य के प्रारभिक युग मे बड़े वेग के साथ चली, किन्तु भक्ति युग मे जाकर समाप्त हो गई।

सत कवियो ने निर्गुण-प्रेम की जिस गीत परम्परा का प्रवर्तन किया था, वह यद्यपि स्वस्थ, सुन्दर एव लोकप्रिय थी, तो भी सगुण भक्ति काव्य की परम्परा के सामने वह भी न ठहर सकी, जिससे उनका अन्त हो गया। सगुणोपासक भक्त कवियो की रामाश्रयी गीति-परम्परा मे केवल तुलसीदास का ही नाम आता है। इसके पश्चात् वह लुप्त हो जाती है। कृष्ण-भक्ति-परम्परा सबसे अधिक स्वस्थ, सुन्दर, एव प्राणवान् थी। इसमे प्रेम, भक्ति, सौन्दर्य, वात्सल्य एव आत्माभिव्यजन का बाहुल्य है। हिन्दी-साहित्य मे यही परम्परा सबसे अधिक प्राचीन है। विद्यापति इसके आदि कवि है। इसके बाद अष्टछाप, तुलसी, मीराबाई, रसखान, नागरीदास, भारतेन्दु, सत्यनारायण, वियोगी हरि के नाम मुख्य हैं। आलोच्यकाल मे आते-आते यह परम्परा अतिम साँस लेने लगती है। वियोगहरि के बाद कोई भी उल्लेखनीय कवि इस परम्परा मे नही दिखाई पडता है। प्राचीन काल के भक्त कवियो की गीत-पद्धति मे दास्य भाव के अतर्गत कार्पण्य, दैन्य एव विनय के भावो की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा मे दिखाई पडती है। इसमे स्तोत्र, प्रार्थना, आत्म-निवेदन, दैन्य-प्रकाशन, उपालभ आदि की रचनाएँ विशिष्ट स्थान रखती हैं। सूर के विनय के पद, तुलसी की विनय पत्रिका, मीरा के भक्ति के पद, तथा नागरीदास, हित हरिवश आदि भक्त कवियो के पद सबसे अधिक प्रसिद्ध है। भक्ति के पदो की यह परम्परा भारतेन्दु युग तक आती है। इसके पश्चात् राष्ट्रीयता के युग मे यह धारा इतनी क्षीण हो जाती है कि सत्यनारायण कविरत्न वियोगी हरि के पश्चात् लुप्तप्राय हो जाती है। प्रेमशतक, प्रेम पथिक और प्रेमाजलि मे वियोगी हरि की इस प्रकार की रचनाएँ मिलती है। इसके पश्चात् यह धारा राष्ट्रीयता के आन्दोलन मे

१—देखिए, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० १४१।

लुप्त हो जाती है ।

आलोच्यकाल मे प्रगीत काव्य की परंपरा—

रहस्यवादी प्रगीतकाव्य के अतिरिक्त प्राचीन काल की शेष सभी परपराएँ आधुनिक काल मे आना अस्तित्व खो बैठी है । अस्तु, यहाँ केवल रहस्यवादी गीति-काव्य की प्रवृत्तियो का विचार किया जाता है । इस परपरा की निम्नांकित विशेषताएँ है :—

(१) सर्वव्यापक सत्ता के प्रति आत्माभिव्यजन ।

(२) विरह-मिलन के सकेत ।

(३) अलौकिक सत्ता के प्रति मानवीय सबधो की स्थापना ।

(४) शृगार एव शान्त रस की प्रधानता ।

(५) दार्शनिक सिद्धान्तो का निरूपण ।

(६) प्रियतम के गुण एव सौदर्य का वर्णन ।

(७) सहज, सरल भाषा मे भावो का प्रकाशन ।

(८) प्रतीकात्मक प्रयोग ।

(१) आलोच्यकाल के रहस्यवादी प्रगीत मुक्तको मे ये सभी प्रवृत्तियाँ मिलती है । छायावादो-रहस्यवादी कवियो ने अलौकिक सत्ता मे विश्वास प्रकट किया है तथा उसे लक्ष्य कर अपने हृदय की भावनाओ को प्रकाशित किया है । कबीर आदि सत कवियो का वाणी मे भावो का माधुर्य अधिक है, प्रसादादि नये कवियो मे भावो का सौन्दर्य प्रचुर है ।

(२) रहस्यवादी काव्य मे आकुल अन्तर के सुख-दु.ख विरह-मिलन के उद्‌गारो की मार्मिक व्यजना है । नये युग के गीतकारो मे भी हास-अश्रु, सुख-दुःख, नैराश्य, वेदना, विषाद एव विरह के भावो की विवृत्ति का प्राचुर्य है । महादेवी के गीत करुणा, विषाद, एव विरहोद्‌गारो से ओतप्रोत है । हरिकृष्ण प्रेमी और रामकुमार के गीतो मे विरह-मिलन के भावो का तीव्र स्वर है । प्रसाद की 'लहर' के गीतो मे विरहिणी आत्मा की चिर व्यथा, पीडा एव वेदना का ही चित्रण है । शाश्वत मिलन की आतुर प्रतीक्षा मे आकुल हृदय की पुकार 'आँसू' के गीतो मे साकार है ।

(३) रहस्यवादी कवि उस अलौकिक सत्ता के साथ विविध मानवीय सबधो को जोडते आए है । कबीर ने उसके साथ पिता, माता, स्वामी एव पति का सबध जोडकर अपने को बालक, बन्दा, बहुरिया के रूप मे रखा है । नए युग के कवियो ने भी अव्यक्त प्रिय के साथ मा, सहचरि, प्राण, देवि, देव आराध्य, प्रिय आदि विविध सम्बन्धो की स्थापना की है ।

(४) प्रगीत काव्य मे शृगार और शान्त रस का प्राचुर्य है। अलौकिक प्रिय को पति तथा अपने को पत्नी के रूप मे मानकर दाम्पत्य सबध की शृ गारात्मक अभिव्यजना की गई है। नये युग के कवियो ने भी अलौकिक प्रिय को आलम्बन मानकर उसकी प्रतीक्षा मे मिलन-विरह के ही गीत गाए है। प्रसाद के झरना, आँसू, लहर और महादेवी की 'नीरजा' के गीतो मे यह प्रवृत्ति अत्यधिक है। प्रेमी और रामकुमार वर्मा के गीतो मे भी शृ गारिक व्यजना का माधुर्य है। दार्शनिक भावो के प्रतिपादन के प्रस गो मे शान्त रस प्रधान है।

(५) आध्यात्मिक तत्व निरूपण करने की जैसी प्रवृत्ति प्राचीन काल के सत कवियो मे थी, नये कवियो मे भी प्रचलित है। पहले के कवियो ने अपने काव्य मे कर्ता, ब्रह्म, माया, जीव, जगत् और अद्वैत तत्व का विविध प्रकार से वर्णन किया है। तत्व ज्ञान के निरूपण मे उन्होने शास्त्रीय परपरा का ही अवलम्बन किया है। साख्य, योग, वेदान्त एव वैष्णव ग्रन्थो से उन्होने तत्व-ज्ञान की प्रेरणा ली है। आधुनिक कवियो ने भी इन्ही शास्त्रो के आधार पर पुनर्जन्म, कर्मवाद, आनन्दवाद, साम्य-दर्शन आदि बातो पर दार्शनिक विचार प्रकट किए है। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के गीतो मे विविध दार्शनिक वादो की प्रतिच्छाया दिखाई पडती है। महादेवी के काव्य मे साख्य, योग एव अद्वैत दशन के सिद्धान्त काव्यात्मक भगिमाओ के साथ अभिव्यक्त हुए है। उनके गीतो मे उपनिषद-प्रतिपाद्य तत्वज्ञान की छाया विद्यमान है। प्रसाद के काव्य मे भी उपनिषद्, शैवागम एव अद्वैत दर्शन के मार्मिक तत्व का निरूपण पाया जाता है। कामायनी के अन्तिम (रहस्य, दर्शन, आनन्द) सर्गों मे दार्शनिक तत्व को मजुल काव्य-वाणी मे प्रस्तुत किया है। पन्त की स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा आदि कृतियो मे दार्शनिक तत्व ज्ञान विविध रचनाओ मे प्रतिफलित हुआ है। निराला के काव्य मे दार्शनिक तत्व-चिन्तन का प्राचुर्य है। 'तुम और मै', 'जागो फिर एक बार' पर विशिष्टाद्वैत और अद्वैत-दर्शन का प्रभाव है। 'राम की शक्ति-पूजा' कविता मे योग की विविध प्रक्रियाओ का निरूपण है।

(६) अव्यक्त प्रिय के शील, शक्ति, गुण एव सौन्दर्य का चित्रण भी रहस्यवादी काव्य की एक विशेषता है। सन्त कवियो ने प्रिय के सौन्दर्य को सृष्टि के कण-कण मे परिव्याप्त देखा है। आधुनिक कवियो ने भी शाश्वत सौन्दर्य चित्रण किया है। इन कवियो ने प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य मे अव्यक्त प्रिय की छवि का ही दर्शन किया है। उस अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण करने मे जिज्ञासा, कुतूहल, प्रेम एव उत्फुल्लता के भावो की व्यजना की है। महादेवी

ने भावावेश मे अपने प्रिय को निर्मम, निष्ठुर, अकरुण आदि शब्दो से भी सबोधित किया है।

(७) सन्त काव्य मे भाषा का कोई स्थिर रूप नही है। ये कवि स्थान-स्थान का भ्रमण करते थे जिससे उनकी भाषा मे विभिन्न प्रदेशो के शब्द आ गए हैं। उनकी भाषा अधिकतर अपरिमार्जित तथा अव्यवस्थित है, पर उसमे सरलता, सरसता एव प्रासादिकता का गुण विद्यमान है। अपने मार्मिक भावो को व्यक्त करने के लिए उन्हे लोक-भाषा का सहज, सरल, प्रसन्न एव चलता रूप ग्रहण करना पडा है। उनके पास भावो की विभूति प्रचुर थी, पर उसको व्यक्त करने को भाषा-शिल्प नही था। आधुनिक युग के रहस्यवादी कवियो की भाषा स्वच्छ, सुन्दर, प्राजल एव सशक्त है। खडी बोली को काव्योपयुक्त बनाने का श्रेय इन्ही को है। इनकी भाषा मे मधुरता, प्राजलता, व्यजकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता का अपूर्व मिश्रण है। सन्त कवियो ने अपने भावो को लोक भाषा मे प्रकट किया है, इसके विपरीत आधुनिक युग के रहस्यवादी कवियो ने साहित्यिक भाषा को अपनाया है।

(८) रहस्यवादी कवियो की एक विशेष प्रवृत्ति है, प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग 'नैया विच नदिया डूबी जाय' आदि पद इसी शैली के व्यजक हैं। ये कवि रूपक, अन्योक्ति, विरोधाभास, उक्ति-वैचित्र्य का सहारा लेकर भाषा मे चमत्कार लाने का प्रयत्न करते थे। नये युग के छायावादी-रहस्यवादी काव्य मे भी ये सभी प्रवृत्तियाँ जीवित है। छायावादी चित्र भाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अतर्गत प्रस्तुत प्रसग के स्थान पर अप्रस्तुत वस्तु की योजना करके काव्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। महादेवी और प्रसाद के काव्य मे इसका बाहुल्य है।

(९) प्रगीत काव्य का महत्त्व उसके गेय होने मे है। भक्ति युग के गीति काव्य मे इस पर इतना ध्यान दिया गया है कि गेय पदो की रचना विविध राग-रागिनियो मे की गई है। इसका कारण यह है कि कवि सगीत का उच्च कोटि का ज्ञान रखते थे। सूर तो एक कुशल गायक थे। सन्त कवियो ने गेय पदो मे ही काव्य-रचना की है। आधुनिक प्रगीत काव्य मे भी सगीत की विशेषता प्रधान है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी के काव्य मे प्रगीत तत्त्व प्रचुर मात्रा मे मिलता है।

इस प्रकार छायावाद-रहस्यवाद युग के प्रगीत मुक्तक परपरानुगत गीत काव्य मे भले ही एकरूपता न हो, किन्तु सैद्धान्तिक विचारो की एकता है। अनुभूति के स्तरो मे भेद हो सकता है, अभिव्यक्ति मे भी अन्तर हो सकता है, किन्तु आदर्श एव मान्यताओ मे पूर्ण समानता है।

इसके अनन्तर प्रगतिवादी काव्य में यह नये रूप मे प्रकट होता है, जिसका परपरानुगत प्रगीत काव्य से कोई साम्य नही।

प्रगतिवादी गीति-काव्य के दो स्वर प्रधान हैं—काम-वासना का उद्दाम स्वर और विद्रोह-भावना का तीव्र स्वर।

प्रगतिवादी कवियो मे बच्चन, नरेन्द्र, अचल, गिरिजाकुमार, भगवतीचरण, भारती, अज्ञेय आदि कवियो के गीतो मे यौन-वर्जनाओ का स्वर प्रधान है। इनके गीतो मे स्थूल, मासल एव शरीरी सौन्दर्य के उन्मुक्त भोग की चपल लालसा है। ये काम-वासना पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नही चाहते। स्थूल सौन्दर्य के उपभोग की इच्छा इनके जीवन का श्रेय है। अचल की अपराजिता, बच्चन की मधु कलश, मधुशाला, नरेन्द्र की प्रभात फेरी की अनेक कविताओ मे यही उद्दाम वासना विविध रूपो मे प्रकट हुई है। अज्ञेय की 'सावन-मेघ', 'ओ पिया पानी बरसा,' 'हरी घास पर क्षण भर' और भारती के 'गुनाहो का गीत' मे यौन-वर्जनाओ का प्रकाशन और गोपाल सिंह नैपाली, हसकुमार, सुमन, आरसी प्रसाद सिंह के गीतो मे स्थूल प्रेम की सजग अभिव्यक्ति है। रमानाथ, क्षेम, गिरिधर, श्रीमती शान्ति, गिरिजाकुमार, शमशेर आदि की प्रगीत रचनाओ मे भी वासनामूलक प्रेम अभिव्यक्ति है।

वर्तमान प्रगीत काव्य का दूसरा प्रधान स्वर है, आर्थिक वैषम्य-जन्य विद्रोह की भावना का स्वर। इस प्रकार की रचनाओ मे नैराश्य, वेदना, क्रान्ति एव विरोध की तीव्र अभिव्यक्ति है। अचल, नरेन्द्र, सुमन, केसरी, दिनकर, उदयशकर भट्ट, भगवतीचरण आदि कवियो के गीतो मे विद्रोह के भावो का विविध रूपो मे प्रकाशन है।

सन् १९३८ के 'रूपाभ' के सपादकीय लेख मे पन्त जी ने युग की परिस्थितियो के परिवर्तन एव प्रगतिशील कविता का प्रतिपादन करते हुए लिखा था—'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासो मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना की मूल हिल गए हैं। श्रद्धा अवकाश मे पलने वाली सस्कृति का वातावरण आन्दोलित ही उठा है और काव्य की स्वप्न-जडित आत्म जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनो मे नही पल सकती। उसकी जडो को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है।'

युग की इन परिस्थितियो ने परवर्ती प्रगीत-काव्य की धारा को सर्वथा नूतन मोड दे दिया है। प्रगतिवादी गीतो मे सन्तो की साधना, भक्तो की भावना,

छायावादियो की कल्पना का स्थान यौन-वासना और मुक्त भोग की कामना ने ले लिया है। छायावादी कवियो की भावनाओ की अलौकिकता तथा अनुभवो की अतीन्द्रियता का स्थान प्रत्यक्ष भौतिकता एव यथार्थता ने ग्रहण कर लिया है। ये कवि अपने विरह-मिलन एव सुख-दुःख की अनुभूतियो को स्थूल इन्द्रियो के माध्यम से ही अभिव्यक्ति देते हैं। इससे इन कवियो की भाषा, अनुभूति, वेदना, क्षोभ, हर्ष, अवसाद सर्व साधारण के अति निकट आ गए है। छायावादी कवियो की अनुभूति एव अभिव्यक्ति से इनके गीतो मे स्पष्ट भिन्नता दिखाई पडती है। इनके गीतो मे इन्द्रिय-जन्य आकुलता, आक्रोश, क्षोभ, निराशा, उग्रता, क्रान्ति एव जीवन की उद्दाम वासनाओ का स्वर अधिक मुखर हो गया है।

छायावादी कवियो के प्रेम का लक्ष्य अज्ञात है, इनका सुज्ञात। ये कवि अपने प्रेम को दिव्य, अलौकिक एव आध्यात्मिक बताने का कभी दावा नही करते। छायावादी कवियो की प्रेम-भावना मे प्लेटोनिक और वैष्णवी भावनाओ का समिश्रण है। परन्तु इन कवियो के प्रेम का आधार स्थूल, शारीरिक एव मासल सौन्दर्य है, ये यौवन और वासना के कवि हैं। इस दृष्टि से प्रगतिशील कवि यथार्थ के निकट है।

छायावादी गीति-काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं, वैयक्तिकता की भावना, कल्पनाशीलता, आध्यात्मिकता, वेदना एव नैराश्य की अभिव्यक्ति। प्रगतिवादी काव्य मे प्रेम, सौन्दर्य, विक्षोभ, विरोध एव उत्क्रान्ति के भावो की विवृत्ति है। छायावादी कवियो मे अनुभूति की अपेक्षा कल्पना का वेग अधिक है, सन्त कवियो की सी सहजानुभूति एव उदात्तता नही। रगीन कल्पनाओ का सौदर्य है, अनुभूति की गहराई नही। प्रगतिशील कवियो के गीतो मे न अनुभूति है और न कल्पना। इनमें यौन-वासनाओ का नग्न प्रकाशन है।

काव्य का प्राणपद धर्म है, विशुद्ध काव्यानुभूति। वह अनुभूति जो भीतर से उत्पन्न हो, जिसमे सचाई हो, गहराई हो एव जो सहज ज्ञान पर आधारित हो। यह निश्छल अनुभूति ही काव्य का सर्वस्व है। शैली और शिल्प का स्थान गौण है। काव्य मे वस्तु का स्थान प्रधान है, शिल्प का गौण। श्रेष्ठ कविता केवल अनुभूति ही नहीं है, उसे स्वतः प्रेरित, मूल्यवान और उदात्त भी होना चाहिए।

इससे सिद्ध है कि सन्त काव्य आत्मानुभूतिपरक है। छायावादी काव्य मे कल्पना प्रधान है और प्रगतिवादी गीतो मे काम-वासना। प्रयोगवादी रचनाओ मे गीति तत्व का ह्रास होता जा रहा है। अतएव नई परपरा भी प्रयोगो के भँवर-जाल मे पडकर खो गई है।

षष्ठ अध्याय

काव्य-शैली का परम्परा

काव्य-शैली की परम्परा

अलंकार परंपरा—

काव्य के साथ साथ ही अलकारो की स्थति है। अतएव अलकार तथा काव्य चिर सहचर हैं। इनका अन्योन्य सबन्ध है। काव्य मे अलकारो का प्राधान्य इसी से सिद्ध है कि काव्य शास्त्र चिरकाल से अलकार शास्त्र के नाम से विख्यात है। प्राचीन अलकारिको ने काव्य मे अलकारो का महत्त्व निश्चित रूप से स्वीकार किया है। काव्य के आधार शब्द-अर्थ हैं। अलकारो से शब्द तथा अर्थ मे चमत्कार-चारुता उत्पन्न होती है। कोई शब्दालकारो को प्रधान मानते है तथा कोई अर्थालकारो को। अतएव काव्य मे शब्दालकार एव अर्थालकार दोनो का महत्त्व है। भामह ने काव्य के मूल मे अतिशयोक्ति की सत्ता को स्वीकार किया है। जो बचन लोक सीमा का अतिक्रमण कर जाय, उसे ही अतिशयोक्ति अलकार कहते है। यह अतिशयोक्ति ही वक्रोक्ति है। इसी के कारण अर्थ चमत्कृत हो उठता है। कवि को इसी मे यत्न करना चाहिये। कोई अलकार नही जो इससे रहित हो[१]। सूर्यास्त हो गया, चन्द्रमा चमक रहा है, पक्षिवृन्द निवास स्थान की ओर जा रहे है—यह भी क्या कोई काव्य है? इसे तो वार्ता कहते है[२]।

अलकारो से काव्य मे सौन्दर्य उत्पन्न होता है। प्रतिभावान् कवि सदैव अलकारो मे विविध प्रकार की उद्भावनाएँ करते रहते हैं। अत. इनका पूर्णरूप से कौन वर्णन कर सकता है[३]।

पूर्वाचार्यों ने अलकारो को काव्य का अनिवार्य गुण बतलाया है। यदि अलकार न हो तो काव्य की उपादेयता नष्ट हो जाती है। अतएव प्राचीन सस्कृत काव्य मे अलकारो का सौन्दर्य अपना विशेष स्थान रखता है; कवियो ने शब्दार्थ के सौन्दर्य के निर्माण के लिए बहुत परिश्रम किया है। उन्होने सौन्दर्य के लिए काव्य का निर्माण किया है तथा अलकारो मे ही वे काव्य के सौदर्य का

१—सैषा सर्वैव वक्रोक्ति रनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽअर्लंकारोऽनया विना॥ २।८५
भामह-काव्यालकार

२—देखिए, भामह-काव्यालकार, २।८७

३—दण्डी काव्यादर्श, २।१

अन्वेषण करते थे[१] । दोष रहित एव गुण सहित रचना को सभी ने काव्य स्वीकार किया है । गुण एव अलकार की युगवत् आवश्वयकता पर उद्भट ने सबका ध्यान आकर्षिक किया है । उनकी दृष्टि मे गुण एव अलकार समान रूप से ही चारुत्व के हेतु है । इनमे केवल विषय अथवा आश्रय का ही भेद है । गुण सघटना (रचना, रीति) के आश्रित है तो-अलकार शब्दार्थ के । उद्भटादि आचार्यों ने गुण और अलकार के साम्य का ही प्रतिपादन किया है । उन्होने इनमे केवल विषय भेद का ही अतर माना है[२] । लौकिक शौर्यादि गुणो और हारादि अलकारो मे निस्न्देह यह भेद है कि गुण समवाय सबन्ध से रहते है और अलकार सयोग सबन्ध से । पर काव्यगत ओजस आदि गुणो और अनुप्रासोपमादि अलकारो मे कोई भेद नही है । वे काव्य मे समवाय सम्बन्ध से ही रहते है । लौकिक गुणालकार के सदृश काव्यगत गुणालकार मे भी भेद समझना भेड चाल है[३] । परन्तु आचार्य मम्मट ने इसका प्रतिवाद किया है । वे काव्य मे गुणो की नियत स्थिति स्वीकार करते है तथा अलकारो की अनियत । उन्होने स्पष्ट कहा है कि गुणों की रस के साथ अचल स्थिति है तथा मनुष्य के शरीर मे प्रधान आत्मा के जैसे शूरता आदि गुण होते है वैसे ही काव्य मे प्रधान रस के उत्कर्ष को बढाने वाले धर्म गुण है । किन्तु अलकारो की यह स्थिति नही है[४] । अलकार रस के साक्षात् धर्म नही है । वे रस का उपकार करते है अवश्य, किन्तु शब्द तथा अर्थ के माध्यम द्वारा वे रस का सदैव उत्कर्ष नही बढाते है । कभी-कभी रस का बिलकुल उपकार नही करते है । अनुप्रास एव उपमादि अलकार गले के हार के सदृश शरीर की शोभा ही बढाते है, आत्मा की नही । जिस प्रकार हारादि आभूषणो के द्वारा कठ की शोभा बढने से आत्मा का सौन्दर्य भी उत्कर्ष को प्राप्त होता है, उसी प्रकार शब्द और अर्थ के द्वारा अलकारो से भी प्रधान अगी रस का उपकार होता है । यदि नही है तो वे काव्य मे केवल उक्ति-वैचित्र्य मात्र प्रदर्शित करते है । कभी-कभी अलकार विद्यमान रस का बिलकुल उपकार नही करते है[५] ।

इस प्रकार मम्मट पहले आचार्य है, जिन्होने काव्य मे अलकारो की

१—सौन्दर्यमलंकारः १। १। २, काव्यालकार सूत्र वृत्ति, वामन ।

२—अलंकार सर्वस्व, पृ० ६

३—काव्य प्रकाश (वामन), षष्ठ संस्करण, पृ० ४७०

४—वही, अष्टमोल्लास, सूत्र ८७ ।

५—वही, सूत्र ८८ ।

स्थिति को वास्तविक रूप मे निर्धारित किया है। इससे सिद्ध होता है। अलकार अगी रस का कही उपकार करते हैं और कही नही करते है। काव्य के लिये रस काम्य है। गुण रस के धर्म है, किन्तु अलकार नही। रस एव गुण के बिना काव्य का गौरव नष्ट हो जाता है, किन्तु स्फुट अलकारो के अभाव मे काव्यत्व की कोई हानि नही होती है।

हिन्दी साहित्य मे रीतिकाल के अन्तर्गत प्रचुर लक्षण ग्रथो का निर्माण हुआ है। आचार्य दडी के अभिमत को स्वीकार करते हुये हिन्दी के आचार्य केशव ने अलकारो के प्रति विशेष आग्रह प्रदर्शित किया है। यदि कविता मे छन्द रस, वर्ण आदि सब लक्षण हैं तो भी क्या हुआ? कविता की शोभा अलकारो से ही होती है[१]।

रीतिकाल मे लक्ष्य और लक्षण ग्रथ प्रचुर परिमाण मे लिखे गये। दोनो मे ही अलकारो की प्रधानता है। लक्षण ग्रथ मे अलकारो का निरूपण ही मुख्य विषय है तथा इस युग की कविता मे भी अलकारो का ही विशेष आग्रह है। रीतिकालीन कविता मे आलकारिक रूढियाँ एव परम्पराएँ प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अप्रस्तुती की योजना करने मे नयी-नयी उद्भावनाओ का प्रयास अत्यन्त क्षीण है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, बक्रोक्ति आदि शब्दालकारो के प्रयोग मे कवि इतने दत्तचित्त है कि इसके पीछे भावो की क्षत्ति की ओर ध्यान नही देते[२]।

अर्थालकारो के क्षेत्र मे भी इस युग के कवियो ने परम्परागत उपमानो से ही काम लिया है। नये अप्रस्तुत एव प्रतीको का अन्वेषण करने की ओर ध्यान बिलकुल नही गया है जिससे इस काल की सपूर्ण कविता मे सर्वत्र रूढि-बद्ध, घिसे-पिटे पुराने अप्रस्तुतो का ही बाहुल्य है। यह सामन्त युग था। अतएव कवियो ने एक ओर तो आश्रयदाता राजा-महाराजो का स्तुतिगान किया है और दूसरी ओर नायक-नायिकाओ की शोभा एव रूप का वर्णन। सादृश्यमूलक

१—जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त। कवि प्रिया ५।१

२—चालो सुनि चंदमुखी चित में सुचैन भरि,
तित वन बागन घनेरे अलि घूम रहे।
कहैं पद्माकर मयूर मंजु नाचत है
चाय सों चकोरनि चकोर चूमि चूमि रहे।

अलकारो मे उपमा सबसे प्रधान है। निदान इस युग की कविता मे सादृश्य तथा साधर्म्य को लेकर परम्परानुगत उपमानो का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है।

स्त्री के अग सौन्दर्य के वर्णन मे कुछ अप्रस्तुत रूढि-बद्ध हो गए हैं, जिनका विवरण दूसरे अध्याय मे दिया जा चुका है।

प्रधानतः अलकार दो श्रेणियो मे विभक्त है, शब्दालकार तथा अर्थालकार। यो तो शब्द एव अर्थ के आश्रित अलकारो की सख्या, उनके भेद तथा उपभेदो के साथ विशाल है, यहाँ केवल शब्द एव अर्थगत अलकारो की परम्परा का अध्ययन करना है। शब्दाश्रित अलकारो मे अनुप्रास, यमक एव श्लेष की एक सुदीर्घ परम्परा है, जिसका स्वरूप वीरगाथा काल के काव्य से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर चला आ रहा है। रीतिकालीन कविता मे इसका चरमोत्कर्ष हुआ है। वक्रोक्ति को काव्य का प्राण बताकर कुन्तक ने इसको स्थापना की थी। 'वैदग्ध्यभगी भणिति' ही वक्रोक्ति है जिससे शब्दार्थमय काव्य की शोभा होती है[1]। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वे कहते है कि प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। 'वैदग्ध्य अर्थात् चातुर्यपूर्ण काव्य निर्माण का कौशल, उसको एक विचित्र भगिमा के साथ कथन करना। इस प्रकार विचित्र प्रकार की वर्णन शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है[2]। 'कुन्तक ने वक्रोक्ति का व्यापार वर्ण, पद, शब्द, पर्याय, उपचार, विशेषण, वृत्ति, क्रिया, प्रत्यय, वाक्य, प्रकरण, प्रबन्ध आदि तक मे प्रतिपादित किया है। आगे चलकर आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि को उत्तम काव्य का श्रेय प्रदान किया है जिसकी काव्य मे एक स्थायी परम्परा दिखाई पडती है। वक्रोक्ति अलकार रूप मे तो जीवित है, किन्तु उस रूप मे उसकी कोई परम्परा नही है। आधुनिक कविता मे विशेषतः छायावादी काव्य मे एक अनूठी भगिमा अवश्य मिलती है, परन्तु उसका स्वरूप वक्रोक्ति से भिन्न है। इस प्रकार शब्दगत अलकारो मे अनुप्रास, यमक और श्लेष की एक समृद्ध परम्परा है, जो आधुनिक काव्य मे भी जीवित है। अर्थाश्रित अलकारो मे औपम्यगर्भ उपमादि की विशाल परम्परा है। अतिशयोक्ति भी इसी

कदम अनार आम अगर अशोक-पोक,
लतनि समेत लोने लोने लगि भूमि रहे।
फूलि रहे फलि रहे फबि रहे फैलि रहे,
झपि रहे झलि रहे झुकी रहे झूमि रहे ॥—पद्माकर

१—वक्रोक्ति काव्य जीवितम् १।१०

२—वही, पृ० ५१

के अन्तर्गत है। अन्योक्ति (अप्रस्तुत प्रशसा) अलकार की भी एक सुन्दर परम्परा है। यहाँ इन्ही का विवेचन किया जाता है—

आधुनिक काव्य मे शब्दालकारो का अभाव नही है। छायावाद के कवियो ने ध्वनि साम्य और नादात्मक सौन्दर्य की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अतएव उनके काव्य मे अनुप्रास अनायास ही आ गया है।

अनुप्रास—

(१) छिल छिलकर छाले फोडे, मल मल कर मृदुल चरण से,
घुल घुल कर बह रह जाते, आँसू करुणा के कण से।

—प्रसाद

(२) कण कण कर ककण, प्रिय
किण किडारव किंकिणी,
रणन रणन नूपुर, उर लाज
लौट रकिणी।

—निराला

(३) क–पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश, पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश

—पन्त

ख–शत शत फेनोच्छसित स्फीत फूत्कार भयकर

—पन्त

(४) मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर

—महादेवी

(५) आ रही होगी उडाती नील अचल
लोल लहरों का प्रशान्त प्रसार

—सुमन

यमक

(१) वह गायक नायक सिन्धु कही,
चुप हो छिप जाना चाहेगा।

—बच्चन

(२) स्पन्दन मे चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन मे आहत विश्व हँसा।

—महादेवी

(३) **लक्ष अलक्षित** चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर

—पन्त

(४) **रंगीले गीले** फूलो से—

—पन्त

(५) कुठित गति, लुठित सस्कृति को
अपना पथ निर्माण चाहिए।

—उदयशकर भट्ट

(६) मैं **तरुण** भानुसा **अरुण** भूमि पर
उतरा रुद्र विषाण लिये।

—दिनकर

(७) मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खीच बाहर बढ बढ

—सोहनलाल द्विवेदी

(८) छपी **सी पी सी** मृदु मुसकान।

—पन्त

श्लेश

(१) मेरा **अनुराग** फैलने दो
नभ के अभिनव कलरव मे

—प्रसाद

(२) **अश्विनि** के ऊपर सुभव्य भाव भरिणी
कृत्तिका सी, वामियो के ऊपर चढी हुई।

—मैथिलीशरण

(३) सैकत शैया पर दुग्ध धवल
तन्वंगी, गगा, ग्रीष्म विरल

—पन्त

(४) तुम **सुमन** नोचते सुनते
करते जानी अनजानी

—प्रसाद

(५) तू शैलराट् हु कार भरे
फट जाय **कुहा**, भागे **प्रमाद**

—दिनकर

यद्यपि आधुनिक युग के कवि अलकारो का आग्रह नही रखते है तथापि

उनके काव्य मे स्वाभाविकता से आये हुए अलकारो की छटा दर्शनीय है। छायावाद के कवि स्वर साम्य और ध्वनि-सौन्दर्य के बहुत प्रेमी हैं। अतएव उनके काव्य मे अनुप्रासादि शब्दालकारों का बाहुल्य है। पन्त और निराला मे नाद सौन्दर्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्षित होती है, क्योकि दोनो के काव्य मे सगीतात्मक स्वर ध्वनियो का योग है। अनुप्रास मे यह सौन्दर्य अनुगत है।

उपमादि अलकार अर्थ के आश्रित हैं। इनमे साम्य का आधार है। हिन्दी काव्य मे साम्य तीन प्रकार का पाया जाता है—

(१) सादृश्य—रूप या आकार का साम्य

(२) साधर्म्य—गुण, धर्म या क्रिया का साम्य

(३) शब्द साम्य—इसमे केवल नाम का साम्य होता है। दो भिन्न वस्तुओ का एक नाम होना। जैसे अर्क (सूर्य, तरु), कनक (सोना, धतूरा) आदि।

यदि ध्यान से देखा जाय तो पहले दोनो प्रकार के साम्य के मूल मे प्रभाव-साम्य अवश्य ही छिपा हुआ होगा। श्रेष्ठ कवियो का ध्यान सदैव उपमान मे निहित प्रभाव साम्य पर ही रहता है। वे प्रस्तुत के अनुकूल ऐसे अप्रस्तुत की योजना करते है कि जो दोनो मे समन्वित सौन्दर्य, दीप्ति, कान्ति, कोमलता, कठोरता, विरूपता, मलिनता, खिन्नता, प्रचडता, भीषणता आदि भावो को उद्‌बुद्ध करते है[1]। तीसरे शब्द-साम्य के अन्दर यह बात नही है। यह तो मात्र शब्दो की खिलवाड है। श्लेष के आधार पर द्विरर्थक शब्दो की योजना द्वारा शब्द क्रीडा का चमत्कार दिखाया जाता है। श्लिष्ट शब्दो के साम्य मे हृदय को स्पर्श करने की शक्ति नही होती है। होता है केवल कुतूहल, उक्ति, वैचित्र्य मात्र।

कवि के अप्रस्तुत विधान मे प्रतिभा ही कारण है। जो कवि जितना ही अधिक कल्पनाशील होगा, वह उतना ही सुन्दर अप्रस्तुत योजना कर सकता है। अब तक सिद्ध कवियो ने जितने अप्रस्तुतो का विधान कर दिया है, उनकी एक विशाल परम्परा बन चुकी है। यद्यपि नए-नए कवि अपनी प्रतिभा की शक्ति से नए-नए अप्रस्तुत ढूँढ़ लाते हैं तथापि हर एक कवि मे यह शक्ति नही है। साधारण और असाधारण सभी कवि परम्परागत अप्रस्तुतो का ही उपयोग करते है। असाधारण कवि नए-नए अप्रस्तुतो की भी उद्‌भावना करते रहते हैं।

१—रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी-साहित्य का इतिहास, (संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण) पृ० ८०८।

यहाँ आधुनिक हिन्दी कविता मे अप्रस्तुतो की परम्परा का अध्ययन किया जाता है।

प्रातः की सुन्दर बेला है। उर्मिला साकेत के राजप्रासाद मे अकेली खडी है। कवि उसका छवि-चित्र अकित करता है—

(१) अरुण पट पहने हुए आह्लाद मे।
कौन यह बाला खडी प्रासाद मे?
प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नही?
कान्ति की किरणे उजेला कर रही।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई
आप विधि के हाथ से ढाली गई।
कनक लतिका भी कमल सी कोमला,
धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला।

इसमे भ्रान्तिमान, रूपक, उपमा और अतिशयोक्ति आदि अलकारो की ससृष्टि है। मूर्तिमती उषा, कान्ति की किरणे, कनक लतिका मे रूपक है। उर्मिला के शरीर की कान्ति देखकर उषा का भ्रम हो जाता है अतः भ्रान्तिमान् है। कमल सी कोमला मे उपमा है। अतिम पंक्ति मे उपमान 'कला' द्वारा उपमेय 'बाला' निगीर्ण हो गया है। इसलिये रूपकातिशयोक्ति है। सभी अलंकार परस्पर निरपेक्ष रूप से आए हैं। उनका अस्तित्व पृथक्-पृथक् लक्षित होता है,, अतएव ससृष्टि है।

इस प्रसग मे उर्मिला बाला के लिए 'उषा' 'सुवर्ण की प्रतिमा', 'कनक लतिका' और 'कमल' आदि सभी अप्रस्तुत परम्परानुगत हैं।

इसी प्रसग मे आगे चलकर कवि कहता है—

(२) लोल कुडल मडला कृति गोल हैं,
घन-पटल से केश, कान्त कपोल हैं।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी
दमकती है दामिनी सी द्युति भरी।

यहाँ केश के लिए घन-पटल और दृष्टि के लिए दामिनी की द्युति कह कर प्राचीन परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है।

(३) देख ये कपोत-कठ
बाहु-वल्ली कर-सरोज
उन्नत उरोज पीन-क्षीण कटि

नितम्ब भार-चरण सुकुमार
गति मन्द मन्द,
छूट जाता है धैर्य ऋषि मुनियो का,
देव भोगियो की तो बात ही निराली है।

—अनामिका, निराला

इसमे स्त्री का वर्णन परम्परागत शैली के आधार पर है।

(४) वीर युवक जयसिंह का चित्राकन है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज के विषय मे कहते है—

पीन वृष-स्कन्ध, क्षीण सिंह-कटि, साहसी
दीर्घ हस्ति हस्त, मानो पशुता के गुण्य की
देव-साधना का यह पुण्य नर क्षेत्र था।

इस पद्य मे वृष स्कन्ध, सिंह के सदृश कटि की क्षीणता, हाथो की सूँड के सदृश दीर्घता आदि परम्पराभुक्त उपमान है।

(५) वैदेही वनवास के षोडष सर्ग के 'जय जय जयति लोक ललाम-नवल नीरद श्याम' शीर्षक पद मे राम की अलौकिक शोभा का वर्णन है। इसमे राम की देह के लिए नीरद, भू के लिए धनुष, नेत्रो के लिए कमल, कपोल के लिए गुलाब, वचन के लिए मधुर रस, दन्त पक्ति के लिए मुक्तावलि आदि उपमान प्रयुक्त हुए है। ये सब परम्परा-विहित है—

'वदन है अरविन्द सुन्दर इन्द्र सी है कान्ति।
मृदु हँसी है बरसती रहती सुधा वसु-याम॥

मुख के लिए अरविन्द, मुख-कान्ति के लिए चद्रिका, मृदुल हँसी के लिए सुधा के उपमान प्रसिद्ध है। इसी प्रसग मे कवि ने राम को विशाल वक्षस्थल, आजानु बाहु, कन्दर्प के समान कमनीय कह कर प्रसिद्ध उपमानो को ही ग्रहण किया है।

(६) 'रावण महाकाव्य' मे कैकसो की मनोहरता का वर्णन करते हुए कवि ने ब्रजभाषा के प्राजल छन्दो मे पुराने अप्रस्तुतो का उपयोग किया है। कैकसी तपस्या करने को उद्यत हो रही है, अतएव वह अपनी सुन्दरता को धरोहर के रूप मे रखने जा रही है।

चद को दीन्ही प्रभा मुख की, अरविन्दनि को तन-कोमलताई।
मजुलता तिमि नैनन की, मृग खजनि मीननि दीन्ह्यौ गहाई॥
मडलता त्यो कपोलनि की, तहँ आरसी ने कछुहू कछु पाई।
ग्रीव की रच मनोहरता, बडे भागिनि कंबु के हाथ मे आई॥

श्रीफल लीन्ह्यो उरोज प्रभा, करि कुभनि सौ घट फोरत ही रहे।
बाँहन मैं त्यो सनाल सरोज, निछावरि ह्वै तिन तोरत ही रहे॥
लक की क्षमता को छवि को, वर ततु मृनाल के छोरत ही रहे।
जघनि की कमनीयता को, कदली, गज-सुड निहोरत ही रहे॥

इन दोनो छन्दो मे प्रतीप अलकार विवक्षित है। यहाँ मुख के उपमान चन्द्र, तन की कोमलता के उपमान, अरविन्द, नेत्रो के उपमान मृग, खजन और मीन, कपोल के आरसी, ग्रीव के कबु, उरोज के श्रीफल, कटि के कुभ और घट, बाहुओ के सरोज-नाल, कटि के मृणाल ततु तथा जघाओ के कदली और गज सुड आदि प्रसिद्ध उपमानो की न्यूनता दिखाई गई है। प्रतीप मे प्रसिद्ध उपमान का निरादर भी किया जाता है। इसमे प्रतीप अलकार है तथा शरीर के अगो के सभी उपमान परम्परानुगत हैं।

श्रद्धा के सौन्दर्य का चित्र कितना लोकोत्तर है—

घिर रहे थे घुघराले बाल, अस अवलबित मुख के पास,
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।

—कामायनी

श्रद्धा के घुंघराले बालो का नील घन से सादृश्य दिखाया गया है तथा मुख का विधु से। इसमे उपमा से पुष्ट हेतूत्प्रेक्षा है। अप्रस्तुत विधान परम्परा-भुक्त है।

(६) यशोधरा को आगे करके चन्द्रमुखी सुन्दरियाँ स्वयबर भूमि को ले जा रही है—उनकी शोभा सती, शची, शारदा और लक्ष्मी के सदृश है। ये सभी अप्रस्तुत प्राचीन परिपाटी के अनुकूल है। यशोधरा की शोभा के वर्णन मे कवि ने परम्परानुगत अप्रस्तुतो का ही प्रयोग किया है।

निशेश को, तारक को, पयोद को
स्व वक्य की, लोचन की, कचौघ की,
चली हराती रुचि से यशोधरा,
सलज्ज, नम्रा, सुषभावगाहिनी।

—सिद्धार्थ

इस पद्य मे यथा सख्य और प्रतीप का सुन्दर विन्यास है। वक्त्र के लिए निशेश, लोचनो के लिए तारक, और कचौघ के लिए पयोद के उपमान रूढ हैं।

(८) प्रियातमा के भोले सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पत का कवि उसका छवि चित्र अकित करता है—

बाल रजनी सी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच मे

यहाँ अलक के लिए रजनी तथा बदन के लिए शशि के उपमान चिर प्रसिद्ध है।

(९) प्रयोगवादी काव्य धारा मे भी यत्रतत्र परम्परानुगत अलकार-पुष्प बहते हुए दिखाई पड जाते है। धर्मवीर भारती 'गुनाह के गीत' मे गाने लगता है :—

मृणालो सी मुलायम बाँह ने सीखी नही उलझन,
सुहागन लाज मे लिपटा शरद की धूप जैसा तन,

यहाँ प्रेयसी की बाहो के लिए मुलायम मृणाल तथा तन की कान्ति के लिए शरद का प्रकाश ऐसे ही उपमान हैं।

(१०) 'सरकाती पट,
खिसकाती लट
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजो के युग घट।'
—ग्राम्या

ग्राम युवती के इस चित्र मे पन्त जी ने उरोजो को 'युग घट' बतलाया है।

(११) 'तुम दुबली-पतली दीपक की लौ सी सुन्दर' 'रूप शिखा' कविता मे नरेन्द्र जी प्रेयसी के लिए कहते है—

नलकी मे झलका अगारक (मगल नक्षत्र)
बूँदो मे गुरु-उशना तारक (बृहस्पति, शुक्र)
शीतल शशि-ज्वाला की लपटो से
वसन, दमकती द्युति चम्पक

तुम रत्न-दीप की रूप-शिखा, तन स्वर्ण प्रभा, कुसुमित अम्बर। इसमे नायिका का छवि-चित्र उतारने के लिए जो उपमान प्रयुक्त हुए है, वे सब परपरानुगत है। नारी को 'रत्न-दीप', 'रूप-शिखा' एव 'स्वर्ण-प्रभा' कहना चिर प्रसिद्ध है।

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यो मे उपमानो की परपरा प्रचुरता से मिलती है। साकेत के प्रथम सर्ग का अयोध्या नगरी तथा उर्मिला का वर्णन, सिद्धार्थ मे राजा शुद्धोदन,[१] कुमार सिद्धार्थ[२] तथा शुद्धान्त की नारियो का वर्णन,[३] नल-नरेश मे राजा नल और भैमी के सौन्दर्य का वर्णन, दैत्य वश

१—सिद्धार्थ, पृ० ८।
२—वही, पृ० ३३,३४।
३—वही, अवरोध सर्ग।

मे लक्ष्मी, उषा, जल मे स्नान करती हुई स्त्रियो तथा बाल ब्रह्मचारी वामन की शोभा का वर्णन, कृष्णायन मे मधुपुरी को जाते हुए श्रीकृष्ण के शुभागमन का प्रकृति-चित्रण, कृष्ण के वियोग मे वृन्दावन का दृस्य-वर्णन एव राधा-माधव का शृ गार-वर्णन, अगराज मे अधिरथ-सुत,[१] महेन्द्राचल पर स्थित परशुराम[२] तथा हस्तिनापुर मे नर-नारियो के बीच श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन,[३] कामायनी मे श्रद्धा तथा इडा का सौन्दर्य-वर्णन कुणाल मे राजा अशोक तथा कुमार के सौन्दर्य का वर्णन,[४] कुरुक्षेत्र मे शर-शैया पर पड़े हुए भीष्म का चित्राकन[५] शत प्रतिशत परपरानुगत है। इन प्रसगो मे आए हुए उपमानो की परपरा वही है, जो काव्यो मे चिरकाल से चली आती है।

प्रसाद के आसू, पन्त की ग्रन्थि और भावी पत्नी के प्रति, निराला की 'बहू,' पचवटी-प्रसग तथा 'तुम और मै', महादेवी वर्मा की 'ओ विभावरी तथा बसन्त-रजनी की अप्रस्तुत-योजना मे पचास प्रतिशत पुराने उपमान नये रूप मे व्यवहृत हुए है।

शशि मुख पर घू घट डाले, अचल मे दीप छिपाए,
जीवन की गो-धुली मे, कौतूहल से तुम आए। —आसू

यहा प्रथम पक्ति मे मुख और नेत्रो के लिए क्रमश. 'शशि और दीप' को उपमान के रूप मे लाया गया है। ये दोनो उपमान रूढ है। दूसरी पक्ति मे जीवन को 'गो-धूली' तथा प्रिय को 'कौतूहल' कहा गया है। ये दोनो सूक्ष्म उपमान है, जिन पर नये युग का सस्कार है।

प्रिये प्राणो की प्राण।
न जाने किस गृह मे अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान।
नवल-कलिकाओ की सी बाण,
बाल-रति-सी अनुपम, असमान—
न जाने, कौन, कहा अनजान,
प्रिये प्राणो की प्राण। —भावी पत्नी के प्रति

१—अगराज, २।१५-१८।
२—वही, ४।१०-१८।
३—वही, ११।३६-४१।
४—कुणाल, तारुण्य और अशोक सर्ग।
५—कुरुक्षेत्र, प्रथम सस्करण, पृ० ३८।

यहा कवि ने अपनी प्रियतमा को 'प्राणो की प्राण 'स्वर्गीय विधान, कलिका तथा बाल-रति के उपमानो से विभूषित किया है। ये सभी उपमान प्रसिद्ध है। केवल रग नया है।

तुम चित्रकार घन-पटल श्याम, मैं तडितूलिका-रचना।
तुम रण-ताडव उन्माद नृत्य, मै युवति मधुर-नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद-वेद ओकार-सार, मैं कवि-शृ गार-शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हू प्राप्ति।
तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द शुभ्र, तो मै हू निर्मल व्याप्ति॥

—निराला

इसमे भक्त और भगवान् के सबध का काव्यात्मक वर्णन है। परपरा मे भक्तो की वाणी मे इस प्रकार के सबधो का वर्णन अनेक प्रकार से हुआ है। तुलसी की विनय-पत्रिका से यहा एक पद दिया जाता है।

तू दयाल, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुज-हारी॥

अन्तर केवल यही है कि निराला की अप्रस्तुत-योजना मे नया रग है।

स्त्री के उपमानो मे कुछ नया विकास भी हुआ है। इस दिशा मे छाया वादी काव्य-प्रवृत्ति ने रीतिकालीन परपरा को आगे विकसित किया है। कुणाल मे रानी तिष्यरक्षिता के सौन्दर्य का चित्र इस प्रकार खीचा गया है—

कुन्दन सी, कचन, चपक सी, विद्युत की नूतन रेखा-सी,
श्रावण-घन के नीलाचल के तट के विशुभ्र अवलेखा-सी।

यहा तक तो उपमानो की योजना परपराश्रित है, किन्तु इससे आगे कुछ नये ढग के उपमानो का विधान है—

रागारुण-रजित ऊषा सी, मृदु मधुर मिलन की सन्ध्या सी,
माधवी, मालती, शेफाली, बेला सी, रजनी गधा-सी।

उपमान तो ये सभी प्रसिद्ध है, किन्तु इनको नारी-सौन्दर्य के लिए इस प्रकार लाया गया है कि नया रग आ गया है।

पन्त जी की अप्रस्तुत-योजना भी अत्यन्त मधुर है—

तारिका-सी तुम दिव्याकार, चन्द्रिका की झकार।
प्रेम-पखो मे उड अनिवार, **अप्सरी-सी** लघु-भार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार, **प्रणय-हंसिनि** सुकुमार?
हृदय-सर मे करने अभिसार, **रजत-रनि,** स्वर्ण-विहार।

—गुजन

रेखाकित पदो की अप्रस्तुत-योजना मे अनूठी सुकुमारता है, जिसे उपमानो के क्षेत्र मे नूतन विकास कहा जा सकता है। इन उपमानो से वस्तु के आन्तरिक सोदर्य का परिचय मिलता है। कवि ने नारी का जो छवि-चित्र अकित किया है, उसमे सूक्ष्म सौन्दर्य का विधान है। वस्तु के वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा पन्त जी, अन्तः सौन्दर्य को अधिक महत्त्व देते है। गु जन की रूप तारा तुम पूर्ण प्रकाम, 'अप्सरा' 'भावी पत्नी के प्रति 'तथा पल्लव की नारी-सौन्दर्य-विषयक प्रारभिक कविताओ मे इसी प्रकार की सुकुमार कल्पनाओ की सृष्टि है।

अन्योक्ति

(१) इस सोते ससार बीच, जगकर सजकर रजनी वाले।
कहाँ बेचने ले जाती हो, ये गजरे तारो वाले ?

—रामकुमार

(२) मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर

—महादेवी

(३) सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि।
मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरो से
करा दो ना कुछ-कुछ मधुपान।

—पन्त

प्रथम ख ड मे अप्रस्तुत 'रजनी बाला' को सबोधित कर कवि ने प्रस्तुत अव्यक्त सत्ता के निरूपम सौन्दर्य की ओर सकेत किया है। दूसरे मे अप्रस्तुत दोपक के द्वारा प्रस्तुत हृदय की साधना की ओर इगित किया गया है। तीसरे मे अप्रस्तुत मधुप कुमारी तथा उसके मधुर गानो से प्रस्तुत प्रकृति के सौन्दर्य एव माधुर्य का बोध अभिप्रेत है।

निराला की 'ठू ठ' 'उद्बोधन' 'खडहर के प्रति', रामकुमार वर्मा की 'कलियो यह अवगुठन खोलो', 'अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर', प्रसाद की 'लहर', पन्त की 'खद्योत', 'निर्झरी', 'लोगी मोल', 'मधुकरी', बच्चन की 'मधुशाला', एक भारतीय आत्मा की 'कैदी और कोकिला' 'एक फूल की चाह', कलिका से, अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' आदि कविताएँ इसी श्रेणी मे आती है। अलकार वही है, किन्तु वस्तु एव भाव मे नया रग है।

रूपकातिशयोक्ति—

अप्रस्तुत मे प्रस्तुत के पूर्ण रूप से निगीर्ण हो जाने पर यह अलकार होता है, अर्थात् उपमान के द्वारा ही उपमेय का बोध कराया जाता है।

(१) बाधा था विधु को किसने इन काली जंजीरो से,
मणि वाले फणियो का मुख क्यो भरा हुआ हीरो से ?

इसमे बिधु, काली जजीर, फणिधर और हीरो के उपमेय क्रमशः मुख, केश, चोटी (वेणी) तथा अमूल्य मणियो से हैं। यहाँ अप्रस्तुत मे प्रस्तुत का पूर्ण अध्यवसान हो गया है। अतएव रूपकातिशयोक्ति है।

(२) कमल पर जो चारु खजन थे प्रथम
पख फडकाना नही थे जानते
चपल चोखी चोट कर अब पख की
ये विकल करने लगे है भ्रमर को।

—ग्रन्थि, पन्त

इसमे कमल, खजन, चोट, भ्रमर क्रमशः मुख, नेत्र, कटाक्ष-पात एव प्रेमी के उपमान है। यहाँ रूपकातिशयोक्ति है तथा अप्रस्तुत योजना भी परपरानुगत है।

समासोक्ति—

प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति होने पर यह अलकार होता है।

(१) विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अचल कोमल तनु तरुण-जुही की कली
दृग बन्द किए, शिथिल-पत्राक मे,
वासन्ती निशा थी।

—निराला

इसमे प्रस्तुत 'जुही की कली' के द्वारा सुहागिन स्त्री का भाव लक्षित होता है।

(२) उठ-उठ री लघु लोल लहर
करुणा की नव अगराई सी,
मलयानिल की परछाई सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर।

—प्रसाद

यहाँ लहर से किसी नवोढा नायिका की ओर सकेत है।

(३) नवोढा-बाल-लहर
अचानक उपकूलो के
प्रसूनो के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर ।

—पन्त

यहाँ प्रस्तुत लहर से अप्रस्तुत नायिका के प्रिय से मिलने का भाव व्यजित होता है ।

विरोधाभास

इसमे जाति, गुण, क्रिया आदि मे विरोध भासित होता है, वस्तुतः विरोध नही होता है ।

(१) जलते नभ मे दीप असख्यक,
स्नेह-हीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत ले घिरता है बादल ।
बिहस बिहस मेरे दीपक जल ।

—महादेवी

यहा स्नेह-हीन (तेल रहित) दीपक जलना, जलमय सागर के हृदय का जलना आदि मे विरोध भासित होता है, किन्तु वस्तुतः विरोध नही है क्योकि तपः साधना का भाव अभिप्रेत है । अतएव विरोध का परिहार हो जाता है ।

(२) तुम मास हीन, तुम रक्त हीन,
तुम अस्थि शेष ! तुम अस्थि हीन
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन ।

—पन्त

यहाँ 'अस्थि शेष' 'अस्थि-हीन' तथा 'चिर पुराण' और 'चिर नवीन' मे विरोधा भास है । पूज्य बापू की ओर निर्देश है ।

(३) शीतल ज्वाला जलती है, ईधन होता दृग जल का

—प्रसाद

'शीतल ज्वाला' और 'दृग जल के ईधन' मे गुण का गुण से विरोध है, किन्तु प्रेम के पक्ष मे इस विरोध का निराकरण हो जाता है । शीतल ज्वाला से विरह वेदना प्रकट होती है जो दु.खद और सुखद होती है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि आधुनिक काव्य मे अर्थालकारो की परपरा जीवित है। प्राचीन परिपाटी का अप्रस्तुत विधान तो है ही, कवियो ने कुछ नए अप्रस्तुतो की भी उद्भावनाए की हैं।

बीती विभावरी जागरी।
अम्बर पनघट मे डुबो रही—
तारा घट ऊषा—नागरी।
खग कुल कुल कुल सा बोल रहा
किसलय का अचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस-गागरी।
अधरो मे राग अमन्द पिये—
अलको मे मलयज बन्द किये,
तू अबतक सोई है आलो
आखो मे भरे विहाग री।

—प्रसाद

इसमे ऊषा का वर्णन प्रस्तुत है तथा सुप्त नायिका का उद्बोधन अप्रस्तुत है। अतएव समासोक्ति है। साथ ही कवि ने अम्बर को पनघट, तारो को घट, ऊषा को नागरी, मुकुल को गागर, कहकर उपमेय और उपमान मे अभेदारोप किया है। अतएव साग रूपक है। बीती विभावरी, मधु मुकुल मे अनुप्राम है। खग-कुल कुल कुल मे यमक है। अधरो मे अमन्द राग (मद्य) पीना, अबतक सोते रहने मे हेतु है। अतः काव्य लिग है क्योकि इसमे हेतु प्रदर्शित किया जाता है। किन्तु अगी रूपक अलकार है। अन्य अलकार अग रूप से है। अतएव इस गीत मे अनुप्रास, यमक, समासोक्ति, काव्यलिग मुख्य रूपक अलकार का उपकार करते है, जिनसे इनका सकर है।

परपरानुगत अन्तर्कथाओ को लेकर भी अप्रस्तुत-योजना की गई है—

(१) पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन-पग मे
लपकता है तमिस्र तत्काल
धुए का विश्व विशाल!

—पन्त

इस पद्य मे वामन द्वारा विशाल भूलोक को नाप कर बलि-बध की कथा के आधार पर अप्रस्तुत-योजना की गई है।

(२) दमयन्ती सी कुमुद कला के
रजत-करो मे फिर अभिराम
स्वर्ण-हस से हम मृदु ध्वनि कर
कहते प्रिय सदेश ललाम ।

—पन्त

इसमे दमयन्ती के द्वारा पकडने पर हस के नल विषयक आख्यान की ओर सकेत है ।

(३) वही कविता
विष्णु-पद से जो निकल
और ब्रह्मा के कमडल से उबल—

—धर्मवीर

इसमे गगा की उत्पत्ति की पौराणिक कथा अप्रस्तुत के रूप मे गृहीत है ।

विवेचन

आलोच्य कालीन कविता मे अलकारो की परपरा अधिकतर प्रबध काव्यो मे ही पाई जाती है । शब्दालकारो मे अनुप्रास, यमक, श्लेष के उदाहरण ही अधिकतर मिलते है । अर्थालकारो मे सादृश्य मूलक, विरोध मूलक, न्याय मूलक सभी प्रकार के अलकारो का प्रयोग हुआ है । साकेत, वैदेही बनवास, दैत्य वश, रावण महाकाव्य, नल-नरेश, सिद्धार्थ, अगराज और कृष्णायन मे अलकारो की परपरा का शत-प्रतिशत अश मे निर्वाह हुआ है । साम्यमूलक अलकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तर न्यास, स्मरण, सन्देह, भ्रान्तिमान, प्रतीप, व्यतिरेक आदि अलकारो का प्रयोग हुआ है । विरोध मूलक अलकारो मे विषम, विरोधाभास का प्रयोग अधिक मिलता है । इनके अतिरिक्त अन्योक्ति, समासोक्ति, सहोक्ति, पर्यायोक्त, यथासख्य, मीलित आदि अलकार भी प्रयुक्त हुए हैं । प्राचीन अन्तर्कथाओ के आधार पर भी रूपक-सृष्टि की गई है ।

छायावादी मुक्तक काव्यो मे अलकारो की परपरा का समुचित विकास हुआ है । इन कवियो मे पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवी ने सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया है, वाह्य सौन्दर्य की ओर कम । पन्त और प्रसाद की रचनाओ मे अप्रस्तुत-योजना अत्यत सुकुमार एव प्रभावाभिव्यजक है । इन्होने अधिकतर प्राकृतिक क्षेत्र से उपमानो का चयन किया है । इसी से इनका कल्पना-विधान अत्यत रुचिकर तथा मधुर है ।

सब मिलाकर छायावादी कविता मे विरोधाभास, अन्योक्ति, रूपका-

तिशयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, भ्रान्तिमान, सन्देह स्मरण, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। लक्षणा के आश्रित विरोधमूलक अलकारो का प्रयोग इन कवियो को अधिक प्रिय है। इनके काव्य मे परपरागत उपमानो को भी नये रूप-रग मे प्रयुक्त किया गया है। इसमे सन्देह नही कि रीतिकालीन अलकार-परपरा को रूढि जगत से निकाल कर इन कवियो ने ही मुक्त किया है तथा उसमे अभिनव चमत्कार-चारुता उत्पन्न की है। साम्यमूलक अलकारो मे सौन्दर्य के नाना पक्षो का उद्‌घाटन करने मे इन कवियो ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। पन्त के पल्लव और गुजन, प्रसाद के आँसू और कामायनी, निराला की परिमल और अनामिका तथा महादेवी की नीरजा की कविताओ मे अनूठा अलकार-विधान दृष्टिगोचर होता है। ये कवि साधर्म्म और सादृश्य पर उतना ध्यान नही देते, जितना प्रभाव-साम्य पर। इसी से इनके काव्य मे अप्रस्तुत-विधान अत्यत प्रभावोत्पादक है।

प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य-रचनाओ मे अलकार-परम्परा निर्जीव-सी दिखाई पडती है। यद्यपि नारी-सौन्दर्य का अकन इनकी कविताओ मे बहुत हुआ है, तथापि वह परपरा से बहिर्भूत है। अतएव उसका अध्ययन प्रयोगो मे किया जायगा।

चित्र काव्य

प्राचीन काल के अनेक अलकार आधुनिक कविता मे लुप्त हो गए है। सस्कृत-साहित्य मे सर्वतोभद्र, गो-मूत्रिका-बन्ध, तुरगबन्ध, खद्‌बन्ध, कमलबन्ध, चक्रबन्ध, आदि चित्रकाव्य के प्रयोगो का बाहुल्य मिलता है। भारवि, माघ, श्रीहर्ष जैसे महाकवियो ने भी इस ओर रुचि प्रदर्शित की है तथा अपने अगाध पाडित्य का परिचय दिया है। भारवि ने किरातार्जुनीय के पचदश सर्ग मे विभिन्न शैलियो के चित्रकाव्य के उदाहरण प्रस्तुत किये है। उन्होने एक ही अक्षर वाला भी एक श्लोक लिखा है, जिसमे 'न' के अतिरिक्त दूसरा वर्ण ही नही है।[१]

हिन्दी-काव्य-परपरा मे भी चित्रकाव्य के प्रयोग मिलते है। सिद्ध, नाथ एव सन्त कवियो ने क्लिष्ट, अप्रचलित एव कूट पदो के प्रयोग बहुत किये है। रीतिकाल के कवियो मे केशव चित्रकाव्य की ओर भी रुचि रखते थे। उन्होने प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, समस्या पूर्ति पर भी रचनाएँ प्रस्तुत की है। उन्होने एकाक्षर, दो अक्षर, तीन अक्षर के छन्द, मात्रा-रहित वर्णों के छन्द,

---

१—किरातार्जुनीय, १५।१४।

निरोष्ठ वर्णों के छन्द तथा गूढ़ोत्तर छन्दो के भी प्रयोग किये है। रीतिकाल के कवि काव्य सबधी चमत्कारो के प्रेमी थे। भारतेन्दु जी ने पद-गुप्त, मात्रा-च्युतक, अक्षर-च्युतक, विन्दुमतो, प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, प्रश्नोत्तर एव समस्या पूर्ति के चमत्कार अनेक कविताओ मे प्रदर्शित किये है।[१] उनके समय तक यह परपरा जीवित दिखाई पड़ती है। वस्तुतः काव्य के चमत्कार-पूर्ण प्रयोग सामन्त युग मे अधिक प्रचलित थे। दरबारी कविता मे इनको अत्यधिक आश्रय मिला था। राष्ट्रीयता के युग मे आते आते इनका प्रचार एक साथ घट जाता है। निदान आलोच्यकाल मे चित्रकाव्य की परपरा का अन्त हो गया है। आधुनिक युग मे कविता का मानदड बदल गया है। अब वह बौद्धिक विकास की वस्तु न होकर जीवन-सापेक्ष हो गई है। चित्रकाव्य मे बौद्धिक विलास ही अधिक है। अतः वर्तमान काल मे काव्य के प्रतिमान बदल जाने से उसका अन्त होना स्वाभाविक हो है।

प्रतीक-परपरा

आलोच्यकाल से पूर्व हिन्दी काव्य मे प्रतीको की एक स्वतत्र परपरा का विकास हुआ है। कवियो की वाणी जब भावो को समग्र रूप से व्यक्त करने मे असमर्थ हो जाती है, तब वह प्रतीको का आश्रय लेती है। इसो से भिन्न-भिन्न प्रकार के भावो को प्रकट करने के लिए असख्यक प्रतीकों का सृजन हुआ है। इनमे से बहुत से प्रतीक साधारण व्यवहार मे प्रचलित हो जाने से अपना महत्त्व खो बैठते है और कुछ प्रतीको का प्रभाव कही अधिक बढ जाता है 'फूल' और 'काटा' साधारण व्यवहार के प्रतीक हैं, जिनसे सुख और दुःख के भावो की अभिव्यक्ति होती है, किन्तु नित्य-प्रति के प्रयोग से इनका प्रतीकत्त्व नष्ट हो गया है। भिन्न-भिन्न युगो के कवियो ने भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतीको का सृजन किया है। हिन्दी साहित्य मे साकेतिक प्रतीको का प्रयोग सबसे पहले सिद्ध और नाथ योगियो ने किया। कबीर ने इन परपरागत प्रतीको को अविकल रूप मे अपनाया है। नाथ और सिद्ध कवियो ने अधिकतर अपने प्रतीको को हठयोग प्रदीपिका आदि तत्र शास्त्र के ग्रथो से ग्रहण किया है। कबीर ज्ञानी सन्त थे। अतएव अपने आध्यात्मिक अनुभवो को वे प्रतीको के माध्यम से प्रकट किया करते थे—शून्य सहज, निरजन, लौ, सुरति, निरति, नाद, विन्दु आदि ऐसे ही प्रतीक है, जिनसे आध्यात्मिक भावो की अभिव्यक्ति होती है[२]। कबीर के

१—देखिये, भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृ० ७४, ७४३, ८७६ और ८१०।

२—देखिए, हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर। पृ० ७१।

अनेक प्रतीक दाम्पत्य एव वात्सल्य के भावो को प्रकट करते हैं।

हरि मोरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बडे मे छुटक लहुरिया।
हरि जननी मैं बालक तेरा
काहे न अवगुन बकसहु मेरा॥

इसमे पिय, बहुरिया दाम्पत्य जीवन से और जननी, बालक वात्सल्य जीवन से सबध रखते है। कबीर के साहित्य मे साकेतिक, पारिभाषिक, सख्यामूलक, रूपकात्मक और उलटबासियो पर आधारित बहुत से प्रतीक मिलते है।

सूफी कवियो मे जायसी की प्रतीक-योजना अत्यत हृदयग्राही है। जायसी से सपूर्ण पद्मावत को प्रतीकात्मक पद्धति पर रचा है। जायसी रहस्यवादी कवि थे, अतएव उनके प्रतीको से आध्यात्मिक भावो की व्यजना होती है। ये प्रतीक दो भागो मे विभाजित किए जा सकते है—आध्यात्मिक और साहित्यिक। आध्यात्मिक प्रतीको मे रहस्यात्मक सकेत पाए जाते है तथा उनके काव्यात्मक प्रतीक परपरागत और रूढ है।

नवो खड नव पौरी, औ तह वज्र किवार।
चारि बसेरे सो चढै, सत सो उतरे पार।

ये चार बसेरे प्रतीकात्मक है। आचार्य रामचन्द शुक्ल के अनुसार—

(१) शरीअत — कर्मकाड का प्रतीक है।
(२) तरीकत — उपासना काड का प्रतीक है।
(३) मारिफत — ज्ञानकाड का प्रतीक है।
(४) हकीकत — सिद्धावस्था का प्रतीक है।

जायसी के साहित्यिक प्रतीक चिर प्रचलित हैं, किन्तु उनमे प्रयोगात्मक दीप्ति आ गई है—'भवर छपान हस परगटे'। यहाँ भँवर श्यामता का तथा हस श्वेतता का प्रतीक है। नागमती की वृद्धावस्था की ओर सकेत है। चन्द्रबली पाडेय ने सूफी कवियो के प्रतीको के विषय मे लिखा है 'प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा है। उनकी अनुमति के बिना सूफियो के क्षेत्र मे पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीको के महत्त्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज है[१]।'

कृष्ण भक्त कवियो मे सूर ने भी आध्यात्मिक एव काव्यात्मक दोनो प्रकार के प्रतीको का प्रयोग किया है। उनका भ्रमर गीत और मुरली-माधुरी

१—देखिए, तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० ६७।

प्रतीकात्मक हैं। भ्रमरगीत सगुण-निर्गुण की विवेचना से युक्त प्रतीकात्मक वर्णन है। मुरली माया का प्रतीक है।

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन, बिफल वृक्षहुँ फले॥

(१) कृष्ण — परमात्मा के प्रतीक हैं।
(२) राधा — जीवात्मा या प्रकृति है।
(३) गोपिया — परब्रह्म की शक्ति।
(४) मुरली — माया।
(५) रास — आनन्द क्रीडा।

राम भक्त कवितो मे तुलसीदास ने भी अपने काव्य मे प्रतीको का व्यवहार किया है। इनके प्रतीक आदर्शवादी है, क्योकि ये मर्यादा पुरुषोत्तम राम के उपासक थे। सगुणवादी भक्त कवियो का वर्ण्य विषय ज्ञान एव सुपरिचित है, अतः उसके प्रतीक भी सुपरिचित है। इन्होने सस्कृत साहित्य मे प्रचलित परपरागत प्रतीको को ही अधिकतर अपनाया है। रामचरितमानस के खल-बन्दना प्रकरण मे अनेक प्रतीक व्यवहृत हुए है।

मठ सुधरहि सत सगति पाई। **पारस** परस **कुधातु** सुहाई॥
× × ×
हरिहर जस राकेस **राहु** से। पर अकाज भट **सहस बाहु** से॥
× × ×
उपजहिं एक सग जग माही। **जलज जोक** जिमि गुन बिलगाही॥
× × ×
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरिताधू॥
× × ×
जड चेतन गुन दोष मय, विस्व कीन्ह करतार।
सत **हंस** गुन सहहिं पय, पहिहरि **बारि** बिकार॥

ऊपर के मोटे अक्षर वाले पदो मे जो प्रतीकात्मक उपमान व्यवहृत हुए हैं, उनका प्रतीकत्व कठिनाई से ही समझ मे आता है, क्योकि साधारण जीवन मे घुल-मिल जाने से इनकी विशिष्टता समाप्त हो गई है—

पारस, कुधातु — श्रेष्ठता—निकृष्टता के प्रतीक है।
राहु, सहस्रबाहु — दुष्टता और अत्याचार के प्रतीक हैं।
जलज और जोक — स्वच्छता और शोषण के प्रतीक हैं।
सुधा, सुधाकर, सुरसरि और साधू — अमरता, शीतलता, पवित्रता और श्रेष्ठता के प्रतीक है।

गरल, अनल, कलिमल सरि और व्याधू — मृत्यु, दाहकता, पाप और दुष्टता के प्रतीक है।

हस, पय और वारि—विवेक, गुण और दोष के प्रतीक है।

रीति युग अलकार-प्रधान युग है। अतएव इस युग के आलकारिक प्रतीको मे क्रमागत परपरा का ही निर्वाह पाया जाता है। अन्योक्ति के आश्रित बिहारी की प्रतीक योजना देखिए—

इही आस अटक्यो रहै, **अलि गुलाब** के मूल।
ह्वै है बहुरि **बसंत ऋतु**, इन डारन के **फूल** ॥

इसमे अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की व्यजना की गई है—

१—भोरा — नवयुवक का प्रतीक है।
२—गुलाब — यौवन, समृद्धि, उन्नति, राग, रग, रति, गध आदि का प्रतीक है।
३—बसन्त — सुदिन, वैभव का समय।
४—फूल — रूप, रग, सपत्ति।

सक्षेप मे आलोच्यकाल से पूर्व प्रतीको की एक समृद्ध परपरा रही है। आधुनिक युग मे यद्यपि जीवन के मान बदल गये है, जिससे प्रतीक-पद्धति मे भी नया परिवर्तन आया है, तो भी पुराने प्रतीक भी यत्रतत्र मिल जाते है।

प्रतीकों की परंपरा—

नीचे छायावादी-रहस्यवादी तथा प्रगतिवादी-प्रयोगवादी सभी प्रकार के काव्यो से परपरागत प्रतीको के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है—

(१) प्यास से मर रहे है दीन **चातक**
क्यो बना चाहते प्राण-घातक ?
श्याम-घन ! हो कहा ?
पी कहा ? पी कहा ?

—झरना, प्रसाद

(२) **दो पक्षी** है, सहज सखा सयुक्त निरन्तर,
दोनो ही पैठे अनादि से उसी वृक्ष पर।
एक ले रहा **पिप्पल फल** का स्वाद प्रतिक्षण,
बिना अशन, दूसरा देखता अन्तर्लोचन।

—द्वा सुपर्णा, पन्त

(३) कब से मैं पथ देख रही, प्रिय,
उर न तुम्हारे रेख रही प्रिय।

तोड दिए जब सब **अवगुंठ**,
रहा एक केवल सुख लु ठन—

—गीतिका, निराला

(४) पथ की रज मे है अकित, तेरे पद-चिह्न अपरिचित,
मैं क्यो न इसे **अंजन कर**, आँखो मे आज बसाऊ ।

—महादेवी

(५) वह बोल उठी **कोकिल** अधीर ।
मेरे बसन्त के भीतर भी
दिख पडी **शिशिर** की क्या लकीर ?

—रामकुमार

(६) निकल रही है उर से आह,
ताक रहे सब तेरी राह,
चातक खडा चोच खोले है, सपुट खोले सीप खडी ।
मै अपना **घट** लिए खडा हू, अपनी अपनी हमे पडी ।

—मैथिलीशरण

(७) शमित करो विष की प्रच डता, शमित करो यह **दाह**,
जन्मो जन्मो **अमृत** । देवता, देख रहे है राह ।

—अमृत-मन्थन, दिनकर

(८) शक्ति लग आहत पडा है आज भारत
रो रहा है **राम** सत्यो का प्रदर्शक ।
भूल मत **सजीवनी** है आज जनता,
रावणों का ध्वस ही है आज प्रेरक ।

—सेतुबन्ध, रागेयराघव

उपर्युक्त उदाहरणो मे आए हुए प्रतीको को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—प्रकृति मूलक प्रतीक तथा यथार्थता मूलक प्रतीक ।

प्रकृतिमूलक प्रतीक—

पहले खड मे 'चातक' और 'घन' के प्रतीको मे प्रेमी और प्रेमास्पदका भाव-सबध व्यजित हुआ है । दूसरे मे दो पक्षी है, जीव और ईश्वर तथा पीपल का फल सासारिक भोग का प्रतीक है । तीसरे मे दाम्पत्य जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण है । इसमे जीवात्मा की परमात्मा के लिए पुकार है । चौथे मे प्रेमी और प्रय का रागात्मक सबध व्यजित हुआ है । प्रिय के चरणो की धूल को आँखो मे

आजने से उसे असीम सुख का अनुभव होता है। 'पथ की रज' माधुर्य का प्रतीक है। यहा अलौकिक प्रिय की ओर लक्ष्य है। पाचवे मे 'कोकिल' प्रिय की स्मृति का प्रतीक है, बसन्त जीवन का और शिशिर विरह का। इन प्रतीको मे रहस्ययम मिलन की व्यजना है। छठे गीत मे चातक, सीप एव घट उपलक्षण है, जिनसे प्रेमी और प्रिय के सबध की मधुर व्यजना हो रही है।

यथार्थतामूलक प्रतीक—

सातवे खड मे विष और अमृत दु:ख और सुख के प्रतीक हैं। अथवा विष है, सन्तप्त जीवन और अमृत है, अमर जीवन। देवता यहाँ जन-शक्ति का प्रतीक है। आठवे मे पीडित भारत से आहत लक्ष्मण की ओर सकेत है, राम सत्य के प्रतीक हैं और रावण प्रतीक है, शोषक वर्ग का।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य के प्रतीक प्राकृतिक जगत से सगृहीत है और प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य के यथार्थ जीवन से। पहले वर्ग के प्रतीको से सुख-दु.ख, विरह-मिलन, हर्ष-विषाद के भावो की व्यजना होती है तथा दूसरे वर्ग के प्रतीको से त्रास, उत्पीडन एव शोषण के भावो की। पहले वर्ग के प्रतीक जीवन के मधुर, कोमल पक्ष को चित्रित करते है तथा दूसरे जीवन की कटु, तिक्त एव कठोर परिस्थितियो का चित्रण करते है।

जयशकर 'प्रसाद' की झरना कविताओ मे अलौकिक प्रिय के साथ जिस प्रेम की प्रतीकात्मक व्यजना है, उसमे परपरागत प्रतीको का ही आधिक्य है। पन्त की स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि की वैदिक ऋचाओ पर आधृत उषा, भूषण, सविता, द्वा सुपर्णा, ज्योति वृषभ, अग्नि, काल, अश्व, इन्द्र, वरुण, सोम पामी शीर्षक रचनाओ मे प्रतीको का प्राचुर्य है। हिन्दी-काव्य परपरा मे ये प्रतीक सीधे रूप से तो नही आए है, किन्तु वैदिक युग के इन प्रतीको मे भारतीय परम्परा का ही स्वारस्य है। पन्त जी ने ही सबसे पहले हिन्दी-काव्य मे वैदिक-प्रतीको की अवतारणा की है। 'स्वर्ण-धूलि' के अन्त मे 'मानसो' का रूपक प्रतीकात्मक है। यह पुरुष-नारी रूपक है। इसमे 'पिक' मिलन और भोग का एव 'पपीहा' विरह और त्याग का प्रतीक है।

निराला जी की गीतिका के अनेक रहस्यमय गीतो की प्रतीक-योजना परपरानुगत है। 'तुम और मैं' कविता मे उपास्य-उपासक के मधुर भाव-सबध को उनके प्रतीको के द्वारा व्यक्त किया गया है। महादेवी के विरह-गीतो मे जिस माधुर्य-भाव की व्यजना है, उसकी अभिव्यक्ति विविध प्रतीको के माध्यम से हुई है। उनके रहस्यमय गीतो मे अनेक दाम्पत्य जीवन के मनोहर चित्र है, जिनमे

सन्त कवियो को सी मृदुलता, मोहकता एव व्यजकता है। इनमे सबधमूलक और रूपकात्मक प्रतीक-योजना के साथ साथ अन्योक्ति पद्धति का बाहुल्य है। वस्तुतः महादेवी ही आधुनिक युग की रहस्यवादी कवयित्री है जिनके रहस्यात्मक प्रतीक अपनी व्यजकता और प्राणवत्ता मे निरुपम है।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य मे मेघ, चातक, दीपक, पतग, विन्दु, समुद्र, शशि, अतिथि, कसौटी, फणि, हीरा, वेणु, अन्धकार, रत्न, वीणा, उषा, ज्योत्स्ना, वसन्त, पूषण, सुमन, चकवी, चकोर, भ्रमर, पिक, मृगतृष्णा, नौका, बन्दी, विष, अमृत आदि आदि परपरागत प्रतीको का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार कामदेव प्रेम का, रति सौन्दर्य की, सूर्य तेज का, चन्द्रमा शीतलता का, उषा सौन्दर्य का प्रतीक है। कमल से कोमलता, कुमुदिनी से हास, समुद्र से प्राचुर्य, विस्तार, गभीरता, आकाश से सूक्ष्मता, व्यापकता, पृथ्वी से क्षमा, अग्नि से तेज, वीणा से वाणी व विद्या, हस से नीर-क्षीर विवेक, चातक से शुद्ध प्रेमी, सर्प से क्रूरता या कुटिलता का भाव व्यजित होता है। कमल, कुमुद, कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु, स्वर्ग, नरक, मेघ, दीपक, पतग, पिक, भ्रमर, हाथी, सिह, देव, दैत्य, चन्दन, गगा, पारस, चिन्तामणि, आदि आदि अनेक प्रतीक है जो प्रतिदिन के व्यवहार मे आते-आते साधारण महत्व के हो गए है।

प्रगतिवादी काव्य मे भी अतीत की परपरा के प्रतीको के यत्रतत्र दर्शन मिल जाते है। यद्यपि इस धारा के कवि अपनी कविता को परपरा से सर्वथा विच्छिन्न रखने का आग्रह लेकर चले हैं, फिर भी अनजाने मे ही सही, परपरागत प्रतीको को लाने का मोह वे सवरण नही कर सके है।

प्रयोगवादी कवियो मे नरेशकुमार, धर्मवीर और भवानीप्रसाद की कविताओ मे प्राचीन प्रतीको के प्रयोग मिलते है। नरेन्द्रकुमार की किरन धेनुए, उषस, जनगरवा-चरैवेति, अश्व की वल्गा आदि कविताओ मे परपरागत प्रतीक-विधान की ओर प्रवृत्ति लक्षित होती है। भवानीप्रसाद की 'कमल के फूल' और 'प्रलय' शीर्षक कविताओ मे और धर्मवीर की 'कविता की मौत' प्राचीन युग के प्रतीको की सुध दिलाती है। प्रतीक प्राचीन है, पर वे नूतन अर्थ की अभिव्यक्ति करते है। नई कविता ने पुराने प्रतीको को लिया है अवश्य, पर उनमे नूतन भाव की प्रतिष्ठा की है। 'कछुआ' भारतीय परपरा का बहुत प्राचीन प्रतीक है। इससे आत्म-सयम इन्द्रिय-निग्रह का बोध होता है[1] किन्तु प्रभाकर माचवे ने

१—यदा संहरते चायं कूर्मोऽगनीव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ गीता २।५६

'भारतीय सस्कृति' के लिए 'कछुए' का प्रतीक ग्रहण किया है, जिससे उपहास, निन्दा एव क्षुद्रता की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार कछुआ वाह्य सस्पर्श से क्षुब्ध होकर अपने अगो को समेट कर तुरन्त गुडमुडी हो जाता है, उसी प्रकार नई रोशनी का किंचित् स्पर्श पाकर ही प्राचीन सस्कृति के पृष्ठ-पोषक छुईमुई की तरह सहम जाते हैं। कछुए की पीठ जिस प्रकार कडी, दृढ और चिकनी होती है, उसी प्रकार भारतीय सस्कृति भी है, जिस पर कोई दूसरा रग नही चढ़ सकता है। इस प्रकार प्रयोगवादी कवियो ने पुराने प्रतीको को नए अर्थ मे ग्रहण किया है, जिससे उनमे नई प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।

बच्चन की 'जो बीत गई' और आरसीप्रसाद की 'लघुता की इच्छा' शीर्षक कविताओ मे परपरागत प्रतीको का ही प्रयोग है।

प्रगतिशील काव्य मे कुबेर, इन्द्र, दधीचि, रुद्र, एकलव्य, अर्जुन, द्रौपदी, दु.शासन, दुर्ग, सखी आदि प्रतीक क्रमशः पू जीपति उन्मद शक्ति, त्याग, प्रलय, अछूत, सवर्ण (सामन्तीय वर्ग का प्रतिनिधि), पीडित नारी, अत्याचार, बन्दी जीवन और स्नेह (सहानुभूति) आदि अर्थों की अभिव्यक्ति करते है।

निष्कर्ष यह है कि छायावादी-रहस्यवादी काव्य मे परपरागत प्रतीको का जितना प्रयोग हुआ है, उतना प्रगतिवादी प्रयोगवादी काव्य मे नही। वर्तमान कविता मे प्रतीकात्मक शैली की मुख्यता होते हुए भी परपरानुगत प्रतीको का अभाव हो गया है। आजकल के कवि नए प्रतीको को अभिनव अर्थों मे लाने के प्रयोग कर रहे है तथा प्राचीन प्रतीको के प्रति अरुचि दिखाई पडती है। फलतः नई कविता मे पुराने प्रतीको का ह्रास हो गया है।

छन्दों की परम्परा

छन्द का महत्व—

छन्द काव्य का अमर सगीत है। इसके लय-सौन्दर्य पर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी, जीव-जन्तु भी मुग्ध हो जाते है। इसीलिए कविता मे छन्दो-विधान अनादि काल से चला आ रहा है। समस्त वैदिक एवं लौकिक काव्य मे छन्द का आधिपत्य दृष्टिगोचर होता है। भारतीय परम्परा मे महान् से महान् और साधारण से साधारण कवियो तक ने कविता की रचना करने के लिए छन्द का आश्रय लिया है। महाकाव्यो का सृजन ऊर्जस्वित छन्दो-विधान के आधार पर ही हुआ है। साहित्य की बात छोडिए, धर्म शास्त्र, दर्शन-ग्रथ, व्याकरण, कोश, अलकार, कथा-साहित्य, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, अर्थ शास्त्र एवं तत्र साहित्य आदि सभी विषयो को छन्दोबद्ध शैली मे ही उपन्यस्त किया गया

है। छन्दोग्य उपनिषद् के एक रूपक से छन्द की महत्ता पर पूर्ण प्रकाश पडता है—'देवताओ ने मृत्यु के भय से अपने आपको (अपनी कृतियो को) छन्दो से ढांप लिया। मृत्यु से आच्छादन करने के कारण ही छन्दो को 'छन्द' (छद् आच्छादने) कहते है[१]। छन्द की इसी प्रकार की एक अन्य व्युत्पत्ति मिलती है—'अपमृत्यु वारयितुमाच्छादयतीति छन्दः' (सायण) अर्थात् कलाकर और उसकी कृति को छन्द अपमृत्यु से बचा लेते है[२]।

हिन्दी-साहित्य के अन्दर भी छन्द और काव्य का अटूट सबध है। प्रारभिक युग से लेकर अर्वाचीन काल तक के सभी श्रेष्ठ कवियो ने छन्दोवद्ध काव्य-रचना का आदर्श उपस्थापित किया है। सूर, तुलसी, विहारी, केशव, घनानन्द, पद्माकर, भारतेन्दु आदि सभी उच्च कोटि के कवियो ने छन्दोमयी भाषा मे ही अपने भावो को प्रकाशित किया है। प्रबन्ध हो अथवा मुक्तक किंवा गीति-काव्य हर एक रूप मे छन्दो-विधान अवश्य है।

इससे स्पष्ट है कि काव्य और छन्द का घनिष्ठ सबध है। छन्द के बिना काव्य को मृत्यु का भय है। छन्द काव्य को स्थिर जीवन तथा अमरत्व प्रदान करता है। इससे कव्य सुबोध, सुगम एव रोचक हो जाता है। छन्द की सहायता से पाठ को हृदयगम करना भी आसान होता है। छन्दोवद्ध साहित्य का मूल पाठ भी गद्य की अपेक्षा अधिक शुद्ध होता है।

प्राचीन हिन्दो काव्य मे पाए जाने वाले छन्दो की परम्परा का वर्गीकरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

(१) मात्रिक छन्द
  क—सम,
  ख—अर्ध सम, और
  ग—विषम।
(२) वर्ण-वृत्त
  क—गणाश्रित
  ख—वर्णाश्रित
(३) अन्त्यानुप्रास (तुक)
(४) गीति-तत्व
(५) पाद-योजना।

१—देखिये, छान्दोग्य उपनिषद्, १।४।२।
२—देखिये, ऋग्वेद १।१।१ सायण भाष्य।

(१) मात्रिक छन्द—

हिन्दी काव्य के प्रारभिक युग से ही मात्रिक छन्दो का अधिक प्रयोग हुआ है। मात्रिक छन्दो की परम्परा प्राकृत और अपभ्र श साहित्य की देन है। रीतिकाल को छोडकर हिन्दी-साहित्य के हर एक युग मे मात्रिक छन्दो का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। वीर गाथाकाल का वीर छन्द मात्रिक है। यह ३१ मात्रा का छन्द है। ८, ८, १५ पर यति होता है और अन्त मे गुरु-लघु पडते हैं। जगनिक का 'आल्ह' छन्द सबसे अधिक लोकप्रिय है।

ऽ ऽ ऽ ऽ ।। ऽ ।। ऽ ऽऽ ।ऽ । ऽऽ ऽ।
मुर्चा लोटो तब नाहर को, आगे बढे पिथोरा राय। ३१ मात्राएँ
ऽ ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽऽ । ऽ
नौ से हाथिन के हलका माँ, इकले घिरे कनौजी राय ॥ ३१ मात्राएँ

दोहा, सोरठा, चौपाई, बरवै, कुडलिया, रोला, छप्पय, तोमर, पादाकुलक, पद्धरि, रूपमाला, झूलना, हरिगीतिका, चतुष्पदी (चवपैया), त्रिभगी, तत्री आदि चिर प्रचलित मात्रिक छन्द है। हिन्दी-काव्य-परम्परा मे उपर्युक्त मात्रिक छन्दो का ही बाहुल्य है। तुलसीदास की चौपाई, बिहारी के दोहे, रहीम के बरवै, चन्द और नाभादास के छप्पय, दीनदयाल गिरि और गिरधर की कुडलिया विशेष प्रसिद्ध है।

हिन्दी में सम मात्रिक छन्द सबसे अधिक प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी के विशेष प्रसिद्ध अर्ध सम मात्रिक छन्द हैं, दोहा, सोरठा, बरवै, उल्लाल, आदि।

मिश्रित एव अनियमित छन्दो की गणना विषम मात्रिक छन्दो मे होती है। हिन्दी मे विषम पादी छन्द दो प्रकार के हैं—सयुक्त छन्द और प्रवर्द्धित पादी छन्द। सयुक्त पादी विषम छन्द दो या अधिक छन्दो के सयोग से बने होते हैं तथा प्रवर्द्धिद पादी विषम-छन्दो मे चार से अधिक पाद होते हैं। नियमतः छन्द के चार पाद होते हैं, किन्तु यदि अनियमित रूप से किसी छन्द के पाँच, छः, आठ, बारह या इससे भी अधिक पाद रखे जायँ तो उसकी भी गणना प्रवर्धित पादी विषम छन्द मे होगी। कबीर, सूर तुलसी के पद अधिकतर इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं। हिन्दी काव्य-परम्परा मे कुडलियाँ, छप्पय, आदि सयुक्त पादी विषम छन्द है और सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि क पदो की गणना प्रवर्धित पादी विषम छन्दो मे की जा सकती है।

आलोच्यकाल की कविता मे भी मात्रिक छन्दो का ही बाहुल्य है। पल्लव की भूमिका मे कविवर पन्त ने मात्रिक छन्दो की उपयुक्तता तथा वर्णिक वृत्तो की अयुक्तता का इस प्रकार उल्लेख किया है 'हिन्दी का सगीत केवल मात्रिक

छन्दो मे ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सपूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्ही के द्वारा उसमे सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है[1], छायावाद एव प्रगतिवादी काव्य मे मात्रिक छन्दो का ही विकास हुआ है, वर्णिक वृत्तो का नही।

मात्रिक छन्द हिन्दी-कविता की निजी विशेषता है। आधुनिक कवियो ने मात्रिक छन्दो को नई-नई लयो मे विकसित किया है। बारह मात्रा के पाद से लेकर बत्तीस मात्रा तक के पाद के छन्दो का प्रयोग आधुनिक कविता मे पाया जाता है। इनमे भी बारह मात्रा का तोमर, सोलह मात्रा का पादाकुलक (पद्धरि, अरिल्ल आदि), चौबीस मात्रा का रोला, अट्ठाईस मात्रा के यौगिक जाति के विधाता, सार आदि, तीस मात्रा के महा तैथिक जाति के ताटंक, लावनी आदि, इकत्तीस मात्रा के अश्वावतारी जाति के वीर छन्द, बत्तीस मात्रा के लाक्षणिक जाति के विविध मात्रिक छन्दो के प्रयोग प्रचुरता से मिलते है।

क—सम मात्रिका छन्द—

आधुनिक हिन्दी-काव्य मे सम मात्रिक छन्दो का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इस श्रेणी के अन्तर्गत पादाकुलक, अरिल्ल, सरवी, पद्धरि, पीयूष वर्ष, राधिका, रोला, रूपमाला, हरिगीतिका, सार, ताटक, वीर, लावनी आदि मुख्य हैं। इनमे भी रोला, हरिगीतिका, सखी, वीर, ताटक, लावनी आदि छन्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। सियारामशरण के 'नकुल तथा' निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' मे रोला है। रत्नाकर जी का गगावतरण भी रोला मे लिखा गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने हरिगीतिका के प्रयोग मे अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनका जयद्रथवध इसी छन्द मे लिखा गया है। प्रसाद के आँसू' काव्य मे विधाता छन्द है, सुभद्रा कुमारी की सुप्रसिद्ध 'झासी की रानी' कविता मे ताटक छन्द प्रयुक्त हुआ है। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' काव्य मे सार छन्द है। यमुना के प्रति' (निराला) की रचना मे वीर छन्द है तथा बत्तीस मात्राओ के छन्दो का प्रयोग दिनकर की 'हिमालय के प्रति', 'हाहाकार', 'कस्मै देवाय' आदि कविताओ मे मिलता है। ताटक, वीर, लावनी आदि छन्दो का आधुनिक कविता मे अधिक प्रचार है।

मैथिलीशरण, रामनरेश, प्रसाद, पन्त, दिनकर, नवीन, भगवतीचरण, गोपालशरण सिंह, उदयशकर, हरिकृष्ण, मिलिन्द, अचल, नरेन्द्र, सोहनलाल

१—देखिए, सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव-भूमिका, पृ० २२, २३।

द्विवेदी आदि कवियो ने सम मात्रिक छन्दो के प्रयोग मे अधिक रुचि दिखलाई है।

ख—अर्ध सम मात्रिक छन्द[1]

हिन्दी काव्य परम्परा मे दोहा, सोरठा आदि इस श्रेणी के छन्द हैं। आधुनिक काल के कवियो ने इस परम्परा को और अधिक विकसित किया है। पन्त और निराला ने चरणो की सख्याबढाकर इसके और भी नये-नये भेद किए है। 'पल्लव' (सुमित्रानन्दन) और उद्‌बोधन (निराला) कविताएँ इसके नवीन उदाहरण है।

'गरज गरज घन अन्धकार मे गा अपने सगीत, (२७ मात्राएँ)
बन्धु, वे बाधा-बन्ध-विहीन, (१६ मात्राएँ)
आँखो मे नव जीवन की तू अजन लगा पुनीत (२७ मात्राएँ)
विखर झर जाने दे प्राचीन।—निराला, उद्‌बोधन (१६ मात्राएँ)

इस कविता के सम चरणो मे १६, १६ और विषम चरणो मे २७, २७ मात्राएँ है। यह अर्धसम मात्रिक छन्द का नया भेद है।

ग—विषम (मात्रिक) छन्द—

अनियमित छन्दो को इसी श्रेणी मे रखा जाता है। इसके तीन रूप पाये जाते है—पहले वे हैं, जिनके चारो पादो मे परस्पर असमानता होती है। दूसरे वे है जिनके चरणो की सख्या अनियमित होती हैं, ५,६,८ आदि। तीसरे वे है, जिनके कुछ चरण समान होते हैं और कुछ असमान। पन्त की पल्लव, उच्छवास, आँसू आदि कविताएँ पहली श्रेणी मे, महादेवी के गीत, बच्चन और भगवतीचरण की कविताएँ दूसरी श्रेणी मे तथा पन्त का 'मौन निमत्रण', 'परिवर्तन', प्रसाद के झरना की 'असन्तोष', 'पी कहाँ', 'आशालता' आदि कविताएँ तीसरी श्रेणी मे जाती है।

इससे स्पष्ट है कि आलोच्यकालीन कविता मे मात्रिक छन्दो की परपरा विविध रूपो मे प्रस्फुटित हुई है। इसमे सम, अर्ध सम और विषम छन्दो की पर्याप्त काव्य-राशि का सृजन हुआ है। आधुनिक कवियो ने भिन्न-भिन्न जातियो के मेल से नए-नए छन्दो का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त नई-

---

१—इसके चारों पाद एक समान नहीं होते। पहला-तीसरा और दूसरा-चौथा आपस मे मिलते हैं। 'विषम-विषम, सम सम चरण तुल्य अर्ध सम छन्द'। 'भानु'।

नई रगत के छन्द भी बनाए हैं जो मात्रिक छन्दो मे नए विकास के परिचायक है।

मात्रिक छन्दो के विषय मे डा० पुत्तूलाल शुक्ल का भी यही मत है आधुनिक युग मे हिन्दी काव्य मात्रिक छन्दो से जितना समृद्ध और सपन्न हो गया है, उतना पूर्ववर्ती कालो मे कभी नही रहा। इसका कारण यह है कि प्राचीन हिन्दी मे प्रयुक्त अधिकाश छन्दो का प्रयोग तो खडी बोली मे हुआ ही है, साथ ही साथ आधुनिक कवियो ने प्राचीन प्रचलित लयो के आधार पर विविध प्रकार के नवीन छन्दो का भी निर्माण किया है। इस नवीनता और प्राचीनता की समृद्धि के योग से छन्द-समूह इतना विशाल हो गया है कि आज निखिल आर्य-भाषाओ मे हिन्दी भाषा मात्रिक छन्दो मे सर्वाधिक समृद्ध है[१]।

आधुनिक कवियो मे मैथिलीशरण जी हरिगीतिका के लिए, हरिऔध जी चौपदो के लिए, ठा० गोपालशरण सिंह कवित्त के लिए, पन्त जी पीयूष वर्ष (ग्रन्थि) के लिए तथा दिनकर जी बत्तीस मात्रा के लावनी छन्द के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

२—वर्ण वृत्त—

हिन्दी-काव्य-परपरा मे वर्ण वृत्तो के दो रूप मिलते हैं, गणाश्रित और वर्णाश्रित। वर्णाश्रित छन्दो मे हिन्दी की निजी परपरा का रूप दृष्टिगोचर होता है जिसका सस्कृत के वर्ण वृत्तो से कोई सबध नही है। कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि इसी प्रकार के छन्द हैं जिनका हिन्दी काव्य क्षेत्र मे अपने ढंग पर विकास हुआ है, सर्वथा स्वतत्र रूप मे। सस्कृत साहित्य मे ये छन्द नही मिलते हैं। इस परपरा का रीतिकाल मे चरमोत्कर्ष दिखाई पडता है। गणाश्रित वर्णिक वृत्तो में वे छन्द हैं जो सस्कृत से सीधे आए है। इनमे द्रुतविलम्बित, मन्दा-क्रान्ता, मालिनी, वशस्थ, शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित, वसन्त तिलक, त्रोटक, भुजग प्रमात आदि छन्दो के नाम आते हैं। प्राचीन परपरा मे तुलसी और केशव ने सस्कृत के वर्ण वृत्तो का यत्रतत्र प्रयोग किया है, किन्तु उसकी कोई पुष्ट परपरा विकसित नही हुई है। द्विवेदी युग मे वर्णवृत्तो की प्रवृत्ति बडे उत्साह एव वेग से प्रारभ होती है। इस काल मे खडी बोली को सस्कृत के छन्दो मे ढालने का एक आन्दोलन सा चल पडता है। अयोध्या सिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय, नाथूरामशकर आदि अनेक कवियो ने इस दिशा मे बहुत अच्छी

१—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० १६२।

सफलता दिखलाई है। इस प्रकार वर्ण वृत्तो की नई परंपरा का प्रारभ द्विवेदी युग से होता है।

आलोच्यकाल मे वर्णवृत्तो की ओर कवियो की बहुत कम प्रवृत्ति दिखाई पडती है, फिर भी प्रबन्ध काव्यो मे इस परपरा का रूप स्फुट है। प्रियप्रवास (अयोध्यासिह उपाध्याय), साकेत (मैथिलीशरण गुप्त), सिद्धार्थ, वर्द्धमान (अनूप शर्मा), अगराज (आनन्दकुमार), मधुपुरी (गयाप्रसाद) आदि प्रबन्ध काव्यो मे सस्कृत के वर्णवृत्तो की परपरा पूर्णरूप से सुरक्षित है।

इस क्षेत्र मे कुछ कवियो ने नये प्रयोग भी किए हैं। चार सगण के तोटक छन्द की प्रत्येक पक्ति मे १२ अक्षर होते है तथा चार पाद होते है, किन्तु नीचे के छन्द मे चार के स्थान पर छः पाद है—

कुछ काम करो, कुछ काम करो
जग मे रह के कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो[1]
समझो जिसमे यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को।
नर हो न निराश करो मन को॥—मैथिलीशरण

यह प्रवर्धितपादो वर्ण वृत्त है जिसके पाद नियत सख्या से अधिक हैं।

वर्णाश्रित छन्दो मे अक्षरो की गणना का विचार होता है इनमे कवित्त, सवैया की परपरा हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल से स्थापित हो जाती है। तुलसी, केशव, रसखान, घनानन्द, पद्माकर, वैताल आदि—विशेषतः पुराने दरबारी कवियो और चारणो को कविता मे इस शैली का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। वर्णाश्रित दडक छन्द के अनेक भेद हैं, जिसके प्रत्येक पाद मे २३ अक्षर से ३३ अक्षर तक होते हैं। दडक दो प्रकार के है—(१) साधारण और (२) मुक्तक। साधारण दडको मे अक्षरो के गुरु-लघु क्रम के नियमो का पालन किया जाता है, परन्तु मुक्तक दडक मे इस क्रम का निर्वाह नही होता। मुक्तक दडको को प्रायः कवित्त कहा जाता है। हिन्दी काव्य-परपरा मे इन्ही का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इनमे भी मनहरण,[1] रूप घनाक्षरी[2] और देव घनाक्षरी[3] मुख्य है।

१—इसके प्रत्येक पाद मे ३१ वर्ण होते है, जिनमे अन्तिम वर्ण गुरु होता।
२—इसके प्रत्येक पाद में ३२ वर्ण होते है, अन्त का वर्ण लघु होता है।
३—इसके प्रत्येक पाद मे ३३ वर्ण है, अन्तिम तीन वर्ण प्रायः लघु होते है। 'भानु'।

आलोच्य काल के कवियो मे कवित्त और सवैया के प्रयोग के लिए शकर, हरिऔध, मैथिलीशरण, गोपालशरण सिंह, हितैषी, रत्नाकर, रामचन्द्र शुक्ल 'सरस,' सत्यनारायण, हरदयालु सिंह (दैत्य वश, रावण महाकाव्य) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त अध्ययन से कुछ निश्चित परिणाम निकाले जा सकते है—आधुनिक काल मे वर्ण-वृत्तो की दो शैलिया प्रचलित है (१) हिन्दी की स्वतः विकसित कवित्त-सवैगा की शैली और (२) सस्कृत के वर्ण-वृत्तो की शैली। दोनो ही शैलियो का विकास अधिकतर प्रबन्ध काव्यो मे हुआ है, किन्तु कवित्त-सवैया का प्रयोग अधिकतर व्रजभाषा के काव्य-ग्रथो मे तथा सस्कृत के छन्दो का व्यवहार प्रायः खडी बोली के काव्यो मे हुआ है। स्फुटिक रचनाओ मे भी कवित्त-सवैया की शैली का प्रयोग हुआ है, किन्तु सस्कृत के वर्ण-वृत्तो का नही। इसके अतिरिक्त सबसे प्रधान बात यह है कि वर्तमान काल के कवियों की प्रवृत्ति सामान्यतः मात्रिक छन्दो की ओर है। इस कारण वर्णिक वृत्तो की उपेक्षा हो गई है। मात्रिक छन्दो का प्रयोग प्रायः शत-प्रतिशत कवियो मे पाया जाता है जबकि वर्ण वृत्तो का व्यवहार गिने चुने कवियो ने ही किया है। छायावादी, प्रगतिवादी एव प्रयोगवादी कविता मे वर्ण वृत्त वहिष्कृत हो गए है।

३—अन्त्यानुप्रास[१] (तुक)—

हिन्दी-काव्य-परपरा मे प्रारभिक युग से ही तुक का एकच्छत्र राज्य चला आता है। साधारण कवियो से लेकर महा कवियो तक ने इसको अपने काव्य मे स्थान दिया है। इस कारण छन्द के साथ तुक का विचार भी आवश्यक हो जाता है।

अत्यानुप्रास या तुक छन्द की दृष्टि से अनावश्यक होते हुए भी माधुर्य और स्वारस्य का घटक अवश्य है। इसी कारण सभी पुराने कवियो की वाणी

१—तुक का छन्द या ध्वनि-संतुलन से कोई सीधा संबध नहीं। वस्तुतः यह साहित्य-शास्त्र का विषय है, छन्दः शास्त्र का नहीं। संस्कृत के छन्दों में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। प्राकृत और अपभ्रंश काव्य में इसका प्रयोग चल पड़ा था। अपभ्रंशों के अनुकरण से ही यह हिन्दी में आया है। हिन्दी के प्रारंभिक युग से ही तुक का प्रयोग होता चला आ रहा है। साहित्य-शास्त्र में 'अन्त्यानुप्रास' के नाम से इस पर विचार हुआ है।—लेखक।

मे यह निरपवाद रूप से मिलता है। इससे कविता मे नाद-सौन्दर्य की वृद्धि होती है तथा श्रुति-मधुरता आ जाती है। हिन्दी-कविता की यह एक विशिष्ट परपरा है जिसने काव्य को सुदीर्घ काल तक अपनी स्वर-तन्त्री से झकृत किया है अतएव हिन्दी-काव्य मे छन्द और तुक का घनिष्ठ सबध पाया जाता है।

तुक का आधार ध्वनि-साम्य है। इससे सगीत का माधुर्य उत्पन्न हो जाता है, शब्दो मे सुसगति आ जाती है तथा लय का साम्य स्थिर हो जाता है तथा इसके फलस्वरूप कविता मे राग का माधुर्य गूज उठता है। तुक का सगीत अद्‌भुत आकर्षण-शक्ति रखता है, जिसे सुनकर कानो को सुख होता है। हृदय उद्वेलित होता है तथा प्राणो मे ओज स्पन्दित हो उठता है। इससे शब्द सुसगठित हो जाते है, अर्थ मे सरसता आ जाती है और भाव ऊर्जस्वित हो उठता है। इसी कारण सामान्य कवियो से लेकर मूर्धन्य कवियो तक ने इसका लाभ उठाया है और लोक-गीतो—दादरा, कजली, आल्हा, ढोला, होली, रसिया आदि से लेकर सूरसागार और रामचरितमानस तक मे अन्त्यानुप्रास का एकाधिपत्य दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी-कविता मे तुक कई प्रकार से व्यवहृत हुआ है—(१) सर्वान्त्य, (२) विषमान्त्य और (३) अनियत। जहाँ सभी पादो मे एक सा ही तुक चलता है- उसे सर्वान्त्य, जहाँ पहले और तीसरे पाद का तुक मिलता है, उसे विषमान्त्य, जैसे सोरठा तथा उनसे भिन्न प्रकार के तुक को अनियत कह सकते हैं। यह आधुनिक युग की कविता मे ही पाया जाता है।

दास कवि ने तुक को उत्तम, मध्यम और अधम भेदो मे विभाजित किया है[१]। इनमे भी प्रत्येक के अवान्तर भेद दिखाए है। उत्तम तुक के समसरि (जिसके चारो पादो के तुक सम हो), विषम सरि (जिसके एक सम और तीन विषम तुक हो) और कष्ट सरि (जिसके किसी पद का तुक कष्ट से मेल रखता हो) भेद होते है। अधम तुक मे कही अमिल सुमिल, कही आदि मत्त अमिल और कही अन्त मत्त अमिल तुक होते है। वीप्सा मे एक ही तुक की पादान्त मे दो बार आवृत्ति होती है (जैसे धनु-धनु, छनु-छनु,-तनु-तनु और वनु-वनु)। पाद के अन्त मे केवल स्वर-साम्य पर ही रखा हुआ तुक अधम माना जाता है (जैसे ह्वै, वै, ह्वै, च्वै आदि)। अर्थ-हीन तुक भी अधम कोटि के होते है।

तुक के प्रयोग मे कवियो ने बहुत स्वच्छन्दता से काम लिया है। इसकी रक्षा के लिए शब्दो के तत्सम रूपो को विकृत कर डाला है, मनमाने रूप गढ

१—देखिए—दास कवि कृत—काव्य निर्णय—तुक वर्णन अध्याय।

डाले तथा निरर्थक तुको के प्रयोग भी कर डाले हैं। तुक का निर्वाह करने के लिए गंभीर का गभीरनि लोग का लोइ, लुटत का लुट्टत, चरण का चर्ण, दशरथ का दशरत्थ, देश का देसु, मित्र का मित्त, आदि परिवर्तन कर डाले है।

मैथिलीशरण गुप्त ने तुको के प्रयोग मे सबसे अधिक रुचि प्रदर्शित की उनके साकेत, यशोधरा आदि काव्यो के छोटे से छोटे छन्दो मे भी तुक का निर्वाह हुआ है। चार और छः मात्राओ तक के तुक तो प्रायः मिलते ही है, गुप्त जी ने दस मात्राओ के तुक भी रखे हैं।

तुले धुले से खुले खड्ग **चमचमा रहे थे**।
तप्त सादियो के तुरग **तमतमा रहे थे**॥

इतने लम्बे तुको के प्रयोग बहुत कम कवियो ने ही किए है, किन्त आजकल की कविता मे अनियत तुको के प्रयोग बहुत मिलते है। पन्त, प्रसाद, निराला आदि छायावादी कवियो ने तुको के क्षेत्र मे पर्याप्त नवीन प्रयोग किए है। कही कही १, २, ४ पक्तियो के तुक मिलते है। तीसरी पक्ति भिन्न तुकान्त है और कही १, ३ तथा २, ४ पादो मे तुको का क्रम रखा है। तुको मे ध्वनि-योजना के द्वारा नाद-सौन्दर्य भी उत्पन्न किया गया है।

यह कैसा जीवन का गान
अलि, कोमल कलमल टलमल !
अरी, शैल बाले नादान
यह अविरल कलमल छलछल !

—पन्त

बच्चन की मधुशाला मे छः छः चरणो के बन्ध है, जिनमे १,२,४ के तुक समान हैं, फिर छठी पक्ति के साथ अन्तस का तुक मिलता है। इस प्रकार एक शब्द के अतिरिक्त पूरे पाद को आवृत्ति हो जाती है।

दिनकर, अचल, बच्चन, नरेद्र, नवीन, भगवतीचरण, सुभद्राकुमारी आदि कवियो ने ऐसी अनेक कविताओ की रचना की है, जिनमे अन्तरा की बार बार आवृत्ति द्वारा कविता मे सौन्दर्य उत्पन्न किया गया है। यह नई प्रवृत्ति आधुनिक युग की नई परम्परा के रूप मे चल पडी है। पुरानी कविता मे यह रूप पदो के अतिरिक्त और कही नही मिलता है।

निष्कर्ष यह है कि काव्य के प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत—सभी भेदो मे अन्त्यानुप्रास की योजना पाई जाती है। छायावादी कवियो ने तुको के नये-नये प्रयोग किये है। इसके द्वारा नाद-सौन्दर्य एव सगीत की सृष्टि की है। प्रगति-

वादी कवि भी इसके प्रति सजग हैं, किन्तु प्रयोगवादी काव्य मे तुक का विधान छूटता जा रहा है।

(४) गीत—

सगीतमय छन्दो-विधान हिन्दी-कविता की एक अन्यतम विशेषता है। हिन्दी-काव्य का एक विशाल अश पद-शैली मे निर्मित है जिसमे गेय-तत्व प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। इसके सृजन मे विविध राग-रागिनियो का उपयोग हुआ है। विद्यापति, अष्टछाप के कवि, तुलसी, मीराबाई, नागरीदास, भारतेदु आदि अनेक कवियो के काव्य मे गीति-तत्व का पूर्ण माधुर्य है।

भक्त कवियो ने जिस गीत-काव्य की सर्जना की है, उसमे मात्रिक छन्दो का प्राचुर्य है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि ने अपने पदो मे एक पाद पादाकुलक, चौपाई या शृ गार का टेक के रूप मे रखकर पीछे रूपमाला, सार, विधाता, सरसी, हरिगीतिका, रोला आदि के अनेक पाद रखकर गीतियो की रचना की है।

'हरि बिनु मीत नही कोउ तेरें।
सुनि मन कहौ पुकारि तो सो हौ, भजि गोपालहि मेरे॥
या ससार विषय विष सागर, रहत सदा सब घेरे।
'सूर' स्याम जिनु अन्तकाल मे, कोउ न आवत नेरे॥'

इसमे एक पाद पादाकुलक का रखकर पीछे तीन पाद 'सार' छन्द के हैं[1]।

"मैया मैं नही माखन खायो।"

यह पद भी सप्तपादी सार है। इसके प्रारम्भ मे एक पाद पादाकुलक का रखा गया है।

"सन्तो राह दोउ हम दीठा।"

हिन्दू तुरक हटा नही मानै, स्वाद सबन को मीठा॥ 'इत्यादि यह प्रसिद्ध पद नवपादी सार है।

भक्त कवियो ने अपने पदो को विविध राग-रागिनयो मे बिठाया है—असावरी, भैरवी, कलिंगडा आदि।

छायावादी काव्य मे सगीत का तत्व प्रचुरता से मिलता है। इस क्षेत्र

१—पादाकुलक का पाद सोलह मात्रा का होता है। चारो चौकल पादाकुलका। सार छन्द के हर एक पाद मे २८ मात्राएँ होती है। यति १६, १८ पर होता है।
तथा अंत में दो गुरु होने चाहिए। 'भानु'।

मे पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी के नाम निशेषतः उल्लेखनीय हैं। प्रसाद के नाटकीय गीतो मे गीत-तत्व प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। पन्त की पल्लव और गुजन की कविताओ मे सगीत का अनुपम माधुर्य विद्यमान है। उनके 'तप रे मधुर-मधुर मन' गति मे अनूठा गीत-सौन्दर्य है। इसी प्रकार—

'तुम आती हो
नव अगो का
शाश्वत मधु विभव लुटाती हो।

इस गीत मे लयान्विति का सौन्दर्य कितना मोहक है। निराला के अनामिका और गीतिका के गीतो मे गीत-विन्यास दर्शनीय है। ये गीत धम्मार, रूपक, झपताल, चौताल, तीन ताल, दादरा आदि अनेक राग-रागिनियो मे 'बधे हुए हैं। सात मात्राओ की ताल मे उनका एक 'रूपक' गीतिका से प्रस्तुत किया जाता है—

जग का एक देखा तार
कठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर झकार। —निराला

इस गीत मे सात-सात मात्राओ के विभाजन का क्रम है। गायक इसे अन्य भेदो मे भी गा सकता है।

महादेवी की गीत-सृष्टि मनोरम है। उन्होने गीतो को स्वर-ताल की अपेक्षा विभिन्न लयो मे बाँधने का प्रयास किया है।

इससे स्पष्ट है कि छायावादी कवियो के गीतो मे स्वर, ताल, और लय का पूर्ण सामजस्य है। इन कवियो ने प्राचीन शैली के रागो मे खडी बोली की शब्दावली को ढालने का स्तुत्य प्रयन्न किया है।

छायावादी काव्य-भूमि से बाहर हरिऔध, मैथिलीशरण, गुरुभक्त सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, उदयशकर, हरिकृष्ण 'प्रेमी', बच्चन, अचल, नरेद्र, आरसी प्रसाद सिंह, गोपाल सिंह नैपाली सुमित्राकुमारी, तारा पाडेय, आदि-आदि की कविताओ मे गीत-तत्व का मनोहर विधान पाया जाता है।

शुद्ध गीति-तत्व के अतिरिक्त कुछ भिन्न शैली के गीतो की सृष्ठि भी मिलती है। इनमे उर्दू की तर्ज से प्रभावित गजल गीति, अग्रेजी तर्ज से प्रभावित प्रगीत, तथा लोक-ध्वनियो से प्रभावित ग्राम-गीतो की रचना विशिष्ट स्थान रखती है। ये तीनो गीत-शैलियाँ नवीन परम्परा के अन्तर्गत है, जिनकी सृष्टि नवीन युग की देन है। यह परम्परा स्वस्थ, प्राणवान एव विकासोन्मुख है वर्तमान काल के अधिकांश कवि गीतो की सृष्टि की ओर अधिक सचेष्ट है।

(५) पाद-योजना—

छन्द के पाद या चरण मे अनेक छोटी-बडी ध्वनियो को सतुलित किया जाता है। जिस प्रकार पाद (पैर) से मनुष्य का शरीर गतिशील रहता है, बल्कि शरीर का ढाचा ही इसके आधार पर खडा है, उसी प्रकार छन्द का आधार पाद ही है। पाद ही वस्तुतः छन्द की योनि है, जिससे छन्द का छन्दत्व निर्धारित होता है। समान छन्द का लक्षण उसके एक-पाद से ही निर्धारित होता है। पाद के लक्षण की भिन्नता से ही छन्द की भिन्नता हो जाती है। पाद ही वह साचा है जिसमे सपूर्ण छन्द का शरीर ढलता है, ध्वनियो का सतुलन होता है और मात्राओ का काल निर्धारित होता है।

साधारणतः छन्द के चार पाद होते हैं। कही-कही दो, तीन, पाँच, छः या इससे भी अधिक पाद हो सकने हैं। किसी छद का आकार कितना ही छोटा-बडा हो, उसका आधारभूत घटक पाद ही है।

समस्त हिन्दी-कविता मे छन्द-निर्माण के हेतु पाद की लघुतम इकाई नियत रूप से पाई जाती है। इस कारण हिन्दी-कविता की छन्द परम्परा मे पाद का स्थान महत्वपूर्ण है।

आधुनिक काल की कविता मे यद्यपि अनेक प्रकार के छन्दो के प्रयोग चल पडे हैं, तो भी पाद-व्यवस्था अवश्य रहती है। परम्परानुगत मात्रिक एव वर्णिक छन्दो मे तो पाद-योजना अवश्य होती है। उसके विषय मे तो कहना क्या? मुक्त छन्द या फ्री वर्स मे भी इसका विधान होता है। मुक्त छन्द मे पाद-योजना लय की अनुगामिनी होती है। इसके पाद अनमिल होते है जिनके वर्ण, मात्रा, एव छुटाई-बडाई के क्रम मे कोई साम्य का आधार नही ढूढा जा सकता। किन्तु पाद-व्यवस्था अवश्य रहती है। विषम छन्द के पादो मे कही एक शब्द होता है, कही दो, किसी पाद मे दस, पद्रह या और भी अधिक शब्द होते हैं। इसमे अक्षर, या मात्रा काल का विचार भी नही होता। एक मात्र लय का आधार होता है। इसकी पाद-व्यवस्था सबसे अधिक निराली होती है—

मौन सन्ध्या का दिये टीका
रात
काली
आ गयी
सामने ऊपर, उठाये हाथ-सा
पथ बढ़ गया।'

—शमशेर

स्पष्ट है कि हर एक पाद का क्रम अनमिल है। पहले पाद मे नौ अक्षर और सोलह मात्राएँ, दूसरे मे दो अक्षर और तीन मात्राएँ, तीसरे मे दो अक्षर और चार मात्राएँ चौथे मे तीन अक्षर और पाँच मात्राएँ, पाँचवे मे बारह अक्षर और उन्नीस मात्राएँ तथा अन्तिम पाद मे छः अक्षर और सात मात्राएँ है। स्पष्ट है कि यह विषम छन्द है, क्योकि इसके पाद परस्पर बे-मेल हैं। किन्तु किसी न किसी प्रकार की पाद-व्यवस्था तो है ही, जिसके कारण काव्य सज्ञा निश्चित होती है।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्य कालीन कविता मे हिन्दी-काव्य की छन्द-परपरा के सभी तत्व पाये जाते है—मात्रिक छन्द, वर्ण वृत्त, अन्त्यानुप्रास, गीति-तत्व और पाद-योजना आदि सभी परपरानुगत गुण विद्यमान हैं। प्रबध काव्यो मे विशेष रूप से छन्द-परपरा का पालन हुआ है, किन्तु अन्य काव्य रूपो मे छन्द की परिपाटी लुप्त हो चली है। छायावादी, प्रगतिवादी काव्य मे सम, अर्ध सम, विषम सभी प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं किन्तु आजकल यह परपरा शिथिल होती जा रही है। प्रयोगवादी काव्य मे परपरागत छन्दो-विधान का आमूल परित्याग हो गया है। इधर मुक्त छन्दो के बाहुल्य से विषम छन्दो का प्रचार बहुत अधिक बढ गया है। वर्तमान कविता मे छन्दो के नये प्रयोगो की बाढ ने परपरानुगत मात्रिक, वर्णिक सभी प्रकार के छन्दो को पूर्ण-रूप से बहिष्कृत कर दिया है। नई कविता मे मात्रा, वर्ण, गीत, तुक की परपरा तो सर्वथा विलुप्त हो गई है। हाँ, ध्वनि के आधार पर लय का विवेक कुछ बना हुआ है। इसमे पाद-व्यवस्था को छोडकर परपरा का कोई अन्य तत्व नही पाया जाता।

छन्द और भाव का सम्बन्ध—

कुशल कवि छन्दोयोजना मे रस (भाव) और वस्तु की अनुकूलता का विचार रखते हैं। जिस प्रकार गुण एवं अलकार रसोत्पत्ति में सहायता करते हैं, उसी प्रकार उचित छन्द के विन्यास से रसोत्पत्ति में सुगमता होती है। कारण यह है कि छन्द की शब्द-योजना, पदशैया, गति एव लयान्विति से रस एव भाव का गहरा संबध है। हिन्दी-काव्य परपरा मे छप्पय, घनाक्षरी और आल्ह छन्द का प्रयोग वीर, भयानक और रौद्र रस के लिए हुआ है। नीति और उपदेश के लिए दोहा एव कुडलिया का प्रयोग हुआ है।

आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं कि वाणी जिनके वश मे है और सब छन्दो पर जिनका समानाधिकार है, वे हर एक विषय के लिए उपयुक्त छन्द चुन सकते है,

उनके लिए कोई प्रतिबन्ध नही है। फिर भी कवि को अभ्यास से जिस छन्द मे विशेष प्रगल्भता प्राप्त हो जाय, उसे चाहिए कि वह अपने प्रबध मे उसी छन्द का विशेष प्रयोग करे[१]।

रीति ग्रथकारो ने शब्द-दोष के अन्तर्गत 'हतवृत्तता' नामक दोष का उल्लेख किया है। जो जो छन्द रस के स्वभाव से विपरीत पडता हो, उस छन्द का प्रयोग उस रस के लिए करना ही 'इतवृत्तत्व' दोष है। इससे सिद्ध है कि छन्द और रस का घनिष्ठ सबध है। भाव एव वस्तु के अनुकूल छन्द का प्रयोग करने से श्रेष्ठ काव्य की उत्पति होती है। महाकवियो का काव्य इसमे प्रमाण है। इस प्रकार शान्त रस के उपदेश मे अनुष्टुप, नीति के वर्णन मे वशस्थ वीर और रौद्र रस मे वसन्त तिलक, सर्गान्त मे मालिनी, औदार्य के वर्णन मे हरिणी, आक्षेप, क्रोध या धिक्कार के भावो मे पृथ्वी छन्द, वर्षा, प्रवास तथा अन्य प्रकार की विपत्ति के वर्णन मे मन्दाक्रान्ता, राजाओ के शौर्यादि की प्रशसा मे शार्दूलविक्रीडित तथा मुक्तक सूक्तियो के वर्णन मे दोधक, त्रोटक छन्दो का प्रयोग उचित है[२]।

आधुनिक हिन्दी कविता मे नीति और शिक्षा के वर्णन मे दोहा एव चौपदो का प्रयोग हुआ है। हरिऔध जी की सतसई तथा उनके चौपदो मे इसका सफलता से प्रयोग हुआ है। करुण रस के लिए मालिनी, पीयूष वर्षण, रूपमाला, सखी, प्लवगम, हरिगीतिका आदि छन्दो को चुना गया है। इसका विशद् विचार पन्त जी की पल्लव की भूमिका मे पाया जाता है[३]। वे बालोपयोगी कविताओ के लिए पद्रह मात्रा के चौपई छन्द तथा १६ मात्राओ के अरिल्ल छन्दो को अत्यत उपयुक्त ठहराते है। वीर और ताटक छन्दो का उपयोग वीर रस की कविताओ मे पाया जाता है। सुभद्राकुमारी की प्रसिद्ध 'झासी की रानी' कविता मे ताटक छन्द प्रयुक्त हुआ है। युद्ध वर्णन के प्रसगो मे ३१ एव ३२ मात्राओ के, वीर तथा लावनी छन्दो का सफलता से प्रयोग हुआ है। 'हल्दी घाटी' एव 'विक्रमादित्य' जैसे वीर रस प्रधान प्रबन्ध काव्यों मे इन्हीं छन्दो का प्रचुरता से प्रयोग है।

वीर रस को उद्दीप्त करने के लिए दिनकर, श्यामनारायण पाण्डेय, अनूप शर्मा, आनन्दकुमार आदि कवियो ने अपने काव्यो मे कवित्त और घनाक्षरी का

१—देखिये, आचार्य क्षेमेन्द्र, सुवृत्त तिलक, विन्यास ३।

२—वही।

३—सुमित्रानंदन पत, पल्लव भूमिका, पांचवां संस्करण, पृ० ३१।

प्रयोग किया है। ब्रजभाषा के काव्यो मे जगन्नाथ दास 'रत्नकर', रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', वियोगीहरि, हरदयालु सिंह आदि कवियो ने कवित्त और सवैया को अत्यत सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया है।

निष्कर्ष—

आलोच्यकालीन कविता के छन्द सबधी अध्ययन से यह पता चलता है कि ब्रजभाषा की रचनाओ तथा प्रबन्ध काव्यो मे पुराने छन्दो की परपरा शत प्रतिशत अश मे प्रचलित है। छायावादी-रहस्यवादी एवं राष्ट्रीय काव्य धाराओ मे भी छन्द की मर्यादा का पालन हुआ है, किन्तु परंपरानुगत वर्ण वृत्तो को छोडकर उनको मात्रिक 'छन्दो में ढालने का प्रयास निरन्तर पाया जाता है। प्रगतिशील काव्य मे भी मात्रा, लय, तुक, गीत एव पाद-योजना का आधार मिलता है। किन्तु प्रयोगवादी कविता मे छन्द शास्त्र के सभी नियम बहिष्कृत हो गए है। सक्षेप मे प्रबन्ध के रचनाकारो ने परपरानुगत छन्दो का या छन्द के नियमो का अवश्य ही पालन किया है, मुक्तक एव नई कविता मे पुराने छन्दो का पूर्ण बहिष्कार हो गया है।

कवि-समय-परंपर ।

कवि-प्रसिद्धियो का वर्णन सस्कृत की कवि-शिक्षा की पुस्तको मे प्रायः सर्वत्र मिलता है। काव्यालकार सूत्र, काव्य कल्पलता वृत्ति[१] अलकार शेखर,[२] कवि कल्पलता[३] तथा काव्य मीमासा मे थोडे-बहुत अतर से कवि-सप्रदायो का वर्णन एक समान ही है। राजशेखर ने काव्य-मीमासा के अध्याय चौदह, पद्रह तथा सोलह मे कवि-समयोका अधिक विस्तार से वर्णन किया है। अन्यत्र इसका वर्णन प्रथा पालन के लिए हुआ है। कवि-समयो को तीन भागो मे बाटा जाता है—(१) असत का वर्णन, (२) सत का अनुल्लेख और (३) नियम।

(१) असत् का वर्णन

काव्य मे ऐसी बातो का वर्णन पाया जाता है, जिनका अस्तित्व नही है, यथा—नदियो मे कमल, कुमुदादि का वर्णन, सभी जलाशयो मे हंस, सारसादि पक्षियो का निवास, सभी पर्वतो पर सुवर्ण, रत्न आदि खानो का वर्णन। नदियो

१—देखिए, काव्य कल्पलता वृत्ति, द्वितीय प्रतान, पृ० ३०–३१।

२—देखिए, केशव मिश्र, अलंकार शेखर, पृ० ५५–५६।

३—देखिए, कवि कल्पलता, १।३।४५–४७।

मे कमल तथा कुमुद नही होते, सभी जलाशयो मे हस नही होते और न सभी पर्वतो मे सुवर्ण और रत्न की खाने ही होती हैं किन्तु कवि-समयानुसार उनका वर्णन आवश्यक होता है। रात्रि मे चकवा-चकवी का पृथक् होना, चकोर का चन्द्रिका पान करना, यश और हास्य का शुक्ल रग, अयश और पाप का कृष्ण रग, क्रोध और प्रेम को लाल वर्णन करना, तथा कृष्ण और नील, कृष्ण और हरित, कृष्ण और श्याम, पीत और रक्त एव शुक्ल तथा गौर को एक समान वर्णन करना। इसी प्रकार अन्धकार को मुष्टि ग्राह्य और सूची-भेद्य (सूई से छेदने योग्य) कथन करना, एव चन्द्रिका को घडे मे भरना आदि।

(२) सत् का वर्णन न करना

कुछ वस्तुओ का अस्तित्व होने पर भी कवियो द्वारा उनका वर्णन नही किया जाता है, यथा—वसन्त मे मालती का वर्णन न करना, चन्दन के वृक्ष पर पुष्प और फलो का वर्णन न करना, अशोक के फलो का वर्णन न करना, मकरादि का समुद्र मे ही वर्णन करना, कृष्णपक्ष मे चादनी का वर्णन न करना, शुक्ल पक्ष मे अन्धकार का वर्णन न करना।

(३) नियम

कुछ बाते ऐसी है जो शास्त्र एव व्यवहार मे स्वीकृत होने पर भी कवियो द्वारा नियमित कर दी गई हैं यथा—हिमालय पर ही भोज पत्र, मलय गिरि मे ही चन्दन का वर्णन, छत्र, जल, पुष्प, वस्त्रादि को शुक्ल वर्णन करना, केश, काक, सर्प, समुद्र एव बादल को काला वर्णन करना, रत्न, बन्धूक, विम्बाफल, कमल और सूर्य को लाल वर्णन करना, केवल बसन्त मे ही कोयल के शब्द का वर्णन करना, केवल वर्षा मे ही मोर के नाच-गान का वर्णन करना आदि। सामान्यतया कविजन उपर्युक्त बातो का इसी प्रकार वर्णन करते हैं। कुछविशेष नियमो का वर्णन किया जाता है, यथा—सम्पत्ति और कमला, नाग और सर्प, दैत्य और असुर, को एक समान वर्णन करना। इनमे परस्पर भेद होते हुए भी कवियो ने इनका अभेद रूप से वर्णन किया है। इसी प्रकार चन्द्रमा मे खरगोश और मृग को एक समान वर्णन करना, कामदेव की ध्वज मे मीन और मकर को एक-सा वर्णन करना, प्राचीनकाल से शिव के मस्तक पर स्थित होने पर भी चन्द्रमा को बाल चन्द्र कहना, मनुष्यो के शृङ्गार का वर्णन मस्तक से तथा देवताओ के शृङ्गार का वर्णन चरणो से आरभ करना आदि विशेष नियमो मे स्थान रखते है।

सहित्य दर्पण तथा अलकार शेखर मे सुन्दरियो के पदाघात से अशोक

मे पुष्प खिलने, कुल्ला करने से बकुल (मौलसिरी) के खिलने का भी वर्णन है। इसी प्रकार स्त्रियो के स्पर्श से प्रियगु, देखने से तिलक वृक्ष, आलिगन से कुरवक, नृत्य करने से कर्णिकार के प्रफुल्लित होने का भी उल्लेख मिलता है।

कवि समयो के विषय मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' की भूमिका मे विस्तृत विचार किया है किन्तु कवि प्रसिद्धियो की उत्पत्ति का मूल कारण आज भी अनुसधान का विषय है। राजशेखर ने कहा है कि प्राचीन काल के विद्वानो ने सहस्र शाखा वाले वेदो का अवगाहन करके, विविध देश और द्वीपो का परिभ्रमण करके जो कुछ निश्चित किया है, वह अयथार्थ कैसे हो सकता है? देश-काल के परिवर्तन से यदि आज उन परपराओ मे कुछ भेद हो गया है, तो भी उन्हे अस्वीकार नही किया जा सकता। कारण यह है कि देश काल और शास्त्र अनन्त है। यदि किसी देश या काल-विशेष मे वे बातें नही मिलती हैं तो इससे उन्हे असत्य नही कहा जा सकता। तात्पर्य यह कि असीमित ज्ञान को सीमित देश-काल की परिधि मे नही बाधा जा सकता।

आलोच्य काल के काव्यो मे जब कवि-प्रसिद्धियो की खोज करते है तो बहुधा निराश होना पडता है। मुक्तक और प्रगीत काव्य मे तो परम्परागत रूप मे इनका वर्णन प्रायः मिलता ही नही है, कही कही प्रबन्ध काव्यो मे ही इनका उल्लेख पाया जाता है।

मलयाचल पर चन्दन के वृक्षो का वर्णन,[१] शिव के मस्तक पर चन्द्रमा का निवास,[२] चकवा-चकवी के रात्रि मे पृथक् पृथक् हो जाने का वर्णन,[३] वर्षा काल मे मोरो के नृत्य-गान का वर्णन,[४] चकोर का चन्द्रिका पान करना,[५] हास्य और यश का श्वेत रग,[६] अयश और पाप का कृष्ण रग, केवल बसन्त मे ही कोयल का कूकना आदि आदि बातो का उल्लेख काव्यो मे यत्रतत्र पाया जाता है।

कीर्ति के श्वेत रग का वर्णन—

(१) कीर्ति राका-रजनी को देख।
विपुल पुलकित है लोक-चकोर॥ वैदेही बनवास ३।२१

१—गंगावतरण, ७। १०।
२—वही, ७। १६।
३—सिद्धार्थ, पृ० ५४।
४—वही, पृ० १०५।
५—रावण महाकाव्य ७। २३।
६—वैदेही बनवास १५। ६१।

(२) उडते उनके कलित कीर्ति के केतु हैं।

—वैदेही बनवास १५।६९

इसी प्रकार शुक्ल पक्ष के वर्णन मे अन्धकार का तथा कृष्ण पक्ष के वर्णन मे चादनी का वर्णन नही पाया जाता है। चन्दन के वृक्ष पर पुष्पो का वर्णन तथा अशोक के फलो का वर्णन भी नही मिलता है।

आधुनिक हिन्दी-कविता मे कवि-सप्रदाय की थोडी सी ही बातो का वर्णन मिलता है, अधिकाश बातो का उल्लेख नही किया गया है। सुन्दरियो के पदाघात से अशोक तथा मुख-मदिरा के सीचने से वकुल के विकसित होने का उल्लेख सस्कृत-काव्य के अतिरिक्त अन्यत्र नही है। आधुनिक युग के कवियो को तो कवि-सप्रदाय की बहुत सी बातो का ज्ञान भी नही है। फिर कवि-समयो का विकास पौराणिक युग की देन है, आधुनिक युग मे वैज्ञानिक शोधो के प्रकाश मे कवि-सप्रदाय की बहुत सी बाते असत्य सिद्ध हो चुकी है। हसो के क्षीर-नीर-विवेक तथा मानसरोवर पर निवास की बात तथ्यहीन है। आजकल हस है भी कहाँ ? उनका मोती भक्षण करना तो और भी सदेहजनक है। इस प्रकार आधुनिक काव्य मे कवि-समयो की उपेक्षा हो गई है अथवा प्रकारान्तर से उनकी वैज्ञानिक व्याख्या कर दी जाती है। निष्कर्ष यह कि आधुनिक-हिन्दी-कविता मे केवल प्रबन्ध काव्यो मे ही यत्रतत्र कवि-सप्रदायो की बातो का उल्लेख हुआ है। अन्य काव्य रूपो मे यह परम्परा लुप्तप्राय है।

द्वितीय खण्ड
आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयोग

सप्तम् अध्याय

वस्तु-उपादानों में प्रयोग

आधुनिक हिन्दी-काव्य में प्रयोग

योग के प्रेरक स्रोत—

आलोच्यकाल प्रयोगो की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यो तो श्रेष्ठ कवियो की रचनाओ मे प्रयोग सर्वत्र मिलते हैं क्योकि अनुकरण तथा पुनरावृत्ति किसी को भी रुचिकर नही होती, किन्तु आधुनिक युग (१९२०-५०) मे काव्य के नूतन प्रयोगो की ओर कवियो का एक सचेष्ट प्रयत्न दिखाई पडता है। छायावाद युग के प्रारभ से ही काव्य क्षेत्र मे एक नवीन क्रान्ति का आरभ होता है। इस युग का काव्य द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया का फल था। इस कारण छायावादी कवियो मे एक नवीन स्वच्छन्दतावादी लहर उत्पन्न हुई जिसके फल-स्वरूप नूतन काव्य के निर्माण के लिए कवि पाश्चात्य साहित्य की रोमाचक प्रवृत्तियो का अध्ययन करने लगे। कुछ कवि बगला साहित्य की ओर भी झुके। भाव, भाषा और कल्पना की दिशा मे नूतन प्रवोग होने लगे। परम्परानुगत रीतिकालीन काव्य शैली के विषय मे पल्लव की भूमिका मे कविवर पन्त ने लिखा है—

'भाव और भाषा का ऐसा शुक-प्रयोग, राग और छन्दो की ऐसी एक-स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओ की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एव तुको की ऐसी अश्रान्त उपल-वृष्टि क्या ससार के और किसी साहित्य मे मिल सकती है? घन की घहर, भेकी की भहर, झिल्ली की झहर, बिजली की वहर, मोर की कहर, समस्त सगीत तुक को एक ही नहर मे बहा दिया गया और बेचारे औप-कामन की बेटी उपमा को तो बाँध ही दिया। आँख की उपमा? खजन, मृग, ६ज, मीन इत्यादि, होठो की? किसलय, प्रवाल, ताल लाल इत्यादि, और इन धुरन्धर साहित्याचार्यों की? शुक, दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि[१]।"

इससे स्पष्ट है कि काव्य के नूतन प्रयोगो का आग्रह कवियो के हृदय को आलोडित कर रहा था।

आलोच्यकाल विशिष्ट वादो का युग है। हर एक कवि किसी न किसी वाद-विशेष से प्रभावित है। काव्य के नये प्रयोगो का अध्ययन करने से पहले उनके प्रेरक-स्रोतो का अध्ययन कर लेना समीचीन होगा। अतएव यहाँ प्रयोगो की पृष्ठ भूमि पर सक्षेप मे विचार किया जाता है।

१—पल्लव की भूमिका, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ८।

आलोच्यकालीन हिन्दी-काव्य को प्रभावित करने वाले स्रोतो का उल्लेख किया जाता है—

१—वैज्ञानिक उन्नति
२—सास्कृतिक पुनरुत्थान
३—राष्ट्रीय आन्दोलन
४—स्वच्छन्दतावाद
५—साम्यवाद
६—मनोविश्लेषणवाद

१—वैज्ञानिक उन्नति—

योरप के देशो मे सबसे पहले वैज्ञानिक आविष्कारो की धूम मची। नये नये आविष्कारो ने ब्रिटेन मे औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। इसके फलस्वरूप वहाँ के लोगो के जीवन, चिन्तन एव दृष्टि मे एक महान् परिवर्तन आया। विज्ञान की दृष्टि पदार्थ के शोध की ओर उन्मुख है। वह युक्ति, प्रमाण एव तर्क मे विश्वास करता है। वस्तु की सत्ता को प्रधान मानने के कारण विज्ञान का दृष्टिकोण यथार्थ-वाद की ओर है। अलौकिक चमत्कार, अधविश्वास एव कल्पना से उसका स्वाभाविक विरोध है। भारत मे अगरेजी राज्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर यहाँ भी यान्त्रिक सभ्यता का प्रचार बढने लगा।

विज्ञान ने आधुनिक कवि तथा लेखको को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। काव्य मे बौद्धिकता, तर्क, विवेचन, सिद्धान्त-निरूपण सब विज्ञान के प्रतिफल हैं। प्राचीन काव्य धर्म-प्रेरित था, आधुनिक काव्य विज्ञान-प्रेरित। धर्म ने मानव-बुद्धि को पारलौकिक विषयो की ओर उन्मुख किया था, विज्ञान ने ऐहिक विषयो की ओर। धर्म की जिज्ञासा ने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के माध्यम से जीव एव ईश्वर के रहस्य का उद्‌घाटन किया था, विज्ञान ने अनन्त पृथ्वी, अनन्तआकाश, जड़-चेतन, विविध यत्र, कला-कौशल एव अणु-परमाणु आदि अनेक नूतन वितयो को उपस्थित किया है। आधुनिक कवि विज्ञान-वोध से जितना प्रभावित है, उतना धर्म-बोध से नही। यह नूतन प्रवृत्ति वैज्ञानिक युग की देन है। परपरा से इसका कोई सबध नही।

२—सांस्कृतिक पुनरुत्थान

आधुनिक हिन्दी-कविता पर सास्कृतिक जागरण का भी प्रभाव है। उन्नीसवी शती मे देश के भीतर एक सास्कृतिक उत्थान की लहर उठी थी। ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज को जन्म दिया, जिसने वैदिक सस्कृति के प्रचार-प्रसार को लक्ष्य बनाया। इसके अतिरिक्त ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, सर्व आव

इडिया सोसाइटी आदि सस्थाओ ने भी अपने अपने ढग पर देश के सास्कृतिक विकास मे योग दिया।

सास्कृतिक गौरव की भावना ने आदर्शवाद को जन्म दिया। आदर्श व्यक्ति, आदर्श समाज, आदर्श राष्ट्र एव आदर्श जीवन को चित्रित करने की काव्य-प्रवृत्ति इसी का परिणाम है। वर्तमान युग मे मध्यकालीन धर्म का स्थान सस्कृति ने ग्रहण कर लिया है। सास्कृतिक चेतना के फलस्वरूप काव्य मे आत्म गौरव, प्रेम, सेवा, सहानुभूति, करुणा आदि सद्वृत्तियो को जागृत करने वाले विषयो को काव्य मे स्थान मिलता है। छायावादी युग के कवियो पर इसका गहरा प्रभाव है।

३—राष्ट्रीय आन्दोलन

आधुनिक हिन्दी-कविता पर तीसरा प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन का है। प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के पश्चात् नेशनल काग्रेस को महात्मा गाधी का नेतृत्व मिला। उसके नेतृत्व मे असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह का जन्म हुआ। इससे देश मे क्रान्ति की एक सशक्त लहर उठी, जिसने जन-मानस मे देश भक्ति की भावना जागृत कर दी। उधर अगरेजी साहित्य मे स्वदेश-प्रेम का स्वर बहुत शक्तिशाली था। उसका भी हिन्दी-कवियो पर प्रभाव पडा। इससे सपूर्ण देश मे राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। इस राष्ट्रीय जागृति का हिन्दी-कविता पर भी यथेष्ट प्रभाव पडा, जिसके फलस्वरूप काव्य मे राष्ट्रीय विषयो का आगमन हुआ। आधुनिक युग की राष्ट्रीय काव्य-धारा पर सबसे अधिक प्रभाव है।

४—स्वच्छन्दतावाद

स्वच्छन्दतावाद के विषय मे प्रथम अध्याय मे विवेचन हो चुका है। उन्नीसवी शताब्दी मे इस काव्य की प्रवृत्ति का विकास जर्मन, फ्रास, इग्लैड आदि देशो मे हुआ। इग्लैड के वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, ब्लेक आदि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के कवि है। स्वच्छन्दतावाद वाह्यानुभूति की अपेक्षा भावानुभूति की ओर उन्मुख रहता है तथा काव्य के क्षेत्र मे किसी नियम-बद्ध प्रणाली को स्वीकार न करके यह नए नए प्रयोगो मे विश्वास करता है। इसकी स्वतत्र परिधि मे आदर्शवाद तथा यथार्थवाद दोनो को ही प्रश्रय मिल जाता है। आधुनिक हिन्दी-कविता मे छायावाद-रहस्यवाद की काव्य धारा को स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति का परिणाम कहा जा सकता है। कोई कोई विद्वान् भारतीय स्वतत्रता सग्राम के पश्चात् आने वाले नव जागरण को 'स्वच्छन्दतावाद' के प्रवर्तन का मूल कारण मानते है।[1]

१—देखिए, डा० शिवकंठ मिश्र, खड़ी बोली का आन्दोलन, पृ० २६१।

५—साम्यवाद

यह एक राजनीतिक दर्शन है, जिसके प्रवर्तक हैं, कार्ल मार्क्स-मार्क्स के दर्शन ने एक नई दृष्टि दी है, जिसका आधार भौतिक जगत है। वस्तु जगत् की समग्र उन्नति का आधार सम्पत्ति है। मानव-समाज की सपूर्ण प्रगति इसी के आश्रित है। सम्पत्ति पर पू जीपतियो का अधिकार है। वे उसके द्वारा निर्धनो का शोषण करते हैं। इससे समाज चिरकाल से दो वर्गों मे बटा हुआ है, पू जीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। पहले शोषक है, दूसरे शोषित। मार्क्स का दर्शन पू जीपति वर्ग का अन्त कर आर्थिक साम्य की स्थापना करना चाहता है। इसके लिए सघर्ष अपेक्षित है। यह दर्शन पूर्णतः वैज्ञानिक है तथा समाज के वैज्ञानिक विकास मे विश्वास करता है। यह प्राचीन रूढि एव परम्पराओ मे विश्वास नही करता। प्राचीन समाज-व्यवस्था सामन्तवादी रही है, जो सभी अनाचारो की मूल है। इसे ईश्वर, धर्म तथा आदर्शवाद मे किंचित् आस्था नही, क्योकि ये पू जीवादी युग की देन हैं। साम्यवाद इनको सामाजिक प्रगति के लिये बाधक तत्व समझता है। इसी प्रकार वह भाव जगत् को भ्रान्तिपूर्ण मानता है, अतएव श्रद्धा, विश्वास, भावना आदि बाते उसके लिए हेय है।

हिन्दी के प्रगतिवादी कवियो पर मार्क्स के दार्शनिक सिद्धान्तो का सबसे अधिक प्रभाव है।

प्रगतिवादी कवि वस्तु के यथार्थ चित्रण को प्रधानता देते हैं। रस, रीति, वृत्ति, छन्द, अलकार एव साधारणीकरण को उन्होने काव्य से सर्वथा वहिष्कृत कर दिया है। वस्तु के यथातथ्य वर्णन से उन्हे प्रेम है। सामाजिक वस्तु वाद और यथार्थ वर्णन ही उनके काव्य मे मुख्य तत्व हैं। इस यथार्थवाद के विषय मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है। साहित्य मे यथार्थवाद शब्द का प्रयोग नये सिरे से होने लगा है। यह अग्रेजी साहित्य के 'रियलिज्म' शब्द के तौल पर गढ़ लिया गया है। यथार्थवाद का मूल सिद्धान्त है, वस्तु को उसके यथार्थ रूप मे चित्रित करना। न तो उसे कल्पना के द्वारा विचित्र रगो से अनुरजिन करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए उसे काट-छाट कर उपस्थित करना। यूरोपियन साहित्य मे रियलिज्म का व्यवहार रोमेटीसिज्म और आइडियलिज्म के विरुद्ध अर्थ मे हुआ। यथार्थवाद के विरोधी लेखको ने इस दृष्टि से लिखे हुए उपन्यासो और काव्यो को 'फोटोग्रेफिक चित्रण' कहा है।[१]

---

१ हिन्दी साहित्य, पृ० ४२७।

प्रगतिवादी काव्यधारा के साथ एक दार्शनिक चिन्तन जुडा हुआ है। उसने सामाजिक विकास, अर्थ-व्यवस्था, रीति-नीति, समाज-सम्बन्ध, धर्म एव ईश्वर सबधी विचारो को एक नये आलोक मे देखा है।

(६) मनोविश्लेषण—

मनोविश्लेषण-पद्धति से चिकित्सा करते समय रोगी के अचेतन मन (अनकाशस माइन्ड) मे पडी हुई दमित इच्छाओ को चेतना के स्तर पर लाने के लिए एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया से काम लिया जाता है, जिसे सहज सबध (फ्री ऐसोसियेशन) कहते हैं। इसमे रोगी से कुछ प्रश्न किए जाते हैं तथा उसे स्वतत्रतापूर्वक उत्तर देने के लिए प्रेरित किया जाता है। जिस शब्द के उत्तर मे उसके मन की ग्रन्थि का सबध जुडा रहता है, उसका उत्तर देने मे उसको विलम्ब हो जाता है तथा मार्मिक शब्द (नोडल आइडियाज़) का उत्तर भी असम्बद्ध होता है। इससे मनोविश्लेषणकर्ता को रोगी के मन की ग्रथि का पता लग जाता है और उसके अन्तर्द्वन्द्व को समझने मे सहायता मिल जाती है। यही विधि सहज सबध या मुक्त आसग (फ्री ऐसोसियेशन) के नाम से प्रसिद्ध है।

यौन-भावना—

प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता फ्रायड के मत से यौन-वासना ही मूल वृत्ति है जो प्रत्येक मनुष्य के समस्त आचरण को प्रभावित करती है। प्रत्येक चेष्टा, कार्य एव व्यापार मे यही काम-वृत्ति प्रकाशित होती है। शैशव से वृद्धावस्था तक यही मनुष्य के समस्त आचरण को प्रभावित करती है तथा यह भिन्न-भिन्न रूपो मे प्रकट होती है। शृगारिक चेष्टाएँ, विलास-क्रीडाएँ और हास-परिहास इसी के अवान्तर रूप है।

भारतीय आचार्यों ने भी रीति भाव को विशेष महत्व प्रदान किया है किन्तु वह रस की दृष्टि से है, इसके विपरीत योरुप के मनोवैज्ञानिको ने मानवीय व्यवहार की दृष्टि से इसका अध्ययन किया है। मैग्डूगल ने विविध प्राणियो पर प्रयोग करके तथा फ्रायड ने रोगियो के मानसिक भावो का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है तथा काम-वृत्ति के दमन को हानिकारक बतलाया है। धार्मिक कृत्य, कविता, संगीत एव अन्य कलाओ के द्वारा इसका शोध हो सकता है। वर्तमान युग की प्रयोगवादी काव्यधारा पर फ्रायड के मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानो का सबसे अधिक प्रभाव है।

प्रयोगवाद—

योरुप की अतिवस्तुवाद (सुर-रियलिज्म), प्रकृतवाद (नेचूरलिज्म) आदि

काव्य-प्रवृत्तिया फ्रायड के मनोविश्लेषण विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित हैं। डी० एन० लारेंस, टी० एस० ईलियट, वर्ट्रेन्ड रसेल, एजरापाउड आदि अनेक कवियों ने मनोविश्लेषण के सिद्धान्त को दृष्टिबिन्दु मे रखकर काव्य-रचनाएँ की है। हिन्दी मे अज्ञेय स्कूल के कवियो पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। सन् १९४२ से तार-सप्तक के प्रकाशन के साथ प्रयोगवादी कवियो का काव्य-क्षेत्र मे आगमन होता है। इसके पश्चात् सन् १९५२ मे दूसरे सप्तक तक प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्ति के विषय मे विविध आलोचको ने अपने अपने विचार प्रकट किए है। उनका विवेचन करने की यहा आवश्यकता नही। इतना निश्चित है कि इस काव्य-प्रवृत्ति के रचनाकार फ्रायड के यौनवाद तथा मनोविश्लेषण से अत्यधिक प्रभावित है। यद्यपि प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय जी ने प्रयोग का कोई 'वाद' नही स्वीकार किया है, फिर भी 'वाद' का लेबिल इनके मत्थे मढ गया है। वस्तुतः सिद्धान्त रूप से प्रयोग काव्य के साधन मात्र हैं, साध्य नही। इनकवियो का दावा है कि काव्य का सत्य आज भी अन्वेषण का विषय है तथा काव्य के नवीन प्रयोग उसी को प्राप्त करने के साधन है। आधुनिक युग के व्यस्त मानव की उलझी हुई सवेदनाओ को कविता मे चित्रित करने के लिए ये कवि विभिन्न उपायो से काम लेते है। प्रयोगवादी कवि काव्य-वस्तु, रूप, शिल्प एव शैली के क्षेत्र मे अभिनव प्रयोग करने के पक्ष मे है क्योकि काव्य के सत्य को प्रकट करने के लिए पुराने साधन अपूर्ण है।

प्रपद्यवाद—

यह वर्तमान युग की एक सर्वथा नवीन काव्य-प्रवृत्ति है, जिसे इसके प्रवर्तको के नाम पर 'नकेनवाद' भी कहा गया है। इस धारा के कवि नवीन प्रयोगो को काव्य का साध्य मानते हैं तथा पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओ को निष्प्राण समझते है। प्रपद्यवाद का सर्वतत्र स्वतत्र दर्शन है, क्योकि उसे किसी शास्त्र या परम्परा की मान्यता मे विश्वास नही है। सतत् प्रयोग करते जाना ही इसका लक्ष्य है। छन्द, अलकार, भाव एव विचारो से कविता नही लिखी जाती, वह शब्दो से लिखी जाती है, ऐसा मानकर प्रपद्यवादी कवि शब्द सकेतो के द्वारा ऐन्द्रिय सवेदनो को आघात देता है। प्रपद्यवाद काव्य की पूर्वकालीन सम्पूर्ण परम्पराओ का विरोध करता है तथा नवीन प्रयोगो को काव्य का सत्य समझता है। प्रेषणीयता एव साधारणीकरण को वह काव्य के लिए आवश्यक नही समझता। सक्षेप मे प्रपद्यवाद का अपना एक दर्शन है, जिसके अनुसार उसने स्वतत्र काव्य-मार्ग का अवलम्बन किया है। इसके लिए उसने सहज सबध (फ्री

एसोशियेशन) को प्रणाली को स्वीकार किया है।[१]

नवीन वस्तु तथा उपादान—

आलोच्य काल के प्रयोग अधिकतर काव्य के रूप एव शैली के क्षेत्र मे ही हुए है। प्रवन्ध, मुक्तक तथा प्रगीत काव्य के रूपो के अन्तर्गत तो नाना परिवर्तन हुए ही है, इससे भी अधिक छन्द, अलकार, प्रतीक एव भाषा के क्षेत्र मे अनेक प्रकार के प्रयोगो का सूत्रपात हुआ है। इसी प्रकार भाव-व्यजना मे भी नवोन्मेष के दर्शन होते है तथा काव्य-वस्तु की दिशा मे भी नये विषयो एव उपादानो का उद्‌घाटन हुआ है। इस अध्याय मे काव्य के नवीन विषय एव उपादानो का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। ये विषय सर्वथा नूतन है, क्योकि ये किसी प्राचीन परपरा से सबद्ध नही है। ये आधुनिक युग की नवीन परिस्थिति प्रवृत्ति एव काव्योन्मेष के प्रतिफल है।

आलोच्य काल के नवीन विषय एव उपादानो को निम्नाकित भागो मे बाटा जा सकता है—(१) प्रकृति, (२) राष्ट्र, (३) राजनीति, (४ विज्ञान तथा (५) अन्तर्राष्ट्रीय विषय। सबसे पहले प्रकृति चित्रण का अध्ययन किया जाता है।

प्रकृति—

आधुनिक युग मे अगरेजी साहित्य के प्रभाव से कवियो ने प्रकृति के अभिनव रूपो का तथा उसकी अन्तश्छवियो का स्वच्छन्दता से निरीक्षण किया है। वर्ड्‌सवर्थ, शैली, कीट्स, टेनीसन आदि अगरेजी स्वच्छन्दतावादी कवियो का हिन्दी के प्रसाद, पन्त, निराला आदि पर यथेष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। अगरेजी काव्य के अध्ययन से इन कवियो ने प्रकृति के अनन्त दृश्यो मे सूक्ष्म सौन्दर्य का दर्शन किया है जिसके फलस्वरूप काव्य के विषयो का यथेष्ट विस्तार हुआ है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि छायावादी कवियो ने प्रकृति के छाया-चित्रो की ओर विशेष अनुराग दिखाया है। यह प्रवृत्ति अनेक रूपो मे प्रकट हुई है।

पहले रूप मे छायावादी कवि प्रकृति को उल्लासपूर्ण रूप मे देखता है। प्रकृति उसके लिए जीवित-जाग्रत सहचर है, जिसका प्राण नव चेतना से स्पन्दित है। वह प्रकृति मे आशा और आह्लाद का स्वर सुनता है—

गाता खग प्रातः उठकर—
सुन्दर सुखमय जग-जीवन!

१—देखिए, अन्तिका वर्ष ८ अंक १, प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, प्रो० केसरीकुमार सिह पृ० २५१।

गाता खग सन्ध्या-तट पर—
मगल मधुमय जग-जीवन !

—पन्त

पन्त जी की गु जन की 'खिलती मधु की नव कलिया,' 'कलरव किसको नही सुहाता,' 'लाई हू फूलो का हास,' 'जीवन का उल्लास' कविताओ मेप्रकृति को उल्लासमय रूप मे चित्रित किया गया है ।

दूसरे रूप मे प्रकृति को विषाद-मग्न दिखाया गया है–

सकुच सजल खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कु जो मे–
रजत-श्याम तारो सी जाली,
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधुकण,
हर सिंगार झरते है झर झर !
आज नयन आते क्यो भर भर ?

—महादेवी

'आंसू' और 'नीरजा' की कविताओ मे प्रकृति का यही रूप चित्रित है । 'यमुना के प्रति' कविता मे निराला का कवि अतीत के गौरव गान सुनता है तथा सुखमय जीवन की स्मृतियो को सामने लाकर वर्तमान की दुरवस्था का चित्र खीचता है—

यमुने तेरी इन लहरो मे
किन अधरो की आकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान !

—निराला

तीसरे रूप मे मानवीय क्रिया-व्यापारो का आरोप करके प्रकृति को उद्धत और स्वेच्छाचारी मानव के रूप मे भी दिखाया गया है–परिमल की 'बादल राग' कविताओ मे बादल के स्वच्छन्द आचरण का वर्णन है—

ऐ निर्बन्ध !
अन्धतम अगम अनर्गल-बादल !
ऐ स्वच्छन्द—
मद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृखल !
ऐ उद्दाम !

अपार कामनाओ के प्राण,
बाधा रहित विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन-घोर गगन के ऐ सम्राट ।

—निराला

चौथे रूप मे चेतन धर्म का आरोप कर प्रकृति मे यौन-वासना का उद्‌घाटन किया गया है । निराला की 'जूही की कली' कविता इसका उदाहरण है । इसमे कली और मलयानिल मे मानवी धर्मों का आरोप कर नारी और पुरुष मे सभोग का वर्णन किया गया है ।

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोको झडियो से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिए गोरे कपोल गोल ।

—निराला-जुही की कली

निराला की 'सन्ध्या-सुन्दरी', 'शेफालिका,' 'प्रथम प्रभात,' महादेव की 'बसन्त-रजनी,' 'ओ विभावरी' कविताओ मे प्रकृति को सचेतन रूप मे ग्रहण कर शृगारिक भावो की अभिव्यक्ति की गई है ।

इससे स्पष्ट है कि सम्पूर्ण छायावादी काव्य मे प्रकृति सचेतन है तथा उसमे मानवीय व्यापारो का आरोप करके नाना प्रकार के भावो की व्यजना की गई है । प्रकृति के नाना रूपो की ओर ध्यान देने से काव्य क्षेत्र मे विषयो का विपुल विस्तार हुआ है । पन्त जी नें मौन-निमत्रण, शिशु, अन्धकार, छाया, बादल, चादनी, खद्योत, सौर मडल, रश्मि, विहग बाला के प्रति, सान्ध्य तारा, शुक्र, सन्ध्या, बीचि-विलास, हिलोरो का गीत, पवन गीत, निर्झर, प्रभात, अप्सरा, तितलियो का गीत, मधुकरी, गुजन, कलरव, सृष्टि, स्वर्ण किरण आदि विषयो पर काव्य-रचना की है । निराला जी ने युमना के प्रति, भ्रमर गीत, वासन्ती, तरगो के प्रति, जलद के प्रति वसन्त समीर, सन्ध्या-सुन्दरी, कण, बादल-राग, वन-बेला, खुला आसमान, ठू ठ, प्रकाश, नर्गिस आदि नवीन विषयो को काव्य का उपादान बनाया है । प्रसाद जी ने लहर, नीरद, मलयानिल, झरना, पावस, प्रभात, बसन्त, किरण, रजनीगन्धा, सरोज कोकिल, खजन आदि विषयो से काव्य-क्षेत्र को समृद्ध किया है ।

ये सभी विषय नवीन है । प्राचीन काव्य-परपरा से इनका कोई सबध

नही जुडता है, क्योकि ये सभी विषय स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति की देन हैं। इनकी पृष्ठभूमि मे एक स्वतत्र काव्योन्मेष का आधार है, जिसका सबध आधुनिक युग के नवोत्थान से है, परपरा से नही।

राष्ट्र—राष्ट्रीय—सास्कृतिक विषयो पर रचित काव्यो मे निम्नाकित पुस्तके महत्वपूर्ण हैं :—

महाकाव्य—जन नायक, महा मानव, आर्यावर्त, जगदा लोक।

खंड काव्य—पथिक, मिलन, स्वप्न, मौर्य-विजय, बापू, गाधी गौरव, तपस्वी तिलक।

मुक्तक काव्य—हिम किरीटिनी, रेणुका, हुँकार, भैरवी, झासी की रानी।

प्रगीत काव्य—पूजा गीत, खादी के गीत, ग्राम्या, युगवाणी, स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा, अन्य फुटकल रचनाए।

आलोच्य काल मे राष्ट्रीय काव्य-धारा का यथेष्ट विकास हुआ है, जिसकी उपलब्धिया कम महत्वपूर्ण नही हैं। इस धारा को विकसित करने मे हिन्दी के समर्थ कवियो का सहयोग रहा है। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, मोहनलाल महतो 'वियोगी', रामधारी सिह 'दिनकर', रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण, सुभद्राकुमारी चौहान आदि इस काव्य-धारा के प्रमुख कवि हैं।

राष्ट्रीय-सास्कृतिक विषयो का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है (क) जन्म भूमि, (ख) राष्ट्र वीर, (ग) निम्न (अछूत) वर्ग, (घ) सस्कृति, (ड) विप्लव गान तथा (च) दुःखवाद।

मातृ-भूमि—

आलोच्यकाल मे मातृ-भूमि (भारत माता) का विविध कवियो ने वर्णन किया है। जन्म भूमि, पितृ-भूमि, स्वदेश हर एक मनुष्य को प्राणो से भी अधिक प्रिय होता है।

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नही नर-पशु निरा है और मृतक समान है।

इस काल मे स्वदेश पर बहुत सी कविताए लिखी गई हैं। इनमे मातृ-भूमि को दो रूपो मे चित्रित किया गया है—एक है उसका भव्य, मगलमय रूप और दूसरा है, करुणोत्पादक मलिन रूप। पहले रूप मे कवियो ने मातृभूमि को माता या देवता के रूप मे चित्रित किया है तथा प्रेम से उसका स्तवन किया

है। मातृभूमि के मगलमय रूप का चित्रण गुप्त जी ने अनेक कविताओ मे किया है[1]। मैथिलीशरण गुप्त की 'स्वदेश', गोपालशरण सिंह की 'भारत भूमि' और मातृ भूमि', पन्त का 'राष्ट्र गान', 'ज्योति भारत' 'जन भारत', उदयशकर भट्ट की 'प्रार्थना'[2] तथा मौर्य विजय[3] और साकेत[4] मे स्वदेश के गौरवमय स्वरूप का चित्रण है। इन कविताओ मे मातृभूमि को देवी या देवता के रूप मे कल्पित कर उसके प्रति आभार प्रदर्शित किया गया है।

भारत-माता का दूसरा रूप अत्यत करुणापूर्ण है। पन्त जी ने 'भारत माता' कविता मे इस दूसरे रूप का मार्मिक चित्र उतारा है। भारत माता बन्दिनी है। वह परदेशियो के पद-तल मे लुठित है, उसका मन कुठित है। शरदेन्दु हासिनी माता राहु-ग्रस्त है, अतएव उसका स्मित मौन है तथा उसके अधरो पर क्रन्दन-ध्वनि है।

सोहनलाल द्विवेदी ने उसे भिखारिणी के ऊप मे चित्रित किया है[5]। गोपाल सिंह नैपाली ने 'भारत माता' का दोनो रूपो मे चित्र उतारा है[6]।

१—नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर हैं।
नदियां प्रेम-प्रवाह, फूल-तारे मंडन है,
करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

—मैथिलीशरण गुप्त

२—देखिए, एकला चलो रे, पृ० ३३।

३—मौर्य विजय, प्रथम सर्ग, छन्द, १-५।

४—साकेत, पंचम सर्ग पृ० ११६।

५—है फटा अंचल लहरता
वन दरिद्र-ध्वजा फहरता।
रत्न आभरणो बनी तुम,
आज पंथ भिखारिणी।

—पूजागीत

६—जय हे भारत माता,
जंजीरों की झनन-झनन सुन नव युग दौड़ा आता,
प्राची के झिलमिल आंगन में मुक्ति दिवस मुसकाता।

—नैपाली

'एक भारतीय आत्मा' की 'अमर राष्ट्र' कविता मे प्राणोत्सर्ग की ध्वनि गू जती है।

राष्ट्र-वीर—

राष्ट्र वीरो मे महात्मा गाधी का नाम प्रमुख है। जन नायक (रघुवीर शरण मित्र) मे गाधी जी के चरित्र को महाकाव्य का रूप दिया गया है। यह बापू की जीवनी के आधार पर रचित एक विशाल प्रबन्ध काव्य है, जिसमे आन्दोलन, सत्याग्रह, विदेशी शासक, अत्याचार, नेता, देश-सेवक और सत्याग्रही वीरो पर प्रचुर परिमाण मे लिखा गया है। राष्ट्र-पिता गाधी के अतिरिक्त पटेल, सुभाष ब.बू, राज गोपालाचार्य, मौलाना आज़ाद तथा जवाहर लाल आदि अनेक नेताओ के जीवन की प्रासगिक घटनाए वर्णित है[१]।

इसमे सत्याग्रह की घटनाओ के रोमाचक बर्णन आए हैं। सत्याग्रहियो के सिर पर लाठी, डडे, सगीन और दुनालियो की मारें पडती हैं, बच्चो को बूट की ठोकरो से हटाया जाता है तथा महिलाओ पर लोमहर्षक अत्याचार होता है। नमक कानून तोडने के लिए जाते हुए जलूस मे आवाल वृद्ध नारी सभी है। आगे आगे तिरगा झडा लहराता चलता है, मानो आकाश को चूमना चाहता है[२]।

महादेव देसाई के बलिदान का वर्णन अत्यत मर्मस्पर्शी है। अनासक्ति का पाठ पढाने बाले बापू देसाई क शव के पास बैठकर घटो रोते है। विधवा पत्नी का रुदन, नन्हे-नन्हे शिशुओ का क्रन्दन सुनकर कारागृह की दीवारें भी रोती हैं। आगा खा का भवन स्तब्ध है। देसाई का बलिदान अमर है[३]। इसमे महात्मा गाधी को सत्य, अहिंसा एव राष्ट्र प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। देश के लिए सर्वस्व अर्पण करने के कारण गाधी जी राष्ट्र-वीरो मे अग्रगण्य हैं।

वस्तुतः जन नायक चरित काव्य है, महाकाव्य नही क्योकि चरित काव्य का उद्देश्य चरित्र एव जीवनी का वर्णन करना होता है। इसके विपरीत महाकाव्य मे कवित्व पर बल दिया जाता है, जिसका उद्देश्य होता है, रसोन्मेष। प्रस्तुत काव्य मे महात्मा गाधी के जीवन चरित का ही वर्णन है, अतएव यह

१—देखिए, जन नायक, पृ० २६१।
२—वही, पृ० २७७।
३—देखिए, जन नायक, पृ० ४०७।

महाकाव्य से अधिक चरित काव्य है। कथानक और वस्तु वर्णन की दृष्टि से यह सर्वथा नवीन प्रयोग है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी' के आर्यावत का कथानक राष्ट्रीय-सास्कृतिक है। इसमे रानी सयोगिता और कवि-पत्नी दोनो राष्ट्रीय वीरागनाओ के रूप मे चित्रित है। दोनो देवियाँ पृथ्वीराज की पराजय का बदला लेने के लिए जनाह्वान करती है। पृथ्वीराज की पराजय आर्यावर्त की पराजय हो जाती है। पहले रानी पृथ्वीराज की पादुका लेकर सती होना चाहती है, किन्तु व्यक्ति धर्म से राष्ट्र-धर्म को अधिक बडा समझकर वह सती होने से विरत हो जाती हैं। वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से सम्पूर्ण देश को एक झडे के नीचे सुसगठित कर देती है[१]। जब तक वह अनार्यों से स्वराष्ट्र को मुक्त नही कर लेती, तब तक चैन नही लेती[२]। इसमे राष्ट्र के सम्मान की रक्षा के हेतु रानी, कवि चन्द और उसकी पत्नी के शौर्य का वर्णन है। इन्होने स्वदेश के लिए जो कष्ट उठाया है, वह सब अपूर्व है। 'गाधी-गौरव' मे राष्ट्र-नायक महात्मा गाधी का जीवन-चरित वर्णित है जिसमे उनके जीवन की प्रमुख घटनाओ के वर्णन पर अधिक ध्यान रखा गया है। इसमे महात्मा जो को सत्य के पुजारो, सेवा के सिपाही तथा स्वतत्रता के उपासक के रूप मे चित्रित किया गया है।

'जिसने सिखाया स्वाभिमान-सुमत्र सारे देश को,
बन कर नमूना है दिखाया पूर्वजो के वेश को।
जिसकी गिरा गौरवमयी से प्रकट ओज स्फूर्ति है,
ससार मे अद्भुत अहिंसा, सत्य की जो मूर्ति है।

—गान्धी गौरव

तपस्वी तिलक मे लोकमान्य तिलक के जीवन की प्रमुख घटनाओ का वर्णन है। तिलक के आविर्भाव से पूर्व भारत-भूमि पूर्णतः विदेशी शत्रुओ से आक्रान्त थी। अगरेजी शासन ने भारतीय लोगो के स्वाभिमान को कुचल डाला था। उस समय देश को ऐसे राष्ट्रीय नेता की आवश्यकता थी, जो देश मे क्रान्ति उत्पन्न कर जनता मे राष्ट्रीय अभिमान जगा दे। इसी के लिए लोकमान्य तिलक का जन्म हुआ था।

क्रान्ति युग की योजना थी हो गई अनिवार्य,
भेजना भगवान को था एक बस आचार्य।

१—आर्यावर्त, पृ० ७२-७३।
२—वही, पृ० १०४।

बीज बोकर वीरता के फूक दे जो जान,
राष्ट्र के कर मे गहा दे स्वाभिमान कृपाण।

—तपस्वी तिलक

रामनरेश त्रिपाठी के पथिक, मिलन और स्वप्न के नायक भी राष्ट्र वीर हैं। वे देश-सेवा का कठोर व्रत धारण करने वाले और राष्ट्रोद्धार के हेतु सर्वस्व त्याग करने वाले वीर है। पथिक का नायक देश को अत्याचारी क्रूर राजा के शासन से मुक्त कर जन तत्र स्थापित करने मे सफल होता है। इससे समस्त राष्ट्र मे हर्ष और आनन्द छा जाता है[१] स्वप्न के बसन्त और सुमना भी प्राणो को हथेली पर लेकर देश-सेवा मे जुट जाते है। उनके उत्कट परिश्रम, साहस और शौर्य से राष्ट्र का सकट टल जाता है[२]।

राष्ट्र-नायक गाधी के जीवन-चरित्र का वर्णन ठाकुरप्रसाद सिंह के 'महा मानव', गोपालशरण सिंह के जगदालोक और सियारामशरण गुप्त के 'बापू' मे भी पाया जाता है। महामानव मे गाधी जी के जीवन के सघर्ष एव घटनाओ का ही आधिक्य है। इसके वस्तु वर्णन मे सत्य, अहिंसा, समानाधिकार, शोषण के प्रति विद्वेष, जन-जागरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जगदालोक मे गाधी जी को विश्व की महान् विभूति के रूप मे चित्रित किया गया है। 'बापू' मे गाधी जी के महान् आदर्श का चित्रण है। उनके आदर्श चरित्र मे नवीन और पुरातन एक हो गए हैं—

विश्व-महावश-पाल,
धन्य तुम धन्य हे धरा के लाल।
छल छद्म के अबोध
वीत राग वीत क्रोध
तुम मे पुरातन है नूतन मे
नूतन चिरन्तन मे[३]।

सुभद्रा कुमारी ने 'झाँसी की रानी' मे रानी लक्ष्मीबाई को राष्ट्रीय वीरागना के रूप मे चित्रित किया है। इनके अतिरिक्त अनेक फुटकल कविताओ मे देश-भक्त, सत्याग्रह वीर, बलिदान वीर एव वीरागनाओ का वर्णन हुआ है।

१—पथिक, ५।३०।
२—स्वप्न, ५।१२।
३—बापू, पृ० २८।

निम्न वर्ग—

साधारण जनता का स्थान भी राष्ट्रीय विषयो मे ही आता है। इस वर्ग मे देश के शोषित, पीडित, पद्दलित, अछूत जन हैं, जिनका सम्बन्ध किसान मजदूर एव निम्न वर्ग से है। आधुनिक कविता मे इनको भी स्थान मिला है। पन्त जी की 'ग्राम्या 'मे ग्राम्य-जीवन के सामान्य से सामान्य चित्र अकित हैं। 'गाव के लडके', 'चरखा का गीत', 'चमार', 'कहार', 'धोबियो' का उत्सव', 'मजदूरिनी', युगवाणी मे 'दो लडके', 'नारी', 'मध्य वर्ग', 'कृषक', 'श्रम जीव', 'मानव-पशु' आदि ऐसे ही विषय हैं। निराला जी की 'वह तोडती पत्थर', 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। गोपालशरण सिंह की 'अनाथ', विधवा', 'गोडो का नाच', 'स्वयसेविको', मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान', सियाराम शरण गुप्त की 'एक फूल की चाह' तथा 'दैनिको' की कविताएँ, माखनलाल चतुर्वेदी की 'कैदी और कोकिला', 'सिपाही', 'सिपाहिनी', दिनकर की 'हाहाकार', 'जनतत्र का जन्म', हिमालय', तथा सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी' मे व्यथित-पीडित मानवता का ही स्वर गू जता है।

'बगाल का अकाल' भी कवियो का अति प्रसिद्ध विषय रह चुका है। दुर्भिक्ष-पीडित बगाल की त्रस्त एव उत्पीडित जनता के दुःख एव दैन्य को अनेक कवियो ने काव्य मे रूपायित किया है। उदयशकर भट्ट की 'बगाल', रामकुमार वर्मा की 'ककाल', और महादेवी जी की कई रचनाओ मे बगाल की पीडित जनता का स्वर मुखर है। इससे सिद्ध है कि आधुनिक कवियो ने नवीन परिस्थितियो से प्रेरित होकर साधारण मानवता को भी काव्य का विषय बनाया है। यह परम्परा से विरुद्ध नई काव्य-प्रवृत्ति है। आधुनिक युग ने राष्ट्र के महत्व के लिए राजा से अधिक जनता को आदर दिया है। इसी भावना से प्रेरित होकर आधुनिक कवि अपनी रचनाओ मे जन-जीवन के विविध पक्षो का उद्घाटन करते है। अगरेजी शासन मे साधारण जनता पीडित एव उपेक्षित थी। उसी के दु.ख-दैन्य के करुण-मलिन चित्र इन काव्यो मे अकित है। साधारण जनता को काव्य मे अकित करने की प्रवृत्ति इतनी बढी है कि प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत काव्य सभी मे इसका चित्रण पाया जाता है।

संस्कृति

राष्ट्रीय सस्कृति का स्वर अनेक कवियो की वाणी मे मुखरित हुआ है। पन्त जी की स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण और उत्तरा मे नवीन सस्कृति के आलोक मे जीवन-निर्माण के चित्र अकित है। उत्तरा की 'युग छाया' मे उषा नव सस्कृति का द्वार खोलते हुए दिखाई गई है—

ज्ञात मर्त्य की मुझे विवशता,
जन्म ले रही नव मानवता,
स्वप्न द्वार फिर खोल उषा ने
स्वर्ण-विभा बरसाई।

—युग छाया-पन्त

नई सस्कृति का 'नव मानव' लोक पुरुष के रूप मे अभिवन्दित हुआ है।

लो गू ज रहा अम्बर मे रव—
मैं लोक-पुरुष, मै युग-मानव,
मैं ही सोया भू पर नीरव
मेरे ही भू-रज के अवयव !

—नवमानव—पन्त

इस लोक-पुरुष के अवयव पृथ्वी की मिट्टी से गढे गए हैं। वस्तुतः यह धरती पुत्र है। नवीन सस्कृति का निर्माण गाधीवाद के आधार पर होगा, अतएव खादी के फूल मे पन्त का कवि कहता है—

देख रहा हू शुभ्र चादनी का सा निर्झर
गाधी-युग अवतरित हो रहा इस धरती पर।

—खादी के फूल, पत

नई सस्कृति के आधार-तत्व होगे—सत्य, अहिंसा, समता, राष्ट्रीयता, एव जाति और धर्म सम्बन्धी भेद-भावो का अन्त।

निराला की तुलसीदास, सोहनलाल द्विवेदी की वादसवदत्ता, उदयशकर भट्ट की तक्षशिला, दिनकर की रेणुका और हुँकार, मैथिलीशरण गुप्त के साकेत, सिद्धराज, हरिऔध का वैदेही वनवास, सियारामशरण गुप्त के पाथेय, दूर्वादल और बापू आदि रचनाओ मे राष्ट्रीय सस्कृति के विविध पक्षो का उद्‌घाटन हुआ है।

विप्लव गान—

राष्ट्रीय विषयो के अन्तर्गत विक्षुब्ध कवियो ने 'विप्लव गान' भी लिखे हैं। युगपथ मे पन्त का कवि 'द्रुत झरो जगत के शीर्ण पत्र के बाद' गा कोकिल बरसा पावक कण, गाता है, जिसमे नूतन मानवता के विकास की आकाक्षा सजग है। युग वाणी मे उन्होने 'युग-नृत्य' की रचना की है, जिसमे निखिल विश्व के बन्धनो की निवृत्ति के लिए अभयकर के नृत्य का आह्वान किया है। उदयशकर भट्ट 'अमृत और विष' मे त्रस्त, विषण एव दारिद्रय-पीडित मानवता के उद्धार

के हेतु मानव को आधी और तूफानो से लडने की प्रेरणा देते हैं। 'आज उठ अंगार से शृङ्गार कर मेरी जवानी' का प्रलय-गीत विक्षुब्ध-हृदय का मार्मिक उद्‌गार है। बालकृष्ण शर्मा भी प्रलय को निमत्रण देते हैं, जिससे मुमूर्ष मानवता का नव निर्माण सभव हो सके। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जावे' मे कवि को प्रलय की उत्क्रान्ति के लिए प्रेरित किया गया है। 'एक भारतीय आत्मा' 'हिम किरीटिनी' की 'विद्रोह' कविता मे क्रान्ति की आग भडकाने का निमत्रण देते है। वे विद्रोह की अग्नि मे आत्मार्पण करने के लिए उद्यत है। इलाचन्द्र जोशी 'नृत्य' कविता मे 'नाचो नाचो महाकाल ! तुम खर मध्याह्न गगन मे' शकर का ताडव देखना चाहते है, क्योकि आर्त, विपन्न, त्रस्त, पीडित, विताडित, क्षुधित मानवता मे नए प्राण, नई चेतना का सचार करने के लिए महारुद्र की प्रलयकरी नृत्यलीला ही अमोघ वरदान है। 'हिमालय के प्रति' कविता मे दिनकर जी भारत की दयनीय दशा पर विक्षुब्ध होकर शकर के प्रलय-नृत्य की याचना करते हैं। प्रमाद मे आकठ-मग्न तथा परतत्रता से पीडित देश मे 'नव युग की शख ध्वनि' जगाने मे शकर का प्रलयकर नृत्य ही समर्थ है।

नरेन्द्र का कवि भारत को रुद्र रूप मे परिवर्तित कर डालना चाहता है। क्षण मे प्रलय का दृश्य दिखाने वाले महादेव को कवि ने 'भारत के अधिनायक' के रूप मे चित्रित किया है, जिनके तनिक पार्श्व-परिवर्तन मे भयकर भूकम्प का निवास है, जिनके रोओ मे भू-लोक को विध्वस्त करने की शक्ति है तथा जिनकी श्वासो मे दिग्दिगन्त, भूतल एव सातो सागरो का कम्पन है। वे ही देश का त्राण करने मे समर्थ है।

प्रकाश-पिंड को लक्ष्य कर 'आह्वान' गीत मे अचल का कवि महाक्रान्ति की तैयारी मे सलग्न है। दारिद्र एव नैराश्य के अन्धकार से आच्छन्न जगत को नवयुग के प्रकाश की आवश्यकता है। कोटि-कोटि मिट्‌टी के पुतलो मे स्नेह (तेल) की कमी नही है, बाती पड चुकी है, अब आवश्यक है, मात्र चिनगारी के कण की। विध्वस के बाद ही नव निर्माण की बेला आती है। आरसीप्रसादसिंह ने भी 'कलापी' मे 'प्रलय-सगीत' का तराना छेडा है। सियाराम शरण के 'शख नाद' मे भी यही अनुगूज है।

आलोच्यकाल मे विप्लव गानो की एक स्वतत्र परपरा का विकास हुआ है। इस काव्य-प्रवृत्ति मे राष्ट्रीय विक्षोभ का उद्दाम स्वर है क्योकि परतत्रता से प्रताडित जनता के पुनरुद्धार का निदान महाक्रान्ति मे ही ढूढा जा सकता है। यह दलित भारत के विध्वस का राग है, जिसकी पीठिका पर ही नव सस्कृति का निर्माण हो सकता है।

दुःखवाद—

राष्ट्रीय विषयो मे विप्लव गानो से भिन्न एक और स्वर है। इसमे अवसाद और नैराश्य के विगलित हृदय का करुण चीत्कार है। यह दुःखवाद परतन्त्रता-जनित है। फलतः स्वप्न, आँसू (प्रसाद), विषाद, दुःख, नियति, मरण-दृश्य, सन्ताप, अनुताप, उच्छ्वास (पन्त) उपालभ, भाग्य का फेर, सुख-दुःख, अनाथ, आसू, व्यथा, दुखभय ससार (गोपालशरण सिंह), आँसू, वेदना-गीत, मरण-त्यौहार, लाचार (माखनलाल चतुर्वेदी), नर-किंवा पशु, आश्वासन, एक फूल की चाह, दयनीय, भ्रान्ति-मोचन (सियारामशरण गुप्त) आदि आदि नूतन विषयो का विविध अर्थ भूमियो पर होते हुए काव्य-क्षेत्र मे प्रसार हुआ है।

विवेचन—राष्ट्रीय काव्य-परम्परा आधुनिक युग की एक जीवन्त परम्परा है। इस परपरा का विकास आधुनिक युग मे ही हुआ है। इस धारा के कवियो की वाणी मे राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम पद-पद पर झलकता है। इस प्रवृत्ति के कवियो ने प्रचुर काव्य-राशि दी है, जिसमे जन नायक, आर्यावर्त और महामानव जैसे तीन विशाल प्रबन्ध काव्य है तथा पथिक, मिलन, स्वप्न, गाँधी गौरव, बापू, तक्षशिला जैसे उत्कृष्ट खड काव्य हैं और मुक्तक एव प्रगीत काव्य की प्रचुर सामग्री विद्यमान है। इस परपरा के प्रायः सभी कवि जीवित है तथा उनसे अभी बहुत कुछ काव्य-राशि प्राप्त करने की आशा है।

राष्ट्रीय काव्य-प्रवृत्ति सर्वथा आधुनिक युग की देन है। प्राचीन काव्य-परम्परा से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है, क्योकि आधुनिक युग की नई परिस्थितियो के आघात-प्रत्याघातो से इसका जन्म हुआ है। इस परपरा के कवियो की काव्य-चेतना मे अद्‌भुत स्फूर्ति, ओज एव पौरुष दिखाई पडता है जिसमे नवयुवको के हृदयो को स्पन्दित करने की शक्ति है। राष्ट्रीय विषयो की सफलता इसी से प्रकट है, कि इसकी एक स्वतत्र परपरा का विकास हुआ है। निष्कर्ष यह कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा एक नूतन काव्य-विकास है, जिसकी उपलब्धिया महत्वपूर्ण हैं तथा यह काव्य-प्रवृत्ति अभी गतिशील है।

राष्ट्रीय काव्य-धारा आलोच्यकाल की मूल काव्य-प्रवृत्ति है, जिसका अन्य काव्य-प्रवृत्तियो पर किसी न किसी रूप मे प्रभाव अवश्य पडा है। कारण यह है कि सत्याग्रह-आन्दोलन इसी काल मे अपने उग्र रूप मे चल रहा था। देश की राजनीतिक परिस्थिति विक्षुब्ध थी। राष्ट्रीय कविता मे यह विक्षोभ अनेक रूपो मे फूट पडा है। एक भारतीय आत्मा सुभद्राकुमारी चौहान और नवीन जी के काव्य मे इसने क्रान्ति का रूप धारण किया है, महादेवी और सियाराम शरण के गीतो मे यह विषाद-अवसाद के रूप मे दिखाई पडता है, मैथिलीशरण

गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, पन्त, निराला एव प्रसाद जी के काव्य मे यह सास्कृतिक गौरव के रूप परिलक्षित होता है। दिनकर और उदयशकर भट्ट के काव्य मे इसका रूप ऊर्जस्वित है तथा गोपालशरण सिंह, सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओ मे इसका सहज-सरल रूप दृष्टिगोचर होता है।

यह काव्य-प्रवृत्ति अत्यत प्राणवान् रही है। तथा अन्य सभी काव्य-प्रवृत्तियो पर इसका व्यापक प्रभाव हैं, किन्तु स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् इसमे शैथिल्य आ गया है। राष्ट्रीय काव्य-धारा मे जिन विषयो को स्थान मिला है, उनमे नवीनता का ओज है और है परतत्र भारत की मुक्ति का स्वर। इसी से इसमे सहज आकर्षण है।

(३) राजनीति—

उत्तर छायावाद युग मे सन् १६३५ के लगभग प्रचलित काव्य-धारा मे एक नया मोड आया, जिसने छायावादी काव्य-वस्तु, रूप-प्रकार, भाव-व्यजना एव शैलीगत सस्कारो को काव्य-क्षेत्र से एक साथ अपदस्थ कर दिया। यह प्रगतिवाद के नाम से विख्यात है। प्रगतिवाद ने काव्य को जो राजनीतिक विषय एव उपादान भेट किए, उनका वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

(क) सिद्धान्त-निरूपण
(ख) पू जीवादी वर्ग से सबधित विषय
(ग) श्रमिक वर्ग से सबधित विषय
(घ) यौन वासना सबधी विषय
(ङ) वैज्ञानिक विषय
(च) अन्तरराष्ट्रीय विषय।

क—सिद्धान्त निरूपण

वस्तु का सैद्धान्तिक निरूपण भी काव्य-वस्तु से सबधित है। प्रगतिवादी काव्य को मूलतः दो भागो मे बाटा जा सकता है—सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष। प्रारभिक रचनाओ मे मार्क्सवाद के सिद्धान्त पक्ष पर भी विचार किया गया है। पन्त जी की युगवाणी, नव दृष्टि, साम्राज्यवाद, मार्क्स के प्रति, मूल्याकन, खोलो, भूत-दर्शन, समाजवाद-गाधीवाद, सकीर्ण भौतिकवादियो के प्रति, दृष्टिकोण (राम इकबाल सिंह), अपने कवि से '(शिवमगल सिंह सुमन), साम्राज्यवाद (रागेय राघव), अपने कवि से (भारत भूषण), स्वतत्रता दिवस पर, भारत की आरती (शमशेर बहादुर सिंह) और कविता की मौत (धर्मवीर भारती) कविताओ मे मार्क्सवादी विचारधारा का ही प्रकाशन हुआ है। मार्क्सवाद मे

भौतिक तत्व को प्रधानता दी गई है। राष्ट्र, वर्ग आदर्श, धर्म, रीति, नीति, दर्शन आदि सब छलना है। सामूहिक जीवन ही अन्तिम ध्येय है।[१] इतिहास से सिद्ध है कि मानव-जीवन परिवर्तन शील है, परिवर्तन शाश्वत है।[२] भूमि श्रमिक जनो की है। किसान उसका स्वामी है।[३]

जिन कविताओ मे मार्क्स-दर्शन का निरूपण हुआ है, उनमे से कवित्व तो चला गया है, प्रचार का स्वर प्रधान हो गया है। इसके अतिरिक्त ऐसी कविताओ से भावोन्मेष मे भी सहायता नही मिलती। कोरा बुद्धिवाद का प्रदर्शन है।

ख—पूंजीवादी वर्ग से सम्बधित विषय—

इस श्रेणी मे शोषक वर्ग आता है, जो शताब्दियो से निरीह जनता का रक्त-शोषण करते आए है। इनमे साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, पू जीवाद के पोषक प्रधान स्थान रखते है। समाज के पीडक, शोषक, अत्याचारी, आततायी, महाजन, पू जीपति आदि को कटु-तिक्त वाणो का विषय बनाया गया है। आधुनिक युग के सभ्य राष्ट्र आशक्तो का रक्त-शोषण करते हैं तथा बलवान् निर्बलो को हडप जाते हैं। वर्तमान युग की सभ्यता पर दिनकर जी ने कितना कठोर व्यग्य किया हैं[४]।

१—कहता भौतिक वाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर दर्पण।
राष्ट्र वर्ग आदर्श धर्म गत रीति नीति औ दर्शन
स्वर्ण पाश हैं मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन।

—भूत दशन, पन्त

२—परिवर्तन ही जग जीवन का नियम चिरंतन, दुर्जय,
साक्षी है इतिहास, युगों का प्रत्यावर्तन अभिनय।

—साम्राज्यवाद, पन्त

३—यह किसान कमकर की भूमि है।
पावन बलिदानों की भूमि है।
भव के अरमानों की भूमि है।
मानव इतिहास को संवारती।

—शमशेर

४—दलित हुए निर्बल सबलों से, मिटे राष्ट्र उजड़े दरिद्र जन,
आह सभ्यता आज कर रही, असहायों का शोणित-शोषण।

पू जीवादी समाज के प्रति जो भाव प्रकट हुए हैं, उनमे क्रोध, जुगुप्सा एव प्रतिशोध की अभिव्यक्ति प्रधान है। मुक्तिबोध का कवि पू जीपतियो की प्रत्येक क्रिया एव चेष्टा को घृणास्पद समझता है[1]।

'जनाह्वान' कविता मे अज्ञेय जी ने पू जीपति को 'क्रूर आततायी' के रूप मे देखा है। वह उसके गौरव को क्षार क्षार कर डालना चाहता है तथा उसके ध्वस्त-गौरव के पथ से होकर अपना विजय-रथ ले जाना चाहता है[2]।

कही-कही वस्तु को प्रतीकात्मक रूप मे भी उपस्थित किया गया है। 'मसूरी' उच्च वर्ग के लोगो के क्रीडा-विलास का स्थान है। प्रगतिशील कवि मसूरी को रानी के रूप मे देखता है जिसकी सेवा मे हास-विलास और आमोद-प्रमोद करने के लिए हर समय वार-नारिया उपस्थित रहती है। दूसरी ओर क्षुधार्त भूखे-नगे सर्वहारा वर्ग के लोग करुण-क्रन्दन किया करते है। किन्तु वर्ग-भेद अधिक दिनो नही ठहर सकता क्योकि शोषित वर्ग जागरूक हो चुका है[3]।

पू जीवादी साम्राज्य के नाश के लिए और ऊँच-नीच के विधान को

१—तेरे रक्त मे भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास मे भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।
—मुक्ति बोध

२—ठहर, ठहर आततायी। जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले—
क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले—
मेरे दृढ़ पौरुष की एक चोट सह ले।, —अज्ञेय

३—हा मैंने अपनी आंखों देखा है विभेद यह, यह विरोध
जो साधारण घटना है अपनी पूंजीवाद प्रणाली की,
जो है तेरा आधार-स्तंभ, जिसका विनाश दो दिन ही की
है बात। यातना ने जिसकी विश्व को दिया है नया बोध।
—भारत भूषण

मिटाने के लिए समाजवाद का जयघोष अनेक कविताओ मे सुनाई पडता है। इनमे आशा, विश्वास, अभिलाष एव नई चेतना की उमग है[१]। पूंजीवाद का अन्त करने के लिए प्रगतिशील कवियो ने प्रलय-गान भी गाए हैं। इनमे पूजीवादी वर्ग के प्रति क्रोध, अमर्ष, घृणा, प्रतिशोध एव क्रान्ति का स्वर प्रधान है। युग-पथ मे पन्त के कवि ने 'दुत झरो जगत के शीर्ण पत्र' के पश्चात्—

'गा कोकिल बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।'

गीत गाया। उदयशंकर भट्ट, नवीन, नरेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, दिनकर, अचल, सुमन और रागेय राघव के क्रान्ति-गीतो मे समाज के नव-निर्माण का उद्घोष है।

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि पूजीवादी वर्ग को काव्य का आलम्बन बनाकर प्रगतिवादी कवियो ने उनकी क्रूरता, अत्याचार, शोषण एव उत्पीडन का ऐसा सफल चित्रण किया है कि जिससे उग्र भावो की व्यजना होती है। किन्तु कही-कही भावावेश मे औचित्य का विचार भी छूट गया है। इससे वर्ण्य-विषय मे अभद्र तथा अशोभनीय बातें भी आ गई हैं, जिनमे काव्य-मर्यादा का उल्लघन पाया जाता है। 'जनाह्वान' कविता इसका उदाहरण है[२]। इसमे आततायी का जो शब्द-चित्र खीचा गया है, वह व्रीडा-जनक है। कही-कही आलम्बन का चित्रण अत्यत भद्दा और अनगढ़ है[३]।

१—साम्राज्य पूंजी का क्षत होवे
ऊंच नीचे का विधान नत होवे
सार्धिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।

—शमशेर

२—और वह दृढ़ पैर मेरा है
गुरु, स्थिर, स्थाणु-सा गड़ा हुआ।
तेरी प्राण-पीठिका पै लिंग-सा खड़ा हुआ। —अज्ञेय

३—सरग धा ऊपर
नीचे पताल था
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था
दिल-दिमाग भुस का, खहर का खाल था। —नागार्जुन

मुक्तिबोध की 'पू जीवादो समाज के प्रति 'कविता क्री वस्तु-व्यजना वीभत्स, अरुचिकर तथा अकाव्योचित है। उससे किसी एक भाव की व्यजना भी नही होती एक ही बन्ध मे घृणा, कौध, वीरत्व, उग्रता आदि विविध भावो की व्यजना मिलती है। आलम्बन का ऐसा चित्रण काव्य का दोष है।

ग—श्रमिक वर्ग से संबंधित विषय—

इस श्रेणी की कविताओ का विवेचना राष्ट्रीय विषयो के अन्तर्गत हो चुका है। त्रस्त एवं उत्पीडित मानवता के प्रति राष्ट्रीय एव प्रगतिवादी दोनो वर्ग के कवियो ने पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है। दोनो के प्रति प्रेम एव सहानुभूति प्रकाशित करने मैं कोई अन्तर नही है। अन्तर केवल दृष्टिकोण का है। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दी-कविता मे मानवतावादी प्रवृत्ति का विकास हुआ है। कुछ पाश्चात्य देशो के वैज्ञानिक प्रभाव से, कुछ रोमेटिक साहित्य के अध्ययन से, तथा कुछ भारतीय राष्ट्रीय-सास्कृतिक आन्दोलनो के प्रभाव से आलोव्यकाल की हिन्दी-कविता मे मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई है। १९२० ई० राष्ट्रीय आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया, जिसके कारण सर्व साधारण मे स्वातत्र्य एव सगठन की भावना उत्पन्न हुई। राष्ट्रीयतावाद ने जन-तत्रवाद का मजु घोष सुनाया, जिससे किसान-मजदूरो मे जागरण हुआ। काग्रेस ने अछूत एव दलित वर्ग को पूर्ण सहानुभूति से देखा तथा उनकी दशा को सुधारने के लिए विविध कार्य-क्रम बनाए। आर्य-समाज ने दलित वर्ग के लोगो का उद्धार करने मे पूर्ण सहयोग किया। इसी प्रकार ब्रह्म समाज, राम कृष्ण मिशन, सर्वेंट्स आव इडिया सोसाइटी ने मानवतावाद की प्रतिष्ठा करने मे कुछ उठा न रखा। फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य मे भी इसका प्रभाव लक्षित हुआ। मनुष्य को मनुष्य के रूप मे आदर देने की प्रवृत्ति का विकास उत्तरोत्तर होने लगा, जिससे दलित, शोषित, पीडित, तिरस्कृत एव अछूतो को काव्य के विषयो मे स्थान मिला। मानवीय आदर्श से प्रेरित होकर 'मानव' कविता मे (सन् १९३५) पन्त जी लिखते है—

'मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय मानवता का विकास,
विज्ञान, ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब मे प्रकाश।

—पन्त

मानवतावादी काव्य-प्रवृत्ति ने कवियो के मानव में अवसाद और असतोष को जन्म दिया। दासता एव पारतत्र्य की जजीरो मे जकडे हुए मानव-समाज

को देखकर कवियो के हृदय मे दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुई। कुछ कवि पीडित वर्ग के दुःख एव विषाद से अभिभूत होकर करुण भावो की व्यजना करने लगे तथा कुछ भीषण दारिद्रय, शोषण एव नैराश्य के आवर्त मे डूबे हुए मानव-समाज के उद्धार के हेतु, क्रान्ति और विप्लव के गीत गाने लगे। कुछ कवियो ने दोनो प्रकार के भावो को अभिव्यक्ति दी है। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त तथा माखनलाल चतुर्वेदी पहले वर्ग मे स्थान रखते हैं। मानवतावाद के अन्तर्गत राष्ट्रीयतावाद से प्रेरित होकर दलित वर्ग के प्रति इनकी सवेदना प्रकट हुई है। भगवतीचरण, नरेद्र, अचल, इलाचन्द्र, सुमन, रागेय राघव, तार सप्तक एव दूसरे सप्तक के कवि दूसरे वर्ग के है। ये मार्क्सवाद से प्रेरित होकर सर्वहारा के प्रति सहानुभूति प्रकाशित करते है। इनके भावो मे क्रोध, औद्धत्य एव पौरुष की व्यजना अत्यत सशक्त है। नवीन, दिनकर, पन्त, निराला, उदयशकर भट्ट को तीसरी श्रेणी मे रखा जा सकता है। यद्यपि ऐसी कोई विभाजक रेखा नही है कि अमुक-अमुक कवि विशुद्ध रूप से अमुक-अमुक वर्ग मे ही आते है उससे बाहर उन्होने कुछ नही कहा है, तथापि उनके अधिकाश भावोद्धगारो से ऐसा ही प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त भाव-प्रवृत्तियो मे मिश्रण होना स्वाभाविक है, विशेषतः जब कि कुछ समय तक छायावाद-प्रगतिवाद की दोनो प्रवृत्तिया साथ-साथ चली हो। पन्त और निराला मूलत. छायावादी कवि थे, किन्तु आगे चल कर प्रगतिवादी काव्य धारा को भी इन्होने ही अग्रसर किया है। युगवाणी की 'समाजवाद-गाधीवाद' कविता मे पन्त जी गाधीवाद और मार्क्सवाद मे समन्वय करते है।[१] निराला जी एक ओर तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा मे आस्था रखते है और दूसरी ओर 'कुक्कुर मुत्ता' तथा 'नये पत्ते' मे मार्क्सवादी विचार-धारा का अवलम्ब लेते हैं। इसी प्रकार दिनकर के कुरुक्षेत्र मे गाधीवाद और मार्क्सवाद की समन्वित विचार-धारा ही परिलक्षित होती है। सुतरा किसी कवि को कठोरता मे किसी कठघरे मे नही रखा जा सकता। अस्तु, श्रम जीवियो से सबधित प्रगतिवादी कविताओ मे नाना अर्थभूमियो को लेकर काव्य-वस्तु का प्रचुरता से विस्तार हुआ है।

युगवाणी के प्रकाशन से पूर्व सन् १९३४ मे लाहौर से करुण सतसई

१—मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य-योजना है अविवाद।
—पन्त

प्रकाशित हुई, जिसके रचयिता रामेश्वर 'करुण' हैं। इनके ब्रजभाषा के दोहो मे पीडित-शोषित वर्ग के प्रति हार्दिक सवेदना है। कवि के हृदय पर साम्यवाद का प्रभाव है तथा सपत्ति पर से वैयक्तिक अधिकार हटा कर समाज के पुनर्निर्माण की आकाक्षा है[१]। करुण जी के कृषक, श्रमिक, विषमता, महाजन, रूढि-राक्षसी, द्विजाति-अनन्यता, वर्ण व्यवस्थापक, गौराग, साधु, बेकार, करुण-क्रन्दन, अप्रिय सत्य दोहो मे साम्यवादी सिद्धान्त के अनुकूल श्रमिको के प्रति सवेदना प्रकाशित की गई है।

नवीन, सुभद्राकुमारी, एक भारतीय आत्मा, की कविताओ मे भी प्रगतिवादी काव्य-वस्तु का चित्रण है, पर वे राष्ट्रीयता के आवरण से आच्छादित है[२]। 'भैसा गाडी' कविता मे भगवतीचरण जी ने पीडितो के गृह-आवासो का ऐसा सजीव वर्णन किया है कि सम्पूर्ण चित्र आँखो के आगे आ जाता है[३]।

निराला जी की 'तोडती पत्थर,' 'दीन,' 'विधवा,' 'भिक्षुक','कुक्कुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' की रचनाएँ, पन्त की 'ग्राम्या' और 'युगवाणी,' दिनकर की 'हाहाकार,' 'कस्मै देवाय,' 'नई दिल्ली,' भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाडी

१—जब लौ श्रम अरु उपज को, होत न साम्य विभाग।
बुझै बुझाए किमि कहो, यह अशान्ति की आग॥
ह्वै न भयो ह्वै है नही, साम्यवाद सम आन।
जग की व्याधि अगाध को, साँचो सही निदान॥ (करुण)

२—लपक चाटते जूठे पत्ते
जिस दिन मैने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ
आग आज इस दुनिया भर को।—जूठे पत्ते (नवीन)

३—उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर
पशु बन कर नर पिस रहे जहाँ
नारियाँ जन रही हैं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना
यह है लोगों का एक काम।
(भगवतीचरण वर्मा)

३—प्राणी के अग-विशेष के आयास से उसमे इतना विकास हो जाता है कि उसकी सन्तति मे उपार्जित गुण प्रकट हो जाता है। उदाहरण के लिए साँप के पैर क्यो नही होते? साँप का विकास रेगने वाले जीव से हुआ है। कुछ रेंगने वाले जीवो ने जल मे रहना छोड दिया तथा वे ऐसी दलदली भूमि पर आ गए, जहाँ घास होती थी। यहाँ उन्हे अदृष्ट रहने की आवश्यकता पडती थी। इस परिस्थिति की विवशता ने उसके पैरो को व्यर्थ बना दिया क्योकि उस परिस्थिति मे पैर बाधक थे। इस प्रकार क्रम-क्रम से हर एक पीढी की सन्तति के पैर इतने छोटे होते चले गए कि कालान्तर मे उनका अस्तित्व ही जाता रहा[१]।

इस सिद्धान्त का एक आवश्यक परिणाम यह था कि प्रत्येक परिस्थिति मे योग्यतम जीवित रहते हैं। योग्यता के लिए हर एक प्राणी और पदार्थ को परिस्थिति के अनुकूल होना पड़ता है। परिस्थिति के अनुकूल होने के लिए आत्म-रक्षा तथा शत्रुओ के विनाश की आवश्यकता होती है। परिस्थिति-विशेष मे जो योग्यतम सिद्ध होते हैं, वे ही आत्म-रक्षा करने मे समर्थ होते हैं। सक्षेप में यही विकासवाद का सिद्धान्त है। इससे स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि विकासोन्मुख है। इस मान्यता का आलोच्यकाल के कवियो पर प्रभाव लक्षित होता है।

मेधावी का कवि कहता है कि सृष्टि के प्रारभकाल मे मनुष्य पाशविक जीव थे। उनमे बर्बरता का प्राबल्य था। उस समय सबमे जिघासा की प्रवृत्ति बहुत प्रबल थी। वे अहेर करते थे, यूथ बनाते थे, उदर-पूर्ति के हेतु सघर्ष करते थे तथा एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ करते थे। वे पूर्णतः अविकसित जीव थे। उनमे सभ्यता नाम को भी नही थी। उनका जीवन प्रकृति के अधीन था। प्राकृतिक शक्तियो को देखकर वे भय खाते थे। भय और आतक से पीडित होकर वे हर एक पदार्थ मे किसी-न-किसी देवता की भावना कर लेते थे तथा आत्म-रक्षा के लिए उनकी स्तुति करते थे। धीरे-धीरे मनुष्य की बुद्धि मे ज्ञान का उन्मेष हुआ। ज्यो-ज्यो ज्ञान का विकास होता गया मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता चला गया। अब वह इतना विकसित हो चुका है कि उसने प्रकृति

१—देखिए, गार्डनर मर्फी, हिस्टोरीकल इंट्रोडक्शन टू माडर्न साइकालाजी, द थ्योरी आव इवल्यूशन, पृ० ११३।

को अपने अधीन कर लिया है। उसने जगत् के अज्ञात रहस्यो को ढूँढ लिया है। अब वह नक्षत्र-लोक की सैर करने को व्यग्र है। आज प्रकृति पर उसका निर्बाध शासन है, भूमि उसकी दासी है। अब वह नाना सुखो की खोज मे सलग्न है। उसके जीवन मे गति है, श्रम उसका जीवन है। उसके नेत्र और कान प्रत्येक दिशा मे खुले हुए हैं तथा वह विकास की ओर द्रुत गति से बढता जा रहा है। वह भूमि और प्रकृति से सपूर्ण सुख सचित कर आत्मसात कर लेना चाहता है।[१]

मेधावी के चौथे सर्ग मे सृष्टि के अखड परिवर्तन का नृत्य वर्णित है।[२] प्रसाद, पन्त और निराला भी 'विकासवाद' के सिद्धान्त से प्रभावित हुए हैं। 'योग्यतम व्यक्ति ही जीवित रहते हैं' का सिद्धान्त कामायनी की श्रद्धा के मुख से भी सुनाई पडता है।[३]

इडा भी इस नियम से परिचित है कि जो स्पर्द्धा मे उत्तम ठहरते हैं, वे ही जीवित रहते हैं। वे ही सृष्टि के कल्याण-साधन मे योग दे सकते हैं[४]। 'जागो फिर एक बार' गीत मे निराला जी ने 'योग्य जन जीता है' की उक्ति को पाश्चात्य सिद्धान्त नही, गीता का कथन बतलाया है। इस प्रकार उन्होने विकासवाद के नियम का भारतीयकरण किया है। पन्त की 'ज्योत्स्ना' के झीगुर के गीत मे वही सिद्धान्त सुनाई पडता है[५]। वस्तुतः 'झीगुर' आधुनिक विज्ञानवादी युग के मनुष्य का प्रतीक है।

१—देखिए, रांगेय राघव, मेधावी, पृ० ७६-७७।

२—ओ परिवर्तन सर्वात्म रूप
तेरा नर्तन जग का विकास
तेरे पग पग चालन में उठ
है क्रान्ति उमड़ती बार बार।—मेधावी

३—और यह क्या तुम सुनते नही
विधाता का मगल वरदान
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो'।
विश्व मे गूँज रहा यह गान।—कामायनी

४—देखिए, कामायनी, पृ० १९२।

५—जो है समर्थ जो शक्तिमान जीने का है अधिकार उसे
उसकी लाठी का बैल बिश्व पूजता सभ्य संसार उसे।
—ज्योत्सना

तार सप्तक मे मुक्तिबोध की 'हे महान्', नेमिचन्द्र की 'जिन्दगी की राह', भारत भूषण की 'जीवन-धारा', रामविलास शर्मा की 'कवि', 'कलियुग' दूसरे सप्तक मे नरेश कुमार मेहता की समय देवता आदि कविताओ मे वस्तु-वर्णन पर वैज्ञानिक प्रभाव स्पष्ट है।

उपर्युक्त प्रसग मे छायावादी कवियो की कविताओ का भी उल्लेख किया गया है, क्योकि आधुनिक युग की वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने सभी कवियो को प्रभावित किया है। फलतः पन्त, प्रसाद, निराला आदि कवियो ने एक ओर वैज्ञानिक सस्कृति को हानिप्रद भी बतलाया है तथा दूसरी ओर काव्य-रचना मे वे वैज्ञानिक सिद्धान्तो से प्रभावित भी हुए हैं। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियो ने तो स्पष्टतः विज्ञानवाद का आश्रय लिया है।

ऊपर दिए हुए उदाहरणो से प्रकट होता है कि वैज्ञानिक सिद्धान्त से प्रभावित कविताओ मे तर्क एव बुद्धिवाद की प्रधानता है। परपरानुगत कविता मे वस्तु-वर्णन अथवा सिद्धान्त का प्रतिपादन भी रस-सापेक्ष हुआ करता था। भक्तिकाल एव रीतिकाल की कविता इसका प्रमाण है। किन्तु आलोच्यकाल मे वैज्ञानिक आधार पर जहाँ वस्तु-वर्णन अथवा सिद्धान्त का निरूपण पाया जाता है, वहाँ कवित्व के दर्शन नही हैं। वह किसी प्रकार के भाव-बोध मे सहायता नही करता। फलतः ऐसे वर्णन तथ्य-निरूपण मात्र है। वे विचारोत्तेजक अवश्य हैं, किन्तु उनमे भावोद्बोधन की सामर्थ्य नही।

निष्कर्ष यह कि वैज्ञानिक विषयो पर आधारित कविताओ मे बुद्धि-पक्ष प्रधान हो गया है, जिससे वे हृदय को स्पर्श न करके सीधे बुद्धि से टकराती हैं। वर्तमान युग के प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवि अपने काव्य मे भावात्मकता से अधिक बौद्धिकता को प्रश्रय देते है।

५—अन्तरराष्ट्रीय विषय

मार्क्सवाद से प्रभावित कवि रूस देश को अत्यधिक महत्व देते है, क्योकि यही देश साम्यवाद की जन्मभूमि है। इसी देश ने सबसे पहले समाजवादी राज्य प्रणाली का सूत्रपात किया है। इस दृष्टि से विश्व मे रूस देश का गौरव सबसे बढकर है। इस भावना से प्रेरित होकर जो कविताएँ लिखी गई हैं, उनमे रूस की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशस्ति है। इसके अतिरिक्त लाल सेना, लाल निशान, मार्क्स तथा मास्को की प्रशस्ति को भी काव्य का विषय बनाया गया है।

नरेन्द्र शर्मा रूस के आदर्श से बहुत अधिक प्रभावित हैं। आपने 'अन्त मे यह महायुद्ध', 'रूस के मैदान', 'चीन और हिन्दुस्तान' आदि कविताओ मे अन्तरराष्ट्रीय विषयो पर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। साम्यवादी विचारो की जन्म-

भूमि रूस है, अतएव कवि को उसी ओर से साम्यवाद का सूर्य उगता हुआ दिखाई पडता है, जिसे साम्राज्यवाद का सूर्य निगलने मे असमर्थ हैं। कवि को विश्वास है कि रूस के मैदानो मे ही ससार की समस्याओ का निपटारा हो सकता है[१]।

प्रभाकर माचवे ने लाल सेना के विजयोल्लास मे स्वर मिलाते हुए एक 'सानेट' लिखा है, जिसमे सोवियत की विजयिनी लाल सेना की प्रशस्ति का वर्णन है। कवि को विश्वास है कि लाल सेना की अग्नि-वर्षा को देखकर शत्रु अवश्य परास्त हो जायगा।[२] 'जागते रहो' कविता मे भारत भूषण ने क्षितिज के ऊपर लाल तारे को उदित 'देखकर सर्वहारा की विजय का विश्वास कर लिया है कवि को साम्यवादी प्रगति मे पूर्ण विश्वास है।[३] केदार को गेहू की ऊँची बालो मे नोकीले भाले ताने हुए लाल फोज के अगणित सिपाही दिखाई पडते है।[४] रामविलास शर्मा की 'जल्लाद की मौत' कविता मे रूसी वीरो की प्रशस्ति

१—सांस रोक सदियाँ तकती है, इन रूसी मैदानों को,
देखें, कौन उजाड़ सकेगा, सदियों के अरमानों को।
पेट काट कर महल बना था, दुनिया के मज़दूरों का,
लाल फौज जिसकी रखवाली, रूस देश मजदूरों का।
चाहे अपने लोहू से हो, चाहे झडों के नीचे।
लाल हमे करना दुनियाँ को, लाल सितारे के नीचे।
आज रूस के मैदानों पर दुनिया का वारान्यारा
पर उगते सूरज को कैसे, निगल सकेगा अँधियारा।

२—व्योम मे सगर्व जा रहा सगर्व सैन्य लाल
पितृ देश के अनन्य भक्त वीर नौजवान,
पखहीन ये विहंगराज, सैकड़ों विमान,
शत्रु देश अग्नि-वृष्टि, हो परास्त, हो विहाल !—माचवे

३—लो क्षितिज के पास
वह उठा तारा, अरे ! वह लाल तारा, नयन का तारा हमारे
सर्वहारा का सहारा
विजय का विश्वास।'—भारत भूषण

४—लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।
ताकत से मुट्ठी बाँधे हैं,

का गान है। शिवमगल सिंह 'सुमन' की 'चली जा रही है, बढी लाल सेना' प्रगतिशील काव्य की विशिष्ट रचनाओ मे स्थान रखती है। 'मास्को अब भी दूर है' कविता मे 'सुमन' ने मास्को का गौरव-गान किया है।

ऊपर के उदाहरणो से स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कवियो ने अन्तर्राष्ट्रीय विषयो पर भी काव्य-रचना की है। ये कविताएँ अधिकतर रूस और चीन की प्रगति से सबधित हैं, क्योकि इन्ही देशो मे साम्यवाद की आदर्श-व्यवस्था मिलती है। इसमे सन्देह नही कि ये विषय सर्वथा नूतन है तथा इनके आगमन से काव्य-क्षेत्र की अत्यधिक समृद्धि हुई है। किन्तु अपरिचित होने के कारण इन विषयो के साथ भारतीय लोक-हृदय का साधारणीकरण नही हो सकता। एक वर्ग विशेष के कवियो के मनोराज्य मे ही इनकी भाव-तरगें उठती है, साधारण जनो के हृदय को स्पर्श करने मे ये असमर्थ ही हैं। फिर भी प्रगतिवादी कवियो का प्रयत्न स्तुत्य है कि उन्होने सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय विषयो को काव्य मे स्थान दिया है।

सारांश—

छायावाद युग से पहले हिन्दी-काव्य-परपरा मे काव्य के विषय अधिकतर देवता रहे हैं उच्च वर्ग के मनुष्यो पर भी थोड़ी सी काव्य-रचना पाई जाती है, परन्तु साधारण जन कवियो की श्रद्धा या प्रेम के अधिकारी कभी नही बने। प्रेमाख्यानक सूफी कवियो ने यद्यपि लोक-वृतो के आधार पर कविता की है, तो भी उनके काव्यो मे प्रधान पात्र के रूप मे राजा को ही चुना गया है। वीर गाथा काल मे सामन्त वर्ग के प्रतापी वीर पुरुषो पर काव्य-रचना होती थी। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी की सपूर्ण काव्य परपरा मे निराकार-साकार ब्रह्म अथवा उच्च वर्ग के मनुष्यो के सिवाय किसी अन्य वर्ग को काव्य के विषय रूप मे कभी नही ग्रहण किया गया है। प्रकृति के नाना रूप एव दृश्यो को भावो के उद्दीपन के रूप मे तो चित्रित किया गया है किन्तु काव्य का आलम्बन बनने का अधिकार नही दिया गया है।

छायावाद युग के आरभ से काव्य की प्रवृत्ति मे एक नया मोड आता है। नयी प्रवृत्ति तथा परिस्थितियो के अनुरोध से छायावादी कवियो मे प्रकृति के प्रति एक नया अनुराग उत्पन्न होता है। वे प्रकृति के मनोमुग्धकारी नाना

नोकीले भाले ताने हैं
हिम्मतवाली लाल फौज-सा
मर मिटने को झूम रहा है। —केदार

रम्य रूपो की ओर आकृष्ट होते है तथा उनको काव्य के उपादानो के रूप में ग्रहण करने लगते है। पन्त जी मे प्रकृति-प्रेम सबसे अधिक है। अन्य छायावादी कवियो ने भी इस ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इससे स्पष्ट है कि छायावादी काव्य के विषयो मे प्रकृति का अनन्त प्रसार समाया हुआ है।

राष्ट्रीय-सास्कृतिक धारा के कवियो ने मातृभूमि के विविध रूपो को काव्य का आलम्बन बनाया है। इनके अन्तर्गत राष्ट्र-नायक, देश-भक्त, सत्याग्रही वीरो से लेकर दीन, दलित एव अछूतो का भी स्थान है। राष्ट्र वीरो एव साधारण जनो को इस काव्य-प्रवृत्ति के द्वारा पहली बार काव्य मे स्थान मिला है। छायावादी विषयो की भाँति राष्ट्रीय विषय भी भावो को उद्दीप्त करने मे अत्यत सफल सिद्ध हुए है। इनसे श्रद्धा, उत्साह, रति आदि भावो का उन्मेष होता है।

काव्य-वस्तु की परिधि का प्रगतिवादी काव्य मे जितना विस्तार हुआ है, उतना अन्यत्र नही। इसमे व्यष्टि समष्टि जीवन के सभी पदार्थों का समावेश हो गया है। इस काव्य-धारा मे पदार्थ-अपदार्थ, सुन्दर-असुन्दर, रूप-कुरूप, घृणित-कुत्सित सभी वस्तुओ को कवियो ने निस्सकोच अपनाया है। चूडी का टुकडा, खडहर, चाय की प्याली, सिलहार, हड्डियो का ताप, चार का गजर, प्रलय, भैसा गाडी, दर्द, चुम्बन आदि ऐसे क्षुद्र विषय है, जो पहले पहल कविता के उपादानो के रूप मे गृहीत हुए है। कही कही अत्यन्त विरूप, घृणित एव कुत्सित पदार्थों का भी वर्णन आता है।

काव्य का अपना क्षेत्र है। उसमे रमणीय एव सुन्दर वस्तुओ का आदर है। परपरा ने जिन वस्तुओ को आदर दिया है, उनके प्रति लोक-हृदय का आसानी से साधारणीकरण हो जाता है। अतएव वे विषय सहृदय जनो के प्रिय हो जाते है तथा उनके साथ तादात्म्य हो जाने से हृदय प्रफुल्लित होता है। तुच्छ, अपदार्थ एव अन्तर्राष्ट्रीय विषय हृदय को स्पर्श नही कर सकते, क्योकि उनमे सहृदय के चित्त को आकर्षित करने की योग्यता नही होती। यह कहना व्यर्थ है कि कवि-प्रतिभा साधारण-से साधारण विषय को चमत्कृत कर सकती है। कला के द्वारा शैलीगत चमत्कार दिखाया जा सकता है, किन्तु वर्ण्य विषय को सरस नही किया जा सकता है। सामान्य वस्तु के आधार पर सामान्य काव्य की ही सृष्टि हो सकती है। महान् काव्य की रचना के लिए आलम्बन भी महत्वपूर्ण होना चाहिए। नरेशकुमार की 'समय देवता' एक प्रसिद्ध रचना है, जिसमे पृथ्वी के विभिन्न देशो के विकास की कहानी है। न जाने इसका 'समय देवता' नाम क्यो रखा गया है, जबकि इसमे पृथ्वी के नाना देशो का वर्णन है। इस कविता मे रूपक के आवरण मे पृथ्वी के देशो की ऐतिहासिक कथा वर्णित

है। यदि इसमे से अलंकारो की छटा को निकाल दिया जाय तो इस लम्बी कविता मे भौगोलिक वर्णन के सिवाय और कुछ न रहेगा। इसी प्रकार रोडे-ढेले, चिमनी, रिक्शा, कोयले की खानो पर रचित कविताओ से हृदय मे उदात्त भावो का 'उन्मेष' नही हो सकता। उदात्त भावो को उद्दीप्त करने के लिए काव्य-वस्तु को प्रिय, परिचित एव सुन्दर भी होने की आवश्यकता है। असाधारणीकृत विषय पाठक को तन्मय नही कर सकते।

निष्कर्ष यह कि आधुनिक काव्य, विशेषतः प्रगतिवादी काव्य के विषय रस-बोध मे सहायता नही करते। अतिशय बौद्धिकता के कारण वे विचारोत्तेजक अवश्य हैं। धर्म और ईश्वर को अपदस्थ करके इनमे भौतिक जगत् की वस्तु-सत्ता को यथार्थ माना गया है। छायावाद युग से लेकर वर्तमान युग तक के काव्य के विषय सर्वथा नूतन है। प्रगतिवादी काव्य ने विषय-वस्तु का सबसे अधिक विस्तार किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग की कविता ने परपरा से विराध करके सामान्य-से-सामान्य विषयो को काव्य मे स्थान दिया है तथा इन विषयो को साधारण जन-जीवन मे से चुना गया है। इससे वर्ण्य-वस्तुओ का विस्तार अवश्य हुआ है, किन्तु सौदर्य-बोध का स्तर गिर गया है।

अष्टम अध्याय

भाव-व्यंजना में प्रयोग

भाव-व्यंजना में प्रयोग

आलोच्यकालीन हिन्दी-कविता मे एक नवोन्मेष दृष्टिगोचर होता है, जिसके फलस्वरूप रस-व्यजना की स्वीकृत प्रणाली मे भी नये प्रयोग हुए है। काव्य मे शृगार का रस-राजस्व स्वीकृत सिद्धान्त है, किन्तु इसकी व्याप्ति नायक-नायिकाओ के क्षेत्र मे ही सीमित हो गई थी। आधुनिक कवियो ने रति के क्षेत्र मे नये-नये आलम्बनो का विधान किया है तथा नये-नये सचारी भावो को भी प्रयुक्त किया है।

रति के क्षेत्र मे जो नये आलम्बन मिलते हैं, उनका अध्ययन नीचे किया जाता है :—

(१) प्रकृति विषयक रति, (२) देश (राष्ट्र) विषयक रति, (३) अव्यक्त प्रिय विषयक रति और (४) अमूर्त पदार्थो के प्रति रति।

(१) प्रकृति विषयक रति—

सबसे पहले शृङ्गार के अन्तर्गत प्रकृति विषयक रति का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। नवीन कविता मे कविजन प्रकृति के सौन्दर्य की ओर अत्यधिक आकर्षित हुए है। विशेषत: छायावादी कविता मे प्रकृति का चित्रण विभिन्न रूपो मे हुआ है। रीतिकाल मे प्रकृति को केवल उद्दीपन सामग्री के रूप मे ही लिया गया है, किन्तु आधुनिक काव्य मे उसका आलम्बन के रूप मे भी चित्रण हुआ है। मानवीकरण की अतिशय प्रवृत्ति आधुनिक कविता की अन्यतम विशेषता है। प्रकृति के कोमल, सुन्दर एव आकर्षक रूपो को चेतन प्राणियो के समान कार्य-व्यापार मे लीन दिखाया गया है।

निराला की 'जूही की कली' एक प्रसिद्ध रचना है। इसमे मानवीकरण द्वारा संभोग शृङ्गार की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। विजन-वन-वल्लरी पर दृग बन्द किए वासन्ती निशा मे सोती हुई जूही की कली मे प्रोषित पतिकी नायिका का आरोप किया गया है। वह दूर देश को गए हुए नायक (मलयानिल) की मधुर स्मृति मे मग्न है। उसने चाँदनी से धुली रातों मे प्रियतम के साथ जो रग-रेलियाँ की है, उनकी सुध आती है। उधर प्रवास से उद्विग्न प्रिय को भी कामिनी की मधुर स्मृति सताने लगती है और वह उपवन, सर, सरिता गहन-गिरि-कानन-कुजो को पार करता हुआ उसके समीप आ पहुँचता है।

यौवन की मदिरा को पान करने से आत्म-विभोर वह नेत्रो को बन्द किए

हुए बैठी थी कि प्रियतम ने धीरे से उसके कपोल चूम लिए। इसके पश्चात् निर्दय नायक ने उसके साथ मुक्त भोग किया।

इस कविता मे दोनो ओर प्रेमोदय दिखाया गया है, अतएव नायक-नायिका दोनो एक दूसरे के आलम्बन हैं। वासन्ती समीर, उपवनादि उद्दीपन हैं। कपोल चूमना, देह को झकझोरना, कपोलो को मसल देना, नायिका का नेत्र मूंद लेना, बेसुध हो जाना, चौंकना, चकित होना, हँसना, खिलना, रग-रेलियाँ करना आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य, मद, हर्ष, आवेश, चपलता सचारी है। स्वेद, रोमाच सात्विक हैं। रति स्थायी के सभी अगो मे पुष्ट होने से सयोग शृङ्गार व्यजित है। इसमे प्रकृति विषयक रति भाव है।

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोको झडियो से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल गोल,
चौक पडी युवती—
चकित चितवन निज चारो ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुखी हँसी—खिली,
खेल रग, प्यारे सग।

—जूही की कली,—निराला

छायावादी कविता मे यह प्रवृत्ति चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। प्रसाद की नीरद, मलयानिल, बीती विभावरी, जाग री, पन्त की छाया, चाँदनी, निर्झरी, वसन्त, सन्ध्या, मधुकरी, निराला की सन्ध्या सुन्दरी, यमुना के प्रति, महादेवी की वसन्त रजनी, रूपसि तेरा घन-केश-पाश, लय गीत मन्दिर, रामकुमार वर्मा की फूल वाली आदि कविताओ मे रति की व्यजना के लिए प्रकृति के अनन्त से आलम्बन चुने गए हैं।

परपरागत शास्त्रीय नियम के अनुसार इस श्रेणी की कविताएँ रसाभास की कोटि मे आती हैं, क्योकि इनमे अचेतन एव निरिन्द्रिय पदार्थों मे रति-भाव प्रदर्शित किया गया है।[१] किन्तु आधुनिक युग मे प्रकृति मे मानवीकरण द्वारा प्रेम-व्यजना की शैली का इतना अधिक विकास हुआ है कि प्रकृति मे भी रति-

---

१—देखिए, साहित्य दर्पण, ३।२६४।

भाव की सत्ता को स्वीकार करना पडता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे 'भाव' कहना उचित होगा।

ईश्वरोन्मुख प्रेम की परपरा तो हिन्दी-साहित्य मे दीर्घकाल से चली आ रही है किन्तु देश-प्रेम आधुनिक युग की देन है। आलोच्यकाल मे कविता मे देशानुराग पर इतने अधिक परिमाण मे रचनाएँ लिखी गई है कि न्यूनाधिक मात्रा मे सभी कवियो पर इसका प्रभाव है। किसी न किसी प्रकार से हर एक कवि ने देश विषयक प्रेम को अभिव्यक्ति दी है।

मैथिलीशरण गुप्त की 'मातृ भूमि' प्रसिद्ध कविता है। इसमे मातृ भूमि को 'सर्वेश की सगुण मूर्ति' कल्पित कर उसके विराट सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि ने हार्दिक प्रेम व्यक्त किया है।[1] यदि शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो इसमे शृगार रस के सभी उपकरण मिलते हैं। मातृभूमि की सगुण मूर्ति आलम्बन, प्राकृतिक दृश्य उद्दीपन, कवि का आश्रय के रूप मे बलिहारी जाना अनुभाव है। 'हर्ष' सचारी है। 'प्रेम' स्थायी है। यह देश-विषयक रति-भाव का प्रयोग है।

जयशकर प्रसाद की 'हमारा देश', 'भारतवर्ष', नवीन की 'हिन्दुस्तान हमारा है', नैपाली की 'भारत माता', पन्त की 'भारत माता', सियाराम शरण, रागेय राघव आदि कवियो की देश विषयक रचनाएँ इसी श्रेणी के अन्तर्गत है। सुमित्रानन्दन पन्त की 'ग्राम श्री', 'ग्राम देवता', भी इसी कोटि मे आती है। भारतवर्ष के ग्राम, नगर, नदी, पर्वत आदि पर रचित सभी कविताएँ इसी श्रेणी मे आती है क्योकि इनमे देश-विषयक रति-भाव झलकता है।

देश-प्रेम की रचनाओ ने आलम्बन का क्षेत्र भी विस्तृत किया है। देश-भक्त, बलिदानी, आत्म-त्यागी, सत्याग्रही, समाज-सेवी, नेता आदि मातृ-भूमि के सेवको को भी आलम्बन रूप मे ग्रहण किया गया है। पूज्य बापू को आलम्बन मानकर अनेक कवियो ने देश-प्रेम के उद्गार प्रकट किए है। काव्य मे देश-विषयक रति एक परपरा के रूप मे विकसित हो चुकी है, क्योकि इस धारा के

१— नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल-तारे मंडन हैं।
बन्दी विविध विहग शेष-फन सिंहासन है
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥
—मैथिलीशरण गुप्त

अनेक कवियो ने इस भाव को परिपुष्ट किया है।

(३) अव्यक्त प्रिय विषयक रति—

छायावाद युग के कवियो मे अव्यक्त प्रिय विषयक रति-भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति पाई जाती है। इस धारा के कवियो मे पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, रामकुमार, हरिकृष्ण प्रेमी आदि प्रधान हैं।

महादेवी का काव्य अव्यक्त प्रियतम की विरहानुभूति से सजल है। इनकी वेदना अत्यत गूढ़ एव मार्मिक है। उन्होने अज्ञात प्रिय के हेतु जिस प्रेम को समर्पित किया है, उसमे विविध भावो की अनूठी व्यजना है। इनके गीतो मे अव्यक्त विषयक रति की व्यजना पद-पद मे दिखाई पडती है; जिसमे हर्ष, विषाद, अमर्ष, क्षोभ, दैत्य, स्वप्न, लज्जा, औत्सुक्य, उन्माद, शका, स्मृति, व्याधि, अभिलाष, आशा, उद्वेग, नैराश्य आदि विविध भाव सचरण करते है।

जयशकर प्रसाद के आंसू मे, हरिकृष्ण प्रेमी की 'आंखो मे', 'अनन्त के पथ पर', महादेवी के नीरजा और सान्ध्य गीत मे, रामकुमार वर्मा के 'प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊं', 'यह तुम्हारा हास आया', निराला की 'तुम और मै', 'सान्ध्य सुन्दरी' मे, अव्यक्त विषयक रति भाव की अभिव्यक्ति हुई है। इन गीतो मे अधिकतर वियोग-व्यथा का स्वर प्रधान है, क्योकि अव्यक्त प्रिय से मिलन-सुख तो स्वप्न के सिवा कभी सभव ही नही है।

हिन्दी-साहित्य मे अलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम दो रूपो मे व्यक्त हुआ है—निर्गुण प्रेम और सगुण प्रेम। सगुण प्रेम आधुनिक काव्य मे लुप्त-सा हो गया है, परन्तु निर्गुण प्रेम की कविता प्रचुर मात्रा मे मिलती है। यह कबीर आदि सन्त कवियो की प्रेम-भावना से भिन्न है। सन्त कवियो ने निर्गुण ईश्वर को पति या पत्नी, माता या पिता, स्वामी अथवा साहिब के रूप मे स्वीकार किया है। इस प्रकार आलम्बन को मूर्त रूप देकर उसे काव्य का विषय बनाया है। कबीर के 'हरि मोरा पिव, मैं हरि की बहुरिया' मे काव्य का आलम्बन सुनिश्चित एव सुज्ञात है, अतः बडी आसानी से पाठक का उससे साधारणीकरण हो जाता है। आलोच्यकालीन कवियो ने अव्यक्त प्रिय को अज्ञात एव अगोचर रखकर ही रति को व्यंजित किया है। यही इसकी विलक्षणता है। छायावाद युग के कवियो मे इस प्रयोग ने नवीन परपरा का रूप ग्रहण कर लिया है।

(४) अमूर्त वस्तु विषयक रति—

छायावादी काव्य को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा गया है।

कारण यह कि इस धारा के कवियो ने अमूर्त वस्तु-सौन्दर्य का उद्‌घाटन करने की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। वस्तु-जगत् के विषयो को छोडकर ये कवि सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण करने की ओर उन्मुख हुए हैं। इनकी काव्य-वस्तु में सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण है।

भावात्मक विषयो के सुन्दर रगीन चित्र प्रस्तुत करने में प्रसाद सबसे अधिक पटु हैं। निरिन्द्रिय एव अमूर्त विषयो को चेतन धर्म से समन्वित कर उन्होने एक-से-एक अधिक मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'लाज भरे सौन्दर्य' कविता कबीर को 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के तुल्य अत्यंत अपार्थिव एव अशरीरी विषय है। प्रसाद का कवि उस पर चेतन धर्म को आरोपित कर एक सूक्ष्म सौन्दर्य चित्र अकित करता है—

'तुम कनक किरण के अन्तराल मे, लुक छिप कर चलते हो क्यो ?
नत-मस्तक गर्व वहन करते, यौवन के घन, रस कन ढरते,
हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो मौन बने रहते हो क्यो ?
अधरो के मधुर कगारो मे, कल-कल ध्वनि की गुजारो मे,
मधु सरिता-सी यह हँसी तरल अपनी पीते रहते हो क्यो ?
बेला विभ्रम की बीत चली—रजनी गन्धा की कली खिली—
अब सान्ध्य मलय आकुलित, दुकूल-कलित हो यो छिपते हो क्यो ?

—प्रसाद

अरूप को रूप देना असाधारण कवि-कर्म है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' मे इस कला को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम-वासना, लज्जा आदि सूक्ष्म एव अमूर्त विषयो के प्रसाद ने अत्यत सुन्दर चित्र अकित किए हैं।

पन्त की 'बालापन', 'अनग', 'मर्म व्यथा', 'अनुभूति', 'गु जन', निराला की 'प्रेम', 'प्रकाश', 'कौन तुम शुभ्र किरण वसना', रामकुमार की 'मौन करुणा', 'यह तुम्हारा हास आया' मे अमूर्त विषयो के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है।

निष्कर्ष यह कि सूक्ष्म विषयो से छायावादी कवियो को विशेष प्रेम है। हृदय की कोमल वृत्तियो का चित्राकन करने मे इन्हें अद्‌भुत सफलता मिलती है। प्रेम के साथ आशा, निराशा, सुख-दुःख, चापल्य, धृति, अधृति, स्मृति, विस्मृति, उन्माद, उत्ताप, उत्सुकता आदि भाव सहज ही मिश्रित हो गए है। यह छायावादी काव्य की विशेषता है कि उसने अमूर्त वस्तुओ मे सूक्ष्म सौन्दर्य का दर्शन किया है।

आधुनिक हिन्दी काव्य मे प्रेम की अभिव्यक्ति विविध रूपो मे हुई है। प्रेम ने जीवन और जगत् के इतने अधिक पार्श्वों को पहले कभी स्पर्श नही किया। इस दृष्टि से आलोच्यकाल की कविता मे प्रेम की विवृत्ति अत्यत व्यापक एव उदात्त है।

प्रेम के जिन आलम्बनो का ऊपर उल्लेख हुआ है, वे नये युग की देन हैं। प्राचीन परपरा से इनका कोई सहज सबध नही है। यदि प्राचीन काव्य मे इनकी व्यजना मिलती भी है तो वर्तमान युग मे वह बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है। वस्तुतः प्रेम के ये नये आलम्बन है। वर्तमान कविता मे ये नवीन परपरा के रूप मे विकसित हुए हैं। इसी से इनकी सफलता सिद्ध है।

हास्य के क्षेत्र में प्रयोग—

आधुनिक युग मे हास्य रस का रूप भी परिवर्तित हुआ है। वीर गाथा काल मे कायर, भक्तिकाल मे ढोगी भक्त एव साधु, भक्तो के आराध्य देव तथा रीतिकाल मे पेटू, स्वार्थी, सूम, वैद्य, खटमल एव अत्याचार-परायण व्यक्ति हास्य रस के आलम्बन रहे है। किन्तु आधुनिक काल मे पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क से, अग्रेजी शासन की क्रूरताओ से, पूँजीपति वर्ग के शोषण से एव सामाजिक वैषम्य से हास्य रस के आलम्बनो मे भी परिवर्तन आया है। शोषण, उत्पीडन, टैक्स, घूस, भुखमरी, महामारी, अकाल, परतत्रता एव स्वतत्रता ने नए-नए आलम्बनो की सृष्टि की है।

आधुनिक कविता मे हास्य रस का विकास तीन रूपो मे अधिक हुआ है—(१) व्यग्य (२) मधुर हास और (३) पैरोडी।

नीचे नये आलम्बनो सहित इन्ही तीनो रूपो का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है :—

(१) व्यंग्य—हास्य और व्यग्य मे भेद है। दोनो का अन्तर सूक्ष्म होते हुए भी अस्पष्ट नही है। शुद्ध हास्य मे कोई प्रयोजन नही होता। यदि कोई प्रयोजन है तो मनोरजन मात्र। किन्तु व्यग्य सोद्देश्य होता है। उद्देश्य ही व्यग्य-काव्य का प्राण है। व्यक्तिगत और समाजगत त्रुटियो का परिमार्जन व्यग्यात्मक कविता का मुख्य उद्देश्य होता है। इसके द्वारा अत्यत सुगमता से दोषो का परिहार हो सकता है। इसके माध्यम से बात सक्षेप से एव साकेतिक ढग से कही जाती है, जो सीधे लक्ष्य तक पहुँचती है।

आधुनिक कविता मे हास्य ने अधिकतर व्यग्य का रूप धारण कर लिया है। अतएव यहाँ पहले उसी पर विचार किया जाता है।

नयी कविता मे व्यग्य के विषय भी नये है। इन्हें चार भागो मे बाँटा जा सकता है—(क) व्यक्ति, (ख) परिवार, (ग) समाज और (४) स्वय कवि।

(क) व्यक्ति—वर्तमान कविता मे नेता, डाक्टर, वकील, ग्रेजुएट, मिनिस्टर, कवि, साहित्यिक, बाबू, क्लर्क, फैशन परस्त युवक, नये नौजवान, सवाददाता, पत्रकार, मेम, देशभक्त, समालोचक तथा वोटरो तक को हास्य एव व्यग्य का विषय बनाया गया है।

निराला जी हिन्दी के प्रसिद्ध व्यग्यकार हैं। 'नये पत्ते' मे 'रानी और कानी' कविता मे मार्मिक व्यग्य है। एक लडकी है कानी और कुरूप। किन्तु मा ने प्यार से उसका नाम रखा है, रानी। रानी से कोई विवाह करने को तैयार नही होता। समाज मे हर एक व्यक्ति सर्व सुन्दरी चाहता है। स्त्री को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए, पुरुष मे चाहे कोई भी गुण न हो। गुणहीन पुरुष भी सुन्दर स्त्री को पाने का अधिकार रखता है, किन्तु रूपहीन स्त्री को समाज मे स्थान कहाँ? मा चिन्तित है कि बेटी से विवाह करने को कोई तैयार नही। यह देखकर रानी रोने लगती है। उसके प्रति सहानुभूति दिखाने वाले तो बहुत हैं, किन्तु उससे विवाह कोई नही करता। कैसी विडम्बना है![1] खजोहरा, मास्को डायलाग्स, राजे ने अपनी रखवाली की, खुश खबरी, दगा की पाँचक, झीगुर डटकर बोला, महँगू महँगा रहा अन्य व्यग्यात्मक विषय है, जिनसे निराला जी की तीव्र प्रतिभा-शक्ति का पता चलता है। इन कविताओ मे व्यग्य का यथार्थ रूप खिल उठा है।

आजकल मिनिस्टर होना भी बहुत बडा लाभ है। पार्टी और चन्दे की धूम मची रहती है। यदि किसी स्कूल या विद्यालय के लोग उनसे सहायतार्थ मिलते हैं, तो उनको निराश ही होना पडता है।[2] अधकचरे

१—मां कहती थी उसको रानी,
आदर से जैसा था नाम।
लेकिन उल्टा ही रूप,
चेचक-मुँह, दाग काला, नाक चपटी;
गंजा सर, एक आँख कानी।—निराला

२—उन्हे दुनियां से क्या मतलब, मिनिस्टर के जो बन्दे हैं
कही वह आ गए तो पार्टी औ खूब चन्दे हैं।
किसी स्कूल विद्यालय का डेपूटेशन जो ले जाओ
तो कहते हैं कि भाई आजकल व्यापार मन्दे हैं।—बेढब बनारसी

साहित्यकार,[१] बेकार ग्रेजुएट, फैशनपरस्त[२], आनरेरी मजिस्ट्रेट बेढब जी के व्यग्य-बाणों का शिकार हुए हैं। कही-कही पर बेढब जी को अश्लीलता का विचार भी छूट गया है।[३] इसमे सदेह नही कि बेढब जी के व्यग्य-विषय अत्यत मार्मिक, सजीव और सामयिक हैं। नयी शिक्षा और नयी सभ्यता के दोषो को उन्होने गहराई से देखा है। ये व्यग्य इतने चुटीले हैं कि सीधे लक्ष्य पर प्रहार करते हैं।

कान्तानाथ पाडेय 'चोच' के हास्य-व्यग्य के आलम्बन लीडर, फैशन-परस्त युवक[४] एवं चन्दा खा जाने वाले लोग[५] ही हैं। उनकी 'खरी खोटी' पुस्तक मे इसी प्रकार के विषयो का बाहुल्य है। चोंच जी के व्यंग्य स्वाभाविकता लिए हुए हैं। इनमे बेढब जी का सा चुटीलापन नहीं है। गोपालप्रसाद व्यास भी हास्य रस के प्रसिद्ध कवि हैं। 'अजी सुनो' उनका प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। इनके व्यंग्य साधारण कोटि के होते हैं। कही-कही पर उनमें वीभत्स बातो का भी वर्णन मिलता है।[६] रमई काका की 'धोखा' कविता मे आधुनिक सभ्यता और

१—पढ़ के दर्जा तीन तक वे बन गए साहित्यकार
और मम्मट से वह अपने को समझते कम नहीं।—बेढब बनारसी

२—नजाकत औरतों सी, बाल लम्बे, साफ मूँछे हैं
नए फैशन के लोगों की अजब सूरत जनानी है
× × ×
जनेऊ इनकी नेकटाई है पाउडर इनका टीका है
नये बाबू को छिड़की आजकल गंगा का पानी है।—बेढब बनारसी

३—नयी तालीम का बेढब यही निकला नतीजा है
चचा के सामने लेडी लिए लेटा भतीजा है।—बेढब बनारसी

४—मूँछ की गायब निशानी खूब है
कमर की पतली कमानी खूब है।
वाह मिस्टर मुलमुले भंडारकर
आपकी सूरत जनानी खूब है।—चोंच

५—चन्दा औ पद ग्रहण की, जब लग मन में खान
पटवारी औ पन्त हैं दोनों एक समान।—चोंच

६—वे आठ बजे पर उठते हैं
उठते ही चाय माँगते हैं
फिर लेकर के अखबार
लैट्रिन में सीधे घुस जाते हैं।

फैशनपरस्ती पर चुटीला व्यग्य है। इनकी भाषा अवधी है। वशीधर शुक्ल ने भी आधुनिक फैशन पर व्यग्य कसे हैं। ये अवधी मे लिखते हैं।[१] श्रीनारायण चतुर्वेदी भी प्रसिद्ध व्यग्य-कवि हैं। इन्होने अधिकतर साहित्यिक व्यग्य लिखे हैं। उनकी 'करेला लोचनी' प्रसिद्ध कविता है।[२] 'छेड़छाड' इनका प्रसिद्ध काव्य-सग्रह है। अज्ञेय जी की जनाह्वान', 'जयतु हे कटक चिरन्तन', नागार्जुन की 'बडा साहब', 'सौदा', 'प्रेत का बयान', 'मास्टर', 'छायावादी कवि', भवानी प्रसाद की 'गीत फरोश' कविताओ मे व्यग्य का पुट अत्यत तीखा और तिलमिला देने वाला है।

(२) परिवार—

पति-पत्नी, देवर-भाभी और साले को व्यग्य का आलम्बन बनाकर गोपालप्रसाद व्यास ने अनेक कविताओ की रचना की है। 'अजी सुनो' मे पत्नी के विषय मे अनेक कविताएँ लिखी गई है। पत्नीवाद पर हास्य रस पूर्ण इतनी कविताएँ शायद् किसी कवि ने नही लिखी है। एक ही विषय के ऊपर आधारित होने से व्यास जी की कविताओ मे पुनरावृत्ति का शैथिल्य आ गया है। बहुत कुछ कृत्रिमता भी दिखाई पडती है। सहज हास्य बहुत कम है।[३] पत्नी से आगे अब उन्होने 'साले' को व्यग्य का विषय बनाया है।

जब घड़ी बजाती साढ़े नौ,
तब कहीं पखाने जाते हैं।—व्यास

१—कारे मुख पर पाउडर, की शोभा सरसाय।
मनौ धुवाना भीति पै, कलई दीन पोताय॥—वशीधर शुक्ल

२—सदृश करेला आँख तुम्हारी,
वैसी कर्कश, वैसी तीखी,
वैसी नोंके प्रिये तुम्हारी
और जब कभी क्रोधित होती,
तब तुम नयन फाड़ हो देती।
नीम चढ़े तब निम्ब करेले की उपमा पूरी कर देती।
—श्रीनारायण चतुर्वेदी

३—तो तुम कहती हो—मैं स्नान,
भजन-पूजन—सब किया करूँ,
उसका खुद भी व्रत लिया करूँ।
प्रियतमे गलत सिद्धान्त,

३—समाज

पूँजीपति, परंपरा, रूढि, प्राचीन सस्कृति, पचायत, झूठी देश-भक्ति, बेकारी, बुड्ढों का विवाह, नकली नेता, सिनेमा गृह, घूस, सामाजिक कुप्रथाएँ एव अनैतिक आचरण को व्यग्य का विषय बनाकर अनेक रचनाएँ लिखी गईं हैं। आधुनिक कवियो ने लीडर, चुनाव, चुगी, चन्दा आदि विषयो पर बहुत कुछ लिखा है। प० हरिशकर शर्मा ने अपने 'चिडियाघर' मे इस प्रकार के सामाजिक विषयो के आधार पर मनोरजक सामग्री प्रस्तुत की है। 'चमर पच' कविता मे स्थायी पचो की भर्त्सना की गई है।[1] अगुआ की आत्म कथा कविता मे एक असफल वकील का व्यग्य चित्र उतारा गया है। वकील साहब झूठी देश-भक्ति को ही जीविका का साधन बना लेते हैं। भोली जनता को ठगने वाले लोगो पर शर्मा जी ने मार्मिक व्यग्य का प्रयोग किया है।[2] शर्मा जी के व्यग्य समाज-सुधार की ओर लक्ष्य करते हैं। बेढब बनारसी के व्यग्य सामाजिक दूषणो पर प्रहार करते हैं। उन्होने 'बेढब की बहक' नामक काव्य-सग्रह मे बेकारी, नौकरी के लिए घुडदौड, हाकिमो की चापलूसी, विदेशी सभ्यता एव सरकारपरस्तो पर खूब छीटाकशी की है। बेधडक बनारसी की 'हमारे नौजवानो की जवानी देखते जाओ,' 'दिल मे मेरे यह कसाला रह गया,' रमई काका की 'बुढउ का बियाहु,' 'धोखा,' कुज विहारी पाडेय की, 'मत्री जी की जवानी,' 'दैनिक पत्र,' 'सिनेमा-गृह,' वशीधर शुक्ल की 'शकर वेदना,' दिनकर जी की 'हाहाकार'

एक कहते हैं, दूजे करते हैं,
तुम स्वयं देख लो युद्ध भूमि में
सेनापति कब मरते हैं ? —गोपालप्रसाद व्यास

१—रकम दूसरों की गटकते रहो,
सटासट माला सटकते रहो।
बनो धर्म के धाम संसार में,
अड़ाओ सदा टाँग उपकार में।
स्वयं मौज मारो मजे में रहो।
भजो भोर गोपाल 'शिव शिव' कहो। —हरिशंकर शर्मा।

२—मिली जो जनता रूपी गाय,
बड़ी भोली भाली है हाय।
दुहा करता हूँ मैं दिन रात,
न कपिला कभी उठाती लात। —हरिशंकर शर्मा

नयी दिल्ली, मुक्ति बोध की 'पूँजीवादी समाज के प्रति,' रागेय राघव की 'पूँजीपति,' 'साम्राज्यवाद के प्रति,' भारतभूषण की 'अहिंसा,' माचवे की 'सानेट,' 'देशोद्धारको से,' मैं और खाली चा की प्याली,' 'बीसवी सदी,' रामविलास शर्मा की 'सत्य शिव सुन्दरम्' अज्ञेय की 'जयतु हे कटक निरजन' कविताओ मे सामाजिक एव राजनीतिक विषयो पर व्यग्य का प्रहार किया गया है।

४—स्वयं कवि—

अनेक कविताओ मे स्वय कवि या पात्र हास्य-व्यग्य के आलम्बन के रूप मे आया है। कान्तानाथ पाडेय चोच की 'आत्म-विज्ञापन,'[१] हरिशकर शर्मा की 'अगुआ की आत्म-कथा,'[२] बेढब बनारसी की 'फैशन के गुलाम,'[३] गोपालप्रसाद व्यास की 'अजी सुनो,'[४] कुजविहारी पाडेय की 'दैनिक पत्र'[५] कविताओ मे हास्य-व्यग्य का पात्र ही स्वय अपने मुख से आत्म-परिचय देता है। इससे व्यग्य मे और अधिक सजीवता एव मनोरजकता बढ गई है।

(२) परिहास (आयरनी)

इसमे वक्ता जो कुछ कहता है, उसके विपरीत आशय होता है। वैपरीत्य ही इसका प्राण है। व्याज-स्तुति एव व्याज निन्दा इसके दो रूप है। प० हरिशकर शर्मा ने अपने चिडियाघर मे अच्छे परिहासो की योजना की है।[६] बेढब बनारसी की 'घूस' व्याज स्तुति का उदाहरण है।[७] गोपाल प्रसाद की 'पत्नी पूजक',[८] चोच कवि की 'वन्दना',[९] वशीधर शुक्ल की 'जय वोटर भगवान्'

१—खरी खोटी, पृ० ६६।

२—चिड़ियाघर, पृ० १३३।

३—बेढब की बहक, पृ० ३३।

४—अजी सुनो, पृ० १७१।

५—उपवन, पृ० ११।

६—नाथ ऐसा दो आशीर्वाद।
हो जावें हम भारतवासी, सब के सब बरबाद,
भारत पड़े भाड़ मे चाहे, घटे न पद मर्याद।
रहे गुलामी के गड्ढे मे, करे न दाद फरियाद,
जरा जरा से वाकयात पर बरसा करें फिसाद—हरिशंकर शर्मा

७—खुदा से रात दिन हम खैरियत उनकी मनाते है।
निडर होकर मजे से घूस लेना जो सिखाते है।—बेढब बनारसी

८—अजी सुनो, पृ० ८६।

९—खरी खोटी, पृ० २२।

आदि कविताओ मे परिहास का सुन्दर रूप प्रस्फुटित हुआ है।

(३) मधुर हास—

यह शुद्ध हास्य है, जिसमे किसी प्रकार की तीक्ष्णता, कटुता अथवा ईर्ष्या को स्थान नही होता। इसमे व्यग्य की तरह कोई प्रयोजन भी नही होता और परिहास की तरह स्तुति मे निन्दा या निन्दा मे स्तुति भी नही होती है। हास्य के आलम्बन के प्रति इसमे आत्मीयता और सहानुभूति का भाव रहता है। आधुनिक कविता मे कही-कही इसके प्रयोग भी मिलते है। 'पढीस' की 'हम और तुम',[१] प० हरिशकर शर्मा की 'जय नलदेव हरे', चोच जी का 'निराशा का गान', बेधडक जी की 'प्रियतम से बजट पास कराना',[२] गोपाल प्रसाद व्यास की 'कलम खो गई,[३] श्रीनारायण चतुर्वेदी की 'घन्टाघर'[४] कविताएँ मधुर हास के अच्छे उदाहरण हैं। इनमे हास्य का शिष्ट रूप दिखाई पडता है।

(४) पैरोडी—

आधुनिक कविता मे हास्य का एक नया रूप पैरोडी मे मिलता है। इसमे किसी कवि या उसकी विशिष्ट शैली की हास्य रसात्मक अनुकृति प्रस्तुत की जाती है। यह अग्रेजी का शब्द है, जिसका हिन्दी-कविता मे अनुकरण होने

१—चकल्लस, पृ० ६५।

२—बिट्टी की शादी करनी है,
लल्लू का मुंडन करना है।
जी हुआ जनेऊ कल्लू का,
उसका भी कर्ज भरना है।
यह दो हजार का खर्चा है,
इसमें न कटौती हो सकती।
हाँ, यह मकान मालिक भी तो,
देता रहता नित धरना है।
ये सारे काम जरूरी हैं,
मत चेहरा अभी उदास करो।
करती हूँ घर का बजट पेश,
प्रियतम तुम इसको पास करो। —बेधड़क बनारसी

३—अजी सुनो, पृ० १५।

४—छेवछाव, पृ० ११।

लगा है। इसका मूल प्रयोजन हास्य एव प्रशसन है, किन्तु किसी कवि की रचना-शैली की दुष्टता या हीनता की ओर भी इसमें सकेत होता है।

आधुनिक कवियो में पैरोडी लिखने की ओर विशेष प्रवृत्ति दिखाई पडती है। प० हरिशकर शर्मा ने सुन्दर पैरोडियाँ लिखी हैं। तुलसीदास की शैली का अनुकरण करते हुए उन्होंने सुन्दर पैरोडी लिखी है[१]। निराला जी की 'खटवा' अतुकान्त शैली की पैरोडी है। बेढब बनारसी, चोंच,[२] बेधडक बनारसी, गोपालप्रसाद व्यास,[३] श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा अन्य बहुत से कवि इस ओर विशेष प्रवृत्ति रखते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह सुगमता से कहा जा सकता है कि वर्तमान काल मे हास्य रस के रूप, शैली एव आलम्बनो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। पहले हास्य रस के विषय गिने-चुने ही होते थे (पेटू, स्वार्थी, सूम, वैद्य, आराध्य, देवादि) किन्तु आधुनिक काल मे इनकी सख्या अपरिमिति हो गई है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, शिक्षा एव साहित्य आदि सभी क्षेत्रो से हास्य के आलम्बनो को चुना गया है। वकील, डाक्टर, लीडर, पत्रकार, छात्र, अध्यापक, क्लर्क, बाबू, साहब, नवयुवक एव नव युवतियाँ सभी को हास्य एव व्यग्य का विषय बनाया गया है।

नयी कविता मे हास्य व्यग्य, परिहास, मधुर हास एव पैरोडी आदि विविध रूपो मे प्रकट हुआ है, इनमे से भी व्यग्य के विषयो का प्राचुर्य है। इसमे सन्देश नही कि व्यग्य के क्षेत्र मे बहुत से प्रतिभाशील कवि आए हैं जिन्होने अपनी उत्कृष्ट रचनाओ द्वारा हिन्दी काव्य को व्यग्य का प्रचुर साहित्य दिया है। किन्तु सर्वत्र उत्तम व्यग्य नही है। उत्तम व्यग्य मे औचित्य का विचार अवश्य होता है। उसमे घृणित, कुत्सित, एव अश्लील बातो का वर्णन नहीं होता। आधुनिक कवियो का व्यग्य शिष्टता के वर्ज्य तटो को स्पर्श करता है तथा उसमे मर्यादा का उल्लघन पाया जाता है[४]। यह प्रवृत्ति अधिकतर प्रगति-

---

१—पिंजरा पोल, पृ० २८।

२—नेता ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
चन्दा सारा गहि रहै, देय रसीद उड़ाय।

३—तुलसी या संसार में, कर लीजै दो काम
भरती हूजै फौज में, वार फंड में दाम। —व्यास

४—तार सप्तक, पूँजीवादी समाज के प्रति (मुक्ति बोध)।

वादी काव्य मे अधिक दिखाई पडती है।

हिन्दी काव्य मे मधुर हास (ह्यूमर) की कमी बहुत खटकती है। शिष्ट, सुरुचिपूर्ण एव मर्यादित हास की आज भी आवश्यकता बनी हुई है। व्यग्यात्मक विषयो के चुनाव मे भी सामान्य रुचि, सामान्य प्रवृति एव सामान्य जीवन-बोध का विचार रखकर चलना ही काम्य है। इसके अभाव मे कविता 'भदेस' दिखाई पडती है। कवि की प्रतिभा किसी भी विषय मे व्यग्य का प्राण डाल सकती है। कबीर की रचनाओ मे व्यग्य का खरापन है, भारतेन्दु के व्यग्य मे करुणा है, निराला के व्यग्य मे विनोद-वक्रता है। अतएव इस प्रकार के व्यग्य काव्य को गौरव देते हैं। नाथूराम 'शकर' के व्यग्य सामाजिक कुप्रथाओ पर प्रहार करते है, शुक्ल के व्यग्य में सरसता एव स्वभाविकता है एव पन्त जी के स्फुटिक व्यग्यो मे सैद्धान्तिकता का मधुर स्पर्श है। जहाँ तक व्यक्तिगत आक्षेप और साप्रदायिक भावो से विनिमुक्त होकर कवियो ने अपनी रचनाओ मे व्यग्य को प्रकट किया है, वहाँ तक उनसे काव्य की शोभा की वृद्धि हुई है। किन्तु खेद है कि सकुचित दृष्टि एव शिष्टरुचि के अभाव मे वर्तमान काल के अनेक कवि अशिष्ट एव कुरुचिपूर्ण आक्षेप और अपवादो को ही व्यग्य के नाम पर प्रश्रय दे रहे है।

नये कवियो मे भारतभूषण अग्रवाल, केशवचन्द्र वर्मा, जानकीवल्लभ, नागार्जुन, माचवे, भवानीप्रसाद, केदार आदि सामाजिक एव राजनीतिक जीवन मे से व्यग्यो के लिए विषय चुनकर नये समाज का ध्यान आकर्षित कर रहे है। इन कवियो की उपलब्धियो से आशा है कि व्यग्य हिन्दी की महत्वपूर्ण काव्य-प्रवृत्ति के रूप मे शीघ्र ही स्थान ग्रहण कर लेगा।

वीर रस के क्षेत्र में प्रयोग

आलोच्यकालीन कविता मे वीर रस के व्यजक उपकरणो मे भी नये-नये प्रयोग हुए हैं। ये प्रयोग अधिकतर वीर रस के आश्रय, आलम्बन एव व्यभिचारी भावो मे दिखाई पडते हैं। नीचे इन्ही का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

वीर रस के आश्रय में परिवर्तन

वीर रस के आश्रय प्राचीन साहित्य मे प्रायः चार प्रकार के हुआ करते थे—युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर, धर्म-वीर। आधुनिक काव्यो के अध्ययन से वीर रस के आश्रय कुछ नये वीरो का भी पता चलता है। इनको पाँच वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है।

(१) वीरत्व का आश्रय नारियाँ—आधुनिक काव्य मे नारी को अधिक गौरव दिया गया है तथा उसके व्यक्तित्व के निर्माण मे कुछ विलक्षण गुणो की प्रतिष्ठा की गई है। आर्यावर्त (मोहनलाल महतो 'वियोगी') की रानी सयोगिता को कवि ने एक वीरागना क्षत्राणी के रूप मे अकित किया है। उसके चरित्र मे आर्य भूमि एव आर्य गौरव का प्रेम तथा स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा है।[1] मुहम्मद गोरी के द्वारा पृथ्वीराज के परास्त हो जाने पर वह इसे आर्य जाति का पराभव समझती है तथा देश के नवयुवको मे राष्ट्रीयता की चेतना जागृत करके उन्हे युद्ध के लिए तैयार करती है। वह देशी राजाओ का सहयोग लेकर एक विशाल सेना सुसगठित करती है तथा युद्ध-भूमि मे यवनो को पराजित करके प्रतिशोध लेती है। 'झाँसी की रानी' (सुभद्राकुमारी चौहान) मे लक्ष्मीबाई भी इसी श्रेणी की वीरागना है जिसने स्वदेश और स्वाभिमान की रक्षा के लिए अग्रेजो की सेना से लोहा लिया था। विक्रमादित्य महाकाव्य (गुरुभक्त सिंह) की 'ध्रुव देवी' ऐसी ही वीरागना हैं, जो विदेशीय शत्रुओ को भारत से बाहर खदेडने के लिए युद्ध-भूमि पर उतरती हैं और शत्रु के निष्क्रमण के कार्य मे सफल होती है।[2] 'जौहर' (श्यामनारायण पाडेय) काव्य की पद्मिनी भी अद्वितीय वीरागना है जिसने मान, मर्यादा और सतीत्व की रक्षा के लिए अभूतपूर्व शौर्य एव साहस का परिचय दिया था।[3] रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' की 'विजया' और 'स्वप्न' काव्य की 'सुमना' दोनो मे वीरत्व का आदर्श पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुआ है। ये दोनो वीर-नारियाँ राष्ट्रोद्धार का व्रत धारण करती है और देश को अत्याचारी शासन से मुक्त करके लिए जन-आन्दोलन सगठित करती है। उनके कार्यों से अद्भुत पौरुष की व्यजना होती है।

इस प्रकार स्त्री पात्रो मे वीरत्व की भावना प्रतिष्ठित करके आधुनिक कवियो ने वीर रस के आश्रयो मे परिवर्तन किया है। वीरत्व के आश्रय के रूप मे वीर माताओ, वीर बहिनो, वीर पुत्रियो और वीर पत्नियो को भी चुना गया है। लाला भगवान दीन 'दीन' का वीर पचरत्न इसका अच्छा उदाहरण है।

(२) वीरत्व का आश्रय दैत्य—नारियो की भाँति वीरत्व की प्रतिष्ठा कुछ ऐसे पात्रो मे भी की गई है जो दैत्य-दानव-वश मे उत्पन्न हुए हैं अथवा जो जाति च्युत अधम पात्र है। दैत्य वश और रावण महाकाव्य मे दैत्य वश मे

१—देखिए, मोहनलाल महतो 'वियोगी,' आर्यावर्त, पृ० ६४।
२—देखिए, गुरुभक्त सिंह, विक्रमादित्य, पृ० ६१।
३—श्यामनारायण पांडेय, जौहर, पृ० ६६।

उत्पन्न होने वाले राजा-महाराजाओ मे एव अगराज (आनन्द कुमार) मे जाति से पतित अधिरथ सुत कर्ण मे वीरत्व की प्रतिष्ठा की गई है तथा उन्हे काव्य के उदात्त नायक के रूप मे चुना गया है। दैत्यवशकार ने देवो की अपेक्षा दैत्यों मे वीरत्व का अधिक उत्कर्ष दिखाया है। देवासुर सग्राम मे दैत्यराज बलि और देवराज इन्द्र के बीच तुमुल युद्ध आरभ होता है, जिसमे दैत्यो की सेना देवताओं की सेना को परास्त कर देती है और दैत्यो से भयभीत होकर इन्द्र मानसरोवर मे जा छिपते हैं।[१] इस कथानक मे देवो को आलम्बन और दैत्यो को आश्रय के रूप मे चित्रित किया गया है।

(३) **वीरत्व का आश्रय देश-भक्त**—आधुनिक युग का नवीनतम भाव है राष्ट्रीयता। इन भावनाओ ने राष्ट्र, समाज एव जन-सेवा की ओर वीरो को प्रोत्साहित किया है। पथिक, स्वप्न एव मिलन नामक खड काव्यो मे रामनरेश त्रिपाठी ने देश एव समाज-सेवा से प्रेरित नवयुवको मे वीर भाव की व्यजना की है। स्वदेश-भक्ति से प्रेरित इन महाकाव्या मे लोक-सेवा, समाज-सेवा एव देश-सेवा के लिए अद्भुत उत्साह की अभिव्यक्ति पाई जाती है। सनेही जी की राष्ट्रीय कविताओ मे देश के प्रति अदम्य उत्साह की व्यजना है। उन्होने देश की जनता को कर्तव्य-शूर होने का पाठ पढाया है और राष्ट्र-गौरव के साथ जीने के लिए प्रोत्साहित किया है। 'हिम किरीटिनी' के ओजस्वी कवि माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएँ राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण हैं। उनकी 'एक फूल की चाह' कविता नया प्रयोग है। मातृभूमि पर बलिदान होने की भावना से उत्प्रेरित पुष्प की अभिलाषा मे नवयुवको के लिए अपूर्व 'उत्साह' व्यजित है। उनकी 'कैदी और कोकिला' कविता मे उत्साह के अन्तर्गत गर्व, अमर्ष, क्षोभ, असन्तोष एव उग्रता की व्यजना पाई जाती है। 'हिम किरीटिनी' का 'सिपाही' सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती और मुट्ठी मे आकांक्षा दबाए लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जा रहा है। चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओ मे राष्ट्रोद्धार के लिए रोष, क्षोभ, आक्रोश और ग्लानि के स्वर की अनुगूंज सुनाई पडती है। निराला जी की 'महाराज शिवा जी का पत्र,' 'आवाहन' कविताओ मे शक्ति और ओज है। नवीन जी की 'विप्लव गान,' 'पराजय गीत,' 'हिन्दुस्तान हमारा है'—कविताओ मे राष्ट्र के प्रति आकुल उत्साह की व्यजना है। सुभद्राकुमारी चौहान की 'वीरो का कैसा हो बसन्त,' 'जलियानवाला बाग मे बसन्त,' 'राखी' आदि कविताओ मे देश की जागृत नारी का स्वाभिमान उद्दीप्त हो उठा है। उदशकर भट्ट,

---

१—देखिए, हरदयालु सिंह, दैत्य वंश, सर्ग ६।२१-३०।

दिनकर, सुधीन्द्र आदि के काव्य मे देश के प्रति उत्साह के ही विविध रूपो की अभिव्यक्ति है ।

(४) **वीरत्व का आश्रय पाठक**—ह्रास के युग मे अतीत के गौरव की स्मृति का जगना स्वाभाविक है । प्राचीन काल की गौरव गाथाएं तथा वीरो की कथाएँ सुनकर किसका हृदय हर्षोत्फुल्ल नही हो जाता ? पूर्वजों के आदर्श चरित्र कवियो को जीवनी-शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे उत्प्रेरित होकर वे वीर रस की ओजपूर्ण कविता करने में प्रवृत्त होते हैं । भारत भारती के कवि ने अतीतकालीन गौरव से प्रेरित होकर पाठको के हृदय मे वीर भावो का उद्रेक किया है । स्वर्गीय सगीत '(मैथिलीशरण गुप्त) उत्साह के भावो से ओत-प्रोत है । इनकी पक्ति-पक्ति मे पुरुषार्थ, प्रताप, दृढ़ता, निर्भीकता, सत्वशीलता, कर्म परायणता, दानदया, आदि के प्रति उत्साह की मधुर व्यजना है । इन पक्तियो को पढ़कर पाठक का हृदय उत्साह से उद्वेलित होने लगता है । निराला की 'राम की शक्ति पूजा,' 'तुलसीदास,' 'जागो फिर एक बार,' 'उद्बोधन,' 'दिल्ली,' 'खडहर से' आदि कविताओ मे भारतीय सस्कृति के प्रभा-कणो का आलोकपूर्ण समुच्चय है । इन काव्यो मे सास्कृतिक उत्साह से प्रेरित होकर कवि ने वीर भावो की प्रतीकात्मक व्यंजना की है । इनमें मानव की क्रियाशील युद्धोन्मुख सशक्त प्रेरणाओ का अत्यत स्फूर्तिमय एव हृदयग्राही चित्रण है ।

उदयशंकर भट्ट की 'तक्षशिला' नामक कृति पौरुषपूर्ण भावों से ओतप्रोत है । तक्षशिला की पुरातन सस्कृति, वैभव और समृद्धि से प्रोत्साहित होकर कवि ने वीर भावो की ओजस्वी रचना प्रस्तुत की है । तक्षशिला के प्राचीन गौरव मे से बौद्ध गाथाओ के वृत्तान्त, सास्कृतिक गौरव, पडितो का विद्यानुराग, विद्वानो एव ब्रह्मचारियो की सच्चरित्रता आदि विषयो को लेकर कवि ने अत्यत उत्कृष्ट काव्य की रचना की है । तक्षशिला के खडहरो से उसने जीवन का सदेश पाया है, जिसे पढकर पाठक का हृदय उल्लास से भर जाता है ।

दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' के छठें सर्ग की रचना इस दृष्टि से अत्यत ओजपूर्ण है । सुधीन्द्र के जौहर मोहनलाल महतो वियोगी के 'आर्यावर्त' तथा श्यामनारायण पाडेय के 'जौहर' आदि काव्यो मे भी भारतीय वीर तथा वीरागनाओ की उदात्त कथाओ के चल चित्र हैं, जिन्हे पढ़कर पाठको का हृदय उत्साह से आप्लुत हो जाता है ।

(५) **वीरत्व का आश्रय स्वयं कवि**—प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियो को पूँजीवादी समाज से स्वाभाविक विरोध है । वे समाज की प्राचीन परंपराओ एव प्रणालियो को ध्वस्त कर नवनिर्माण के प्रति साहस दिखलाते है ।

इनकी कविताओ मे ध्वस, विद्रोह, तूफान, क्रान्ति एवं प्रलय का स्वर है। पूंजीवादी वर्ग के शोषक, उत्पीडक, अन्यायी, अत्याचारी, उच्छृखल, शासक, पीडित जनता, शोषण, दरिद्रता, परतत्रता आदि विषयो को लेकर इन कवियो ने पौरुषपूर्ण उत्साह की व्यजना की है।

दिनकर की 'हाहाकार,'[१] 'विपथगा,' 'दिल्ली,' 'भविष्य की आहट' कविताओ मे दरिद्रता का आक्रोश और पीडा का क्रन्दन हृदय की धडकन के साथ मुखरित हुआ है। इसमे उत्साह के अन्तर्गत अमर्ष की व्यजना बडी स्फूर्तिमय है। इनकी कविताओ मे उत्साह की व्यजना अत्यत सशक्त, प्रभावोत्पादक एव मर्मस्पर्शी है। इनकी कविताएँ एक हलचल उठाकर पाठक के हृदय को झकझोर देती है। इनके ओजपूर्ण भावो मे वर्तमान समाज की उत्पीडित मानवता के लिए सवेदना का स्वर है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'अन्तर्लक्ष्मी' कविता मे कवि वैषम्य से खीझ कर समाज मे आग लगा देना चाहता है। इनकी 'नव हु कार' मे अन्याय और अत्याचार को ध्वस्त करने की शक्ति है। रामेश्वर शुक्ल 'अचल' की 'आह्वान' और 'शोषिता' कविताओ मे तरुण कवि का भैरव नाद सुनाई पडता है। 'आज मरण की ओर' कविता मे क्रान्ति का सुस्पष्ट स्वर है जिसमे ससार के भूखे टूटे जनो ने मिलकर ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की है। ओज और वीरता का युगपत मिश्रण अचल के काव्य का उद्घोष है। इलाचन्द्र जोशी, आरसी प्रसाद, रागेय राघव, सुमन, उदयशकर भट्ट आदि कवियो की रचनाओ मे क्रान्ति की व्यजना सजीव है। इनमे वीरता, उदारता, आत्म त्याग, विजय, नव निर्माण के प्रति उत्साह का भाव व्यजित हुआ है।

वीर रस के नये आलम्बन—

प्राचीन काव्य मे वीर रस के आलम्बन शत्रु, प्रतिपक्षी वीर, विरोधी वर्ग के सैनिक आदि रहते आए हैं। आधुनिक युग मे वीर रस की व्यजना के लिए नये विषय चुने गए हैं। राष्ट्र, सस्कृति, सामाजिक जीवन आदि ऐसे ही विषय हैं। नये विषयो के आगमन से काव्यक्षेत्र मे नए आलम्बनो का भी विकास हुआ है। आलोच्यकाल की कविता मे अत्याचारी शासक, आततायी, राष्ट्रद्रोही,

---

१—हटो व्योम के मेघ पन्थ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं
'दूध' 'दूध' ओ वत्स, तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।
—हाहाकार, दिनकर

पूँजीपति, शोषक, सामन्त एव साम्राज्यवाद के पोषको को भी वीर रस का आलम्बन चुना गया है।

वीर रस के नये संचारी—नई कविता मे राष्ट्रीय, सास्कृतिक एव प्रगतिशील तीनो काव्य-प्रवृत्तियो मे उच्च स्तर के वीर भावो की अभिव्यजना हुई है। आलम्बन के प्रति प्रतिज्ञा, ललकार, चुनौती, हुकार, अवज्ञा, उल्लास, तर्जन, दमन, उत्पीडन, सघर्ष, दृढता, साहस, निर्भीकता, स्वाभिमान के भावो की अभिव्यक्ति पाई जाती है। उत्साह के अन्तर्गत कुछ नवीन सचारी भावो के भी दर्शन होते है—विक्षोभ, क्रान्ति, असतोष, ईर्ष्या, नैराश्य, स्पर्द्धा, विजय आदि। इनमे से कई भाव तैंतीस सचारियो मे अन्तर्भुक्त हो सकते हैं, किन्तु नए आलम्बन और नए आश्रय के साथ सम्पर्कित होने के कारण इनकी व्यजना नवीन है। आधुनिक कविता मे इनकी अभिव्यजना को सशक्त देखकर ही इनको नवीन सचारियो की कोटि मे रखा गया है।

विवेचन—वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है, जिसकी सत्ता प्राणी-मात्र मे विद्यमान है। यह ऐसा व्यापक भाव है कि जीवन की किसी भी चेष्टा मे व्यक्त हो सकता है। जब किसी भी कार्य मे उत्साह प्रदर्शित किया जा सकता है, तब उसकी सीमा भी कैसे बाँधी जा सकती है? उत्साह का प्रदर्शन हर एक मानव-प्रवृत्ति मे (ह्यूमन इन्सटिन्क्ट) मे हो सकता है। शौर्य-प्रदर्शन की उल्लास-पूर्ण चेष्टा ही उत्साह है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, करुणा, प्रेम, क्षमा, सत्य, अहिंसा आदि हर एक भाव मे उत्साह को प्रदर्शित किया जा सकता है। इसी से इसके अनेक भेद किए गए है। दान, दया, धर्म, युद्ध की भाँति सत्य, सेवा, त्याग, कार्य मे अतिशय सलग्नता, दृढता, साहसिकता का होना वीरता है। जीवन के किसी भी कार्य या व्यापार मे किसी व्यक्ति की असाधारण शक्ति हो, तो वह उसका वीर कहलावेगा। इस दृष्टि से जिस व्यक्ति की मानसिक शक्ति का असाधारण विकास हुआ है, उसे बुद्धि-शूर, जिसकी वाणी मे ओज है, उसे वाक्-शूर तथा जिसके कार्य मे साहस है, उसे कर्म शूर कहते है। इसीलिए महाभारत मे 'शूरा बहुविधाः प्रोक्ताः' कहा गया है।

आधुनिक युग मे शौर्य एव उत्साह प्रदर्शित करने के हेतु अनेक कार्यों का विस्तार हुआ है। प्राचीन काल मे युद्ध मे ही शूर-धर्म प्रकट हो सकता था। इसके पश्चात् दान, दया और धर्म भी वीर धर्म मे सम्मिलित हो गए। आधुनिक युग मे उत्साह के कार्यो का और भी अधिक विस्तार हो गया है। इसी से स्वातत्र्य वीर, राष्ट्र वीर, सत्य वीर, अहिंसा वीर, प्रतिज्ञा वीर, बलिदान वीर, विजय वीर, त्याग वीर आदि विविध प्रकार के वीरत्व के आश्रयो का प्रादुर्भाव

हुआ है। राष्ट्रीय, सास्कृतिक एव प्रगतिशील काव्य मे उत्साह की व्यजना विविध प्रकार के वीर एव वीरागनाओ के द्वारा कराई गई है। वीरत्व की व्यजना के लिए वीर नारियो एव अधम श्रेणी के पात्रो को भी ग्रहण किया गया है। वैयक्तिक चेतना, प्रधान कविताओ मे कवि ने स्वय आश्रय का स्थान ले लिया है। कही-कही उत्साह के आश्रय के रूप में पाठको को रखा गया है या आक्षिप्त कर लिया गया है। आलम्बन और आश्रय की विविधता के साथ नये सचारी भावो का भी विस्तार हुआ है। नवीन आलम्बन के प्रति नवीन आश्रय मे ही सशक्त रूप से व्यजित होने के कारण ये नवीन सचारी कहे जा सकते है, अन्यथा ये किसी-न-किसी रूप से तैंतीस सचारियो मे आ जाते हैं।

उत्साह के ये विषय नये युग की देन हैं। प्राचीन काल मे इनका कही स्रोत नही मिलता है। अतएव ये नये काव्य-प्रयोग हैं। किन्तु आलोच्यकाल मे ये नये विषय इतने अधिक प्रचलित हुए हैं कि इनका नई परपरा के रूप मे विकास हुआ है। वीरत्व की नई व्यजना के ये प्रयोग इतने अधिक सफल हुए हैं कि उत्तर छायावाद युग के सभी कवियो की रचनाओ मे इनकी सफल व्यजना हुई है तथा इसकी एक सशक्त परपरा का विकास हुआ है।

आजकल के कवियो का रस सबधी ज्ञान बहुत कुछ उथला है, जिससे नई कविता मे उत्साह के सभी अवयव स्पष्ट नही दिखाई पडते हैं। इससे रस की पूर्ण व्यजना मे बाधा पड़ती है। इसके अतिरिक्त उत्साह के साथ क्रोध का भाव मिश्रित हो गया है। अधिकाश कविताओ मे यह दोष पाया जाता है, जिसमे 'उत्साह' की शुद्ध व्यजना बहुत कम मिलती है।

निष्कर्ष यह कि आधुनिक कविता मे वीरत्व की व्यजना अत्यत उत्कृष्ट है। इसके निर्माण मे दर्जनो कवियो का योगदान है। आश्रय, आलम्बन एव सचारियो के प्रयोग सर्वथा नवीन हैं, क्योकि हिन्दी काव्य परपरा मे पहले कभी इनका दर्शन नही मिलता है। नए सचारी भावो की सशक्त व्यजना से इस परम्परा को नवीन स्फूर्ति मिली है। इसकी सफलता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि नवीन काव्य परम्परा के रूप मे इसका विकास हुआ है। यह परपरा अभी गतिशील है तथा नूतन विकास-पथो के अन्वेषण मे तत्पर है।

करुण रस के क्षेत्र में प्रयोग—

आलोच्यकाल की कविता मे करुण रस के क्षेत्र मे कुछ नए परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन विशेषतः आलम्बन, आश्रय और सचारियो के क्षेत्र में हुए हैं। राष्ट्रीय एव प्रगतिशील काव्य धारा मे इनका प्रयोग अधिकता से हुआ है। करुण रस के नये आलम्बनो को चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) राष्ट्रीय एव सास्कृतिक पतन से सबधित आलम्बन ।
(२) पीडित वर्ग से सबधित आलम्बन
क–शोषित जन
ख–दलित मानव
ग–शरणार्थी
घ–बगाल के अकाल से पीडित जनता और
ड–नारियाँ
(३) बलिदान तथा जौहर करने वाले व्यक्ति ।
(४) अव्यक्त प्रियतम ।

(१) राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक पतन से संबंधित विषय—

प्राचीन काव्य मे शोक की व्यजना इष्ट-नाश, अनिष्ट की प्राप्ति, बन्धु-वियोग, धन-नाश, पराभव आदि तक ही सीमित थी । आलोच्यकाल मे आते आते उसका क्षेत्र कही अधिक विस्तृत हो गया है । राष्ट्र एव राष्ट्रीय सस्कृति की दुर्दशा पर अनेक ऐसी रचनाए लिखी गई है जो सहृदय जनो को आठ आठ आसू रुलाती है । इन कविताओ मे भारतमाता को आलम्बन मानकर ऐसे कारुणिक चित्र अकित किए गए है कि पाठको का हृदय शोक-विह्वल हुए बिना नही रहता है । राष्ट्र के नगर, ग्राम तथा नदियो को आलम्बन जनाकर शोक की अभूतपूर्व व्यजना की गई है । भारतीय सस्कृति की दुर्दशा ने भी कवियो के हृदय को शोकाकुल किया है । देश की गौरवमय प्राचीन सस्कृति तथा महा-पुरुषो के चारित्र्य को स्मरण कर तथा आधुनिक युग की हीनता से उसकी तुलना कर शोक के मर्मस्पर्शी भावो की व्यजना की गई है ।

भारतमाता (पन्त और नैपाली), दिल्ली (निराला), तक्षशिला, पजाब-प्रशस्ति (सदयशकर भट्ट), हिमालय के प्रति, नई दिल्ली (दिनकर) आदि कवि-ताओ मे राष्ट्र की दीन दशा का मार्मिक चित्रण पाया जाता है, जिससे शोक की मर्मस्पर्शी व्यजना होती है । 'खडहर के प्रति' कविता मे निराला का कवि भारतीय सस्कृति के पतन पर आसू बहाता है । 'खडहर' प्राचीन सस्कृति का प्रतीक है । मानवीकरण द्वारा कवि ने उसे शोक के आलम्बन के रूप मे चित्रित किया है । खडहर मे ध्वस्त सस्कृति का प्रभाव भी लक्षित होता है । खंडहर सस्कृति के ध्वस का परिचायक है । कवि स्वय शोक का आश्रय है । निराला की 'यमुना के प्रति', 'तुलसीदास'' मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान', सियारामशरण की 'एक फूल की चाह' 'बापू'' दिनकर की 'कस्मै देवाय' 'आदि कविताओं में करुण रस की हृदय स्पर्शी व्यजना है ।

(२) दलित वर्ग से सम्बन्धित विषय—

प्रगतिशील काव्य मे दलित वर्ग से सबधित प्रचुर काव्य-राशि मिलती है। त्रस्त एव उत्पीडित मानवता के प्रति सभी कवियो ने सहानुभूति प्रदर्शित की है। भूदान यज्ञ से प्रभावित कवियो की रचनाओ मे पीडित वर्ग से सबधित अनेक विषय है।

किसान, मजदूर आदि श्रमिक वर्ग के लोग शोषित जन है, स्पृश्यास्पृश्य की भेद-भावना से पीडित लोग दलित हैं, जिसमे परिगणित एव पिछडी हुई जाति के लोग भी समिलित हैं। देश का विभाजन होने से स्थानान्तरित जनता शरणार्थियो की श्रेणी मे आती है। सन् १९४२ के अकाल से पीडित बगाल की जनता की राम कहानी इतिहास की एक अत्यन्त करुण एवं मार्मिक घटना है। इसे देखकर उस समय अनेक कवियो का हृदय सिहर उठा था। उस निर्मम करुण घटना ने करुण रस की व्यजना के लिए पुष्कल काव्य-सामग्री प्रदान की थी।

नारियो की दयनीय दशा को करुणा के स्वरो मे बाधकर नियति की विडम्बना का चित्र अकित करना आधुनिक युग के कवियो का अत्यन्त प्रिय विषय है। मजदूरिनी, भिखारिन, विधवा, वेश्या, ग्राम नारी, ग्राम युवती के रूप मे वह मानवता का जीवित अभिशाप है। इस प्रकार नारी को विविध करुण चित्रो मे अकित कर कवियो को शोक की मार्मिक व्यजना करने का पर्याप्त क्षेत्र मिला है।

रामविलास शर्मा की 'हड्डी का ताप' कविता मे परतत्र देश के युवको का चित्रण है, जिनके शरीर मे रक्त नही, मास नही, कपोलो पर आभा नही, हड्डियो पर मास नही, जो ककाल मात्र हैं। उदयशकर भट्ट की 'दलित' कविता मे विषाद का सजीव चित्र अकित है[१]। निराला की 'भिक्षुक' कविता मे करुण की मार्मिक अभिव्यक्ति है[२]।

१—सूखी चमडी थी फांक्दार
छाया-नद का धूमिल कगार।
पिचका सा चेहरा म्लान रंग,
कंकाल अस्थिमय रंगभंग। —दलित, उदयशंकर भट्ट

२—मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।—भिक्षुक, निराला

किसान का जीवन भी करुणा भरी कहानी है। उसका एक-एक दाना साहूकार की ब्याज चुकाने मे चला जाता है और फिर भी जिसके सिर पर ऋण का बोझ लदा हुआ रह जाता है। शोषित किसान का जीवन एक दारुण अभिशाप है। इसमे शोक की व्यजना कितनी मर्मस्पर्शी है[१]।

देश के विभाजन के अवसर पर एक शरणार्थी दपति प्राण-रक्षा के लिए कुटुम्बियो को छोडकर भाग निकला है। एक शरणार्थी वृद्ध के साथ उसकी पुत्र-वधू भी है। श्रान्त-क्लान्त वे सिरपर बोझ लादे हुए भागे जा रहे हैं। गर्भिणी स्त्री के रोम-रोम से पीडा का अम्बुधि गरज रहा था। वह प्रसव-काल की पीडा से व्यथित थी। यह करुणोत्पादक घटना कितनी करुण, कितनी मर्मान्तिक है[२]।

'बगाल का अकाल' भारत के इतिहास मे एक करुणा पूर्ण महा नाटक है, जिसको स्मरण कर करुणा भी द्रवित हो उठती है। अकाल-पीडित निरीह स्त्री, पुरुष और बच्चो के कवितामय चित्रण मे कितनी हृदय-द्रावकता है। इन कविताओ मे करुण की व्यजना अपनी चरमसीमा को पार कर गई है[३]। इस करुणापूर्ण घटना का चित्रण उस काल के प्रायः सभी प्रतिनिधि कवियो ने किया है।

'नारी' भी शोक का अत्यत करुणोत्पादक आलम्बन है। विधवा का जीवन एक बहुत बडा अभिशाप है। निराला का 'विधवा' का चित्र करुण रस की सजीव व्यजना है[४]। इसी कवि ने 'वह तोडती पत्थर' कविता मे

१—देखिए, रासनरेश त्रिपाठी, स्वप्न १।११ और नरेंद्र 'किसान'।

२—देखिए, उदयशंकर भट्ट 'रिफ्यूजी'।

३—रक्त हीन, मांस हीन प्राण हीन बल हीन
पड़े फुटपाथ पर,
नरक के पिंड वह,
चिल्लाते डकराते रोते सब दिन रात
भात दाओ, अन्न दाओ, अन्न दाओ
दीन बन्धु। —बंगाल, उदयशंकर भट्ट

४—वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह कूर काल-तांडव की स्मृति-रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की विधवा है। —विधवा, निराला

मजदूरिनी का अत्यत शोक-व्यजक चित्रण किया है। इसमे आलम्बन के साथ शोक की उद्दीपन सामग्री बहुत है, जिससे आलम्बन की व्यजकता कई गुना बढ गई है।

राष्ट्रीय एव प्रगतिशील काव्य धारा के अनेक कवियो ने शोक की व्यजना मे विविध भावो की सृष्टि की है। किसान, मजदूर, अछूत, शोषित, पीड़ित, दलित एव नारियो की दुर्दशा का विविध रूपो मे चित्रण कर कवियो ने शोक की मार्मिक-व्यजना की है। पन्त, निराला, भगवतीशरण, नरेद्र, सुमन, उदय-शकर भट्ट, दिनकर, सियाराम शरण, सोहनलाल, केसरी, रामविलास, भारती, रागेय राघव आदि कवियो ने त्रस्त एव उत्पीडित मानवता के विविध चित्रो के द्वारा शोक की हृदयस्पर्शी व्यजना की है। करुण रस की प्राचीन परपरा मे ये आलम्बन कभी नही गृहीत हुए है।

३—बलिदान तथा जौहर के विषय—

जौहर और बलिदान भी करुण रस का नवीन विषय है। इन विषयों पर भी करुणा पूर्ण एव प्रभावोत्पादक काव्यो की सृष्टि हुई है। जन नायक (रघुवीर शरण मित्र) महाकाव्य मे पूज्य बापू, महादेव देसाई आदि बलिदानो का चित्रण अत्यत हृदय-स्पर्शी है। सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणो को होम देने वाली पद्मिनी आदि देवियो के 'जौहर' भी करुण मे मर्मस्पर्शी आलम्बन हैं। 'जौहर' विषय के आधार पर तीन प्रबन्ध काव्यो की रचना हुई है, जौहर (सुधीन्द्र), जौहर (रामकुमार वर्मा) और जौहर (श्याम नारायण पाडेय) श्याम नारायण पाडेय का जौहर करुण रस पूर्ण महाकाव्य है।

४—अव्यक्त प्रियतम—

अज्ञात प्रिय के चिर वियोग मे विश्वव्यापी शोक की उद्भावना भी करुण का नया प्रयोग है। महादेवी के काव्य मे करुणा की सरिता प्रिय के चिर विरह अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति प्रवाहित होती है। उनका अव्यक्त प्रियतम विषयक चिरकालीन वियोग शोक मे परिणत हो गया है। उनके शोक के उद्गार करुणा से सजल एव विषाद से पकिल है। प्रिय के वियोग मे उनको सपूर्ण विश्व मे पीडा का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई पडता है।[१]

आश्रय के क्षेत्र मे प्रयोग—

नई कविता मे आलम्बन के क्षेत्र मे जितने परिवर्तन हुए हैं, उतने आश्रय

१—पर शेष नहीं होगी यह, मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा मे ढूंढ़ा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।— नीहार, महादेवी

के क्षेत्र मे नही। आश्रय के रूप मे कवि स्वय होता है अथवा पाठक हो सकता है। जिन कविताओ मे कवि की वैयक्तिक चेतना उभर आई है, उनमे कवि स्वय आश्रय के रूप मे है, अन्यत्र पाठक को आक्षिप्त कर लिया गया है।

नये संचारी भाव

शोक की व्यंजना मे कुछ नूतन सचारी भावो का विधान भी पाया जाता है—आशका, उत्कठा, उद्वेग, व्यग्रता, आक्रोश, विह्वलता, अधीरता आदि। ये सचारी भाव इसी अर्थ मे नये है कि इनकी अभिव्यजना नये आलम्बनो से उद्भूत हुई है।

विवेचन

शोक के साथ ही सह-अनुभूति भी प्रादुर्भूत होती है। अन्य रसो मे भी यही बात है। मनुष्य किसी दुखी को देखकर दुखी होता है, सुखी को देखकर सुख का अनुभव करता है, भयभीत को देखकर भाग खडा होता है। आश्चर्य-मुग्ध व्यक्ति को देखकर स्वय तद्धत् आचरण करने लगता है—यह सब सह-अनुभूति के कारण। तथ्य यह है कि सह-अनुभूति मे समानुभूति छिपी रहती है। करुण मे इसका प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है।

सह-अनुभूति सामाजिक गुण है। इसमे पर-दुःख-कातरता, उदारता, सवेदनशीलता, त्यागशीलता आदि सद्गुणो का समावेश होता है। प्रेमी को अपने प्रिय की सभी वस्तुएँ प्रिय होती है। प्रेमी अपने प्रिय के साथ इतना तादात्म्य कर लेता है कि उसके वियोग मे तद्धत् अनुभूति से आकुल हो उठता है। समानुभूति का भाव जड-चेतन सभी के साथ हो सकता है। नित्य के सहचर पेड-पौधे, जीव-जन्तु, लता-गुल्म—सभी के वियोग मे दु खानुभूति होने लगती है।

सस्कृत और हिन्दी की प्राचीन काव्य-परपरा मे करुण का स्थायी भाव शोक है, परन्तु आधुनिक कवियो ने सहानुभूति को भी करुण का आधार बना दिया है। प्राचीन कवियो ने नष्ट-नाश, बन्धु-वियोग आदि मे ही करुण रस को सीमित कर दिया है। मानस मे राजा दशरथ की मृत्यु होने पर रानियो का विलाप, राम का अयोध्या-त्याग, लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम के प्रलाप मे करुण का परिपाक हुआ है। परन्तु सीता और लक्ष्मण सहित राम के वन-गमन के अवसर पर ग्राम-वधूटियो को उपस्थित कर जो एक लम्बा प्रसग उठाया गया है, उसमे किस रस की अभिव्यक्ति मानी जायगी ? बनवास के वेश मे राज कुमार तथा राजपुत्री को देखकर ग्राम के नर-नारियो के हृदय मे मधुर सवेदना जाग्रत हो उठती है। इस कथा से सहानुभूति का ही भाव प्रादुर्भूत होता है,

जिसका आश्रय ग्राम-नारियाँ हैं। क्या इसे करुण रस की व्यजना नही कह सकते ?

शोक की अपेक्षा सहानुभूति का क्षेत्र अधिक व्यापक एव विस्तृत है। शोक तो अपने परिजनो के नाश से ही समुदभूत होता है, किन्तु सहानुभूति की परिधि मे प्राणी-मात्र आ जाते है, जड एव चेतन। शोक मे सघनता है, सहानुभूति मे व्यापकता। शोक का क्षेत्र इष्ट जनो तक ही सीमित है, पर सहानुभूति का प्रसार जीव मात्र एव वस्तु मात्र तक।

आधुनिक युग के कवियो मे मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रधानता है। उनके काव्य मे मानव-मात्र के प्रति सहानुभूति का प्रसार हुआ है। मानवतावाद ने पीडित, शोषित, उपेक्षित, लाछित, तिरस्कृत मानवता को भी करुणापूर्ण दृष्टि से देखने की प्रेरणा दी है। उत्तर छायावाद 'युग मे इस प्रकार की कविता प्रचुर परिमाण मे लिखी गई है। ऐसे विषय प्राचीन काल के काव्य मे कही भी दृष्टिगोचर नही होते। कारण यह है कि पहले कवि उच्च वर्ग को ही काव्य मे प्रश्रय देते थे, साधारण जनता को नही। केवल नये युग मे ही सामान्य मानवता को साहित्य मे स्थान मिला है। नये युग के कवियो ने अछूत एव पदलित जनो के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित की है। इस प्रकार नवीन परिस्थितियो मे शोक के प्राचीन आलम्बनो मे बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। आश्रय के रूप मे स्वय कवि मानवीय भावनाओ का प्रतिनिधित्व करता है। आश्रय-आलम्बन के साथ ही सचारियो के प्रयोग मे भी नवीनता आ गई है।

शोक के विषयो के ये नवीन प्रयोग आलोच्यकाल की कविता मे इतने अधिक प्रचलित हुए हैं कि इनकी एक नई परम्परा चल पडी है। इस परपरा के निर्माण और विकास मे अनेक कवियो का योग है। इस नवीन परपरा के निर्माण मे सभी कवियो का योग दान है। इसी से इस परपरा मे वेग है, गति है और इसका भविष्य भी सुन्दर दिखाई पडता है।

किन्तु आधुनिक युग के कवियो की भाव-व्यजना मे एक बडा दोष यह है कि इनमे रस का पूर्ण परिपाक नही होता, क्योकि रस के समस्त उपकरणो का योग नई परपरा मे क्वचित् ही मिलता है। कही मात्र आलम्बन का मर्मस्पर्शी चित्र अकित है, कही मात्र अनुभावो का ही वर्णन हुआ है। इसी प्रकार कही केवल सचारियो का ही दर्शन मिलता है। करुण रस की व्यजना के पूर्ण चित्र कम ही मिलते हैं।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल मे करुण रस के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी प्रयोग हुए है। आश्रय, आलम्बन, अनुभाव, सचारी आदि सभी उपकरणो मे

यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक कि करुण रस का स्थायी भाव शोक, सहानुभूति के रूप मे कही अधिक विस्तृत हो गया है। इससे सिद्ध है कि करुण रस की परपरा ने सर्वथा नूतन पथ का अनुसधान किया है। इसकी सफलता इसी से सिद्ध है कि उसमे प्रचुर काव्य-राशि का सृजन हुआ है तथा शत-प्रतिशत कवियो ने इसके निर्माण मे योग दिया है। आलम्बनो के वैविध्य एव बाहुल्य ने रस परपरा को प्राणवन्त बनाया है।

रौद्र रस के क्षेत्र में प्रयोग

रौद्र रस के क्षेत्र मे भी कुछ नये प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन साहित्य मे रौद्र की अभिव्यक्ति अधिकतर युद्ध के वर्णनों मे ही दिखाई गई है, जिसमे शत्रु आलम्बन होता है। उसके भू-भग, पिसते हुए ओष्ठ, फडकती हुई भुजाएँ, तर्जन, आत्म-प्रशसन, शस्त्र सचालनादि क्रियाओ से उसको उद्दीप्त किया जाता है। मोह, अमर्षादि सचारी होते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता मे रौद्र की व्यजना इससे सर्वथा भिन्न रूप मे पाई जाती है, जिसका अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

रौद्र रस के नये आलम्बन

सामाजिक यथार्थ साम्राज्य-विरोध और वर्ग-सघर्ष से अधिकतर नये आलम्बन चुने गए है। नई कविता मे रौद्र रस के विषयो का अत्यधिक विस्तार हुआ है। इसमे शोषक वर्ग, शोषण, एव पू जीपतियो के विरुद्ध क्रोध प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिकता, जाति-भेद, रूढिवादिता, आर्थिक-वैषम्य, रग-भेद, राष्ट्रीय परतत्रता आदि ऐसे विषय है, जिनसे क्रोध की अग्नि उद्दीप्त होती है। एक ओर दासता, जडता, अशिक्षा, भूख, रोग, बेकारी, दरिद्रता का ताडव नृत्य है और दूसरी ओर प्रभुत्व का पद, उन्मुक्त भोग, उच्छृखल विलास और असीम ऐश्वर्य का अक्षय भडार है। यही तो जीवन की विडम्बना है। इस परिस्थिति की भीषणता ने वर्तमान कवियो के अन्तस्तल मे क्रोध, अग्नि, विस्फोट, चिनगारी, प्रलय, क्रान्ति एव तूफानो को जन्म दिया है। प्रगतिशील कवियो की पचास प्रतिशत कविताओ मे यही अन्त-विरोध फूट पडा है, जिसने रौद्र की अभिनव व्यजना की है।

अचल की 'आह्वान,' 'आज मरण की ओर,' दिनकर की 'कस्मै देवाय, 'हाहाकार,' उदयशकर भट्ट की 'आज उबलते जग-कराह मे खौल रहे अरमान किसी के,' गजानन मुक्तिबोध की 'पू जीवादी समाज के प्रति' नाश-देवता,' अज्ञेय की 'जनाह्वान,' रागेय राघव की 'जलते दाग,' 'प्रतिशोध,' साम्राज्यवाद

के प्रति, 'नरेन्द्र की' रुद्र भारत' आदि कविताओ मे रौद्र रस की नयी व्यजना के दर्शन मिलते है।

प्रगतिवादी काव्य मे क्रोध की सशक्त व्यजना है। इनमे विभाव-योजना (आलम्बन और उद्दीपन) इतनी सजीव एव प्रभावोत्पादक है कि पाठक उसी भाव मे तन्मय हो जाता है। इस दृष्टि से अचल, नरेद्र, सुमन, दिनकर, नवीन, उदयशकर, गजानन, रागेयराघव आदि की वाणी मे रौद्र रस को उद्दीप्त करने की पूर्ण क्षमता है। इनके वैयक्तिक उद्‌गारो मे विलक्षण ओज एव स्फूर्ति है। इन कविताओ मे आश्रय का स्थान स्वय कवि ने ले लिया है। पू जीवादियो के अत्याचार, भोग, विलास, उच्छृखलता, दुराचार, दमन, फटकार, दुर्वाक्य, क्रान्ति, प्रलय, आन्दोलन आदि अनुभाव है। विक्षुब्धता, प्रतिशोध, विजय, आदि सचारी है।

विवेचन

आधुनिक युग के कवियो के अन्तस् मे प्राचीन युग की सामन्तीय प्रथाओ से स्वाभाविक विरोध है। नवीन परिस्थितियो ने सामान्य जनता के प्रति सहानुभूति का भाव उत्पन्न कर दिया है। शोषित और शोषणकर्ता के बीच का वैषम्य आज विद्रोह के रूप मे फूट पडा है। प्रगितिवादी कवियो के हृदय से इसी अन्तर्विरोध के उद्‌गार फूट पडे है, जिससे क्रोध की व्यजना को नया रूप मिला है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य मे रौद्र की व्यजना का जो स्वरूप मिलता है, उससे यह सर्वथा भिन्न है। आश्रय, आलम्बन, अनुभाव, सचारी आदि रौद्र के सभी उपकरण बिलकुल बदल गए है। रौद्र का यह नया रूप आधुनिक कविता का नया प्रयोग है।

रौद्र की यह नई व्यजना वर्तमान काल के प्रगतिवादी धारा के शत-प्रतिशत कवियो मे पाई जाती है। इसके फलस्वरूप प्रभूत काव्य-राशि की उत्पत्ति हुई है। नयी कविता मे यह प्रयोग इतना अधिक सफल हुआ है कि इसकी एक नवीन परम्परा चल पड़ी है, जिसको अग्रसर करने मे दर्जनो कवियो का योगदान है।

वीर रस की अपेक्षा रौद्र रस की भावाभिव्यक्ति अधिक सशक्त है। कारण यह है कि वीर मे शुद्ध उत्साह की व्यजना अपेक्षित है। अमर्ष का भाव आ जाने से वह रौद्र मे परिणत हो जाता है। आधुनिक युग मे मानसिक भावो की सकुलता एव उलझन बढ गई है, जो कवियो की अभिव्यक्ति मे भी प्रतिबिम्बित हो रही है। इसमे क्रोध, खीझ, क्षोभ, असन्तोष, विद्वेष, प्रतिशोध की प्रधानता है। अतः यह प्रवृत्ति रौद्र रस की व्यजना के लिए अनुकूल है।

फलतः आधुनिक कविता मे रौद्र की व्यजना मे अधिक शक्ति एव उत्कर्ष है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकालीन कविता मे रौद्र रस की व्यजना नये रूप मे विकसित हुई है। इसका स्वरूप सर्वथा नवीन है। प्राचीन साहित्य मे ऐसे प्रयोग कही भी देखने को नही मिलते है। वर्तमान काल मे इसकी एक स्वतन्त्र परम्परा स्थापित हो गई है। क्रोध का वैयक्तिक स्तर को पार करके सामाजिक स्तर पर आरूढ होना निश्चित रूप से नया विकास है।

भाव क्षेत्र का विस्तार

आलोच्य युग की कविता मे कुछ भावो की नूतन व्यजना दृष्टिगोचर होती है। इसी कारण इनको नूतन भाव कहना समीचीन होगा। आधुनिक युग की कविता मे इनकी व्यजना इतनी सशक्त एव तीव्र है कि इनका स्वतन्त्र अध्ययन करना आवश्यक हो गया है।

ये नये भाव इस प्रकार हैं—देश भक्ति, विद्रोह, विक्षोभ, साम्य, सहानुभूति, आक्षेप, आत्म-प्रशसन, प्रतिशोध, स्वातत्र्य, प्रवचना, नैराश्य, साहस, उत्सर्ग, विजय और स्वत्व। इनके अतिरिक्त बौद्धिकता, यौनवासना तथा ऐन्द्रिय सवेदनो की भी अभिव्यक्ति मिलती है। नीचे इन भावो को सोदाहरण स्पष्ट किया जाता है :

(१) देश-भक्ति

इसमे देश-प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति है। राष्ट्र की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग, स्वदेश-प्रेम, जन्म भूमि का स्नेह, स्वतन्त्रता, देश-भक्ति आदि विविध रूपो मे राष्ट्रीयता का भाव अभिव्यजित हुआ है। राष्ट्र एव राष्ट्र से सम्बन्धित विषय, भाषा एव सस्कृति आदि के सबध मे प्रचुर काव्य-राशि का निर्माण हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण, गोपालशरण सिंह, एक भारतीय आत्मा, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, पन्त, प्रसाद, निराला महादेवी, मोहनलाल महतो, 'बियोगी' आदि कवियो मे राष्ट्रीयता का भाव पूर्ण रूप से अभिव्यजित है।

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा। —प्रसाद

(२) विद्रोह

व्यक्ति, समाज या किसी व्यवस्था के प्रति अविश्वास हो जाने पर उसे नष्ट करने की भावना विद्रोह है। इसमे बैर, विरोध, एव प्रतिहिंसा के भाव छिपे रहते है।

प्रगतिवादी काव्य मे इस भाव की अभिव्यक्ति अत्यन्त ओजपूर्ण है। कवियो ने मानवता को रूढिवादिता, आर्थिक वैषम्य तथा पूंजीवाद के फौलादी पंजे से मुक्त करने के लिए विरोध प्रदर्शित किया है।

'जीवन का बलिदान चढाने, खडे मुतजिर हम दीवाने।
महाध्वस के अग्रदूत हम, आज उठे विप्लव धधकाने॥'

—अचल

(३) विक्षोभ

रोषपूर्ण व्याकुलता का भाव-किसी अनुचित कार्य या व्यापार को देख कर अन्याय कर्ता के प्रति जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसे विक्षोभ कहते हैं। इसमे चित्त की व्याकुलता, खलबली, भय, करुणा तथा अमर्ष का मिश्रण रहता है।

प्रगतिवादी कवियो मे विक्षोभ का स्वर अत्यन्त तीव्र है। पूंजीपति, शोषक एव सामन्त वर्ग के अत्याचारो से पीडित मानवता के भावो को व्यजित करने के लिये विक्षोभ के उद्‌गार प्रकट हुए हैं। नवीन, दिनकर, भगवतीचरण, उदयशकर, अचल आदि कवियो मे विक्षोभ की व्यजना प्रखर है—

'विद्युत की इस चकाचौंध मे देख दीप की लौ रोती है।
अरी हृदय को थाम महल के लिए झोपडी बलि होती है॥
देख कलेजा फाड कृषक दे रहे हृदय-शोषित की धारें।
और उठी जाती उन पर ही वैभव की ऊँचा दीवारें॥

—दिनकर

(४) साम्य

ऐसी अवस्था जिसमे सब प्रकार के सामाजिक खेद भाव मिट कर मनुष्य समान स्तर पर जीवन बिताए। वर्ग, जाति, धर्म, सप्रदाय के भेदो का समूलोच्छेद करके ही सच्चे साम्य की प्रतिष्ठा हो सकती है। पन्त निराला, अचल, बच्चन नरेन्द्र की कविता मे साम्य का भाव प्रधानता से व्यजित हुआ है—

वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम्पता साधन,
पूरित होगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

—पन्त

(५) सहानुभूति

किसी दुखी, त्रस्त एव उत्पीडित व्यक्ति को देखकर, उसके प्रति सहानुभूति रखने का भाव। शोक और सहानुभूति में यह अन्तर है कि शोक मे इष्ट-नाश का ही भाव प्रमुख होता है, जब कि सहानुभूति मे प्राणी मात्र के लिए

संवेदना हो सकती है। इसका क्षेत्र असीमित है। जड-चेतन, स्व-पर का भेद इसमे नही रहता है। शोषित, पीडित, पद्दलित, शरणार्थी एव अछूत आदि विषयो पर लिखी हुई कविताओ मे इस भाव की सुन्दर व्यजना हुई है—

जो गिरे हुए को उठा सके, इससे प्यारा कुछ जतन नही,
दे प्यार उठा पाये न जिसे, इतना गहरा कुछ पतन नही।

—भवानी प्रसाद

प्रगतिवादी एव भू-दान यज्ञवादी कवियो की रचनाओ में यह भाव प्रचुरता से व्यजित हुआ है।

(६) आक्षेप

इसमें दोषारोपण का भाव रहता है। निन्दा करना, ताना देना, कटूक्तियाँ प्रकट करना, व्यग्य करना, इसके लक्षण हैं। प्रगतिवादी कविता मे अधिकतर शोषक वर्ग के अत्याचारो के प्रति आक्षेप की व्यजना है। भगवती चरण वर्मा की 'भैंसा गाडी' मे 'आक्षेप' व्यग्य है।

यह देख पेट की आग देख,
इन उसे मुखो की आग देख,
अपनी माँ के रज से पैदा,
अपनी बेशरमी से नगे।
तू ये डागर की टाँग देख,
फिर अपनी चिकनी माँग देख।

(७) आत्म प्रशंसा

अपने आपको श्रेष्ठ एव गौरवपूर्ण समझने का भाव। यह दैन्य या आत्म-हीनता का विरोधी है। अपने को सम्मानित समझना, गर्व का अनुभव करना, उल्लसित होना, अपने गुणो का उत्कर्ष प्रकट करना आदि इसके लक्षण हैं।

मैं हूँ पूर्ण, अपूर्ण झेलकर,
मैं अखड, खडित प्रतिभापर।

—मुक्तिबोध।

(८) स्वातंत्र्य

मुक्त होने की कामना। आधुनिक कविता मे इसके दो रूप है। पराधीन देश को विदेशी शासन से मुक्त करने की कामना तथा शोषित समाज को शोषक

वर्ग से स्वतत्र करने की भावना। राष्ट्रीय कविताओ मे पहला भाव तथा प्रगतिवादी रचनाओ मे दूसरा भाव प्रकट हुआ है। आज्ञा-भग, सत्याग्रह, क्रान्ति, विद्रोह आदि इसके लक्षण है।

स्वाधीन हुआ गौरव-खडित भारत्त महान,
उद् चला तिरगा लाल किले पर साभिमान।

नलिन।

(९) प्रतिशोध

अपने अनिष्ट कर्त्ता के प्रति बैर चुकाने का भाव। इसमे विपक्षी के प्रति ललकार, चुनौती, अमर्ष, पीडा पहुँचाना, बदला लेने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। प्रगतिवादी कविता मे शोषक वर्ग के अत्याचारो को समूल नष्ट करने के लिए कवियो ने प्रतिहिसा, प्रतिशोध का भाव प्रदर्शित किया है।

हिरोशिमा शाप–
एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जायगा
आज ढाई लाख मे कोई नही जीवित रहा,
न्यूयार्क मे भी एक दिन कोई नही रह जायगा।

—चद्रकुवर

(१०) प्रवंचना

धोखा या छल। आधुनिक सभ्यता पर छीटाकशी करते हुए 'शिशिर की राका-निशा' मे अज्ञेय जी कहते है—

वचना है चादनी सित
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार–
शिशिर की राका निशा की शान्ति है निस्सार।

—अज्ञेय

निराला की 'मास्को डायलाग्ज' कविता भी इसका अच्छा उदाहरण है।

(११) नैराश्य

अपने इष्ट कार्य के अथवा उद्देश्य के विषय मे निश्चित असफलता के विश्वास को निराशा कहते हैं। यह भाव आधुनिक काल की सपूर्ण कविता मे झलकता है—

बेसुध जो अपने सुख से जिनकी है सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको, सुनने को करुण कथाएँ।

—प्रसाद

(१२) साहस

वह मानसिक शक्ति जिसके द्वारा मनुष्य दृढतापूर्वक विघ्न-बाधाओ और विपत्तियो का सामना करता है। वैयक्तिक चेतना-प्रधान कवियो मे यह भाव अदम्य उत्साह के साथ प्रकट हुआ है। निर्भीकता, आत्म-विश्वास, ललकार, चुनौती देना आदि लक्षण है—

कहो मत कि ठहरू —ठहरना नही है,
अरे डूबने पर उभरना सही है,
उछलता, उभरता तथा डूबता मैं,
चलू गा सदा दौडता, ऊबता मैं ?

—उदयशकर

(१३) उत्सर्ग

किसी पवित्र कार्य या उद्देश्य, या सिद्धान्त के लिए अपना प्राण-त्याग करने का भाव। निर्भीकता, त्याग, आवेश, अन्याय के सामने सिर न झुकाने का भाव आदि लक्षण है—

वरण करता स्वर्ग वह जो मरण से डरता नही है,
मरण पाकर भी कभी क्या वीर भी मरता कही है ?
आज का जीवन यही है आज की है यही वाणी,
आज फिर अगार से शृगार कर मेरी जवानी।

—उदय शकर भट्ट।

(१४) विजय

प्रतिपक्षी का उच्छेद कर प्रभुत्व स्थापित करने का भाव। इसमे आशा गर्व, स्वत्व, उल्लास आदि प्रदर्शित किए जाते है।

लो, क्षितिज के पास—
वह उठा तारा, अरे, वह लाल तारा, नयन का तारा हमारे
सर्वहारा का सहारा
विजय का विश्वास।

—भारत भूषण

(१५) स्वत्व

किसी वस्तु या व्यक्ति पर अधिकार प्रकट करने का भाव। अधिकार, स्वामित्व, हुँकार, चुनौती आदि लक्षण है—

याद रख यह देश
उसका है कि जिसकी मेहनतो पर बन सका है

याद रख यह विश्व
उसका है कि जिसकी
मेहनतो पर पल सका है।

—रागेन राघव

१६—बौद्धिकता

धर्मवीर भारती के अनुसार 'प्रयोगवादी कविता मे भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न-चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढाचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न-चिह्न उसकी ध्वनि-मात्र है। 'तर्क, वाद, शका, प्रश्न, विचार, सिद्धान्त, प्रमाण, विवेचना आदि लक्षण हैं। आजकल के कवि इसी विचार-प्रवृत्ति को काव्य मे प्रश्रय दे रहे हैं। इससे काव्य मे भाव तत्व और कल्पना तत्व का ह्रास होता जा रहा है। तथा विचार-विवेचन का प्राचुर्य दिखाई पडता है। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' मे विचार तत्व एव बौद्धिकता ही अधिक है। प्रगतिशील एव प्रयोग-वादी काव्य-धारा मे इसी का प्राधान्य है।

१७—यौन वासना

वर्तमान युग के विशेषतः प्रयोगवादी कवि अपनी रचनाओ मे यौन-प्रवृत्तियो को अधिक प्रश्रय देते हैं। उनकी कविताओ मे यौन-वासना का स्वच्छन्द प्रकाशन है। अज्ञेय की 'हरी घास पर क्षण भर' 'ओ पिया पानी बरसा', बाहु मेरे रुके रहे', 'सावन-मेघ' तथा 'कलगी बाजरे की' आदि रचनाओ पर इसी भावना का प्रभाव है। इनमे काम-वासना का निर्बन्ध प्रकाशन है प्रेमी निर्भीक है तथा उसे किसी सामाजिक मर्यादा की बिलकुल चिन्ता नही है, क्योकि यौन-प्रवृत्ति को वह एक सहज प्राकृतिक व्यापार मानता है।[1] गिरजाकुमार, शमशेर, भारती, अचल तथा सुमन की रचनाओ मे इसका रूप और अधिक प्रस्फुटित हुआ है।

१८—सहज संबंध

आजकल के कवि सहज सबध (फ्री एसोशियेशन) की विधि का कविता में उपयोग करते हैं, जिससे उनकी व्यक्तिगत कुठाओ का पता चलता है। अतिवस्तुवादी (सुर-रियलिस्ट्स), कवि स्वप्न (ड्रीम) अथवा समाधि (ट्रान्स) की पद्धति पर काव्य के वर्ण्य में असम्बद्धता पूर्ण चित्रो को प्रस्तुत करते हैं।

१—देखिए, चिन्ता, दूसरा संस्करण, पृ० ७६।

तारसप्तक की कुछ कविताए स्वप्न की शैली पर लिखी गई हैं, जिनकी वस्तु-योजना सर्वथा असगत एव विपर्यस्त है। इस विपर्यास का कारण है, सहज सबध (फ्री ऐसोशियेशन) के नियम की स्वीकृति। सश्लिष्ट चित्रण मे स्वीकृत सगतियो को लेकर काव्य-वस्तु का साधारणीकरण प्रस्तुत किया जाता है, जिससे कवि का आशय तुरन्त बोधगम्य हो जाता है। सहज सबध (फ्री एसोशियेशन) के आधार पर रचित कविताए इसका अपवाद हैं। इनमे वस्तु की सश्लिष्ट-योजना का पूर्ण अभाव रहता है। शबूद-चित्र असबद्ध तथा विचारो मे असगति होती है। ऐसी कविताए असबद्ध, खडित चित्रो से युक्त कवि के विचारो की अस्त-व्यस्तता की द्योतक होती हैं। उदाहरण के लिए—

प्रत्यूष।
प्रत्यूष की नीली, धब्बो भरी शान्ति
क्षितिज की गजी चाद,
गाढा हरा रग,
पथरीले कोयले के धूवर्त,
रव डरा हुआ चू-चू काय,
चिडियो का, बैलगाडियो
के चक्को का रौंदना
कोलतार की कोमल सडक को
बैलो की क्षुद्र-घटिकाओ का
क्षुद्रतर टुन टुन
रिक्शो की वर्ण सकर भोपू—
सुहब की मीठी नीद टूट गई है,
मशहरी के पार जगले से देख रहा हू,
सन्दिग्ध प्रत्यूष-बेला
निश्चयपूर्ण दिन बन गई।
मनहूस—
प्रत्यूष।

—नलिनविलोचन शर्मा

इस कविता मे खड-चित्रो मे पूर्ण असम्बद्धता है जिससे आधुनिक जीवन की अस्तव्यस्तता, विपर्यास एव अशान्ति ध्वनित होती है। "प्रत्यूष" शब्द से वैदिक युग की अमृत वर्षिणी उषा का आभास मिलता है किन्तु 'मनहूस' विशेषण आधुनिक बीसवी शताब्दी की आधिभौतिक सभ्यता का परिचायक है। सपूर्ण

कविता की असबद्ध शब्द-योजना वर्तमान मानव जीवन की सकुलता, विषमता एव सामाजिक यथार्थ को चित्रित कर देती है।

केसरीकुमार की 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' नरेश की 'वेदना निग्रह' सहज सबध (फ्री ऐसोशियेशन) के आधार पर रचित नये प्रयोग है, जिन पर आधुनिक मनोविश्लेषण पद्धति का प्रभाव है[1]।

(१९) संवेदन

जिस प्रकार काव्य मे बुद्धि-वृत्ति का उपयोग है, उसी प्रकार सवेदन का भी। कविता के आधार तत्व भाव, विचार और सवेदन है। मानसिक सस्थान त्रिविध होता है, बोधात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। अथवा यो कह सकते है कि मानव-मन इच्छा, ज्ञान और क्रिया से सघटित हुआ है। भाव का सबध हृदय से है, ज्ञान का बुद्धि से तथा सवेदन का इन्द्रियो से। मनुष्य जितना ज्ञान अर्जित करता है, वह सब ऐन्द्रिय सवेदनो द्वारा।

सवेदन क्या है? किसी वस्तु काप्रारभिक बोध सवेदन द्वारा होता है। इनके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसी पर विचार, तर्क और कल्पना का रग-महल खडा होता है। जिसे सवेदन और प्रत्यक्षीकरण (सेन्सेशन एण्ड परसेप्शन) की मानसिक क्रियाओ के विकास का साधन नही मिला होता, उसका बौद्धिक विकास भी नही होता। उसकी कल्पना और स्मृति विकसित नही हो सकती है। वह किसी तर्क, वाद अथवा विचार मे अपनी सम्मति नही दे सकता तथा किसी गूढ समस्या पर अपने विचार भी प्रकट नही कर सकता। उसका ज्ञान अत्यत सीमित रह जाता है।

वाह्य-वस्तु का इन्द्रिय से सपर्क होने पर ज्ञान-तन्तु (सेन्सरी नर्व) द्वारा इसकी सूचना मन को जाती है और तब व्यक्ति को यह बोध होना है कि कोई वस्तु या व्यक्ति सामने है

सवेदन पाच प्रकार से होता है-नेत्र से, श्रुति से, त्वचा से, नासिका से और जिह्वा से। इस प्रकार नेत्र से जो बोध होता है, उसे 'दृश्य', श्रुति के द्वारा जो बोध होता है, उसे 'श्रव्य', त्वचा के द्वारा जो बोध होता है, उसे 'स्पृश्य', तथा नासिका से जो बोध होता है, उसे 'घ्राण-सवेदन' एव जिह्वा से जो बोध होता है, उसे 'रस-सवेदन' कहते है। इस प्रकार हर एक वस्तु अथवा विषय का बोध उससे सबद्ध इद्रिय के द्वारा होता है।

१—देखिए, अवन्तिका, वर्ष २।१, काव्यालोचनाक प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २५३-५४।

सवेदन का प्रत्यक्षीकरण से निकट सबध है। इसके बिना प्रत्यक्षीकरण सभव नही। प्रत्यक्षीकरण मे भी सवेदन की तरह वाह्य वस्तु से इन्द्रिय का सम्पर्क होता है। दोनो क्रियाएँ बोधात्मक हैं। अन्तर केवल इतना है कि सवेदन मे किसी वस्तु का केवल बोध होता है और प्रत्यक्षीकरण मे उस वस्तु के स्वभाव, स्वरूप तथा अर्थ का स्पष्टीकरण हो जाता है। प्रत्यक्षीकरण मे विवेचन होता है, विश्लेषण-सश्लेषण चलता है। इसमे बहुत से सवेदनो का मिश्रण हो जाता है। सेव के प्रत्यक्षीकरण मे सेव का मीठापन तो 'आस्वाद' सवेदन है और उसका श्वेत रग 'दृश्य' सवेदन है। प्रत्यक्षीकरण भी पाँच प्रकार से होता है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध द्वारा।

प्रत्यक्षीकरण क्रिया मे सभी व्यक्ति एक समान नही होते हैं जिस व्यक्ति का दृश्य प्रत्यक्षीकरण तीव्र होता है, वह दृश्य वस्तु का सरलता से ज्ञान कर लेता है। ऐसा व्यक्ति भ्रमण तथा पर्यवेक्षण से अधिक लाभ उठा सकता है। जिसका 'स्पृश्य' प्रत्यक्षीकरण तीव्र होता है, वह वस्तुओ के स्पर्श से उनकी कोमलता एव कठोरता का ज्ञान कर लेता है। अन्य प्रत्यक्षीकरण विषयक ज्ञान की भी यही बात है। इसके अतिरिक्त गति, स्थिरता, क्रिया एव ध्वनि-चित्रो का भी काव्य मे उल्लेख पाया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि सवेदन और प्रत्यक्षीकरण का बोध इन्द्रियो के विकास पर निर्भर है। इन्द्रिया बौद्धिक ज्ञान के द्वार हैं। कवि अपने काव्य-निर्माण मे ऐन्द्रियिक सवेदनो का भी उपयोग करते हैं। जिनका सवेदन और प्रत्यक्षीकरण जिस किसी विषय मे तीव्र होता है, वे उन्ही बातो का अपनी कविता मे अधिक वर्णन करते है। ज्ञान के विकास मे दृश्य, स्पृश्य और श्रव्य सवेदनो से बहुत बडी सहायता मिलती है। प्रत्यक्ष सवेदन से जो ज्ञान होता है, उसमे सबसे अधिक स्पष्टता, प्रगाढता एव सुगमता होती है। श्रेष्ठ कवियो के काव्य मे सवेदन-जन्य अनुभूतियो का प्रचुरता से उपयोग होता है। वे प्रत्यक्ष-बोध द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के अनुभवो को अपने काव्य मे अत्यत विशद् रूप से चित्रित करते है। यही नही काव्य मे गति, स्थिरता एव ध्वनि का भी प्रभावोत्पादक चित्रण होता है। वाल्मीकि के वर्षा-वर्णन एव कालिदास के कुमार सभव के आरभ के हिमालय वर्णन मे दृश्य, श्रव्य एव स्पृश्य सवेदनो का उपयोग प्रचुरता से मिलता है। अग्रेजी कवि पोप के काव्य मे ध्वनि चित्र अधिकता से प्रयुक्त हुए है। शैलो मे घ्राण-चित्र बहुत है तो कीट्स मे स्पर्श सबधी अनुभवो की विशेषता है। तुलसी के दृश्य चित्र एव सूर के श्रव्य चित्रो मे अद्भुत मार्मिकता है।

आधुनिक कवियो मे निराला जी को श्यामवर्ण से अधिक स्नेह है। पन्त जी को श्वेत वर्ण अधिक प्रिय हैं। पन्त जी की रुचि गन्ध, ध्वनि एवं स्पृश्य चित्रो की ओर अधिक दिखाई पडती है।

नीचे कुछ उदाहरणो द्वारा इसी विषय का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है—जिसमे कवियो के दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, गन्ध, रस, गति एव क्रिया सबधी सवेदन का उपयोग पाया जाता है।

(१) दृश्य चित्र

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित मृदु उर, पुलकित गात
सशकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जडित पद, नमित पलक दृगपात,
पास जब आ न सकोगी प्राण,
मधुरता मे सी मरी अजान,
लाज की छुई मुई सी म्लान
प्रिये प्राणो की प्राण।

—भावी पत्नी के प्रति, पन्त

इसमे मुग्धा का दृश्य-चित्र है। हृदय का कम्पन, शरीर का पुल, पैरो की जडता, पलको के गिरने और छुई मुई सा लज्जित होने मे प्रिया का चित्र सजीव हो उठा है। प्रिया की शारीरिक चेष्टाओ के वर्णन से कवि की दृश्य-सवेदन विषयक शक्ति पर प्रकाश पडता है। इनकी 'नौका-विहार' और 'सान्ध्य तारा' मे भी दृश्य सवेदन के सुन्दर चित्र हैं।

(२) ध्वनि चित्र

बन बन उपवन
छाया उन्मन उन्मन गुजन
नव वय के अलियो का गुजन।

—पन्त

इन पक्तियो की सानुनासिक ह्रस्व वर्णिक ध्वनियो मे अलियो के गुजन का स्वर गूजता-सा सुनाई पडता है। पन्त जी की 'निर्झरी', 'निर्झर गान' तथा निराला जी के 'बादल' राग मे ध्वनि चित्रो का प्राधान्य है।

(३) स्पृश्य चित्र

तुम्हारे स्पर्श की बादल-धुली कचनार नरमाई ।
तुम्हारे वक्ष की जादू भरी मद होश गरमाई !
तुम्हारी चितवनो मे नरगिसो की पात शरमाई ।
किसी भी मोल पर मैं आज अपने को लुटा सकता—

—भारती

इसमे 'कचनार नरमाई', 'वक्ष की गरमाई', नरगिस की शरमाई' आदि पदो में स्पृश्य-चित्र अकित है। स्पृश्य और गन्ध चित्रो का उदाहरण फूलो और तितलियो का वह गान है, जो पन्त जी की ज्योत्स्ना मे आया है ।

(४) गन्ध चित्र

अब फैला फूलो मे विकास
मुकुलो के उर मदिर वास
अस्थिर सौरभ से मलय श्वास
जीवन-मधु-सचय को उन्मन
करते प्राणो के अलि गुजन ।

—पन्त

यहा फूलो के विकास मे, मुकुलो की मदिर वास मे एव श्वास के सौरभ मे गन्ध-चित्रो का सौन्दर्य है ।

(५) गति चित्र

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी-परी सी
धीरे, धीरे, धीरे !

—निराला

कवि ने मानवीकरण द्वारा, सन्ध्या-सुन्दरी का गति चित्र चित्र अकित किया है। इसमे 'उतर रही है', 'धीरे-धीरे' आदि पद किसी अज्ञात नायिका की गति के व्यजक है ।

(६) स्वर्ण-भृ ग तारावलि वेष्टित,
गुजित पुजित तरल रसाल,
मधु गृह से हम गगन-पटल मे
लटके रहते विपुल विशाल ।

—पन्त

यहा 'गुजित', 'पुजित' मे ध्वनि चित्र, 'तरल' मे गति चित्र एव 'रसाल, में रस चित्र अकित है। कवि ने विविध सवेदनो का समाहार करके अनुपम चित्राकन किया है।

हिन्दी के प्राचीन साहित्य मे से भी सवेदनमय चित्रो के उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं, किन्तु ये प्रयोग विरल हैं। इसकी कोई परपरा नही विकसित हुई है। आधुनिक कविता मे भी इसके छिट-पुट उदाहरण ही पाये जाते है। पन्त जो की कविता मे इनका बाहुल्य है। प्रसाद और निराला जो की कविताओ मे भी सवेदन-जन्य चित्र अकित हुए है। प्रयोगवादी कवियो मे शमशेर और भारती की कविताओ मे दृश्य, स्पृश्य एव गति-चित्र दर्शनीय है। शमशेर की 'एक मुद्रा से', 'शरीर स्वप्न', भारती की 'उदास तुम', 'फागुन की शाम' कविताओ के दृश्य चित्र सुन्दर है।[१] गिरिजाकुमार की कविताओ मे सवेदन चित्रो का सफल प्रयोग हुआ है। उनकी 'लैड स्केप', 'शाम की धूप', 'सावन के बादल', 'बरफ का चिराग 'आदि कविताओ मे दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, गन्ध, रस, गति एव रग चित्रो का प्रयोग अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है।[२] इनसे कवि के प्रत्यक्षीकरण और सवेदन की शक्ति पर प्रकाश पडता है। अन्य प्रयोगवादी कवियो मे नरेश मेहता, शम्भूनाथ सिह भारत भूषण, नेमिचन्द्र आदि सवेदन चित्रो की ओर उन्मुख है।

ये प्रयोग कवियो की सूक्ष्म सवेदन शक्ति के परिचायक है। प्राचीन हिन्दी कविता मे इनका अभाव सा ही है, क्योकि इस ओर उनका सचेष्ट प्रयत्न दिखाई नही पडता है। सूर और तुलसी के काव्य मे श्रव्य एव दृश्य चित्र अकित हुए हैं, किन्तु वे प्रयोग के रूप मे ही है, उनका परपरा के रूप मे विकास नही हुआ है। आधुनिक युग के कवि सवेदन चित्रो के निर्माण की ओर सचेष्ट हैं, विशेषतः प्रयोगवादी कवि। अभी तो ये प्रयोग के रूप मे ही यत्रतत्र पाए जाते है, परन्तु भविष्य मे इन प्रयोगो की नवीन परपरा विकसित होने की सम्भावना अवश्य दिखाई पडती है। पाश्चात्य अगरेजी के कवि शेली, कीट्स, वर्डसवर्थ आदि और ईलियट, पाउड आदि की रचनाओ का प्रभाव हिन्दी के वर्तमान कवियो पर भी लक्षित होता है, जिससे प्रेरित होकर ये इस ओर प्रवृत्त हुए है।

उपसंहार

कवि के व्यक्तित्व मे मन की तीनो शक्तिया-बोधात्मिका, भावात्मिका

१—देखिए, दूसरा सप्तक और ठंडा लोहा (धर्मवीर भारती)।

२—देखिए, गिरिजाकुमार माथुर, धूप के धान।

तथा क्रियात्मिका-काम करती हैं। परन्तु किसी कवि मे बोधात्मक वृत्ति प्रवल होती है तो किसी मे भावात्मक तथा किसी अन्य मे क्रियात्मक। प्रबन्ध के कवि के लिए तीनो शक्तियो का समन्वित रूप अपेक्षित होता है, किन्तु प्रगीत काव्य मे भावात्मक तत्व प्रधान होता है। काव्य के निर्माण मे रागात्मक तत्व की प्रधानता काव्य के सभी आचार्यों ने स्वीकार की है। किन्तु आजकल के कवि मनोविज्ञान एव पदार्थ विज्ञान से अधिक प्रभावित हुए हैं। विज्ञान ने वस्तु-तत्व की परीक्षा के लिए बुद्धि-तत्व को प्रधानता दी है, जिसके लिए प्रमाण, प्रयोग, प्रत्यक्षीकरण, तर्क, विवेचन आदि अपेक्षित हैं। इसी प्रकार फ्रायड, युग, ऐडलर आदि मनोविज्ञान शास्त्रियो के मनोविश्लेषण ने मानव-मन के अज्ञात रहस्यो को ढूँढ निकाला है। आधुनिक कवि पदार्थ और अन्तर्मन की नूतन गवेषणाओ से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं, जिससे नई कविता मे अभिनव प्रयोगो का विकास हुआ है। फलतः आधुनिक कवि बोधात्मक वृत्ति तथा ऐन्द्रियिक सवेदनो को अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। इसी कारण नयी कविता मे बौद्धिकता, विचार, विवेचन, सिद्धान्त-निरूपण, प्रत्यक्षीकरण एव अचेतन मन की कुण्ठाओ का प्रकाशन बहुत है। प्रगतिवादी कवि मार्क्स-दर्शन से प्रभावित होकर अपनी रचनाओ मै बौद्धिकता को अधिक प्रश्रय दे रहे है। फ्रायड के अनुसन्धानो से प्रभावित हिन्दी के कवि अपनी कविताओ मे फ्री ऐसोशियेशन एव ऐन्द्रियिक सवेदनो के अतिरिक्त योन-कुण्ठाओ को प्रकाशित कर रहे है। इन दोनो विचार धाराओ के आगमन से वर्तमान हिन्दी-कविता मे भाव तत्व का शैथिल्य हो गया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय कवियो ने नए आलम्बन एवं उद्दीपनो के साथ-साथ नये भावो की भी सृष्टि की है, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल की कविता मे उत्तरोत्तर भाव-तत्व (रागात्मकता) का अभाव होता गया है। तथा बुद्धि-तत्व एव ऐन्द्रियिक सवेदनो का प्रभाव अधिक है। भाव-व्यजना के विविध प्रयोगो की दृष्टि से छायावादी काव्य बहुत उर्वर है। पन्त की ग्रन्थि, निराला की गीतिका, प्रसाद की आसू, एव महादेवी की नीरजा मे भावोच्छवासो का प्रवाह छलकता है। राष्ट्रीय काव्य धारा मे नए-नए आलम्बनो के साथ राष्ट्रीयता, विद्रोह, उत्सर्ग, स्वत्व, सहानुभूति, विक्षोभ, प्रवचना आदि नए भावो का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रगतिवादी कविता मे बौद्धिकता अधिक है तथा प्रयोगवादी रचनाओ मे यौन-भावना, फ्री ऐसोशियेशन एव ऐन्द्रियिक सवेदनो के प्रयोग अधिक हैं।

प्रबन्ध काव्यो के अतिरिक्त आधुनिक युग की समस्त रचनाओ मे रसात्मक तत्व का ह्रास होता चला गया है। प्रयोगवादी रचनाओ मे रस-तत्व एव

भाव-व्यंजना बहिष्कृत-से हो गए हैं। वर्तमान कविता मे तर्क प्रवृत्ति, विचारात्मक तत्व, ऐन्द्रियिक बोध एव प्रत्यक्षानुभूति के प्रयोग सर्वथा नूतन है। आजकल के कवि काव्य-चेतना के नए-नए स्तरो का अन्वेषण करने मे सलग्न है। नई भाव-व्यजना, बुद्धि-तत्व एव नूतन ऐन्द्रियिक-बोध की विभूति काव्य के गौरव को बढाने मे कहा तक सहायता करेगी, यह भविष्य के द्वारा निश्चित होगा। किन्तु यह सत्य है कि आज कवि-चेतना कही अधिक जागरुक है तथा वह काव्य के नये स्तरो का अनुसन्धान करने मे तत्पर है।

निष्कर्ष यह कि आधुनिक काव्य-धारा सतत् गतिशील है। वह नए सामाजिक बोध तथा ऐन्द्रियिक बोध से अनुप्राणित है। यद्यपि उसका सब कुछ मूल्यवान् नही है, तथापि कुछ कवियो की प्रतिभाओ ने अवश्य ही नये क्षेत्रो का उद्‌घाटन किया है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता।

नवम अध्याय

काव्य-रूपों में प्रयोग

काव्य-रूपों में प्रयोग

महाकाव्य मे प्रयोग

आलोच्यकाल के महाकाव्यो मे कुछ नवीन प्रवृत्तिया मिलती हैं जिनका अध्ययन नीचे लिखे महाकाव्यो के आधार पर किया गया है :

(१) साकेत, (२) तक्षशिला, (३) कामायनी, (४) नूरजहाँ, (५) वैदेही बनवास, (६) दैत्य वश, (७) रावण महाकाव्य, (८) आर्यावर्त, (९) कुरुक्षेत्र, (१०) रश्मिरथी, (११) विक्रमादित्य, (१२) शर्वाणी, (१३) जन नायक, (१४) कैकेयी और (१५) मेधावी ।

उपर्युक्त महाकाव्यो मे कुछ नए परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। ये परिवर्तन महाकाव्य के अतरग और बहिरग—आत्मा और शरीर—दोनो मे हुए है ।

(१) महाकाव्य का अन्तरंग

इसमे नायक का चरित्र और रस सबधी विचार है । परपरागत महाकाव्यो का नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्त उच्च कुलोद्भव क्षत्रिय होता है और कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध एव सज्जनाश्रित होती है । नये महाकाव्यो मे 'धीरोदात्त' और 'सज्जनाश्रय' के प्रतिमान बदल गए है । आजकल जीवन मे समाज-सेवा, राष्ट्रीयता एव सास्कृतिक गौरव की भावना का अत्यधिक विकास हुआ है । स्वच्छन्दतावाद के इस युग मे कथा का 'सज्जनाश्रित' होना भी अनिवार्य नही है । आजकल महाकाव्यो की कथा दैत्य, नारी एव सामान्य जनाश्रित भी हो सकती है, अन्यथा दैत्यवश, रावण, नूरजहाँ, कैकेयी, वैदेही-बनवास और मेधावी जैसे महाकाव्यो की रचना न होती । 'जन नायक' मे समाज-सेवा एव राष्ट्रीयता का आदर्श प्रतिफलित हुआ है तथा 'सिद्धार्थ,' 'वर्द्धमान' एव तक्षशिला मे सांस्कृतिक गौरव का ।

महाकाव्यो मे शृगार, वीर अथवा शान्त अगी रस होता है, शेष अग भूत होते है । किन्तु परपरया बीर रस को प्रधानता मिली है, क्योकि नायक के महान् कार्यों, विजय-यात्राओ और साहसपूर्ण कार्यों मे इसी की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है । आजकल करुण रस के महाकाव्यो की भी सृष्टि हुई है । प्रिय प्रवास, वैदेही बनवास, साकेत-सन्त आदि मे शोक एव विषाद की अभिव्यजना विशेष रूप से लक्षित होती है ।

इसके अतिरिक्त वर्तमान काल मे कुछ ऐसे भी महाकाव्यो का सृजन हुआ है, जिनमे रस का स्थान सैद्धान्तिक विवेचन ने ले लिया है तथा रस की अपेक्षा बौद्धिकता एव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अधिक महत्त्व दिया गया है। जीवन के घात-प्रतिघात एव अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने की ओर भी कुछ कवि उन्मुख हुए है। 'कामायनी' और 'कुरुक्षेत्र' मे यह प्रवृत्ति स्फुट है।

उद्देश्य

आधुनिक युग के महाकाव्यो के उद्देश्य सबधी प्रतिमान भी बदल गए है। 'चतुर्वग फल प्राप्ति 'और' सद्यः पर निर्वृत्ति 'मे अब कोई कवि विश्वास नही रखता है। अब महाकाव्यो की रचना अपने' 'अह' की परितुष्टि और नूतन समाज-बोध की दृष्टि से की जाती है।

महाकाव्य का बहिरंग

इसमे महाकाव्य का बाह्य शरीर—रूप एव शैली—आते है।

(१) शास्त्रीय दृष्टि से प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द का विधान है। सर्गान्त मे भावी कथा को सूचित करने के लिए छन्द बदल दिया जाता है। किन्तु पद्मावत और रामचरितमानस जैसे श्रेष्ठ महाकाव्यो मे भी इस विषय का पालन नही हुआ है। ये दोनो ही काव्य-ग्रथ चौपाई-दोहो की शैली मे वर्णित है। आलोच्य काल मे कृष्णायन भी इसी शैली पर रचा गया है। सगीत मे छन्द बदलने के नियम का कामायनी और कुरुक्षेत्र मे भी पालन नही हुआ है।

(२) नए महाकाव्यो मे किसी प्रकार का मगलाचरण नही होता है। यह परपरा प्रायः समाप्त सी हो गई है। प्रारभ मे किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् मूल कथा का श्रीगणेश होता है।

(३) राष्ट्रीयता और समाजवाद से सबधित बहुत से नवीन विषय भी नए महाकाव्यो मे आ गए हैं—सत्याग्रह, आन्दोलन, मातृभूमि, समाज-सुधार, राष्ट्र-प्रेम समानाधिकार, सगठन, ग्रामोद्योग, भौतिक एव सामाजिक सघर्ष आदि ऐसे ही विषय है। इस प्रकार सामाजिक जीवन और राष्ट्रोन्नति से सबधित अनेक विषयो का वर्णन किया जाता है।

(४) दुष्टो की निन्दा और सज्जनो की प्रशसा का वर्णन अब नही होता है।

(५) नाटकीय सधियो की योजना भी आजकल आवश्यक नही है।

(६) गीति-काव्य अपने आप मे पूर्ण एव स्वतत्र काव्य-रूप है, परतु आधुनिक महाकाव्यो मे गीतो का भी समावेश हो गया है। साकेत, वैदेही-बन-

चास, साकेत-सन्त, कामायनी, जन नायक आदि मे गीतो की स्वतत्रतापूर्वक योजना की गई है।

(७) आधुनिक युग मे नारी-स्वातत्र्य का स्वर मुखर है। नारी जीवन के हर एक क्षेत्र मे पुरुष की सहचारिणी हो गई है। नारी को प्रधान पात्र बनाकर कई महाकाव्यो का सृजन हुआ है, जिनमे साकेत, वैदेही-बनवास, कामायनी, नूरजहाँ, शर्वाणी, कैकेयी आदि मुख्य है। 'पार्वती' महाकाव्य का प्रकाशन अभी हाल मे हुआ है। इन महाकाव्यो मे 'नारी' को प्रधान पात्र का स्थान दिया गया है।

(८) आधुनिक युग मे अवतारवाद एव देवतावाद का स्थान मानवतावाद ने ले लिया है। विज्ञान के आलोक मे अब तर्कसगत एव बुद्धि-ग्राह्य घटनाओ मे ही विश्वास किया जाता है। आधुनिक युग के कई महाकाव्यो मे अवतारो का स्थान महापुरुषो ने ले लिया है अन्ध-विश्वास, रूढि, असभव और अतिरजित घटनाओ को अब काव्यो मे चित्रित नही किया जाता है। साकेत और वैदेही बनवास के राम तथा सिद्धार्थ के बुद्ध महापुरुषो के रूप मे ही चित्रित हुए है।

आलोच्यकाल के महाकाव्यो मे कुछ नये परिवर्तन हुए है। उन्हे नीचे तालिका द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

(१) अंतरंग

१—नायक के आदर्श मे परिवर्तन

२—भाव क्षेत्र मे परिवर्तन

३—वस्तु एव घटनाओ का सैद्धातिक विवेचन।

(२) बहिरंग

१—प्रकृति-चित्रण

२—विषय और उपादान

क—राष्ट्र

ख—सस्कृति

ग—सामाजिक जीवन

३—छन्दोविधान

क—भिन्न तुकान्त

ख—मुक्त

ग—मिश्रित

घ—गीत

ड—उर्दू के छन्द

४—नाटकीय सवाद

५ —भाषा

नायक का आदर्श

आधुनिक युग मे मानवतावादी दृष्टि के प्रधान हो जाने से परपरागत नायको के आदर्शो मे परिवर्तन हो गया है। आधुनिक युग के महाकाव्यो मे यह प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दिखाई पडती है। प्रियप्रवास के नायक कृष्ण का आदर्श परपरानुगत नही है। हरिऔध जी ने कृष्ण को आदर्श महापुरुष और राधा को आदर्श नारी के रूप मे चित्रित किया है। भगवान् कृष्ण के जीवन की अलौकिक एव अतिरजित घटनाओ को युक्तिपूर्वक विज्ञान-सम्मत बनाया गया है। वैदेही-बनवास के राम भी आदर्श महापुरुष हैं तथा सती-साध्वी नारी के रूप मे चित्रित है। साकेतकार ने राम के अवतार रूप मे विश्वास प्रकट किया है, किन्तु राम के जीवन की अलौकिक घटनाओ को सर्वत्र बचा गए है। केवल उन्ही घटनाओ का वर्णन किया है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से सभव हैं। लका-विजय के प्रसग मे सेना द्वारा समुद्र को तरने की कथा मे से अलौकिक चमत्कार हटा दिया गया है तथा 'सेतु रूप ही है उत्साह' कहकर उत्साह को ही सेतु-रूप बताया गया है।

भारतीय परपरा मे कैकेयी का चरित्र गर्हित, निन्दित एव कुत्सित भावो से परिपूर्ण चित्रित किया गया है। तुलसीदास ने कैकेयी को कुटिलता की प्रतिमूर्ति और 'पापिनि' के रूप मे अकित किया है। साकेत मे उनके चरित्र की रक्षा की गई है। इसी प्रकार साकेत मे उर्मिला के चरित्र की नवीन सृष्टि की गई है। नवीन जी ने 'उर्मिला' महाकाव्य की रचना की है। प्रभातकुमार मिश्र ने अपने 'कैकेयी' काव्य मे कैकेयी को आदर्शवादी नारी के रूप मे चित्रित किया है। इस प्रकार आलोच्य काल मे पात्रो के परपरागत आदर्श मे नए परिवर्तन हुए है। आर्यावर्त की सयोगिता भी परिवर्तित नारी के रूप मे चित्रित की गई है। वह व्यक्तिगत मान और अपमान से ऊचे उठकर पृथ्वीराज की पराजय का बदला लेने के लिए आर्यावर्त की विशाल सेना को सुसंगठित करती है और युद्ध मे यवनो को परास्त करके आर्य-राष्ट्र के समान की रक्षा करती है।

आधुनिक युग मे नारी को उत्कर्ष मिला है तथा उसे पुरुष के समकक्ष मान लिया गया है। आलोच्य काल के अनेक महाकाव्य नारी के महत्व की स्थापना करने के लिए प्रणीत हैं। कामायनी, नूरजहाँ, शर्वाणी, कैकेया, उर्मिला, पार्वती आदि महाकाव्यो मे नारी के आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। श्यामनारायण पाडेय के 'जौहर' मे भी रानी पद्मिनी का आदर्श चरित्र अकित है। इससे सिद्ध है कि नये महाकाव्यो मे नारी को गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करने का

सोद्देश्य प्रयत्न किया है।

अब तक के महाकाव्यो मे सद्वशोद्भव राजा या राजन्य वर्ग के पुरुषो को ही महाकाव्य के नायक के रूप मे चुना गया है। साधारण मानव को यह समान कभी नही दिया गया। आलोच्यकाल के महाकाव्यो मे साधारण श्रेणी के व्यक्ति भी नायक चुने गए है। 'नूरजहाँ' की नूरजहाँ एक सामान्य कुल की नारी होने पर भी प्रधान पात्र चुनी गई है। 'जन नायक' के पूज्य बापू साधारण कुलोत्पन्न हैं, क्षत्रिय वश के भी नही, युद्ध वीर होना तो दूर रहा। सामान्य स्थिति से ही उन्नति करके उन्होने राजनैतिक नेता का पद प्राप्त कर लिया था। शास्त्रीय परपरा के अनुसार वे महाकाव्य के नायक नही हो सकते, किन्तु आधुनिक युग ने 'जन नायक' को राजा से भी अधिक आदर दिया है। रागेय राघव का 'मेधावी' भी एक नूतन महाकाव्य है जिसका नायक 'मेधावी' एक सामान्य श्रेणी का व्यक्ति है। इस प्रकार आधुनिक काल मे सामान्य श्रेणी के पात्रो को भी महाकाव्य के नायक का गौरव प्राप्त हुआ है।

हरदयालु सिंह के 'दैत्यवश' और 'रावण महाकाव्य' मे नायक का पद दैत्य राजाओ एव असुरो को मिला है। महाकाव्यो की परपरा मे असुर सदैव खल नायक के रूप मे चित्रित किए गए है, किन्तु इन दोनो महाकाव्यो मे दैत्य राजाओ को नायक के रूप मे चुना गया है तथा उनमे धीरोदात्त नायक के गुणो को प्रदर्शित किया गया है। दिव्य पात्रो को प्रतिनायक के स्थान मे रखा गया है रावण महाकाव्य मे रावण धीरोदात्त नायक है तथा राम प्रतिनायक। दैत्य-वश मे नायक के रूप मे हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, बलि, वाणासुर आदि छः दैत्य कुलोद्भव राजाओ का वर्णन है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल मे नायक के आदर्श मे महान् परिवर्तन हुए हैं। परपरा मे जिन बातो को दोष समझा जाता था, आजकल उन्हे उदात्त रूप मे ग्रहण किया जाता है।

भाव-क्षेत्र में परिवर्तन

प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण लोक-सेवा के आदर्श हैं। उनमे जीवन के प्रारम्भ से ही दूसरो के सुख के हेतु अपने सुख का त्याग करने की प्रवृत्ति दिखाई पडती है। श्रीकृष्ण बाल्यकाल से ही नि.स्वार्थ भाव से प्रेरित होकर समाज-सेवा एव सर्व-हित के कार्यों मे सलग्न दिखाई पडते है। परोपकार और सेवा-व्रत उनके जीवन के प्रधान अग हैं।

साकेत के राम मे भी लोक-सेवा का आदर्श प्रस्फुटित हुआ है। वे राज्याभिषेक की अपेक्षा वन-यात्रा को श्रेष्ठतर समझते है। दक्षिण देश की बर्बर कौणय जाति के उपद्रवो को मिटाने के लिए उनके भुजदड फडक उठे है। उनके

जीवन का आदर्श है—'हम हो समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।'

कामायनी मे व्यष्टि सत्ता को समष्टि चेतन मे लय कर देने की भावना प्रतिफलित हुई है। स्वार्थपरता मे लिप्त मनु को सचेत करते हुए श्रद्धा लोक मे आनन्द की भावना को प्रसारित करने का उपदेश देती है।[१]

सिद्धार्थ, वैदेही बनवास, कृष्णायन, कुरुक्षेत्र, जन नायक, तक्षशिला आदि सभी महाकाव्यो मे जातीय, राष्ट्रीय एव सास्कृतिक भावो की अभिव्यक्ति है। व्यक्तिगत रसात्मक भाव-भूमि से ऊँचे उठकर आनन्द को सामाजिक एव राष्ट्रीय स्तर पर व्यजित करने की परम्परा सर्वथा नवीन है। प्राचीन काल के महाकाव्यो मे रस-सचार का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। रसोन्मेष की दृष्टि से ही कथा-वस्तु के अन्तर्गत विविध प्रसगो की योजना की जाती थी। आलोच्यकाल के महाकाव्यो मे रस का स्थान गौण हो गया है। आजकल के रचनाकार चरित्रो के उदात्त वर्णन, घटना एव सघर्षों के मनोवैज्ञानिक चित्रण की ओर अधिक ध्यान देते है। आर्यावर्त, कुरुक्षेत्र, जन नायक एव मेधावी मे घटना, सघर्ष एव चरित्राकन की प्रधानता है। कुरुक्षेत्र, मे हर एक घटना के मूल मे मनोवैज्ञानिक कारणो का निरूपण किया गया है।

वस्तु एवं घटनाओं का सैद्धान्तिक विवेचन

'कुरुक्षेत्र' के कवि ने प्रथम सर्ग मे युद्ध की मीमासा प्रस्तुत की है। युद्ध का उत्तरदायित्व किस पर है? व्यक्ति पर, समाज पर अथवा किसी नेता पर? कहा जाता है कि देश के गौरव के लिए युद्ध लडना अनिवार्य हो जाता है। किंतु कवि को सदेह 'देश की लज्जा' का विषय कोई वास्तविक सत्य है अथवा स्वार्थ-लोलुप सभ्यता के अग्रिणी नायको के पेट मे जलती हुई द्रोहाग्नि का मात्र आवरण है। विश्व के मानवो के हृदय मे द्रोहाग्नि नही है, समुदाय भी लडाई नही चाहते। केवल व्यक्ति ही युद्ध के विषाक्त वातावरण का निर्माण करते है। इस प्रकार पूरे प्रथम सर्ग मे कवि ने युद्ध की समस्या पर तर्कपूर्ण विवेचन किया है। इसी प्रकार छठे सर्ग मे मानव की पाशविक वृत्तियो का विवेचन किया गया है। मनुष्य अपनी आदिम भोग-प्रवृत्ति से आज भी अपना पिंड नही छुडा सका है—वही अपहरण, वही शोषण, वही दमन, उसके हृदय मे द्वेष, द्रोह, और उन्माद का आज भी वैसा ही ताण्डव विद्यमान है।

अगराज के पच्चीसवे सर्ग मे कौरवो की नैतिक विजय और पाण्डवो की जीत मे हार का बौद्धिक निरूपण किया गया है तथा यह सिद्धान्त उपपादित

१—देखिए, कामायनी, पृ० १३२।

किया है कि क्रियाशीलता से ही सिद्धि मिलती है।

जन नायक मे भी रस-पक्ष निर्बल है और स्थल-स्थल पर गाधीवादी विचार-धारा का निरूपण किया गया है। सपूर्ण काव्य मे घटनाओ के विवरणो की विवृत्ति है और सिद्धान्तो की पुनरावृत्ति है।

कामायनी की घटनाओ मे अन्तर्द्वन्द्व का उन्मीलन है। अध्यात्मवाद और भौतिकवाद, हृदय और बुद्धि, नारी और पुरुष, भोग और त्याग, शासक और शासित, देव और दानवो के सघर्ष के मूल मे दो विरोधी भावो का ही द्वन्द्व है। आदि काल से ही नारी और पुरुष का सबध एक प्रश्न बना हुआ है। पुरुष नारी पर एक न्त अधिकार चाहता है क्योकि वह अपने को किसी नियम मे नही रख सकता। मनु को यह सह्य नही कि श्रद्धा का स्नेह-पात्र कोई दूसरा बने। अपने पुत्र और मृग-शावक के प्रति भी इसीलिए उन्हे ईर्ष्या है।

इडा के उपदेश से वे मुक्त भोग मे प्रवृत्त होते है। सारस्वत प्रदेश मे उनका राज्य स्थापित होता है। उनमे शासक का गर्व है, अतएव प्रजा से उनका सघर्ष छिड जाता है। भीषण सग्राम मे आहत होकर मनु भाग निकलते है। कामायनी के कथानक मे एक पक्ष भौतिक वाद का है, जिसका प्रतीक इडा है और दूसरा पक्ष अध्यात्मवाद का है, जिसका प्रतीक है श्रद्धा। कामायनीकार ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामजस्य मे स्थायी सुख का समाधान ढूढा है। समरसता की प्राप्ति आध्यात्मिक शान्ति का द्वार है। यही कामायनी का सन्देश है।

इससे सिद्ध है कि नए महाकाव्यो मे वस्तु एव घटनाओ के विश्लेषण का प्रयास अधिक है, वस्तु-वर्णन की अपेक्षा तर्कपूर्ण विवेचन प्रधान है तथा जीवन के नैतिक प्रतिमानो के बौद्धिक निरूपण की प्रवृत्ति अधिक है।

बहिरंग—प्रकृति चित्रण

हिन्दी के महाकाव्यो की परपरा मे प्रकृति का स्वतत्र वर्णन बहुत कम मिलता है। पद्मावत और रामचरितमानस दोनो महाकाव्यो मे प्रकृति-वर्णन तो बहुत हुआ है, किन्तु आलम्बन रूप मे नही। पद्मावत के ऋतु वर्णन, बारह-मासा, समुद्रादि के वर्णनो मे अधिकतर उद्दीपन रूप की ही प्रधानता है। मानस के वर्षा, शरद् ऋतुओ के वर्णन मे उपदेश ढूढने की प्रवृत्ति प्रधान है। केशव की रामचन्द्रिका मे अलकारो के रूप मे और उद्दीपन के रूप मे ही प्रकृति का उपयोग हुआ है। यदि कही स्वतत्र वर्णन है भी, तो वह वस्तु परिगणन मात्र है।

आधुनिक महाकाव्यो मे प्रकृति-चित्रण दो रूपो मे अधिक पाया जाता

है—मानवीकरण के रूप मे तथा आलम्बन रूप मे। आधुनिक काल मे प्रकृति के अचेतन पदार्थों मे मानवीय धर्मों के आरोप करने की प्रवृत्ति अधिक प्रचलित है। इससे प्राकृतिक वस्तुओ का मानवीकरण हो जाता है। आलोच्यकाल के प्रायः सभी महाकाव्यो मे यही प्रवृत्ति प्रधान है। कामयनी, नूरजहाँ, वैदेही-बनवास, साकेत, आदि महाकाव्यो मे प्रकृति का मानवीकरण प्रचुरता से मिलता है।

नए महाकाव्यो मे प्रकृति के स्वतत्र चित्रण को योजना करके कवियो ने बाल्मीकि और कालिदास की परिपाटी को पुनरुज्जीवित किया है। बुद्ध चरित्र, विक्रमादित्य, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, वैदेही-बनवास आदि महाकाव्यो मे इसका प्राचुर्य है।

कामायनी के आनन्द सर्ग मे मानसरोवर और कैलास के वर्णन मे प्रकृति के सश्लिष्ट योजना के चित्र अत्यत सुन्दर है। विक्रमादित्य के अठारहवें सर्ग मे सौराष्ट्र वर्णन मे प्रकृति-चित्रण अपने विशुद्ध रूप मे पाया जाता है। 'सिद्धार्थ' मे शुक्ला रात्रि, उपवन, वाटिका, वर्षा-वैभव के चित्रण अत्यत मनोरम हैं।

विषय और उपादान

आधुनिक युग के महाकाव्यो मे कुछ नवीन विषय आ गए हैं, जिनको तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है : (१) मातृभूमि तथा राष्ट्रीय विषय (२) सस्कृति और राजनीतिक विषय।

मातृभूमि तथा राष्ट्रीय विषय—आधुनिक युग के महाकाव्यो मे मातृभूमि से सबधित विषयो का उल्लेख प्रचुर मात्रा मे रहता है। 'विक्रमादित्य' मे वीर चन्द्रगुप्त शको पर विजय प्राप्त कर भारत को लौट रहा है। सेना विजयोल्लास से पूर्ण है। इस प्रसग मे कवि ने हिमालय, कश्मीर आदि का वर्णन किया है। स्वदेश-प्रेम से अनुरजित होने के कारण ये राष्ट्रीय विषय बन गए हैं।[१]

दरिद्रता से पीडित गयास और उसकी पत्नी आजीविका के हेतु भारत जाने को उद्यत है। अपनी मातृभूमि फारस को छोडकर विदेश-यात्रा करने मे बेगम का हृदय उद्विग्न होता है। इस प्रसग मे स्वदेश के मनोहर दृश्यो का चित्रण अत्यत सजीव एव मार्मिक है[२] इसी प्रकार अगराज के प्रथम सर्ग मे भारत-भूमि का महिमामय चित्राकन है। यह वर्णन पूरे प्रथम सर्ग की समाप्ति तक चलता है।

सत्याग्रह, आन्दोलन, दमन, बलिदान, स्वतंत्रता, स्वत्व, सगठन, एकता,

---

१—देखिए, विक्रमादित्य, सर्ग ३६।

२—देखिए, नूरजहाँ, पहला सर्ग।

अहिंसा, ग्रामोद्योग, सह-शिक्षा, सुधार आदि आदि विषयो का वर्णन अनेक महाकाव्यो के अतर्गत पाया जाता है। साकेत से जब राम वन को जाते हैं, तब अयोध्या के निवासी सविनय सत्याग्रह करते हैं।[१] चित्रकूट पर निवास करते हुए 'अचल-पट-कटि मे खोस कछोटा मारे हुए' सीता पौधो को सीचती है। स्वावलम्ब के जीवन मे उन्हे सतोष है। वे भोलीभाली कोल-किरात-भिल्ल-वन-बालाओ के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं तथा उन्हे स्वत्व का उपदेश देती है। उन्हे कातने-बुनने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रसग को पढकर गाधी जी के वर्धा आश्रम की याद आ जाती है।

'दैत्य वश' के स्कन्द के राज्य मे आधुनिक युग की ग्राम-सुधार-योजना ही प्रतिफलित हुई है। स्कन्द आदर्शवादी नरेश है। उनके राज्य मे शिक्षा के विशाल केंद्र है, महान् पुस्तकालय हैं तथा अनेक चिकित्सालय है। सैनिक शिक्षा का भी प्रबन्ध है। कृषि की उन्नति के लिए नहरे बनवाई गई है। सहकारी समितिया स्थापित की गई है।[२] ये सब आधुनिक युग की राष्ट्रीय-सुधार-योजना के विषय है।

वैदेही-बनवास के वाल्मीकि के आश्रम मे कन्या-विद्यालय भी है, जिसकी अधिष्ठात्री एक तपस्विनी महिला है। सीता जी को निवास करने के लिए इसी आश्रम मे रखा जाता है।[३]

रावण महाकाव्य मे मुनियो और राक्षसो के सघर्ष का जो चित्र अकित किया गया है, उस पर आधुनिक युग की क्रान्ति की छाप है। इस प्रसग मे सत्याग्रह, दमन, आन्दोलन आदि का वर्णन है। जनस्थान का शासन करने के लिए शूर्पणखा को उसी प्रकार नियुक्त किया गया था, जिस प्रकार आधुनिक युग मे सरोजिनी नायडू उत्तरप्रदेश के शासन के लिए राज्यपाल के पद पर प्रतिष्ठापित की गई थी।[४]

'जन नायक' मे स्वतत्रता चरखा सत्याग्रह, आन्दोलन, बलिदान, दमन, अत्याचार आदि विषयो के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। सन् १९४२ की राज्य-क्रान्ति के प्रसग मे इन सभी विषयो का वर्णन आ गया है।[५]

१—देखिए, साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २१०।

२—देखिए, दैत्य वंश, अष्टादश सर्ग, पृ० २५१–५४।

३—,, वैदेही-बनवास, सर्ग १८।२६।

४—,, रावण महाकाव्य, १५।२५।३०।

५—देखिए, जन नायक, पृ० ३५५।

'कामायनी' मे अहिंसा, ग्रामोद्योग आदि विषय वर्णित है। मनु की सुधि लिए बैठी हुई श्रद्धा अपनी कुटिया मे तकली चलाती है।[1]

(ख) सांस्कृतिक विषय

इसके अतर्गत अतीत गौरव, आर्य-सस्कृति, स्वाभिमान, नीति एव धर्म का वर्णन आता है। साकेत, वैदेही-बनवास आदि महाकाव्यो मे आर्य सस्कृति, स्त्रियो के धर्म, राम राज्य, मनुष्य के कर्तव्य आदि विषयो का वर्णन है। कृष्णायनकार ने सास्कृतिक एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए आर्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। 'आर्यावर्त' मे आर्य-सस्कृति एव धर्म का निरूपण है। कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग मे नीति, सस्कृति एव धर्म के सिद्धान्तो का विशद निरूपण है। सातवे सर्ग मे भाग्यवाद और पुरुषार्थवाद जैसे विषयो पर आर्थिक रीति से प्रकाश डाला गया है। 'अगराज' के अन्तिम सर्ग मे नीति पक्ष का सुन्दर विवेचन है।

साकेत सन्त मे नीति, कर्तव्य, सदाचार का अनेक स्थलो पर वर्णन हुआ है। यद्यपि ये विषय मानस और रामचन्द्रिका मे भी प्रचुरता से वर्णित है, किन्तु आलोच्यकाल के महाकाव्यो मे इन विषयो का भिन्न दृष्टि से वर्णन किया गया है। विषय वही है, किन्तु दृष्टि का भेद है। आधुनिक युग के कहाकाव्यो मे इन्हो विषयो पर राष्ट्रीय एव सास्कृतिक दृष्टि से विचार हुआ है। इनके वर्णन मे नवीन दृष्टि का उन्मेष है। अतएव इनको नई परपरा के अन्तर्गत लिया गया है।

(ग) राजनीतिक विषय

इसकी परिधि मे सघर्ष, शोषक वर्ग समानाधिकार, शोषण, किसान, मजदूर, दलित, क्रान्ति आदि विषय आते हैं। जन नायक, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी तथा मेधावी मे ये विषय प्रचुरता से वर्णित हैं। मेधावी के अन्तिम सर्ग मे शोषक वर्ग के अत्याचार, किसान, मजदूर, निम्न वर्ग आदि की दुखवस्था के सजीव चित्र अकित हैं।[2]

कुरुक्षेत्र के अन्तिम सर्ग मे साम्यवाद, शोषण, क्रान्ति आदि का विस्तृत विचार है। कामायनी के 'सघर्ष' सर्ग में मनु के निरकुश शासन के विरुद्ध

१—देखिए कामायनी, पृ० १५०।

२—देखिए, मेधावी, सर्ग १४।

प्रजा के विद्रोह एव तज्जन्य सघर्ष मे 'स्वाधिकार' का ही वर्णन है। इस घटना मे नृशस शासक के अत्याचार, शोषण, अन्तर्द्वन्द्व, दमन, सघर्ष आदि सभी विषय वर्णित है, जिन पर समाजवादी दृष्टि का प्रभाव लक्षित होता है। यह प्रसग आधुनिक युग की समाजवादी विचारधारा के अनुकूल है।

छन्दो-विधान

आधुनिक महाकाव्यो मे छन्दो की नवीन परपराएँ स्थापित हुई हैं। ये अनेक रूपो मे प्रचलित है : सस्कृत वृत्त, भिन्न तुकान्त, मुक्त, मिश्र गीत, उर्दू के छन्द आदि।

(क) संस्कृत वृत्त

हिन्दी महाकाव्यो की परपरा छन्दो की दृष्टि से पूर्णत. समृद्ध है। रामचरितमानस मे हिन्दी एक सस्कृत के विविध छन्द प्रयुक्त हुए हैं। रामचन्द्रिका तो छन्दो का अजायबघर है। किन्तु भिन्न तुकान्त शैली के छन्दो का प्रयोग आलोच्य काल मे ही सबसे अधिक मिलता है।

सस्कृत के छन्दो का प्रयोग सबसे अधिक प्रियप्रवास, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, अगराज आदि मे मिलता है। इनमे द्रुत विलम्बित, वसन्त तिलक, वशस्थ, शिखारिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता एव शार्दूल विक्रीडित आदि आदि सस्कृत के वर्ण वृत्तो का प्रयोग हुआ है।

(ख) भिन्न तुकान्त मुक्त छन्द :

अन्त्यानुप्रासहीन छन्दो का प्रयोग आजकल के सिद्धार्थ, वर्द्धमान, आर्यावर्त एव मेधावी मे हुआ है। पहले दो काव्य भिन्न तुकान्त सस्कृत वृत्तो मे रचित हैं, तीसरा बगला के अमित्राक्षर छन्द मे तथा चौथा भिन्न तुकान्त मुक्त शैली का काव्य है।

(ग) मिश्र छन्द :

आधुनिक युग की यह नई प्रवृत्ति है कि दो दो छन्दो के लक्षणो को मिला कर एक नया छन्द बना लिया जाता है। यही मिश्र छन्द का स्वरूप है। कामायनी मे इसका प्रचुर मात्रा मे प्रयोग हुआ है। ईर्ष्या और श्रद्धा सर्गो मे पद्धरि छन्द (१३+१६=२९) कुछ अन्तर के साथ प्रयुक्त हुआ है। 'नूरजहाँ' मे भी मिश्र छन्द प्रयुक्त हुआ है।

(घ) गीत-योजना :

आधुनिक महाकाव्यो मे गीतो की योजना की एक नवीन परपरा चली है। कामायनी के 'निर्वेद सर्ग' मे, 'तुमुल कोलाहल कलह मे, मैं हृदय की बात रे मन !' गीत-योजना है। साकेत के नवम सर्ग मे गीतो का ही प्राचुर्य है। विक्रमा-

दित्य के अनेक सर्गों मे गीतो की योजना है जननायक, वैदेही-बनवास साकेत सन्त के सर्गों के बीच-बीच मे गीत रखे गए है। इन गीतो मे भावो का माधुर्य छलछलाता है। प्रबन्ध काव्यो मे गीत-सृष्टि नवीन प्रयोग है। इनसे यद्यपि कथा के विकास मे बाधा पडती है तथापि आन्तरिक भावो की व्यजना मे बहुत सहायता मिलती है।

(ङ) उर्दू के छन्द :

कही कही उर्दू-छन्दो का भी प्रयोग मिलता है। इस प्रकार के छन्दो का प्रयोग नूरजहाँ[१] और हल्दीघाटी[२] मे पाया जाता है।

नाटकीय-संवादो की योजना

आधुनिक काल के महाकाव्यो मे नाटकीय सवादो की योजना एक नया प्रयोग है। प्रियप्रवास मे कृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ पात्रो द्वारा कहलाई गई है। कृष्ण स्वय रगमच पर आते हुए नही दिखाई पडते। पात्रो द्वारा उनके चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। यह सवाद उद्धव और गोपियो मे चलता है।

साकेत मे कथानक को नाटकीय रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रथम सर्ग के लक्ष्मण उर्मिला सवाद-की योजना है। रगमच पर लक्ष्मण-उर्मिला के मनोरजक सवाद द्वारा कथानक को प्रारभ किया गया है। इस प्रकार के सवादो से पात्रो के चरित्र भी प्रकाश मे आते है।

'विक्रमादित्य' का सपूर्ण कथानक नाटकीय सवादो मे ही गू था गया है। ध्रुव देवी और चन्द्र गुहा के वार्तालाप से ग्रथ आरम्भ सोता है। केशव की रामचन्द्रिका, तुलसी के मानस और पद्मावत के नागमती-पद्मावती के वार्तालापो मे सवादो की योजना मिलती है। किन्तु प्राचीन और अर्वाचीन सवाद-योजना मे अन्तर है। आधुनिक महाकाव्यो के सवादो मे नाटकीय तत्व अधिक हैं। सवादो की योजना सचेष्ट, और सुस्पष्ट है तथा बहुत दूर तक चलती है। इसके अतिरिक्त इन सवादो से कथा के विकास और पात्रो के चरित्र पर प्रकाश पडने मे बहुत सहायता मिलती है। प्राचीन युग के महाकाव्यो के सवादो मे यह गुण नही है।

१—यह हार मेरे गले का ले अब, तू हार मेरे गले का होजा !
हुए शिथिल तेरे अग थककर, तू लग कलेजे में मेरे सोजा ॥ नूरजहाँ
यह उर्दू की बहरे तवील के वजन पर रचित है, जिसका लक्षण है—फ़ऊल फेलून, फऊल फेलुन फ़ऊल फेलुन फ़ऊल फा।

२—'क्षण इधर गई क्षण उधर गई, क्षण चढ़ी बाढ़ सी उतर गई।
था प्रलय चमकती जिधर गई, क्षण शोर हो गया किधर गई ॥ हल्दीघाटी
इस छन्द में उर्दू की मर्सिश शैली की छाप है।

भाषा के प्रयोग

आधुनिक युग के महाकाव्यो मे भाषा सम्बन्धी प्रयोग भी मिलते है। खडी बोली मे अनेक महाकाव्यो का सृजन हुआ है प्रियप्रवास, साकेत, सिद्धार्थ, वैदेही-वनवास, नूरजहाँ, तक्षशिला, विक्रमादित्य तथा अगराज। ब्रजभाषा मे भी महाकाव्य लिखे गये हैं—दैत्यवश, रावण महाकाव्य, गगावतरण। कृष्णायन अवधी का महाकाव्य है, परन्तु इसकी भाषा मे खडी बोली के तत्सम शब्दो की प्रधानता है।

प्रतीकात्मक भाषा, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, चित्रात्मक भाषा, लाक्षणिक प्रयोग, नादात्मक सौन्दर्य, अगरेजी के प्रयोग, सस्कृत-गर्भित पदावली, उर्दू-मिश्रित हिन्दी आदि भाषा के विविध रूप आधुनिक महाकाव्यो मे पाये जाते है।

इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल के महाकाव्यो मे नवीन प्रयोगो की सशक्त स्थापना हुई है, जिनमे अपेक्षाकृत ओज और शक्ति भी अधिक हैं।

विवेचन

आधुनिक युग के महाकाव्यो के रचना-बाहुल्य पर एक विहगम दृष्टि डालने से बडा आश्चर्य होता है कि युग की प्रवृत्ति महाकाव्यो की रचना के अनुकूल न होने पर भी इतने अधिक महाकाव्यो की सृष्टि कैसे सभव हुई। समस्त हिन्दी काव्य-परम्परा मे वीरगाथा युग से लेकर भारतेन्दु युग पर्यन्त कुल चार महाकाव्य दृष्टिगोचर होते है किन्तु आधुनिक काल (बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध) मे लगभग दो दर्जन से ऊपर महाकाव्यो का सृजन हुआ है। क्या यह आश्चर्य का विषय नही है? अस्तु, इन तथाकथित महाकाव्यो के काव्यत्व पर विचार करना समीचीन होगा। ये महाकाव्य समग्र मानव-जीवन को चित्रित नही करते तथा इनमे कोई महान् उद्देश्य भी प्रतिफलित नही हुआ है। जीवन की विषम परिस्थितियो का जैसा मार्मिक एव प्रभावोत्पादक चित्रण अपेक्षित है, वैसा इनमे नही पाया जाता। इस दृष्टि से इनमे से अधिकाश खडकाव्य की कोटि मे ही रह जाते है।

नायक के आदर्शों मे जो परिवर्तित दृष्टि रखी गई है, उससे भी महाकाव्य के आदर्श को क्षति पहुँचती है। साधारण मानवता, स्त्री एव दैत्यो को नायक के स्तर पर उपस्थापित करना उतना अनीप्सित नही है, जितना उनमे प्राण-प्रतिष्ठा न कर पाना। परम्परा-विहित आदशो को बदलने के लिये महान् प्रतिभा अपेक्षित होती है। इसके अभाव मे महाकाव्य अपने गौरव से स्खलित हो जाता है। नायक के धीरोदात्त तथा श्रेष्ठ कुलोद्भव होने का यही तात्पर्य है कि

उसके लोकप्रिय गुणो के साथ हृदय का सामजस्य हो जाता है तथा साधारणीकरण हो जाने से पाठक उसमे पूर्ण तन्मयता प्राप्त कर लेता है। आजकल के तथाकथित महाकाव्यो मे इसका अभाव है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक महाकाव्यो में सानुबन्ध कथा एव प्रबन्ध-कौशल का अभाव होने से पाठक के हृदय पर अभीष्ट नही पडता है। साकेत और कामायनी मे इसी तत्व की कमी है।

महाकाव्य मे वीर भाव की व्यजना को पूर्ण उत्कर्ष मिलने से हृदय उच्छ्वसित होता है। करुण और शृ गार रस भी अभीष्ट प्रभाव डालने मे समर्थ होते है, किन्तु आधुनिक युग के महाकाव्यो मे पूर्ण रस-सचार नही होता, जिससे हृदय अतृप्त रह जाता है। कामायनी, साकेत-सन्त, जन नायक, कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्यो मे रस का अभाव बहुत खटकता है। रामचरितमानस की लोकप्रियता का रहस्य उसकी पूर्ण रसात्मकता और सौन्दर्य-बोध मे ही ढूंढा जा सकता है।

महाकाव्य की कथा के इतिहास-प्रसिद्ध और सज्जनाश्रित होने का तात्पर्य यह है कि उसमे लोक-हृदय का रागात्मक सब ध स्वभावतः हो जाता है। ऐसी कथाओ मे उन्ही जीवनादर्शो का चित्रण होता है, जिनको सामान्य मानवता युग-युग से आदर की दृष्टि से देखती आई है। नूरजहाँ, दैत्य-वश एव रावण महाकाव्य की कथा-वस्तु के साथ लोक-हृदय का सामजस्य नही हो पाता। 'मेधावी' एक प्रतीक काव्य सा है। उसमे एक भावना का चित्रण है। कथा-वस्तु का कोई पूर्ण चित्र आँखो के सामने नही खुलता है, जिससे इप्सित प्रभाव नही पडता। एक कुतूहल सा ही जाग्रत होकर रह जाता है।

महाकाव्य की वस्तु-योजना के अन्तर्गत चन्द्र, सूर्य, ऋतु आदि के वर्णनो का अभिप्राय यह है कि प्रकृति एव जीवन के विविध पक्षो का सम्यक् उद्घाटन हो, जिससे चित्त का पूर्ण अनुरजन हो सके। इसी कारण प्राचीन महाकाव्यो मे जीवन, जगत् और नैतिक आदर्शों का सम्यक् चित्रण किया जाता था। चतुर्वर्ग का निरूपण भी इसी आशय से होता था कि जीवन को उस ओर अग्रसर किया जा सके, जो पदार्थ हमारे लिए काम्य हो। आधुनिक महाकाव्यो मे ऐसा कोई उद्देश्य सम्मुख नही रखा जाता तथा वस्तु-योजना मे केवल वस्तु-परिगणन-मात्र होता है अथवा उन प्रसगो को ही उडा दिया जाता है। तक्षशिला, हल्दीघाटी, आर्यावर्त, कामायनी, साकेत आदि महाकाव्यो मे वस्तु-व्यापार-योजना का अभाव है। इन काव्य-ग्रन्थो की वस्तु-योजना एव कथा-बिस्तार इतने क्षीण एव सकुचित

है कि उनमे पाठकों को तन्मय होने का अवसर ही नही आता। केवल शैली-शिल्प की मनोहरता ही कुतूहल-मात्र जगाकर रह जाती है।

इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल के प्रयोग महाकाव्य के गौरव के अनुकूल नही हैं। महाकाव्य के उपकरणो की योजना कर देने से अथवा किसी महापुरुष के जीवन का विवरण प्रस्तुत कर देने से अथवा किसी युद्धवीर की प्रशस्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने से कोई ग्रन्थ महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नही हो जाता। जब तक उसमे उदात्त जीवन के आदर्श, प्रतिमान एव उद्देश्य प्रतिष्ठित नही होते, तब तक महाकाव्य नाम सार्थक नही होता।

आख्यान काव्य—आलोच्यकाल मे आख्यान काव्यो की एक नवीन परपरा के भी दर्शन होते हैं। आख्यान काव्य खड काव्यो के रूप से नितान्त भिन्न है, क्योकि इनका प्राचीन काव्य परपरा से कोई सबध नही है। ये बिलकुल आधुनिक युग की देन हैं। इसका रूप अगरेजी बैलेड से मिलता-जुलता है। इसमे युद्ध, वीरता और पराक्रम के कार्यो का वर्णन होता है और प्रेम, उत्साह, करुणा के भावो की मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। इसकी वर्णन-शैली सरल, ओजपूर्ण एव प्रवाहयुक्त होती है। इसमे किसी वीरतापूर्ण घटना का ओजस्वी वर्णन होता है, जिसके पढने से पाठको के हृदय मे उत्साह, स्फूर्ति एव साहस का भाव उद्दीप्त होता है। आधुनिक युग मे देश-भक्ति, राष्ट्रीयता के भावो से ओत-प्रोत अनेक आख्यान काव्यो का सृजन हुआ है।

लाला भगवानदीन के 'वीर पचरत्न,' 'वीर प्रताप,' मैथिलीशरण के 'रग मे भग,' 'विकट भट,' 'गुरुकुल,' सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी,' जौहर (सुधीन्द्र), महाराणा का महत्व (प्रसाद), जौहर (रामकुमार वर्मा) आदि रचनाएँ उत्कृष्ट आख्यान काव्य है। पन्त की 'ग्रन्थि' सुन्दर आख्यान गीत है।

ये आख्यान काव्य परपरागत विषय-वस्तु के आधार पर वीर भावो की अभिव्यजना करने मे पूर्ण समर्थ है। 'वीर पचरत्न' और 'वीर प्रताप' मे सरल भाषा और वेगयुक्त प्रवाह का सौन्दर्य है। 'रग मे भग,' 'विकट भट' आदि परिष्कृत भाषा और साहित्यिक शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट काव्य है। 'झाँसी की रानी' मे सरलता, धारा-वाहिकता, तथा ओजमयी भाषा का गुण है। इसी से यह सबसे अधिक लोकप्रिय रचना है। वीरत्व की व्यजना करने मे यह इतनी प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है कि रसिकजन इसको कठाग्र कर डालने का लोभ नही स वरण कर सके है।

इस प्रकार आख्यान काव्य सरल भाषा मे मार्मिक भावो के अभिव्यजक हैं। इनमे उत्साहवर्द्धक कथानको के आधारपर देश-भक्ति, आर्य-गौरव एव स्वा-

भिमान के भावो को जागृत किया गया है। नाद-सौन्दर्य, गीति मत्ता, एव भावोत्कर्ष के गुणो ने इन काव्यो को सफलता प्रदान की है।

निष्कर्ष यह कि आख्यान काव्य खण्ड काव्यो से बिलकुल भिन्न नवीन काव्य रूप है, जिनमे उत्साह, प्रेम एव जातीय गौरव के भावो की सफल व्यजना हुई है। किन्तु यह परम्परा कुछ सतोषजक प्रगति नही कर सकी है। इसके उत्कर्ष मे गिने-चुने कवियो का ही योग-दान है। वर्तमान काल मे इस प्रकार की काव्य-रचना करने की ओर किसी कवि का ध्यान ही नही है। अतएव इसमे गति नही है।

निबन्ध तथा मुक्तक काव्य—भाव-व्यजना की दृष्टि से नवीन परम्परा के मुक्तको को तीन वर्गो मे बाटा जा सकता है—(१) देश-प्रेम, (२) अतीत गौरव और (३) राजनीतिक विक्षोभ।

नए मुक्तको के क्षेत्र मे वस्तु और शैली के कुछ नए प्रयोग हुए है जिनकी नवीन परपरा चल पडी है। देश-प्रेम की व्यजना मैथिलीशरण, सुभद्राकुमारी चाहान तथा सोहनलाल द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पन्त की मुक्त रचनाओ मे अत्यत उत्कृष्ट है। मातृभूमि, मुकुल, भैरवी, ग्राम्या, वीर सतसई इस दृष्टि से सुन्दर काव्य है।

अतीत गौरव के भाव गुप्त जी की 'भारत-भारती,' 'स्वर्गीय-सगीत' निराला की 'अनामिका' की अनेक कविताओ मे अभिव्यजित हुए है।

राजनीतिक विक्षोभ एव असतोष का स्वर माखनलाल चतुर्वेदी की 'हिम किरीटिनी,' निराला की 'नए पत्ते,' पन्त की 'युग वाणी,' दिनकर की 'रेणुका,' 'हूकार,' 'धूप और धुआँ,' नवीन की स्फुटिक रचनाओ, नरेन्द्र की 'प्रभात फेरी' तथा रागेय राघव की 'पिघलते पत्थर' आदि कविताओ मे सुस्पष्ट है।

शैली की दृष्टि से भी अनेक प्रयोग हुए हैं। इनकी भी परपरा बन चुकी है—

(क) उर्दू की रूबाई के ढग पर चतुष्पदिया लिखी जाती है। उमर खैयाम की रुबाइयाँ प्रसिद्ध हैं। हिन्दी के वर्तमान कवियो पर भी इसका प्रचुर प्रभाव है। भारती, शमशेर, सुमन आदि अनेक कवि रुबाइयाँ लिख रहे है। इनमे सरल बोलचाल की भाषा मे किसी मार्मिक अनुभूति को प्रकाशित किया जाता है।

(ख) मुक्तक की एक और शैली है जिसमे जीवन की किसी घटना का वर्णन भावपूर्ण रीति से किया जाता है। इसे विवरणात्मक मुक्तक कहा जा

सकता है। सोहनलाल द्विवेदी की 'वासवदत्ता,' नागार्जुन की 'भिक्षुणी,' निराला की 'राम की शक्ति पूजा,' 'सरोज स्मृति,' 'नाचे उस पर श्यामा,' 'सेवा आरभ,' पन्त की 'अरविन्द दर्शन,' राम इकबाल सिंह की 'हिमालय अभियान' आदि इसी श्रेणी की कविताएँ है।

(ग) स्वतत्र या मुक्त छन्द मे भी मुक्तक का प्रयोग हुआ है। निराला जी की 'कुक्कुर मुत्ता' ऐसी ही व्यग्यपूर्ण रचना है। इसमे पू जीपति वर्ग पर कटु व्यग्य है। अज्ञेय की 'शिशिर की राका निशा,' 'नदी के द्वीप,' 'हरी घास पर क्षण भर' आदि इसी श्रेणी के प्रयोग हैं। आजकल की प्रयोगवादी काव्य रचनाएँ इसी वर्ग मे आती है।

इसमे सिद्ध है कि विषय, वस्तु एव शैली की दृष्टि से मुक्तक कई रूपों मे विकसित हुआ है, जिनका प्राचीन परपरा से कोई सबध नही है तथा वर्तमान काल मे अनेक कवियो मे प्रचलित हो जाने से यह नई परपरा के रूप मे विकसित हुआ है।

प्रगीत काव्य—आलोच्यकाल के प्रगीत काव्य मे रूप की दृष्टि से नए-नए प्रयोग हुए है जिनकी परपराएँ स्थापित हो गई है, उनका नीचे उल्लेख किया जाता है—

(१) **व्यंग्य गीति**—नाथूराम शकर ने ऐसे अनेक गीत बनाए है, जिनमे सामाजिक, धार्मिक रीति-नीतियो पर व्यग्य है। 'दिवाली नही दिवाला है,' गीत मे समाज की दुर्दशा, ढोग, पाखड एव अज्ञान पर छीटे कसे गए है। जिस समाज मे सज्जनो का अपमान और दुष्टो की प्रतिष्ठा हो, वहाँ दिवाली का दिवाला ही निकला समझना चाहिए। 'सलूने की आल्हा,' 'आर्य समाज की आल्हा,' 'पच पुकार,' 'कजली कलाप' व्यग्योक्तियो मे शकर ने व्यग्य, विनोद एवं हास्य का सफल प्रयोग किया है।

प्रगतिवादी प्रगीत-काव्य मे कटु-तिक्त व्यग्यो का सफल प्रयोग हुआ है। इनका लक्ष्य है, शोषक वर्ग। इस व्यग्य मे हास्य, विनोद बिलकुल नही। इसके पीछे क्रोध, प्रतिशोध की अग्नि के स्फुल्लिग है। यह व्यग्य क्रान्ति के पार्श्वों को छूता हुआ चलता है सुमन के गीतो मे क्रान्ति की आग है। निराला की व्यग्य-गीतियो मे वैविध्य मिलता है। उनके 'कुक्कुरमुत्ता' मे शोषक वर्ग के प्रति सजीव व्यग्य है। 'नए पत्ते' की अनेक रचनाओ मे व्यग्य का सफल प्रयोग हुआ है।

दिनकर के व्यग्य अत्यत मर्मस्पर्शी है। इनका डक बहुत तीखा है। 'हिमालय के प्रति' कविता मे व्यग्य बडा मार्मिक है। 'हाहाकार,' 'दिल्ली' तथा

'कस्मै देवाय,' 'वन फूलो की ओर' आदि रचनाओ मे व्यग्य बडा सटीक है। उनका प्रहार अन्तस्तल पर चोट करता है।

नरेन्द्र की 'बबूल,' 'रूढिवाद,' 'कवि के प्रति,' भगवतीचरण की 'भैमा गाडी' आदि गीतियो का व्यग्य बडा मार्मिक है। रागेयराघव, उदयशकर, अचल, बच्चन, भारती, रामविलास, प्रभाकरमाचवे आदि इस युग के श्रेष्ठ व्यग्यकार हैं। इन कवियो ने प्राचीन रूढियो, आदर्शों और मर्यादाओ पर भी कठोर व्यग्यो की वर्षा की है। सामाजिक समस्याओ पर सुधार की भावना से किए हुए व्यग्य भी हैं। प्रगतिवादी गीति-काव्य ने पू जीवाद, शोषण, आडम्बर, झूठी लीडरी और अन्य सामाजिक एव आर्थिक विषमताओ को अपने व्यग्य का लक्ष्य बनाया है। पन्त की 'ग्राम्या' मे मृदु व्यग्य है।

प्रगतिवादी काव्य मे व्यग्य-गीतो का प्राचुर्य है। सामाजिक, राजनीतिक, अव्यवस्था, आर्थिक विषमता, धार्मिक आडम्बर, ढोग, पाखड एव प्रवचना को इन गीतो मे व्यग्य का लक्ष्य बनाया गया है। छायावादी काव्य मे व्यग्य-गीतियो का सर्वथा अभाव है।

(२) शोक-गीत (एलेजी)—इनमे शोक के उद्‌गार प्रकट होते है। दिवगत आत्माओ, महापुरुषो, मित्रो एव प्रेमियो के लिए शोक-गीत प्रस्तुत किए जाते है। 'शकर' ने 'हाय मिस्टर गोखले' 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' और 'गणपति-प्रयाण' आदि रचनाओ मे इन महापुरुषो की मृत्यु पर शोक के उद्‌गार प्रकट किए हैं। आधुनिक युग मे अमर शहीद श्रद्धेय गणेश शकर विद्यार्थी की स्मृति मे अनेक शोक-गीतिया रची गई हैं, जिनके भाव अत्यत हृदय-द्रावक है। रांगेय राघव की ऐसी ही रचना अत्यत मर्मस्पर्शी है। सुमन की 'हा प्रसाद' शोक-गीत है, जिसमे छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि जयशकर प्रसाद के दिवगत हो जाने पर शोक प्रकट किया गया है। 'सैनिक की मृत्यु-शैया पर' गीत मे उदय-शकर भट्ट ने भारत-माता की स्वतत्रता के रक्षक एक सैनिक के प्रति शोक के मार्मिक उद्‌गार प्रकट किये हैं। भट्टजी ने बेलजियम के युद्ध मे मारे हुए एक भारतीय सैनिक की मृत्यु पर जो शोक-गीति लिखी है, उसमे एक घायल सिपाही के विषय मे मनोवैज्ञानिक चिन्तन है। 'तिलाजलि' और 'सरोज-स्मृति' निराला जी की शोक-गीतिया हैं। पहली आर० यस० पडित को लक्ष्य कर लिखी गई है और दूसरी छोटी बालिका के प्रति। 'बापू' को लक्ष्य कर बहुत सी शोक-गीतियो की रचना की गई है।

'आसूवाद' और 'दुःखवाद' प्रचलित युग के दो और विषय बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। प्रसाद का 'आसू' काव्य अत्यत प्रसिद्ध शोक-गीति है। आसू

मे शोक की व्यजना मर्मस्पर्शी है। इसमे अतीत के सयोग-सुख की विषादमयी अनुभूतिया रह रह कर झलक मारती है। ये आसू लोक-पीडा पर करुणा के आसू ही जान पडते हैं। इसमे आदि से अन्त तक वेदना के विविध रूपो की मार्मिक विवृत्ति है। इसी प्रकार पन्त के 'आसू' और 'ग्रन्थि' मे भी पीडा का राज्य है। 'ग्रन्थि' मे प्रणय की स्मृति निराशा और विषाद मे परिणत हो गई है, जिसने इसे शोक-गीति का रूप प्रदान किया है। महादेवी के गीत भी शोक से आविल हैं। उनमे प्रिय के चिर विरह के भावोद्‌गार है।

(३) सम्बोध गीति (ओड)—प्रसाद की 'किरण', 'बसन्त,' 'दीप', 'विषाद', 'विन्दु', 'अरी वरुणा की शान्त कछार' कविताए, पन्त की 'अन्धकार के प्रति', 'छाया', 'शिशु', 'अनंग', 'विहग बाला के प्रति', 'सन्ध्या', 'शुक्र', 'चादनी', 'निर्झरी,' 'अप्सरा', 'मधुकरी' आदि कविताए, निराला की 'सन्ध्या सुन्दरी', 'जूही की कली', 'यमुना के प्रति', 'ठू ठ', 'खडहर से', 'उद्‌बोधन', 'वासन्ती', 'भिक्षुक', 'शेफालिका' आदि, रामकुमार की 'ये गजरे तारो वाले', 'चट्‌टान', 'फूलोवाली', 'नूरजहा' आदि, उदयशकर भट्‌ट की 'दीप कहता अँधेरे से', 'पूछती मझधार कवि से', 'विजयिनी यह वरदान' आदि, हरिकृष्ण प्रेमी की 'बन्धन-मुक्त', 'पखी की पीडा' आदि दिनकर की 'हिमालय के प्रति', 'रास की मुरली', 'दिल्ली', 'गगन का चाद' 'आदि आदि सुन्दर सबोध गीतिया है।

इनके अन्तर्गत एक अन्य रूप भी मिलता है, जिसमे आत्म-कथा की शैली अपनाई जाती है। सुमित्रानन्दन पन्त की 'बादल', 'जुगनू', 'विहग गीत' आदि इसी श्रेणी मे आती हैं। पन्त की 'बादल' बहुत प्रसिद्ध रचना है। इसमे अलकृत भाषा और कल्पनाओ की विभूति का सौन्दर्य है। गुरूभक्त सिह की 'ओस' भी ऐसी हो गीति है। सुभद्राकुमारी, रायकृष्णदास और सियाराम-शरण के गीतो मे इस रूप का अच्छा विकास हुआ है।

इसमे एक तीसरा रूप और है जिसमे वीणावादिनि सरस्वती की वन्दना के गीत है। निराला, उदयशकर आदि कवियो के सरस्वती-वन्दना के गीत अत्यत भावपूर्ण है।

इस प्रकार सबोद्ध-गीतियो मे हृदय के भावो, विचारो, चित्रो और कल्पनाओ की उद्‌भावना की जाती है। इसमे कवि किसी प्राकृतिक पदार्थ भौतिक वस्तु, अमूर्त उपादान एव दृश्य के प्रति भी अपने भावोद्‌गार प्रकट कर सकता है। आधुनिक हिन्दी काव्य मे इस प्रकार की गीतियो की एक स्वस्थ परपरा है।

'मानव,' 'सृष्टि,' 'परिवर्तन' आदि रचनाएँ विचारात्मक गीतो की श्रेणी मे ही है। स्वर्ण-किरण की कविताओ मे चिन्तन प्रधान है।

विचारात्मक गीतो का दूसरा रूप है, प्रगतिशील कवियो द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी दर्शन। इन गीतो मे मार्क्स-दर्शन पर आधारित गीत है। पन्त की युगवाणी, नरेद्र की प्रभातफेरी, राँगेय राघव की 'पिघलते पत्थर,' दिनकर की धूप और धुआ की अनेक रचनाएँ इसी विचार धारा से प्रभावित हैं।

तीसरा रूप वह है जिसमे उपदेशात्मक गीत आते है। ये गीत कबीर, सूर और तुलसी के गीतो से बिलकुल भिन्न हैं। इनमे धार्मिकता की छाप नही है। ये गीत उद्बोधन, आश्वासन, मगल कामना, जागरण के भावो से ओतप्रोत हैं। पन्त का कवि कुसुमो के जीवन से प्रसन्न रहने का आदेश ग्रहण करता है[1]। 'उद्बोधन' शीर्षक निराला की कविता मे जगत् के दैन्य, दारिद्रय को दूर कर सत्य के उज्ज्वल प्रकाश के अवशिष्ट रहने की कामना है। 'शखनाद' कविता मे सियारामशरण सदा शिव से ऐसी हुङ्कार भरने की प्रार्थना करते है, जिसे सुनकर उन्मत्तो का मद दूर हो जाय।

इस प्रकार विचारात्मक गीतियो का प्रचुरता से सृजन हुआ है। इनमे अधिकतर जीवन सबन्धी सुख-दुःख हर्ष-विषाद की काव्यात्मक मीमासा की गई है।

(६) **पत्र-गीति**—अगरेजी के प्रसिद्ध समालोचक हडसन के अनुसार पत्र-रचना गीति-काव्य के अतर्गत आती है। बगला के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त की 'वीरागना' के अनुकरण पर हिन्दी मे भी पत्र-गीत लिखे गए। मैथिलीशरण गुप्त की 'पत्रावली' इसी प्रकार की रचना है। इसमे सात पत्र-गीतिया है। जयसिंह के नाम 'महाराज शिवाजी का पत्र' निराला जी की रचना है। 'ठडा लोहा' मे दो पत्र धर्मवीर भारती की पत्र-गीतिया है। पहले पत्र मे प्रेयसी का पत्र पढकर कवि का प्रेमी हृदय हर्ष से नाच उठा है तथा दूसरे पत्र मे प्रेमी के लिये प्रेमिका का उत्तर है। दोनो पत्रो मे प्रेम की रसात्मक अभिव्यक्ति है तथा वर्णनात्मकता की अपेक्षा भावात्मक तत्व की प्रधानता है। अत्यत आधुनिक कवियो मे गजानन और नीरज ने कुछ पत्र-गीतिया लिखी हैं। नीरज की 'एक मित्र के प्रति' कानपुर के नाम, नील की बेटी के नाम, काश्मीर

१—वन की सूनी डाली पर, सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया जब तक, सुख से दुख को अपनाना।
—गुंजन, पन्त

(४) राष्ट्रीय गीति—अनेक कवियो ने अपनी कविताओ मे राष्ट्र प्रेम का समुज्ज्वल रूप चित्रित किया है। स्वदेशाभिमान, स्वदेश प्रेम, भारतभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य को चित्रित करते हुए अनेक राष्ट्रगीतो की भी रचना हुई है। बकिम बाबू की 'सुजना सुफला शस्य श्यामल. 'सबसे अधिक लोकप्रिय गीति है। नेपाली की 'भारत माता' गुप्त जी की 'भारत माता', पन्त की 'ज्योति भारत', राष्ट्र गान', निराला की 'दिल्ली', सोहनलाल द्विवेदी की 'वन्दना', दिनकर की अरुणोदय आदि रचनाए प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत हैं। पन्त की 'ग्राम', 'श्री' भी इसी श्रेणी मे आती हैं। चन्द्रगुप्त नाटक मे कार्नेलिया द्वारा गाया हुआ गीत छायावाद की राष्ट्रीय प्रवृत्ति का परिचायक है[१]। प्रसाद जी का 'अभियान गीत' अति प्रसिद्ध है। इसमे राष्ट्रीय गौरव की भावना अत्यत ओजपूर्ण है। इसकी शालीनता मोहक है[२]। 'भारतवर्ष' गीत मे आत्माभिमान, जातीय गौरव, एव सास्कृतिक प्रेम की झलक मारती है। सोहनलाल द्विवेदी, उदयशकर भट्ट, दिनकर आदि अन्य कवियो ने भी इस प्रकार के गीतो की रचना की है। निराला ने राष्ट्रीय प्रभाती के रूप मे एक 'उद्बोधन गीति' की रचना की है जिसमे छायावादी कोमलता एव चित्रोपमता के साथ ही देशवासियो के लिए जागरण का सदेश है।

ज्ञान और रहस्य की खोज मे हिमालय के अपरास्त उच्चतम शिखर पर आरोहण करने वाले वीरो की प्रशस्ति मे श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' का 'हिमालय अभियान' गीत है।

राष्ट्रीय गीतो का एक अन्य रूप है जिसमे जाति, वर्ग और सम्प्रदाय की भावनाओ के आधार पर गीतो का सृजन हुआ है। प्रगतिशील कवियो के अनेक गीत इसी श्रेणी मे आते है। स्वातत्र्य वीर सुभाष बाबू की आजाद हिन्द सेवा को लक्ष्य कर 'एक गीत जयहिन्द' मे नरेद्र ने जयहिन्द के स्वर मे भारतीय

१—अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
—प्रसाद

२—हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती—
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥
—प्रसाद

के नाम तथा कल्पना के नाम, नीरज की पाती, अत्यन्त सुन्दर, भावपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक पत्र गीतिया है। ये प्रायः सभी काल्पनिक हैं, जिनमे वैयक्तिक एव सामाजिक जीवन की अनुभूतियो की मार्मिक-व्यजना है।

मैथिलीशरण गुप्त और निराला की पत्र-गीतियाँ ऐतिहासिक आधार पर रचित वर्णनात्मक गीतिया है। इनमे गीति-तत्व का भी अभाव है। किन्तु भारती, गजानन और नीरज की पत्र-गीतियो मे भावो की सजलता, भाषा की व्यजकता एव कल्पना की सरलता अत्यन्त सुन्दर है।

इससे स्पष्ट है कि साहित्य मे पत्र-गीतियो के विकास की दिशा मे अच्छी प्रगति है तथा आशा की जाती है कि वर्तमान काल के ये स्फुटिक प्रयत्न भविष्य मे एक स्वस्थ परपरा के रूप मे विकसित होगे।

(७) **लोक-गीति**—लोक-गीतो की ध्वनियो मे रचनाएँ करने की परम्परा के निर्माण मे आजकल अनेक कवि योग दे रहे है। वीरेन्द्र मिश्र, माचवे, रमानाथ अवस्थी, जानकी वल्लभ, शम्भूनाथ सिह, ठाकुर प्रसाद सिंह, हसकुमार तिवारी आदि अनेक कवियो के गीतो मे रोमानी भावना के दर्शन मिलते है। इनमे रग-योजना और नये उपमानो का प्रयोग शम्भूनाथ सिंह के गीतो मे सबसे अधिक मिलता है। गीतो को बोलचाल की चलताऊ भाषा और लोक-ध्वनियो मे प्रस्तुत करने के प्रयोग वीरेन्द्र मिश्र के गीतो मे अधिक है। भवानीप्रसाद मिश्र की 'पी के फूटे आज प्यार के पानी बरसा री', अज्ञेय की 'ओ पिया पानी बरसा, छिटक रही है चाँदनी' आदि रचनाओ मे लोक-गीतो का स्वर है।

जातीय जीवन और जन-सस्कृति से सामग्री लेकर लोक-गीतो की रचना की जाती है। जन-जीवन का भावोल्लास लोक-गीतो के रूप मे फूट पडता है। इसी से इनमे जन जीवन के हृदय का स्पन्दन पाया जाता है।

साहित्यिक गीत लोक-गीतो के ही परिमार्जित रूप होते है। इनमे लोक-सामान्य भावो का उद्गार होने से इनके द्वारा गायक और श्रोता का आसानी से तादात्म्य हो जाता है क्योकि इनमे साधारणीकरण का तत्व विशेष रूप से होता है। ये गीत प्रायः पर्व, उत्सव एव प्रेम के उल्लास मे गाए जाते है। आधुनिक काल मे प० रामनरेश त्रिपाठी और देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक-गीतो का सग्रह कर साहित्य भडार की अतुल श्रीवृद्धि की है।

(८) **चित्रपट-गीत**—आजकल सिनेमा गीतो का अधिक प्रचार है। वाद्य-यत्रो की विविध ध्वनियो तथा कठ की विचित्र माधुरी से ये गीत जनता का मनोरजन कर रहे हैं जिससे आकृष्ट होकर अनेक कवि सिनेमा के गीतो की ध्वनियो से अपने गीतो को सजा रहे है।

चित्रपट के गीत काव्य के रचनाकारो मे भगवतीचरण वर्मा, नरेद्र, प्रदीप, गोपाल सिंह नैपाली, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, नीलकठ तिवारी, भरत व्यास प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त अनेक नये कलाकार चित्रपट के गीतो की मोहिनी से आकर्षित होकर नये गीतो की सृष्टि मे लगे हुए है। इन गीतो मे प्रेम, वासना और सस्ती भावना का प्रदर्शन अधिक रहता है। साहित्य मे स्थान पाने योग्य अच्छे गीतो की आवश्यकता अभी बनी हुई है। इनका पद-विन्यास शिथिल, भाषा गद्यात्म तथा भाव व्यजना प्रायः अश्लील होती है किन्तु ये सब दुर्बलताए लय, सगीत एव स्वरो के आरोह-अवरोह मे छिपी रहती हैं। अभी ये साहित्य के प्रगीत काव्य की मर्यादा से बाहर जा रहे है। कला मे औचित्य का विचार स्पृहणीय है।

विवेचन—छायावादी रहस्यवादी गीतो मे कोमल भावनाओ एव रम्य कल्पनाओ का समावेश है क्योकि ये कवि अपने भावो की प्रेरणा प्राकृतिक सौन्दर्य तथा चराचर मे व्याप्त परोक्ष सत्ता से ग्रहण करते है। इनके भाव-गीतो मे जिस अव्यक्त प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन है, वह साम्प्रदायिक रूढिवाद से परे की वस्तु है। ये कवि स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा अन्तःसौन्दर्य के चितेरे है। इनके गीतो मे आत्माभिव्यक्ति का सौन्दर्य शत-शत रूपो मे खिल उठा है। भाषा की प्राजलता, कोमल पद-शैया, भाव-सुषमा, सगीत की मधुरिमा, अनुभूति की एकतानता एव सुकुमार कल्पनाओ ने इनके गीतो को अभिनव सौन्दर्य से मडित कर दिया है। इन गीतो मे अन्तर्वृत्तियो का सूक्ष्म चित्रण अत्यत सुन्दर है।

छायावाद-रहस्यवाद के कोमल स्निग्ध अचल मे जिन मधुर गीतो की सृष्टि हुई है, उनको विषय-वस्तु के विचार से पाच भागो मे बाँटा जा सकता है—

(१) प्रकृति सबधी गीत
(२) जीवन-मीमासा सबन्धी गीत
(३) आध्यात्मिक विरह-मिलन के गीत
(४) गाधीवाद से प्रभावित राष्ट्रीय गीत
(५) लौकिक प्रेम गीत।

छायावाद-रहस्यवाद की सूक्ष्म वायवी कल्पनाओ की प्रतिक्रिया मे प्रगतिवाद आया। प्रगतिवादी-दर्शन जीवन के सामाजिक यथार्थ एव भौतिकवाद को लेकर चला है। इसके लिए कविता जीवन-सापेक्ष है। भौतिक जीवन को स्थूल आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आर्थिक व्यवस्था का यथोचित विभाग उचित है। प्रगतिवादी कवियो का जीवन-दर्शन अर्थ-काम पर केद्रित है। दलित

वर्ग के प्रति सहानुभूति एव पू जीवादी, साम्राज्यवादी, शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना का स्वर इनके गीतो मे प्रधान हो गया है।

छायावाद और प्रगतिवाद दोनो जीवन के दो पक्षो-वाह्य और आभ्यन्तर को-लेकर चलते हैं। छायावादी गीतो मे कोमल एव सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियो का तथा प्रगतिवादी गीतो मे कठोर एव वाह्य वृत्तियो का चित्रण रहता है। छायावाद की प्रवृत्ति सौमनस्य की ओर है, प्रगतिवाद की वैमनस्य की ओर। छायावाद मे कोमलता एव शालीनता है, प्रगतिवाद मे उग्रता एव परुषता। छायावाद एकान्त साधना मे विश्वास करता है, प्रगतिवाद सामूहिक विद्रोह-भावना मे। एक मे कष्ट-सहिष्णुता है दूसरे मे असहिष्णुता। एक मे भावो की मन्द-मदिर गति है दूसरे मे भावो का प्रखर वेग। पहले मे लय, स्वर और सगीत का स्वरस्य है, दूसरे मे सगीत का भैरव निनाद। पहले मे आशा, आकाक्षा, प्रेम एव उच्छ्वासो की फुलझडिया है, दूसरे मे विद्रोह, उत्क्रान्ति, सघर्ष एव प्रलय के स्फुल्लिग। छायावाद आदर्श की ओर देखता है, प्रगतिवाद भौतिक यथार्थ की ओर। छायावादी गीतो मे एक विशेष सूक्ष्मता, व्यजकता, साकेतिकता एव आत्म-समर्पण है, प्रगतिवाद के गीतो मे नग्नता, अश्लीलता एव निरावरण मासलता। सामाजिक रूढिवाद के प्रति विद्रोह की भावना भी इसमे मुखर है।

प्रगतिवादी गीतो के विषय हैं :

(१) दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना।
(२) रूस, लाल सेना, मास्को का गौरव मान।
(३) स्वच्छन्द प्रेम।
(४) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य।
(५) रूढिवाद और पुरातनता का विरोध।

इस प्रकार आधुनिक युग के गीति-काव्य मे अग्रेजी लीरिक के सब गुण पाये जाते है। ये सक्षिप्त एव लघु होते है, प्रत्येक गीत मे एक ही कोमल हृदयोच्छ्वास होता है, आत्माभिव्यजन की प्रधानता होती है, भाषा मे लाक्षणिकता, व्यजकता, वैचित्र्य एव नूतन भगिमाओ का सौन्दर्य होता है, गेयात्मक तत्व प्रचुरता से होता है तथा व्यक्तिगत जीवन की हास-अश्रुमय सुकुमार वृत्तियो का चित्रण होता है।

इस प्रकार आलोच्यकालीन गीतकारो ने अपना नूतन पथ प्रशस्त किया है। इनमे प्राचीन गीतो की समस्त रूढि, परपरा एव मर्यादाओ का अभाव हो

गया है। ये गीत भाषा, विषय-वस्तु, भाव-प्रकाशन की शैली एव कलात्मक रूप मे प्राचीन काल के गीतो से सर्वथा भिन्न हैं। प्राचीन और नवीन युग के गीति-काव्य मे वस्तु और शिल्प का महान् अन्तर है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल के प्रगीत काव्य मे एक सर्वथा स्वतत्र परपरा का विकास हुआ है जिसकी अभिव्यक्ति दर्जनो गीतकारो के स्वरो मे मिलती है। किन्तु वर्तमान काल मे थोडे से ही कवि इस ओर उन्मुख है। प्रयोग-वादी रचनाओ मे गीति-तत्व अल्प हैं।

अन्य काव्य का रूप—अन्य काव्य रूपो मे गीति-नाट्य, एकालाप (मोनोलाग), सलाप (डायलाग) एव चम्पू काव्य आते हैं।

(१) **गीति-नाट्य**—आलोच्यकाल मे गीति-नाट्यो का भी सृजन हुआ है। साधारण नाटको मे पात्रो का वार्तालाप गद्य मे होता है, अन्य समस्त क्रिया-कलापो का गद्य मे ही वर्णन होता है किन्तु गीति-नाट्य मे इसके विपरीत पात्रो का वार्तालाप तथा अन्य बातो का वर्णन गीतियो मे होता है। यही दोनो का स्थूल भेद है।

गीति-नाट्यो की कथा-वस्तु बहुत सीधी-सादी होती है। इसमे कथा-तत्व गौण होता है। भाव—तत्व का प्राधान्य होता है। इसके सीमित कलेवर मे प्रायः हृदय की सुकुमार एव कोमल वृत्तियो का ही प्रकाशन होता है। जीवन के सूक्ष्म एव सरल व्यापारो को भावो की व्यजना द्वारा मूर्त रूप देने का प्रयास किया जाता है। इसमे जीवन के कटु-क्रूर एव भयानक कार्यों के लिए अवकाश नही होता। घटना एव व्यापारो के अभाव की पूर्ति भाव-विलास के द्वारा की जाती है।

साधारण नाटको मे घात-प्रतिघात, क्रिया-प्रतिक्रिया, उत्थान-पतन कार्य एव व्यापारो की जटिलता प्रधान होती है क्योकि उसकी शैली वस्तुपरक होती है। गीति-नाट्य में आत्माभिव्यजन का तत्व अधिक मात्रा मे होता है। इसके पात्र मानसिक चिन्तन मे डूबे रहते हैं। शारीरिक व्यापारो की अपेक्षा इसमे मानसिक व्यापारो का अधिक चित्रण होता है। इसी से इन्हे भाव-नाट्य कहना अधिक उपयुक्त है।

गीति-नाट्य मे पात्रो का कार्य-क्षेत्र वाह्य जगत् से अधिक अन्तर्जगत होता है। इनके सघर्ष वस्तु जगत् के न होकर मनोराज्य के होते हैं। जीवन की किसी एक परिस्थिति को लेकर पात्रो के मनोजगत् मे उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना ही गीत-नाट्यकार का मुख्य उद्देश्य होता है। नाटकीय

सवादो की गीतमय भावाभिव्यक्ति के कारण इन्हे रूपक काव्य भी कहा जा सकता है।

(१) हिन्दी मे जिस प्रकार अमित्राक्षर काव्य के प्रथम प्रयोग-कर्त्ता प्रसाद जी है उसी प्रकार गीति-नाट्य के भी। उनका 'करुणालय' प्रथम गीति-नाट्य है जो मार्च १९१३ के इन्दु मे प्रकाशित हुआ था। इसमे अतुकान्त मात्रिक छन्द है, जिसके विराम-चिह्न वाक्यानुसार चरण के मध्य मे पडते है। इसकी कथा करुण रस पूर्ण है। बीच-बीच मे प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन अत्यत आकर्षक है।

(२) सुमित्रानन्दन पन्त ने इस प्रकार के अनेक काव्य रूपको की रचना की है। युग पथ मे 'त्रिवेणी' इसी प्रकार की रचना है। इसमे तीन पात्र है—गगा, यमुना और सरस्वती। स्वर्णधूलि मे 'मानसी' एक सुन्दर रूपक काव्य है, जिसमे गीत, वाद्य, वेश-विन्यास आदि सभी नाटकीय तत्वो की योजना है। 'रजत-शिखर मे छ. काव्य रूपक है—रजत शिखर, फूलो का देश, उत्तर शती, शुभ्र पुरुष, विद्युत् वसना और शरद् चेतना। 'रजत शिखर' के सभी रूपक-सौष्ठव, सवाद योजना एव वस्तु-विन्यास को दृष्टि से अत्यत सफल है। इन सभी मे पन्त जी के रचना-कौशल की प्रतिभा झलकती है। निराला के 'परिमल' मे 'पचवटी प्रसग' काव्य रूपक है, जिसमे सीता, राम, लक्ष्मण, शूपनखा आदि पात्रो की योजना की गई है। उदयशकर भट्ट ने विश्वमित्र, राधा, मत्स्यगन्धा और एकला चलो रे रूपक-काव्यो की रचना की है। ये रूपक विषय-वस्तु, गीत, सवाद एव भावोत्कर्ष की दृष्टि से पूर्ण सफल है। गिरिजाकुमार माथुर के धूप के धान मे 'इन्दुमती' एक सुन्दर रूपक काव्य है जिसमे सुनन्दा, इन्दुमती आदि पात्र है। मैथिलीशरण गुप्त के भी कई नाट्य काव्य है जिनमे अनघ, जयिनी, दिगेदास, पृथिवी पुत्र प्रसिद्ध है। भगवतीचरण वर्मा का 'तारा' गीति-नाट्य है। यह इनके 'मधुकण' नामक काव्य-सग्रह मे सगृहीत है।

(२) **संलाप-काव्य**—इसमे दो ही पात्र होते हैं। धर्मवीर भारती के ठडा लोहा काव्य मे 'दो आवाजे' और 'अनजान पगध्वनियाँ' इसी कोटि की रचनाए है। देवराज 'दिनेश', गिरिजाकुमार माथुर ने भी सलाप काव्य लिखे हैं।

(३) **एकालाप**—ये भी वर्तमान काल मे लिखे गए है। इस दिशा मे अज्ञेय तथा गिरिजाकुमार माथुर नये-नये प्रयोग करने मे सलग्न है।

(४) **चम्पू काव्य**—गद्य-पद्यमयी काव्य-रचना को चम्पू कहते है। हिन्दी मे मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' इसी प्रकार की रचना है। कवि ने भावमय

गीत, एव गद्यात्मक सवादो की योजना करके हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे एक अनूठी रचना प्रस्तुत की है। अज्ञेय की 'चिन्ता' भी इस प्रकार का नूतन प्रयोग है।

(५) एकार्थ काव्य—इसमे न तो महाकाव्य की पंचसधियो का विधान होता है, न उनका विस्तार ही, वर इसमे कथा का कोई उद्दिष्ट पक्ष होता है। इसमे कथा-प्रवाह भी बहुत जटिल नही होता और कवि की वृत्ति वर्णन करने या भाव-व्यजना करने पर ही केद्रित रहती है, यथा—गंगावतरण (रत्नाकर), जगदालोक (गोपालशरण सिंह), कुणाल (सोहनलाल द्विवेदी)।

ऊपर जिन काव्य रूपो का उल्लेख हुआ है वे हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र मे काव्य-विकास के नये पग-चिन्ह है। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से हिन्दी मे इनका आगमन हुआ है। आधुनिक कवियो की रचना-शैली पर अगरेजी साहित्य का प्रभाव अधिक है। अतएव पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर ही कवियो ने हिन्दी कविता मे नये-नये प्रयोग आरम्भ किये है। इसमे नाट्य काव्य का प्रयोग सबसे अधिक सफल हुआ है। पन्त के रूपको की कथा-वस्तु राष्ट्रीय सास्कृतिक है। भट्ट जी तथा गुप्त जी के नाट्य काव्यो का भी यही विषय है। भारती और गिरिजाकुमार के कथानको का स्वर बिलकुल नवीन है। शैली की दृष्टि से इसमे गीतात्मक तत्व प्रधान है। पन्त जी तथा भट्ट जी के रूपक गेय होने से आकाश-वाणी से भी प्रसारित हो चुके है। वर्तमान कविता मे यह काव्य रूप सबसे अधिक सफल हुआ है। इसी से इसकी नवीन परपरा विकसित हो चली है। आजकल के तरुण कवि इस ओर बहुत प्रयत्नशील है। देवराज 'दिनेश' उदय-शकर भट्ट आदि कवियो का प्रयत्न स्तुत्य है।

एकालाप और सलाप काव्य-रूपो के भी कुछ नये प्रयोग हुए हैं किन्तु दो-एक कवियो ने ही इस ओर ध्यान दिया है। भारती, गिरिजाकुमार, अज्ञेय आदि इस ओर प्रयत्नशील है।

चम्पू काव्य बहुत थोडे लिखे गए हैं। मैथिलीशरण और अज्ञेय ने ही इस ओर रुचि दिखलाई है। 'यशोधरा' और 'चिन्ता' दोनो ही चम्पू के सफल प्रयोग है। रचना, शैली, शिल्प और काव्योत्कर्ष की दृष्टि से ये दोनो ही सुन्दर काव्य है।

वर्तमान काल के कवियो की काव्य-चेतना नये-नये काव्य रूपो के निर्माण मे लगी हुई है। नई पीढी के कवि काव्य-क्षेत्र मे नये-नये प्रयोगो मे सलग्न है। प्रबन्ध, मुक्तक एव प्रगीत काव्य के सृजन मे तो नए-नए रूपो के दर्शन मिलते ही है अन्यान्य काव्य रूपो का भी समीचीन विकास हुआ है।

इनकी सफलता इसी से सिद्ध है कि इनमे से अधिकाश प्रयोग नवीन परपरा का रूप धारण कर चुके है। नई पीढी के शत प्रतिशत कवि काव्य रूपो के नये प्रयोगो की ओर सचेष्ट है। प्रगीत मुक्तको की सृष्टि आलोच्यकाल की सबसे बडी विशेषता है। इस दिशा मे शत-प्रतिशत कवियो का योगदान है। इसमे सदेह नही कि गीतो की समृद्धि ने आधुनिक हिन्दी-काव्य को महान् गौरव प्रदान किया है।

—:o—

दशम् अध्याय

काव्य-शैली में प्रयोग

दशम् अध्याय
काव्य-शैली में प्रयोग

अलंकारों के प्रयोग

जब से नये युग का प्रवर्तन हुआ है, तब से हिन्दी कविता मे अलकार-विषयक कतिपय नई प्रवृत्तियाँ दिखाई पडने लगी है। अगरेजी, बगला एव उर्दू कविता के अध्ययन से नये रग के अलकार हिन्दी मे चल पडे है। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ कवियों की प्रतिभा के कारण भी कुछ नये अप्रस्तुतो की सृष्टि हुई है। काव्य-शैली के क्षेत्र मे सदैव नये-नये प्रयोग होते रहते है। इसकी कोई सीमा नही है। व्युत्पत्ति की सामर्थ्य से प्रतिभावान् कवि नय-नये अलकारो के प्रयोग करते रहते हैं। इसलिए आचार्य दण्डी ने कहा है कि काव्य के सौन्दर्य-कारक विशिष्ट गुणो को अलकार कहते है। आज भी कवि लोग कल्पना के बल पर अलकारो मे विविध प्रकार की उद्भावनाए कर रहे है, अतः उनका पूर्ण रूप से वर्णन करने मे कौन समर्थ हो सकता है[1]

अलकार काव्य-शैली के सबसे अधिक रोचक अग है। हर एक प्रतिभावान् कवि का अलकार-शैलियो के प्रयोग मे अवश्य ही कुछ न कुछ नूतन योगदान रहता है। यहा प्रयोग से तात्पर्य केवल इतना है कि जो अलकार जीवन की नई परिस्थितियो तथा प्रवृत्तियो से उगे है अथवा किसी वाद विशिष्ट के अन्तर्गत कवि-कल्पना से उद्भूत है, उन्ही का यहाँ अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, एव नूतन अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से यहाँ अलकारो पर विचार किया जाता है—

(१) मानवीकरण

यह अगरेजी का पर्सानिफिकेशन है। इसके अन्तर्गत अचेतन पदार्थ या वस्तु पर मानवीय धर्म का आरोप किया जाता है। आधुनिक युग की कविता मे इसका सबसे अधिक प्रचलन देखा जाता है। मुक्तक, गीत एव प्रबन्ध सभो प्रकार के काव्यो मे इसका प्रचार-प्रसार पाया जाता है। इसके मूल मे सर्वात्मवादी दर्शन तथा व्यक्तिवादी मानव का स्वर प्रधान है। छायावादी—रहस्यवादी कवि इसी भाव से प्रेरित हुए है। यो तो मानवीकरण की प्रवृति हिन्दी साहित्य

१—देखिए दंडी : काव्यादर्श, २।१

के लिए अपरिचित नही हैं, किन्तु आधुनिक कविता मे इस प्रवृत्ति का विकास अंग्रेजी साहित्य के परिणाम-स्वरूप हुआ है—

"उठ उठ री लघु लोल लहर,
इस सूखे तट पर छहर-छहर"

—प्रसाद

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे।"

—निराला

"हम नदी के द्वीप है
"हम नही कहते कि हमको छोडकर स्रोतस्विनी वह जाय।"

—अज्ञेय

प्राकृतिक वस्तुओ के अतिरिक्त आधुनिक काव्य मे मनोवृत्तियो को भी सजीवता प्रदान करके उन्हे मूर्तरूप दिया गया है। कामायनी मे चिन्ता, वासना, लज्जा आदि सभी पात्रो का मानवीकरण हुआ है। रागेयराघव के 'मेधावी' काव्य मे वैज्ञानिक विकासवाद के आधार पर ऋतु, धरणी, उषा, सूर्य एव निम्न मध्यवर्ग, पूंजीवाद, फासिस्टवाद, जनशक्ति आदि विषयो को मानवीकृत रूप मे चित्रित किया गया है।

उदाहरण स्वरूप फासिस्टवाद का नृत्य है—

"मैं क्रुद्ध विभीषण नाच रहा,
लो कुचल दिये है देश-देश।"[१]

(२) विशेषण विपर्यय

यह अंग्रेजी का ट्रान्सफर्ड एपिथेट अलकार है। हिन्दी की दृष्टि से इसे लाक्षणिक प्रयोग कहा जा सकता है, किन्तु अंग्रेजी मे यह एक अलकार के रूप मे स्वीकृत है। छायावादी काव्य मे इसका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है—इसमे विशेषण का लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है—

(१) आह, यह मेरा गीला गान।

—पत

१—रांगेय राघव : मेधावी, पृ० २५६।

(२) इस करुणा कलित हृदय मे क्यो **विकल रागिनी** बजती ।
—प्रसाद

(३) सकूंगी कैसे स्वय सभाल,
तरंगित यौवन का रसवाह ?
ग्रन्थि के ढीले कर सब बन्ध
नाचने को आकुल है चाह ।
—दिनकर

प्रथम पक्ति मे 'गीलागान' मे गान गीला नही होता है । गीले वस्त्रादि हुआ करते है । गीला शब्द मे लक्षण है । इसका लक्ष्यार्थ है करुण अथवा वेदनायुक्त । दूसरी पक्ति मे 'विकल' रागिनी का विशेषण है । किन्तु विकलता चेतन-प्राणी का धर्म है, रागिनी का नही । तीसरी पक्ति मे 'तरगित' होना जल प्रवाह का धर्म है किन्तु यहा यौवन का विशेषण है, जिसका लक्ष्यार्थ है, उल्लास-पूर्ण । एव 'आकुल चाह' मे 'चाह' आकुल नही हो सकती, क्योकि आकुल होना हृदय का धर्म है । यहा इसका लक्ष्यार्थ है, उत्कट । ये सब विशेषण विपर्यय के उदाहरण है, जिनके प्रयोग से कविता मे अनूठा चमत्कार आ गया है ।

(३) मूर्त के लिए अमूर्त का प्रयोग

मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति भी आधुनिक कविता की एक विशेषता है । छायावादी कवियो मे इसका प्राचुर्य है–

(१) **मादकता से** आये तुम, सज्ञा से चले गए थे — प्रसाद
(२) बिखरी अलके ज्यो तर्क जाल — प्रसाद
(३) धीरे-धीरे **संशय से** उठ, बढ अपयश से शीघ्र अछोर ।
नभ के उर मे उमड **मोह से**, फैल **लालसा से** निशि भोर ॥
—पन्त ।

पहली पक्ति मे 'मादकता' और 'सज्ञा' दोनो अमूर्त उपमान हैं, जो 'प्रिय' के लिए आये है । दूसरी पक्ति मे इडा की अलको का वर्णन है । इसमे उपमेय-भूत मूर्त अलको के लिये अमूर्त उपमान 'तर्क जाल' का प्रयोग हुआ है । तीसरे बन्ध मे बादल उपमेय है जिसके उठने, बढने, उमडने और फैलने के लिये क्रमशः सशय, अपयश, मोह और लालसा जैसे अमूर्त उपमान रखे गये है ।

(४) अमूर्त के लिए मूर्त का प्रयोग

इसी प्रकार अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमानो को रखने का भी बहुत अधिक प्रचार हुआ है–

(१) तेरे भू भगो मे कैसे बिंधवा दूँ निज **मृग-सा मन** ? —पंत

(२) प्रेम की **मधुझील** के तट पर मिले हम आज फिर। —अचल

(३) जल उठा स्नेह **दीपक-सा** नवनीत हृदय था मेरा—प्रसाद

पहली पक्ति मे मन के लिए 'मृग' दूसरी पक्ति मे प्रेम के लिए 'मधु झील' और तीसरी पक्ति मे स्नेह के लिए 'दीपक' के उपमान है।

(५) अंगी के लिए अंग का प्रयोग

इसमे प्रधान, सक्रिय एव प्रसिद्ध अग के कथन द्वारा अगी या अप्रस्तुत का बोध करा दिया जाता है। यह अगरेजी के सिनेक्डोच से मिलता जुलता अलकार है—

(१) कब्र कब्र मे अबुध बालको की भूखी **हड्डी** रोती है। —दिनकर

(२) किन्तु सामने एक भिखारी का **फैला कर** क्यो रोता है ?

—रागेय राघव

(३) **होठ** मे सो गये शब्द—शमशेर

(४) **खलिहानों** मे जहा मचा करता है हाहाकार कुपारी—दिनकर।

उपर्युक्त उद्धरणो मे हड्डी, कर, होठ और खलिहान के कथन द्वारा क्रमशः शरीर, व्यक्ति, मुख और कृषक-भूमि से तात्पर्य है। इनमे अगी या अवयवी के लिए उसके अगी या अवयव द्वारा पूर्ण का बोध कराया गया है।

(६) विशेष के लिए सामान्य का प्रयोग

कितनी **मणियां** लुट गईं ? मिटा कितनी मेरा वैभव अशेष
तू ध्यान मग्न ही रहा, इधर वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।

—दिनकर

इस पद्य मे 'मणिया' और 'वैभव' सामान्य शब्दो से 'कोहनूर' और मयूर सिंहासन (तख्त ताऊस) आदि विशेष पदार्थों की ओर सकेत है।

(७) सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग

(१) कितनी **द्रुपदा** के बाल खुले दिनकर

(२) दुश्मन के वममार फाडते
युग-युग के अरमान
एक साथ दम तोड रहे है
रामू औ रहमान
बापू.. जिन्ना...। रागेय राघव

पहली पक्ति मे 'द्रुपदा' से तात्पर्य भारतीय देविया और दूसरे बन्ध मे

'रामू रहमान' हिन्दू-मुसलमान के लिए आए है। इसी प्रकार बापू जिन्ना .. भी। ये विशेष अप्रस्तुत सामान्य के व्यजक है।

(८) जातिवाचक के लिए भाववाचक का प्रयोग

(१) **ज्ञान** अपने खोल दोनो हाथ
मागता था भीख हो निरुपाय।
—रागेय राघव

(२) कराह, आह का धुवा, हरेक **सांस** घुट रही —भगवतीचरण

प्रथम पक्ति मे ज्ञान से अभिप्राय ज्ञानवान व्यक्ति से है और द्वितीय पक्ति मे साँस का प्रयोग पीडित मानव के लिए हुआ है।

(९) भाववाचक के लिए जातिवाचक का प्रयोग

(१) फिर वह एक **हिलोर** उठी—शमशेर

(२) प्राण मे अब भी वही फूकार भरता **नाग**—दिनकर

(३) लगडे को **पांव** और लूले को **हाथ** दे—भवानीप्रसाद

पहली पक्ति मे हिलोर, दूसरी मे नाग और तीसरी मे हाथ-पाव शब्दो के प्रयोग क्रमशः उत्तेजना, अहकार और सहायता के लिए हुए हैं।

(१०) गुणवाचक पदार्थ के स्थान पर उसके गुण का प्रयोग

व्यक्त **नील** मे चल **प्रकाश** का कपन सुख बन जाता था। –प्रसाद

इसमे 'नील' आकाश का गुण है और 'प्रकाश' चन्द्र-किरण का। अतएव ये 'नील' और 'प्रकाश' दोनो शब्द क्रमशः आकाश और चन्द्र-किरण के व्यजक हैं।

(११) प्रभाव-साम्य के आधार पर अप्रस्तुतों का प्रयोग

इनमे बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या बिलकुल नही होता है। केवल आभ्यन्तर प्रभाव को लेकर ही अप्रस्तुत-योजना की जाती है। आधुनिक काव्य मे ऐसे ही प्रयोगो का बाहुल्य है।

(१) नवोढा बाल-लहर
अचानक उपकूलो के
प्रसूनो के ढिग रुककर
सरकती है सत्वर। —पन्त

इसमे नवोढा और बाल लहर मे कोई साम्य नही है। स्वरूपतः कुछ भी सादृश्य नही है। रुक रुक कर सरकने की क्रिया का ही अल्प साधर्म्य है। नवोढा जब पति के समीप जाती है, तब लज्जा से अभिभूत होने के कारण धीरे धीरे सरकती जाती है। इतने ही क्रिया-साम्य के आधार पर नवोढा एव बाल लहर मे अध्यवसान किया गया है।

(२) बीत चली सूनी की सूनी, बुझे दीप-सी राते काली
जाने किन महलो मे छाये, सखी वियोगिन के बनवारी।

—गिरिजाकुमार

इसमे काली रातो के लिए बुझे दीपक को उपमान के रूप मे लाया गया है। स्पष्टतः दोनो मे कोई सादृश्य या साधर्म्य का आधार नही है। दीपक के बुझने पर सूना-सूना सा दिखाई पड़ता है। वियागिनी के लिए भी काली राते सूनी-सूनी सी दिखाई पडती है। दोनो मे सूनेपन का ही साम्य है जिसके आधार पर काली रातो की बुझे दीपक से समता की गई है। छायावादी कवियो मे यह प्रवृत्ति सबसे अधिक है।

(१२) प्रस्तुत-अप्रस्तुत का तादात्म्य

आधुनिक कवियो मे अप्रस्तुत-विधान की प्रवृत्ति इतनी बलवती दिखाई पडती है कि जिसके कारण प्रस्तुत का ध्यान ही छूट जाता है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत की एकात्मता के ऐसे उदाहरण पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवा, रामकुमार आदि छायावादी कवियो मे प्रचुरता से मिलते है।

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल कोमल-तनु-तरुणी-जूही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल,—पत्राक मे
वासन्तो निशा थी,

—निराला

जूही की कली का वर्णन प्रस्तुत है तथा उस पर किसी अप्रस्तुत तरुणी का आरोप किया गया है। किन्तु अप्रस्तुत तरुणी के वर्णन की ओर कवि का इतना अधिक ध्यान चला गया है कि प्रस्तुत कली के दृग भी बन्द करा दिए हैं तथा नायक मलयानिल के द्वारा कपोल चुम्बन भी हुआ है। प्रस्तुत विषय अप्रस्तुत के द्वारा इतना अधिक दब गया है कि न तो इसे अप्रस्तुत प्रशसा ही कह सकते है और न समासोक्ति ही। यहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनो मिश्रित हो गए हैं। दोनो के सकर के ऐसे उदाहरण पन्त की 'छाया' 'अप्सरी' 'निर्झरी' निराला की 'सन्ध्या सुन्दरी', 'यमुना के प्रति' प्रसाद की 'लज्जा' महादेवी की 'वसन्त-रजनी', 'रूपसि तेरा घन केश-पाश' रामकुमार वर्मा की 'ये गजरे तारो वाले', अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' आदि विविध कविताओ मे पाए जाते हैं।

(१३) प्रतीकात्मक उपमान

उपमा मे उपमेय और उपमान की पृथकता दिखायी जाती है, किन्तु रूपक मे दोनो का अभेद दिखाया जाता है। प्रतीकात्मक उपमान दोनो का स्थान ग्रहण कर लेता है।

ग्रास करने नौका स्वच्छन्द, घूमते फिरते जलधर वृन्द।
देखकर काला सिन्धु अनन्त, हो गया हा! साहस का अन्त॥

—महादेवी

इसमे 'नौका' 'जीवन' के लिए, 'जलचर वृन्द' 'सासारिक कामादि दोषो के लिए और सिन्धु' ससार के लिए प्रतीक रूप मे आए है। ससार समुद्र सा ही अनन्त एव अगाध है। कामादि विकार के समान जलचर वृन्द है क्योकि ये उन्ही के समान घातक है। नौका के सदृश जीवन भी ससार-सागर मे तैरता रहता है। इन प्रतीकात्मक उपमानो ने भाव को सप्राण कर दिया है।

उषा का था उर मे आवास, मुकुल का मुख मे मृदुल विकास।
चाँदनी का स्वभाव मे भास, विचारो मे बच्चो के साँस॥

—पन्त

इसमे उषा, मुकुल और चादनी प्रतीकात्मक उपमान है। पवित्रता स्फूर्ति एव उज्ज्वलता का प्रतीक उषा है, अबोधता, अस्फुटता, स्वच्छता का प्रतीक मुकुल है एव शीतलता और मृदुलता का प्रतीक है, चाँदनी। बच्चो के सास से भोलेपन का भाव लिया गया है।

इनमे गुण या धर्म का उल्लेख न करके वस्तुओ का ही विधान किया गया है जो समान धर्म एव गुण के कारण लाक्षणिक प्रतीक का काम करते है। इसमे 'उषा' शुद्ध प्रतीक है, शेष लाक्षणिक उपमान है।

"यह विशद जीवन कि जो आकाश सा
या कि निर्झर सा चपल लघु तीव्र है।
क्या पूर्ण है? क्या तृप्ति पाता शीघ्र है,
वह ग्रीष्म सा है या मदिर मधुमास-सा।"

—गजानन मुक्तिबोध

विशदता के कारण आकाश तथा चपलता के कारण निर्झर जीवन के प्रतीकात्मक उपमान है। ग्रीष्म उदासी, नीरसता, शिथिलता, खिन्नता आदि का प्रतीक है, क्योकि ये सब बाते ग्रीष्मकाल मे अनुभूत होती है। उसके विपरीत बसन्त है। यह उल्लास, सरसता एव स्फूर्ति का प्रतीक है। जीवन के लिए ये प्रतीकात्मक उपमान उसके रूप को प्रत्यक्ष रूप मे रख देते है।

(१४) लाक्षणिक उपमान

आधुनिक कविता मे अनेक स्थलो पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जिनमे उपमानो का लाक्षणिक अर्थ ग्रहण किया गया है।

नखत की आशा किरण समान,
हृदय के कोमल कवि की कान्त–
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शान्त

—प्रसाद

श्रद्धा का प्रथम बार दर्शन कर मनु का हृदय उत्फुल्ल हो जाता है और वे कहने लगते है कि तुम मेरे लिए तारिका के समान आशा की किरण हो। तुम्हारे दर्शन से मन की हलचल उसी प्रकार शान्त हो गई है जिस प्रकार किसी कोमल-हृदय कवि के मन को किसी सुन्दर पवित्र कल्पना की एक छोटी सी लहर के उठने से शान्ति मिलती है।

इसमे श्रद्धा को आशा की किरण के समान कहा गया है। किरण सूर्य से उत्पन्न होती है, आशा से नही। इसलिए लक्ष्यार्थ हुआ, आशा की जन्मदात्री। यह लाक्षणिक उपमान है। इसी प्रकार 'कल्पना की लघु लहरी' भी है। श्रद्धा को कल्पना की लहर कह कर उपमान का भावोत्कर्ष दिखाया गया है। भाव यह है कि तुम्हे देखकर हृदय मे आशा का सचार हुआ है एव शान्ति प्राप्त हुई है।

उठ-उठ री लघु लोल लहर
करुणा की नव अगडाई सी, मलयानिल की परछाई सी,
इस सूखे तट पर छहर-छहर।

—प्रसाद

मेरे शुष्क जीवन मे सरस कोमल भावो का जागरण हो, 'लहर' और 'सूखे तट' का यही लाक्षणिक अर्थ है। दूसरी पक्ति मे 'लोल लहर' के दो उपमान हैं। करुणा की नव अगडाई और मलयानिल की परछाई, ये दोनो उपमान भी लाक्षणिक है। इनमे करुणा का उन्मेष होता है एव शीतलता तथा सरसता का भाव व्यक्त होता है।

(१५) विरोधात्मक विशेषणमूलक उपमान

नवीन कविता के विरोधपूर्ण शब्दो मे भी उपमानो का प्रयोग हुआ है। ये बडे व्यंजनापूर्ण है। इनकी अप्रस्तुत योजना बडी सूक्ष्म एव मार्मिक है। यह

विरोध प्रतीत-सा होता है, वस्तुतः होता नही। इसका परिहार होते ही भाव की व्यजना स्फुट हो जाती है।

(१) अरी व्याधि की सूत्रधारिणी, अरी आधि, **मधुमय अभिशाप**।
हृदय गगन मे धूमकेतु सी, पुण्य सृष्टि मे **सुन्दर पाप**।
प्रसाद।

इसमे चिन्ता के लिए दो विरोधात्मक विशेषण मूल उपमान है—मधुमय अभिशाप और सुन्दर पाप। चिन्ता से मन व्याकुल रहता है, अतः उसे अभिशाप कहना उचित ही है, परन्तु मनुष्य चिन्ता से मुक्त भी नही होना चाहता है। यदि वह उससे मुक्त हो जाय तो लोक-जीवन मे कोई सुख का विधान ही न करे। चिन्ता ही से जीवन मे मधुरता आती है। इसी से वह मधुमय है। आत्मा आनद-मय है। चिन्ता उस आनद मे व्याघात है। अतएव अवाँछनीय होने के कारण वह पाप है, किन्तु वह सहज एव अनिवार्य भी है, अतः सुन्दर है। इसी से उसे 'सुन्दर पाप' कहा है। इस विरोधमूलक उपमान-प्रदर्शन का भाव यह है कि अनिच्छित वस्तु को भी लाभदायक समझकर जैसे ग्रहण कर लिया जाता है, वैसे ही दुःखदायिनी को भी 'मधुमय' और 'सुन्दर' समझ कर ग्रहण किया जाता है।

(२) नयन मे जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण मे वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर मे छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाह वह चल हूँ।
दूर तुमसे हूँ, अखड सुहागिनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
—महादेवी।

इसमे आत्म-निवेदन का भाव है। तृषित चातक, विकल बुलबुल, चचल छाह, अखड सुहागिनी—सब विशेषण मूल विरोधात्मक उपमान है। जलद के रहते चातक के तृषित होने मे विरोध है। पर वस्तुतः विरोध नही है, क्योकि अश्रुपूर्ण नेत्रो को जलद कहने से विरह व्यजित होता है। तृषित विशेषण है। भाव यह है कि तुम्हारे दर्शनो के लिए तृषित नेत्र निरतर आँसू ढालते रहते है। इसी प्रकार निठुर, विकल, चल, अखड आदि शब्द क्रमशः दीपक, बुलबुल, छाह और सुहागिनी के विशेषण है तथा हर एक उपमान मे विरोध का भाव प्रदर्शित किया गया है, जिससे भावोत्कर्ष मे सहायता मिलती है।

(१६) आत्म विषयक रूपक

रूपक मे प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत का तादात्म्य होता है, किन्तु आत्म विषयक रूपक मे कवि अपने को ही प्रस्तुत के रूप मे रखता है तथा अप्रस्तुत के साथ एकरूपता कर लेता है—

मैं बनी मधुमास आली।
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चादनी।
उमड आई री दृगों में सजनि कालिन्दी निराली।

—महादेवी।

इसमे कवि ने आत्म को प्रस्तुत रूप मे रखकर अप्रस्तुत मधुमास का अभेद आरोप किया है। 'मैं नीर भरी दु:ख की बदली' 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' 'बीना भी हू मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ आदि महादेवी के गीतो मे रूपक का नया प्रयोग हुआ है।

हर एक युग के काव्य मे शृ गार का प्राचुर्य पाया जाता है। शृगारिक रचनाओ का केन्द्र स्त्री-सौदर्न्य का वर्णन है। स्त्री के अग-प्रत्यगो के लिए परम्परानुगत अप्रस्तुतो का ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

आधुनिक युग की कविता मे भी शृगारिक रचनाओ का ही बाहुल्य है। नए युग की प्रवृत्ति के अनुकूल कवियो ने स्त्री-अगो के लिए नये अप्रस्तुतो की उद्भावनाएँ की है। ये परम्परानुगत काव्य के उपमानो से भिन्न हैं। नीचे इन्ही का अध्ययन किया जाता है।

उपमेय	उपमान
स्त्री-शरीर	लवगलता, सिरस, रत्न-दीप, स्वर्ण-प्रभा, चम्पा, बाजरे की कलगी, बिछली घास।
अग-सौन्दर्य	सगमरमर, जूही, सुधा-जलद, फूल, बहार, शरद, चादनी, इन्द्र-धनुष, चचला, पूर्णिमा, मदिरा, चाद, कुसुम-कली, गुलाब, नरगिस, कली, कचनार, सेव, उषा, कलिका, कल्पलता, स्वर्ग, दूज की कला।
तरुणी	अप्सरी, हँसिनी, ज्योत्स्ना, छुईमुई, तारिका, शशिकला, तितली, लहरी, मार्जारी, विहगी, मधुबाला।
मुख	मुकुल, कोका बेली

उपमेय	उपमान
मस्तक (सिर)	नारियल
नयन	सिन्धु, बादल, झील, व्योम, भ्रमर, प्याला, सरसी, यमुना, नीलम की प्याली, विहग ।
मुसकान	छपी-सी, पी-सी, मुकुल, मोतिया, मधु-सरिता
चितवन	प्रात, सुरा,
दृष्टि	दीप
कपोल	गुलाब
अधर	अमृत मदिरा
कर्णफूल	मोगरा
पलक	यवनिका
श्वास	सुधा, केसर
उर (हृदय)	वीणा, तन्त्री, तार, उषा, मच, कमल, हीरा, नवनीत, पाटल,
अलक	नील रेशम, रजनी, नीलघन, फणिधर, हरसिंगार, रश्मितार ।
हथेली	बन्धूक
उगलिया	मदन-वाण
उरोज	अबिया
भाल	शशिखड
बाहु	लहरी, चमेली की डाल, लता, मृणाल, चिकना चीड ।
होठ	मिश्री, पाटल, फीरोज, कोपल
प्राण	पिक
दसन	हीरक
कान	सीपी
जघा	पावस की सरिता ।
चरण	जावक, मोती
नख	नक्षत्र
एडी	दाड़िम
तलुए	गेंहुए, मकई से (लाल)

अप्रस्तुतो की दिशा मे आधुनिक कवियो ने अत्यन्त विचित्र प्रयोग किए हैं, जिनका प्राचीन काव्य-परम्परा मे कही भी दर्शन नही मिलता है। छायावादी कवियो की दृष्टि सदैव सौन्दर्य की ओर उन्मुख रहती है। इसलिए उनका अप्रस्तुत विधान अत्यन्त चित्ताकर्षक एव श्लाघ्य है। किन्तु प्रगतिवादी कवियो ने अपने काव्य के माध्यम से एक नये जीवनदर्शन को उपस्थापित किया है। यह है सामाजिक यथार्थ। इसमे उनकी दृष्टि जीवन के स्थूल, भौतिक पक्ष की ओर रहती है। इस नग्न सत्य का उद्‌घाटन करने मे वे इतने व्यस्त हो जाते है कि सौन्दर्य का ध्यान ही छूट जाता है। अतएव इनके काव्य मे कोरा तथ्य-प्रदर्शन रह जाता है। किन्तु प्रयोगवादी कवियो का एक ऐसा वर्ग है, जिन्होने वस्तु और शिल्प दोनो पर समान रूप से ध्यान दिया है। वस्तु पर ध्यान केन्द्रित हो जाने पर अलकारो की आप से आप उपेक्षा हो जाती है। ऐसी दशा मे वे अपनी वाणी को सिद्धान्तत. अलकृत करना आवश्यक नही समझते—

'ज्योतित कर जन-मन के जीवन का अन्धकार
तुम खोल सको मानव-उर के नि.शब्द द्वार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलकार!"

—पन्त

किन्तु कुछ कवियो के अलकार-विधान मे वैचित्रय-प्रदर्शन की प्रवृत्ति सीमा का अतिक्रमण कर गई है।

(१) ज्यो घेर सकल ससार, कुण्डली मार
पडा हो अहि विशाल,
आक्रान्त धरा की छाती पर
गुम-सुम बैठा मध्याह्नकाल।

—नरेन्द्र

इसमे कवि ने जेठ के महीने के मध्याह्न का एक विशाल अजगर से साम्य दिखाया है। अमूर्त 'मध्याह्न काल' के लिए विशाल अहि' का मूर्त उपमान प्रस्तुत किया गया है। दोनो मे 'गुम सुम' गुण का साम्य है। यहाँ उपमा है और अत्यन्त प्रभाववर्द्धक भी है। लाक्षणिक अप्रस्तुत तक तो बात ठीक है, किन्तु कुन्डलीमार कर पडने की क्रिया मे सीमा का अतिक्रमण है। इसकी सगति नही बिठाई जा सकती। एक प्रयोगवादी कवि का सध्या का वर्णन कितना वैचित्र्यपूर्ण है।

(२) सोने की मेघ चील,

अपने चमकीले पंखो मे ले अन्धकार अब बैठ गयी दिन अडे पर।
नदी वधू की नथ का मोती चील ले गयी।
गगन नीड से सूरज ग्वाला हाँक रहा है दिन की गाएँ।
नभ का नीलापन चुप है दिशि के कन्धो पर सिर धर।
इस उतराई मार्ग दिवस के सैन्धव नत शिर होकर उतरे, सधे चरण से
चमक रही पीले बालो वाली अयाल उनके गर्दन की।
साँझ, दिवस की पत्नी, अपने नील महल मे बैठी कात रही है बादल
दिशि की चारो कन्याये हैं माग रही तारो की गुडिया।

—नरेश कुमार

अलकृत शैली मे कवि ने सन्धया का वर्णन किया है। सुनहरी मेघ के लिए चील, दिन के लिए अडे, नदी के लिए वधू, सूरज के लिए ग्वाला, दिन के लिए गाएँ, साँझ के लिए दिवस की पत्नी, दिशाओ के लिए कन्याएँ और तारो के लिए गुडिया एक दम नये उपमान है। इसमे रूपक लक्षणा के आश्रित है। अलकार भावोत्कर्ष मे सहायक होते हैं। जहाँ वे उसमे सहायता नही करते, वहाँ मात्र कौतूहल उत्पन्न करते है। ऊपर की कविता मे सन्ध्या का वर्णन इष्ट है, किन्तु कविता पढने से वर्ण्य वस्तु का चित्र सामने नही आता है। अलकारो का वैचित्र्य अवश्य कौतूहल को जगाता है।

अप्रस्तुत-विधान यदि प्रभाव-साम्य को लेकर चलता है, तो उसका अभीष्ट प्रभाव पडता है, अन्यथा नही।

कवि सौन्दर्य का प्रेमी होता है। अप्रस्तुत विधान द्वारा वह सुन्दर भावो को उद्‌बुद्ध करता है। अपरूप एव घृणास्पद व्यापारो की योजना करने से वीभत्स रस की अवश्य उत्पत्ति होती है, किन्तु उचित स्थल पर ही उसका सन्निवेश होना चाहिए। आधुनिक प्रयोगवादी कवि अवाछित एव वीभत्स व्यापारो की योजना करते हैं, जिससे कुरुचि उत्पन्न होती है—

'पूरब दिशि मे हड्डी के रग वाला बादल लेटा है, पेडो के ऊपर गगन खेत मे दिन का श्वेत अश्व मार्ग के श्रम से थक कर मरा पडा ज्यो।'

नरेशकुमार।

बादल हड्डी के रंग वाला है तथा दिन श्वेत अश्व है जिसकी दिन भर की थकान के कारण मृत्यु हो गई है। गगन को श्वेत तथा दिन को श्वेत अश्व कहने मे रूपक है। हड्डी के रग के बादल ऐसे दिखाई पड़ते है जैसे श्वेत अश्व

मर गया हो। इसमे उपमा है। ऐसे अप्रस्तुत विधान से सुरुचि उत्पन्न नही हो सकती है, उल्टे काव्य को क्षति पहुँचती है।

(३) काव्य मे व्रीडाजनक अप्रस्तुतो का प्रयोग अश्लीलत्व दोष के अन्तर्गत आता है। आजकल के कवि इसका बेधडक प्रयोग करते हैं—

'और वह दृढ पैर मेरा है,
गुरु, स्थिर, स्थाणु सा गडा हुआ
तेरी प्राण-पीठिका पे लिंग-सा खडा हुआ।'

—अज्ञेय

इस पथ मे सर्वहारा वर्ग की शोषक के प्रति ललकार है। किन्तु भावावेश मे औचित्य का विचार छूट गया है। इसीलिए 'पैर' के लिए स्थाणु सा कहने तक तो गनीमत थी, किन्तु 'लिंग-सा' कहने मे शिष्ट मर्यादा की अवहेलना का दोष आ गया है।

(४) प्रगतिशील कविता मे अभारतीय अप्रस्तुतो का भी विधान पाया जाता है। इससे अभीष्ट प्रभाव नही पडता है, क्योकि विदेशीय उपमानो के साथ हृदय का रागात्मक सबध नही हो पाता है—

'लाखो की अगणित सख्या मे
ऊँचा गेहूँ डटा खडा है
ताकत से मुष्ठी बाधे है
नोकीले भाले ताने है
हिम्मतवाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रह है।'

—केदार

इस पथ मे 'गेंहुओ' के लिए दो अप्रस्तुत लाये गए हैं। 'नुकीले भाले' और 'लाल फौज' पहले तक तो बात कुछ ठीक है, किन्तु 'लाल फौज' के साथ पाठक समझौता नही कर पाता। अतएव ऐसे उपमान प्रभावहीन हो जाते है।

(५) जीवन के विरूप, भद्दे एव कुत्सित पक्ष को मूर्तिमान करनेवाले अप्रस्तुत ही प्रगतिवादी कविता मे लाए जाते हैं—

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे कुछ पाच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोडो-से, हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।

—भगवतीचरण वर्मा

इसमे निर्धन व्यक्तियो के टूटे-फूटे कच्चे घरो के लिए 'फोडो' का अप्रस्तुत लाया गया है। इस उपमा से पाठक नाक-भौं सिकोडने लगते हैं।

(६) अन्तरराष्ट्रीय विषयो के लिए जो अप्रस्तुत लाए गए हैं, उनसे भी विनाश की भावना व्यक्त होती है—

यह दलितो की तीर्थभूमि है, युग का प्रबल तकाजा।
सर्व प्रथम साम्राज्यवाद का, निकला यही जनाजा।

—सुमन

इस पथ मे रूस देश को 'तीर्थभूमि' कह कर स्तुति की गई है और साम्राज्यवाद के लिए 'जनाजा' का अप्रस्तुत है। इससे रूस के लिए पक्षपात और साम्राज्यवाद के प्रति जुगुप्सा प्रकट होती है।

(७) लाक्षणिक उपमान भी मिलते है जो अभीष्ट प्रभाव डालने मे सक्षम हैं—

'उग रही तलवार की फसले
प्रलय अणुबम बरसता'

—सुमन

इसमे 'फसल' और 'प्रलय' दो अप्रस्तुत है। दोनो लाक्षणिक उपमान है। रूपक अत्यन्त सजीव हो उठा है।

(८) प्रगतिवादी काव्य जन-काव्य है। अतएव उसमे जन-जीवन के अप्रस्तुतो पर अधिक विचार रखा गया है—

सरग था ऊपर
नीचे पाताल था
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था
दिल-दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था।

—नागार्जुन।

कवि ने वर्तमान स्थिति को भुस के पुतले की तरह बताया है, जो जनता की रक्षा करने मे समर्थ नही है।

(९) जीवन के मस्ती भरे हल्के पक्षको साकारता देने वाले उपमान भी पाये जाते हैं—

'हल्की मीटी चा-सा दिल
मीठी चुस्की-सी बाते'

—शमशेर

इस पक्ति मे 'दिल' के लिए 'चा' और 'बातो' के लिए 'चुस्की' के उपमान है जो अतियथार्थवादी आधुनिक सभ्यता के परिचायक हैं।

(१०) प्रगतिशील कवियो पर यान्त्रिक सभ्यता का प्रभाव है। उनके अप्रस्तुत भी यान्त्रिक हैं—

'दिन के बुखार
रात्रि की मृत्यु
के बाद हृदय पु स्त्वहीन
अन्तर मनुष्य
रिक्त सा गेह
दो लालटेन से नयन दीन
निष्प्राण स्तभ
दो खडे पाव
लकडी का खोखा वक्ष रिक्त
मस्तिष्क तेल
की है मशीन
ससार-क्षेत्र है तेल-सिक्त।

—मुक्तिबोध

इस कविता मे मनुष्य के पुस्त्वहीन जड का चित्रण है। इसमे नये युग के अभिनव उपमान है। नेत्रो के लिए 'दो लालटेन' पावो के लिए 'स्तभ' वक्ष के लिए 'लकडी का खोखा' मस्ति'क के लिए 'तेल को मशीन' के उपमान लाए गए है। ये उपमान कौतूहलपूर्ण अवश्य है, पर इनमे मार्मिकता का अभाव है, क्योकि इम अप्रस्तुतो के साथ पाठक के हृदय का साधारणीकरण नही होता है।

प्रगतिवादी कविता मे वैचित्र्यपूर्ण' अश्लील एव अकाव्योचित अप्रस्तुत विधान की कमी नही है। नये सामाजिक तत्व से उन्होने जो नवीन जीवन-दृष्टि ग्रहण की है, उसी का प्रभाव उनकी कविता पर लक्षित होता है। इसी कारण शशि के लिए 'ढाल', असि', क्षितिज के लिए 'गजो चाद', सामन्ती युग के लिए 'लोह-महल, जन जल के लिए 'भूकम्प' पीडित वर्ग के लिए 'कीडे-मकोडे, पौराणिक सस्कृति के लिए 'कछुआ, भाव-जगत के स्रष्टा कवि के लिए 'दर्जी, विविधता से सकुल जटिल जीवन के लिए 'रद्दी की टोकरी', कोयले की खान मे काम करनेवाली मजदूरनी के लिए 'कालीरात' अप्रस्तुत के रूप मे लाए गए है। ये उपमान नूतन प्रयोग भले ही हो, किन्तु इनमे सुरुचि का अभाव है तथा ये हृदय को स्पर्श करने मे सर्वथा असमर्थ है। इनके द्वारा विरूपता, कटुता, उच्छृखलता एव अश्लीलता आदि दोष प्रकट होते है।

विवेचन

आलोच्यकालीन कविता मे प्रारभ से ही नये प्रयोगो का पूर्वाग्रह विद्यमान हैं। पल्लव की भूमिका मे पन्त जी ने पुराने अलकारो की 'दादुरावृत्ति' की ओर घोर अरुचि प्रदर्शित की है। पत जी के विचारो मे तत्कालीन युग की काव्य-प्रवृत्ति का पूर्ण परिचय मिल जाता है, क्योकि उनके विचार परिवर्तित युग की जन-रुचि का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा, छायावाद-रहस्यवाद के प्रतिनिधि कवि है। इनके काव्य मे पुराने पिष्टपेषित अलकारो के स्थान पर अलकारो को नये रूप मे प्रयुक्त करने का आग्रह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इन कवियो के अलकारविधान पर अगरेजी के शैली, कीट्स, वायरन, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन आदि का भी प्रभाव है और बहुत कुछ अश मे उनकी समर्थ प्रतिभा ने भी अप्रस्तुत-विधान के नये-नये स्तरो का अन्वेषण किया है। इनमे विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण तथा ध्वन्यर्थ व्यजक अलकारो के लिए तो अगरेजी काव्य-पद्धति का अनुसरण किया गया है तथा उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि औपम्य-गर्भ अलकारो के क्षेत्र मे नये प्रयोगो को उनकी स्वस्थ काव्य चेतना ने स्वय खोज निकाला है। किन्तु यह निश्चय है कि छायावादी-रहस्यवादी कविता की अलकार योजना मे सौन्दर्य के नाना पक्षो का सफल उद्घाटन हुआ है। उपमान एव प्रतीको की खोज के लिए कवियो की प्रतिभा ने अधिकतर प्राकृतिक क्षेत्रो का अनुसधान किया है तथा सूक्ष्म, सुन्दर एव रमणीय उपमानो की योजना सफलतापूर्वक की गई है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक एव व्यजक अप्रस्तुतो की सृष्टि करने मे भी इन कवियो ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। ऊपर दिए गए उदाहरणो से यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है।

प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियो ने उपमानो का सग्रह प्रायः भौतिक जीवन के स्थूल, प्रचलित एव व्यावहारिक क्षेत्र से किया है। अतः इनमे सरलता एव मार्मिकता है। भगवतीचरण, नरेन्द्र, अचल, बच्चन, सुमन के अलकार-विधान मे स्वाभाविकता, मार्मिकता तथा अर्थ-बोध की सुगमता मिलती है। किन्तु ऐसा सर्वत्र नही है। कही-कही आवेश और विद्रोह के स्वर मे अश्लील, असुन्दर एव कुत्सित उपमानो को भी प्रयुक्त किया गया है। तीसरे और पाँचवे सख्या के उदाहरणो से यही प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त अज्ञेय, स्कूल के कवियो की उपमान-योजना मे यौन-कुठा का रूप भी निखर उठा है। अज्ञेय की 'सावन-मेघ' 'कलगी बाजरे की', तथा भारती के गुनाह के गीतो से इस तथ्य पर पूर्ण प्रकाश पडता है।

निष्कर्ष यह कि छायावादी-रहस्यवादी काव्य मे नये अलकारो का जो सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, वह उत्तरवर्ती काव्य मे नही है। किन्तु उपमानो की दिशा मे नये प्रयत्न स्तुत्य हैं, और वे जागरूक चेतना के परिचायक हैं। यद्यपि इनमे कुछ अनुचित एवं अनगढ रूप मे प्रकट हुए हैं, तो भी ये नये भाव-बोध को जाग्रत करने मे पूर्णरूप से सहायता करते हैं। मूलतः ये नई परिस्थिति से उत्पन्न हुए हैं तथा परिवर्तन की दिशा मे ये कवियो की समर्थ कल्पना-शक्ति को प्रमाणित करते है।

प्रतीक

प्रतीकों का महत्व

यद्यपि आधुनिक काल मे 'प्रतीकवाद' का उद्घोष नया है, तो भी इसमे कोई सन्देह नही कि प्रतीको की परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी मानव-सस्कृति।

भारतीय सस्कृति मे धर्म का विशेष आदर है। साहित्य मे भी धार्मिक सस्कृति पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित हुई है। धार्मिक एव आध्यात्मिक साहित्य मे अनुभूति की प्रेषणीयता के लिए प्रतीको का प्रयोग अनिवार्य सा हो जाता है क्योकि प्रतीको की सहायता से प्रस्तुत अर्थ को समझने मे सरलता, सुबोधता, एव रोचकता आ जाती है। अभिव्यक्ति को सुबोध बनाने के लिए सभी महा-कवियो ने इनका उपयोग किया है। हिन्दी के सिद्ध, सन्त, भक्ति-साहित्य मे प्रतीको का बाहुल्य है। साधक, सन्त एव भक्त कवियो ने अपने आध्यात्मिक चिन्तन को सर्व-ग्राह्य बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रतीको का सृजन किया है। ये प्रतीक दैनिक जीवन से लिए किये गए हैं। दूध दुहना, हल चलाना, आखेट करना, मथना, धुनना, मधूकरी मागना, चर्खा कातना, वस्त्र बुनना, वस्त्र रगना, मिट्टी गूँदना, बर्तन बनाना, माला गूँथना, कोल्हू चलाना, चाक घुमाना, हरट चलाना आदि आदि दैनिक जीवन से सम्बन्धित कार्य-व्यापारो के प्रतीको द्वारा सिद्ध एव सन्त कवियो ने आत्मज्ञान विषयक ऊँची से ऊँची और गहरी से गहरी बाते कह दी हैं।[1]

समाज और साहित्य के परिवर्तन के साथ प्रतीको का महत्व और क्षेत्र भी घटता-बढता रहता है। कुछ प्रतीक जन-चेतना के साथ-साथ चलते है, कुछ पीछे छूट जाते है, कुछ भावोत्कर्ष को प्राप्त करते हैं तथा कुछो के अर्थ की क्षति हो जाती है। सिह, सूर्य, कमल आदि के प्रतीक समय के साथ चल रहे है, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि प्रतीक जीवन से पिछड गए है, मिट्टी, पानी, आग के प्रतीको का भावोत्कर्ष हुआ है, तथा महाजन ज्वाला गौर वर्ण आदि प्रतीको की अर्थ-क्षति हुई है।

अभिव्यक्ति को सुन्दर, सुबोध एव हृदय-ग्राही बनाने के लिए कवि-

१—देखिए, हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां, प्रतीकवाद, पृ० ६५।

परम्परा मे अप्रस्तुत-योजना सदा से चली आ रही है। अभिव्यक्ति का सर्वोच्च साधन प्रतीक है। हिन्दी काव्य-परम्परा मे आए हुए प्रतीको मे सबसे अधिक सख्या दाम्पत्य-जीवन के प्रतीको की है। इनसे हिन्दी-साहित्य बहुत समृद्ध है। प्रतीक-योजना का चरमोत्कर्ष सन्त-साहित्य मे हुआ है।

प्रतीको मे अचेतन मन का पूर्ण चित्र अन्तर्हित होता है। कभी इनमे दमित इच्छाओ की अभिव्यक्ति होती है और कभी इनके माध्यम से परम्परानुगत जातीय एव सास्कृतिक जीवन के आदर्शों का प्रतिबिम्बन होता है। जिस प्रकार बीज मे सम्पूर्ण वृक्ष का विस्तार छिपा रहता है, उसी प्रकार प्रतीको मे आन्तरिक मन की सम्पूर्ण भाव-सृष्टि अन्तर्हित होती है। किसी कवि के प्रतीको से उसके वैयक्तिक सौन्दर्य-बोध, अनुभूति, रुचि एव जातीय सस्कार तथा सांस्कृतिक विश्वास एव आदर्शों का अध्ययन किया जा सकता है।

प्रतीक का मनोविज्ञान

मनोविज्ञान शास्त्र मे प्रतीको पर एक भिन्न दृष्टि से विचार हुआ है। अचेतन मन मे कुछ अतृप्त वासनाए दबी पडी रहती है। ये प्रायः काम-वासना से सम्बन्धित होती है। वे प्रेममूलक इच्छाए प्रतीको के माध्यम से व्यक्त होती है। अतएव प्रतीक अचेतन मन की दमित इच्छा एव आकाक्षाओ के साकेतिक चिह्न है। मानव के हृदय मे जो कुछ गुप्त मनोविकार है वे प्रतीको मे सम्पूर्ण रूप से आकार ग्रहण कर लेते है। इस प्रकार प्रतीको से आन्तरिक इच्छाओ की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। इससे दो बाते सिद्ध होती है। पहली यह कि दमित इच्छाए चित्रोपम रूप धारण करती है तथा दूसरी यह कि प्रच्छन्न वासनाओ को एक भिन्न प्रणाली द्वारा व्यक्त करने के लिए प्रतीक सबसे अच्छा माध्यम है। इस प्रकार प्रतीक छिपी हुई वासना का समग्र स्थानापन्न है। युग की दृष्टि इससे भिन्न है। युग का कहना है कि हर एक प्रतीक किसी न किसी मनोवैज्ञानिक नियम या सिद्धान्त को व्यक्त करता है तथा वह सिद्धान्त जीवन के लिए आदर्शभूत होता है। युग प्रतीक को मात्र स्थानापन्न नही मानते है, वे उसे भावना का लक्षक समझते हैं। वे कहते है—'मनोविज्ञान को हर एक चेष्टा या क्रिया प्रतीकात्मक होती हैं जबकि हम यह मान लेते हैं कि उससे किसी महान् प्रयोजन की अभिव्यक्ति होती है। यह प्रयोजन तात्कालिक बोध के लिए अगम्य होता है। जैसे ईसाई धर्म मे क्रास का प्रतीक एक शारीरिक चिह्न का द्योतक है, किन्तु उसमे जो एक अज्ञात रहस्य की भावना अन्तर्निहित है, वह प्रतीकात्मक है[1]।'

१—सी० जी० युंग : साइकालाजिकल टाइप्स, चैप्टर ११, पृ० ६०३।

फ्रायड ने जो प्रतीक की व्याख्या दी है, उसमे काम-वृद्धि के प्रकाशन को अतिशय प्रधानता मिल गई है। फ्रायड के विचार से मनुष्य की चेष्टाए और क्रियाए मात्र उसकी यौन-वासना के प्रतीक-स्वरूप होती है। इनके द्वारा वह प्रच्छन्न रूप से अपनी दमित इच्छाओ की तृप्ति कर लेता है।

प्रतीक का सबंध केवल कामवासना से जोडना उचित नही है, क्योकि मानव का चरित्र विविध वृत्तियो से सघटित हुआ है तथा काम-वृत्ति के सदृश आत्म-प्रकाशन की प्रवृत्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। अतः मानव-प्रवृत्तियो के भेद से प्रतीको के भी अनेक भेद हैं—धार्मिक प्रतीक, नैतिक प्रतीक, शृ गारिक प्रतीक, आत्म-स्थापन के प्रतीक आदि। इस प्रकार भावानूभूति की विविधता से प्रतीको के भी अनेक भेद हो जाते है। कला के प्रकाशन मे ऐडलर ने मात्र-हीनता की भावना को ही स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस व्यक्ति मे शारीरिक या आगिक हीनता होती है, वह उसकी प्रकारान्तर से पूर्ति करता है। उस अभाव की पूर्ति के लिए वह सतत उद्योग करता रहता है तथा विशेषीकरण की ओर उन्मुख होता है। भावात्मक प्रतीक-विधान के मूल मे ही वृत्तियाँ प्रधान रूप से क्रियाशील रहती हैं।

काव्य के प्रतीको के अध्ययन के लिए पहले कवि को भाषा के अनुशीलन की आवश्यकता है। भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन होती है। प्रतीको मे भावो का ही प्रतिबिम्बन होता है। ये अचेतन मन के व्यापारो को अविकल रूप से अभिव्यक्त करते है। किसी कवि के काव्यात्मक प्रतीको के द्वार से उसके मनो-भवन को पूर्ण झाकी हो सकती है। छायावादी कवियो की प्रतीक-योजना अत्यन्त मनोरम एव भावाभिव्यजक होती है।

हो गया था पतझड, मधुकाल,
पत्र तो आते हाय, नवल।
झड गए स्नेह-वृन्त से फूल,
लगा यह असमय कैसा फल॥

—उच्छवास—पन्त

इस छन्द मे पतझड, मधुकाल, पत्र, वृन्त, फूल, फल प्रतीक है। इसमे पतझड से वियोग, मधुकाल से सयोग, पत्र से प्रेमोदय, वृन्त से हृदय, फूल से सुख, असमय के फल से दुःख का भाव अभिप्रेत है। मधुऋतु मे तरु की डाली पर नवाकुर छिटकते है, फिर नवीन किसलय दल, फिर फूल, तत्पश्चात् फल, किन्तु यह कैसा व्यतिक्रम। मधुकाल पतझड मे परिवर्तित हो गया। इसमे मग्न

प्रेम की व्यजना है। ये प्रनीत भावो की सशक्त व्यजना करने मे पुर्ण रूप से समर्थ है।

नवोढ़ा बाल लहर,
अचानक उपकूलो के।
प्रसूनो के ढिग रुक कर,
सरकती है सत्वर।

—आसू—पन्त

इसमे 'बाल लहर' मुग्धा का प्रतीक है। मुग्धा पति के समीप जाते समय लज्जा के कारण ठिठक कर चलती है, कभी रुककर और कभी तेजी से। पन्त के छवि-चित्र बडे मधुर एव व्यजक होते हैं।

रहस्यात्मक कविताओ मे प्रेम के प्रतीको का अधिक व्यवहार हुआ है—

स्नेहालिगन की लतिकाओ की झुरमुट छा जाने दो।
जीवन धन ! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो॥

—लहर—प्रसाद

इसमे झुरमुट, जले जगत और वृन्दावन क्रमशः निविड प्रेम, दुखी जीवन एव सुख के आवास के प्रतीक हैं।

सौन्दर्य के प्रतीक भी अत्यन्त सुन्दर है—

ओ विभावरी।
चाँदनी का अगराग,
माँग मे सजा पराग
रश्मितार बाँध मृदुल
चिकुर भार री !

—महादेवी

विभावरी किसी अलौकिक सुन्दरी का प्रतीक है। अगराग और चिकुर-जाल क्रमशः चाँदनी और रश्मिजाल के प्रतीक हैं। इस सौन्दर्यमय प्रतीकविधान मे अपार्थिव सौन्दर्य का चित्रण है।

छायावादी कवि जिन प्राकृतिक प्रतीको को उपयोग मे लाते हैं, उनसे किसी न किसी मानवीयभावना की अभिव्यक्ति होती है। ये प्रतीक आभ्यन्तर प्रभाव साम्य के आधार पर निर्मित हैं, जिससे यह काव्यशैली अत्यन्त समृद्ध है।

उषा, प्रभात, मधुकाल से क्रमशः सुख, आनन्द, प्रफुल्लता आदि भावो की व्यजना होती है। इसी प्रकार शूल-फूल, अश्रु-हास के प्रतीको से दु.ख-सुख के भावो की अभिव्यक्ति होती है। कुन्द और रजत शुभ्र के, मधु माधुर्य का, स्वर्ण-दीप्ति या कान्ति का, अन्धकार या छाया अवसाद का, झझा, तूफान मानसिक आकुलता या क्षोभ के, झकार भाव-तरग का, सगीत या मुरली का स्वर भाव-प्रवाह के प्रतीक हैं। छायावादी काव्य के प्रतीको मे लाक्षणिकता और अन्योक्ति पद्धति का ही विशेष रूप से आश्रय लिया गया है।

कवि की कला मात्र कल्पना ही नही है, उसमे जीवन का सत्य निहित होता है। प्रगतिवादी कवियो के प्रतीक-विधान मे जीवन के यथार्थ का सजीव चित्रण पाया जाता है। पतझड, ताडव, चट्टान, लालरग, नई फसल आदि प्रतीक मानव जीवन की दरिद्रता, परतत्रता, विनाश, बाधा, क्रान्ति तथा नवजीवन के व्यजक है। शोषक के स्थान पर जोक, सर्वहारा के स्थान पर हड्डियाँ, दकियानूसी लोगो के स्थान पर मिट्टी के ढेले आदि प्रतीक व्यावहारिक जीवन की यथार्थता को प्रकाशित करते है। इनमे जीवन का कठोर सत्य व्यजित होता है।

कवि वस्तु-जगत् मे जिन फलो से वचित रहता आया है, उन्हे वह काल्पनिक जगत मे प्राप्त कर लेता है। काव्य मे कवि की आत्मा का प्रतिबिम्ब झलकता है। देखने मे कविता भले ही वाह्यार्थ निरूपक हो, वस्तुतः उसके प्रतीक अन्तर्वृत्ति निरूपक ही होते हैं। यह मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि कला मे मानव-हृदय की आभ्यन्तर वृत्तियाँ ही प्रतीको मे रूपायित होती है।

किसी काल के प्रतीको के अध्ययन से व्यक्तिगत अभिरुचि के साथ साथ युगगत प्रभावो का भी अध्ययन किया जा सकता है। प्रतीक जहाँ एक ओर कवि के मानस को प्रत्यक्ष कराने मे सहायता करते हैं, वहा दूसरी ओर ये कवि के हृदय पर पडने वाले युग-विशेष के सस्कारो के भी परिचायक होते है। प्रसिद्ध मनोविज्ञान शास्त्री युग के अनुसार कला मे युग की अभिव्यक्ति होती है। वास्तविक कला मे हृदय के गभीर एव सार्वभौम विचारो का प्रकाशन होता है और इन भावो को व्यक्त करने वाले प्रतीक ही सार्थक है। वह कला निकृष्ट कोटि की है जिसमे मात्र कवि के व्यक्तिगत जीवन की कुंठाओ एव दुर्बलताओ की ही अभिव्यक्ति होती है[1]।

१—डा० पद्मा अग्रवाल : सिम्बोलिज्म, ए साइकालाजीकल स्टडी, पृ० ११६

प्रगतिवादी कवियो की दृष्टि भविष्य के नव-निर्माण की ओर है। इन्हे प्राचीन रूढियो तथा परम्पराओ मे बिल्कुल विश्वास नही है। अतीत की सस्कृति इनके निकट जड, अन्ध विश्वासपूर्ण एव अगतिशील है। ये कवि मार्क्स-वादी आर्थिक व्यवस्था मे पूर्ण विश्वास रखते है तथा समाज मे प्रतिक्रियावादी तत्वो का उन्मूलन करना चाहते है। इसके लिए क्रान्ति अनिवार्य है। इनकी प्रतीक-पद्धति मे क्रोध, जुगुप्सा, अमगल, व्रीडा, विक्षोभ, आक्रोश तथा पुरातन प्रथाओ के प्रति विद्रोह का स्वर सहस्रधाराओ मे फूट पडा है।[1] दिनकर, नरेन्द्र, सुमन, अचल, केसरी, रागेयराघव, भारती, रामविलास, माचवे, नरेशकुमार, गजानन, नागार्जुन के प्रतीको मे इसी प्रकार के भावो की व्यजना मिलती है।

प्रतीक विधान की दृष्टि से आलोच्यकालीन काव्य बहुत सम्पन्न है। मनोविज्ञान दृष्टि से इस काल के प्रतीको का विभाजन दो श्रेणियो मे हो सकता है। (१) यौन-वासना सम्बन्धी प्रतीक तथा (२) सामाजिक यथार्थ सम्बन्धी प्रतीक। छायावादी काव्य के सौन्दर्यमय प्राकृतिक प्रतीको मे वैयक्तिक यौन-परिकल्पनाओ तथा परम्परानुगत नैतिक आदर्शों का प्रतिबिम्बन प्रधानता से हुआ है। पन्त के सौन्दर्य प्रतीक, प्रसाद के माधुर्य प्रतीक, निराला के सास्कृतिक नैतिक प्रतीक एव महादेवी के रहस्यात्मक प्रतीको मे वैयक्तिक भावनाओ तथा युग-युग के सस्कारो का समवेत स्वर है।[2] प्रगतिशील काव्य के प्रतीको मे यौन-कुठाओ तथा सामाजिक मूल्यो का यथा तथ्य चित्रण है। इनमे एक ओर यौन-विकृतियो की निश्छल अभिव्यक्ति है और दूसरी ओर प्राचीन परम्परा, सस्कृति, आभिजात्य पूँजीवाद, साम्राज्यवाद के प्रति विद्रोह का स्वर है। इन प्रतीको के लिए कल्पना ने भौतिक जीवन के पार्श्वों का ही स्पर्श किया। इसलिए इसमे मार्मिकता है।

प्राचीन हिन्दी-साहित्य की परम्परा मे इस प्रकार के प्रतीको का कभी व्यवहार नही हुआ है। न ये परम्परागत प्रतीको के नये विकास के रूप मे व्यवहृत हुए हैं। ये सर्वथा नये जीवन-बोध, नई परिस्थिति एव नये सामाजिक सम्बन्धो की उपज है। लाक्षणिक एव अन्योक्ति प्रधान प्रतीको की एक विशाल सृष्टि छायावाद-रहस्यवाद युग मे ही हो चुकी थी। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्यधारा मे बिलकुल नये प्रकार के प्रतीको का प्रयोग पाया जाता है। इनमे

१—देखिए परिशिष्ठ, पृ० ५५१।

२—दखिए, परिशिष्ठ, पृ० ५४८।

सामयिकता की छाप अधिक है तथा भौतिक जगत् के स्थूल पदार्थों से इनका सचयन हुआ है। नये प्रतीको के निर्माण की ओर प्राय: शत-प्रतिशत कवियो की चेतना सजग है। इसी से नयी कविता प्रतीक-योजना की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। किन्तु अतिशय बौद्धिकता के कारण इन प्रतीको मे अस्पष्टता है तथा रोचकता का अभाव है। किन्तु जो प्रतीक व्यावहारिक जीवन से चुने गए हैं, उनसे भाव-बोध मे पूर्ण सहायता भी मिलती है।

भाषा

आलोच्यकाल के प्रारभ से ही काव्य-भाषा का स्थान खडीबोली ग्रहण कर चुकी थी। अतएव सभी कवि इसी के माध्यम से अपने भावो को अभिव्यक्ति देने लगे। काव्य भाषा के रूप में गृहीत हो जाने पर खडीबोली की स्वकीय परम्पराओ का विकास हुआ। उन्ही का यहाँ अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ व्रजभाषा मे भी आधुनिक काल मे काव्य का सृजन हुआ है, जिसका पर्याप्त महत्व है, किन्तु यहाँ व्रजभाषा की परम्पराओ का अध्ययन इष्ट नही है, अतएव उस पर विचार नही किया गया है। अवधी मे भी कृष्णायन जैसे महाकाव्य का प्रणयन हुआ है, किन्तु विषय से बाहर होने के कारण उसको भी छोड दिया गया है। काव्य-साहित्य की प्रधान भाषा होने के कारण यहाँ केवल खडीबोली की परम्पराओ का ही अध्ययन किया जाता है। यहाँ भाषा से तात्पर्य साहित्यिक खडीबोली से है।

भाषा के विचार से आधुनिक काव्य-भाषा खडीबोली मे प्रधान रूप से नीचे लिखे प्रयोग मिलते है—

१—सन्धि समासयुक्त सस्कृत गर्भित भाषा
२—साधारण बोलचाल की भाषा :—
उर्दू मिश्रित भाषा, व्रजभाषा
३—अग्रेजी के शब्द तथा छायानुवाद
४—शब्द-शिल्प, नए शब्दो की रचना
५—लाक्षणिक पद-प्रयोग
६—लोकोक्ति एव प्रोक्ति (मुहावरे) चमत्कार
७—द्विरुक्त पद
८—ध्वन्यात्मक शब्द

सस्कृत तत्सम शब्द प्रधान भाषा की शैली नई नही है। तुलसी की विनय पत्रिका, रामचरितमानस और केशव की रामचन्द्रिका मे भी इसके दर्शन मिलते है। द्विवेदी युग मे भाषा-सुधार का आन्दोलन चला, जिसके फलस्वरूप फिर उसी भाषा-शैली की काव्य के क्षेत्र मे प्रतिष्ठा हुई। आचार्य द्विवेदी ने 'रसवती, ऊर्जस्विनी, परिमार्जित और तुली हुई भाषा मे' कविता करने के लिए रचनाकारो को प्रेरित किया था। उन्होने स्वय इस प्रकार की रचना आरभ

की थी। उनकी स्थापित की हुई शैली का अनुसरण करनेवाले कवियो में अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पांडेय मैथिलीशरण गुप्त आदि मुख्य हैं।

सस्कृत तत्सम प्रधान भाषा-शैली के छन्दो में तीन बातें विशेषत: पाई जाती है—(१) सन्धि-युक्त पद (२) समासान्त पदावली और (३) ह्रस्ववर्ण का दीर्घवत् उच्चारण।

समुत्फुल्ल, दुश्चिन्ता, जनकागजा,[१] अत्युज्ज्वला, हृदयापहारी, सोत्क्रोश[२] शैलाधि, निद्राभिभूत, तमसावृता, निष्प्रतिभ, ध्यानावस्थित,[३] विश्वेश्वर आदि पद सन्धियुक्त है, विधि-विडम्बना-विवश; तुषार-प्रपात, रौप्य-धौत; एणदृशी, भारत-विजय-वैजयन्ती,[४] शुभ्रा-ज्योति-किरीट-मडित-शिखा, वारिधि-वीचि-विचुम्बित[५] आदि सामासिक पद हैं तथा मिलिताक्षर पद के पहले ह्रस्व वर्ण का दीर्घवत उच्चारण पाया जाता है।[६]

१—जब रथ से थी उतर रही जनकांगजा— वैदेही वनवास

२—सोत्क्रोश पार्श्व-परिवर्तन से सखी के
है तारतम्य मिटता सुख-स्वप्न का जो।
—सिद्धार्थ

३—ध्यानावस्थित विश्वेश्वर का
तेजोमय मंजुल मुख।
—गोपालशरण सिंह—जगदालोक

४—भारत-विजय-वैजयन्ती फहराने जग मे।
और स्वयं दिग्विजयी-गौरव पाने जग में।।
अंगराज ७।१

५—पद-तल-वारिधि-वीचि-विचुम्बित, शीश हिम-मुकुट-मंडित।
जगदालोक, पृ० ६।

६—निदाघ ज्वाला से विचलित हुआ चातक अभी
भुलाने जाता था निज विमल वंश व्रत सभी
दिया पुत्र द्वारा नव बल मुझे आज तुमने।
सुसाक्षी हैं मेरे विदित कुल देव ग्रहपति।
—मैथिलीशरण गुप्त

इस छंद के 'घ' 'श' 'त्र' 'व' और 'ति' को गुरुवत् उच्चारण करना पड़ता है।

सन्धि समास युक्त सस्कृत शब्द-प्रधान शैली का प्रयोग अधिकतर वर्णवृत्तों में ही पाया जाता है, क्योकि वर्णवृत्तो के लिए समासान्त शैली ही अधिक उपयुक्त होती है। हरिऔध के प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, अनूप शर्मा के सिद्धार्थ और वर्द्धमान, जयशकर 'प्रसाद' की कामायनी, निराला के तुलसीदास और राम की शक्ति-पूजा, पन्त की परिवर्तन और हिमाद्रि, आनन्दकुमार का अगराज एव गोपालशरण सिह का जगदालोक आदि काव्यो मे सस्कृत-गर्भित तत्सम शैली का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। वर्तमान प्रगतिवाद-प्रयोगवादी कविता मे इसका बिलकुल अभाव हो गया है।

साधारण बोलचाल की भाषा

सस्कृत शब्द-बहुला-भाषा-शैली से भिन्न साधारण बोलचाल की शैली है। यह परम्परा दो रूपो मे विकसित हुई है—एक उर्दू मिश्रित भाषा का रूप और दूसरा व्रजभाषा के शब्दो का स्वच्छन्द प्रयोग।

उर्दू मिश्रित-भाषा को प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियो मे सबसे अधिक है। छायावादी-रहस्यवादी काव्य-क्षेत्र मे उर्दू के शब्द पूर्णरूप से बहिष्कृत है। नयी कविता मे सभी कवियो ने उर्दू शैली को बेहद अपनाया है, जिसके फलस्वरूप भाषा का स्तर गिर गया है। उसमे कृत्रिमता आ गई है।

इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप फसल, रोज, आस्मा, परवाना, शमा, इसरार, मेहमान,[1] मेजमान, साकी, सुराही, प्याला, महफिल, खूनी,[2] फौलादी पजा, सनम, खयाल, आस्तीन, हकीकत, जलवा,[3] मशाल, निशान,

---

१—ये मेहमान ये मेजमान
साकी सुराही का समान
ये जलसा महफिल सभी तान
ये करते हैं किस पर गुमान।
—सोहनलाल द्विवेदी

२—खूनी होते हैं जगत के सब्जरंग
यह दुहाई दे रही है मेहदी।
—रामकुमार वर्मा

३—दें न हलवे छीन तो करवे न लें
नाथ कब तक देखते जलवे रहें
कब तलक बलवे रहेंगे देश मे
कब तलक हम चाहते तलवे रहें। —हरिऔध

जिन्दगी,[1] मासूम, परवाह, इन्तजारी, दर्द, बेकरारी, बेदिल, नशीला चाँद, मालिश, पेशानी, चरागाह, चाँदनी, गुनाह, मजबूर, बेदाग, महज, तूफान, महताब, खुशबू, गुल, तस्वीर, तराना, अरमान, फफोले, छाले, इन्सान, बेहाल, नाखुश, चिराग आदि शब्दो का स्वच्छन्दता से प्रयोग हुआ है।

हरिऔध के चौपदो मे, दीन जी के पचरत्न मे, सनेही जी के काव्य मे, बच्चन, अचल, सुमन, भारतभूषण, गिरिजाकुमार, भारती, शमशेर आदि कवियो की रचनाओ मे इस परम्परा का स्वच्छन्दता से विकास हुआ है। वर्तमानकाल की प्रयोगवादी कविताओ मे उर्दू के शब्दो का छूट से प्रयोग हुआ है।

साधारण बोलचाल की भाषा मे ब्रजभाषा के शब्दो का भी स्वच्छन्दता से प्रयोग हुआ है। शत-प्रतिशत कवियो ने इस ओर अपनी रुचि प्रदर्शित की है।

हुलास[2], पुरवैया, हौले-हौले, चन्दा, साझ-सकारे, रेवड़, एड लगाना, झूमका, चौवार, हिन्नी पैंना, डकराना, पैजनियाँ, कीच-काँद, घिनौना, नन्ही-नन्हे, भरन, ऊफना, अचक-पचक, धरती[3], आँखे चुधियाना, पछी, पट बीजना, पोखर, ओखा, खोटा, बहू-बेटियाँ, मट्ठा, मटकी, कलेऊ, हारी-बीमारी, अल्हड, रूठना, पैने, घनघोर, फुहार, लहुरे-जेठे, चिंघाडना, चित्त-पट्ट, गली-गली, सनी हुई, बसेरा, आगी, खुल्लमखुल्ला, बैरागी, धसकाना, मसकना, धुआँधार, आँख मीचना, सरकना, ढेला, दोठि[4], झकझोर, लीपना, झख मारना, रार, टोना,

---

१—इन फीरोजी होठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी।
—भारती

२—सुछवि के छाया वन की साँस
भर गई इनमे हाव, हुलास।
—पन्त

३—दूध-धुला आकाश दीखता लिपी फेन से धरती,
सुघर चाँदनी लिपे-पुते मे पाँव न धरती, डरती
अचक-पचक यों धर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने।
—नरेन्द्र

४—दीठि बँधी अंधेरा उजाला हुआ
सेंधों का ढेला शकरपाला हुआ।
—निराला

डिठौना, पसारना, सलोना, दरस-परस, वाती, रौंदना, लुढक-पुढक, ओढ़नी[1], भिनसार, चौंतरा, अंगिया, चुनरिया, तती[2], दईमारे[3], घाघर, सेत-मेत आदि आदि शब्दो के प्रयोग खडी बोली की रचनाओं के बीच में अनूठा सौन्दर्य दिखा रहे हैं।

आलोच्यकाल के अन्तर्गत यद्यपि खड़ी बोली ने काव्य-भाषा का स्थान प्राप्त कर लिया था तथापि व्रजभाषा की कोमलकान्त पदावली का मोह कवियो से नही छूटा था। साकेत, वैदेही-बनवास, नूरजहाँ, विक्रमादित्य, कामायनी जैसे महाकाव्यो में भी व्रजभाषा के शब्द खडी बोली काव्य के बीच नग की भाँति जड़े मिलते हैं। वर्तमान काल मे तो क्षेत्रीय बोलियो के शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ गई है। अतः सभी कवि व्रजभाषा के शब्दो से अपनी कविता की शोभा बढाते हैं।

कविता को जन साधारण की पहुँच के अन्दर लाने के लिए हर एक कवि प्रयत्नशील रहता है। इसके लिए सर्वसाधारण मे प्रचलित शब्दावली को प्रयुक्त करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी भाषा मे व्रजभाषा, अगरेजी एवं उर्दू सभी प्रकार के रोचक शब्दो को स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण किया जाता है।

इस प्रकार की भाषा मे लेना-देना, बोझीला, तीर-कमान, सौदा, मनचाही, मीनमेख, आटादाल, टहनी, ठिठोली, उलझन, पुतले, अँधेरी[4], ढहना,

---

१—इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को बेधकर
आ रही ऊपर नये युग की किरन।
—हरिनारायण व्यास

२—दीखें जिसमें राई-रत्ती
खिल जाती है पत्ती पत्ती
ठंडी न पड़ बनी रह तती।
—मैथिलीशरण : साकेत

३—सिहरते से, पंगु, टुंडे
नग्न, बुच्चे, दईमारे पेड़।
—अज्ञेय

४—युगों की सभी रूढ़ियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अंधेरी निशा मे मशालों सी जलती
चली आ रही है बड़ी लाल सेना।
—सुमन

छुट्टी, नोकझोक[1], रोक-टोक, सर्राटे, सन्नाटा, अकड़[2], चिलचिलाती धूप, लाल चिनगारी, चहल-पहल, पिया की बाँह[3], चौराहा[4] आदि आदि प्रचलित भाषा के शब्द हैं।

साधारण बोलचाल की भाषा मे काव्य रचना करने की प्रवृत्ति अधिकतर राष्ट्रीय कवि, प्रगतिवादी एव प्रयोगवादी कवियो की रही है। इनमे एक भारतीय आत्मा, नवीन, सुभद्राकुमारी, अचल, बच्चन, नरेन्द्र, गुरुभक्त सिंह दिनकर, नैपाली, गोपालशरण सिंह, शमशेर, भारती, भवानीप्रसाद, रमानाथ अवस्थी आदि मुख्य हैं।

अंग्रेजी शब्द विन्यास

इसके दो रूप मिलते हैं। एक अग्रेजी पद, पदाश एव वाक्यो का छायानुवाद और दूसरा अग्रेजी शब्दो का शुद्ध रूप मे प्रयोग। पन्त मे यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है—

'बाँसो की झुरमुट
सन्ध्या की झुटपुट
है चहक रही चिडियाँ
टी बी टुट टुट।[5]

—पन्त

१—तब सरस्वती सा फेंक साँस। श्रद्धा ने देखा आसपास।
उलझन की मीठी रोकटोक। यह सब उसकी है नोंक-झोंक॥

—प्रसाद

२—हूँ मोट खींचता, लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ, ब्रिटिश अकड़ का कूआ।

—एक भारतीय आत्मा

३—छाया करती रहे सदा तुझको सुहाग की छाँह,
सुख दुख मे ग्रीवा के नीचे रहे पिया की बाँह।

—दिनकर

४—इस जीवन के चौराहे पर दो हृदय मिले भोले भाले,

—गोपाल सिंह नैपाली

5—"Of everything that stirs she dreameth wrong And pipes her, 'tweet-tut' fearsthe whole day longs."

अब न कह जग रिक्त है यह
पक ही से सिक्त है यह
देख तो रज मे अचचल
स्वर्ग का युवराज,
तेरे अश्रु हो अभिषिक्त है यह[१]

—महादेवी

हे विधि फिर अनुवादित कर दो[२]

—पन्त

इन कविताओ मे अग्रेजी का छायानुवाद झलक मारता है। इसी प्रकार स्वर्गीय प्रकाश,[३] अजान नयन,[४] सुवर्ण का काल,[५] स्वप्निल मुसकान,[६] सुनहले स्पर्श,[७] रुपहले,[८] नया पन्ना उलटे इतिहास,[९] रेखाकित,[१०] यत्रकाल,[११] दबी वासना,[१२] और भग्न हृदय[१३] आदि-आदि पदो के प्रयोग अग्रेजी वाक्याशो के अनुवाद मात्र हैं।

अग्रेजी के शुद्ध शब्द भी बहुत सी कविताओ मे ज्यो-के-त्यो लिए गए हैं। ऐसे शब्दो मे सिविल लाइस, शाक, सेक्स, साइस, मिनट, केपीटलिस्ट,[१४]

1—"Toll me not in mournful numbers
Life is but an empty dream."

२—अनुवादित कर दो (ट्रान्सलेट)
३—डिवाइन लाइट
४—इनोसेन्ट आई
५—गोल्डेन एज
६—ड्रीमी स्माइल
७—गोल्डेन टच
८—सिलवरी
९—टु टर्न ए न्यू लीफ इन हिस्ट्री
१०—अन्डर लाइन्ड
११—मैशीन एज
१२—सप्रेस डिजायर
१३—ब्रोकेन हार्ट
१४—डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट—निराला

क्रीम, सेट, सिल्क, प्लेटफार्म, रेडियम,[1] गैस, होम, स्वीट पी, बाथरूम आदि आदि अनेक शब्द है।

कविताओ के शीर्षक भी अग्रेजी के शब्दो मे दिए गए है। गिरिजाकुमार की ऐसाशिएशस, अज्ञेय की पार्क की बेच और एक आटोग्राफ, उदयशकर भट्ट की रिफ्यूजी और धर्मवीर भारती की एक फैंटेसी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

नए शब्दों की रचना—शब्द-शिल्प

नए शब्द-शिल्प की भी एक परम्परा है। सज्ञा शब्दो से नये प्रकार के विशेषणो की रचना की गई है। इसमे से अधिक प्रचलित विशेषणो को छायावादी काव्य मे से चुन कर दिया जाता है।

संज्ञा	विशेषण
उर्मि	उर्मिल
ऐंच	ऐंचीला[2]
जटा	जटिल
तन्द्रा	तन्द्रिल
तुन्द	तुन्दिल
धूम	धूमिल
पक	पकिल
पाशु	पाशुल
पृथु	पृथुल
फेन	फेनिल
बोझ	बोझिल
रोम	रोमिल
वर्त	वर्तुल
बात	बातुल
स्वर्ण	स्वर्णिल, स्वर्णिम
स्वप्न	स्वप्निल

१—उन्हीं रेडियम के अकों की लघु छाया पर
दो छाहों का वह चुपचाप मिलन था।

—गिरिजा कुमार

२—'खैच ऐचीला-भू-सुरचाप"

—पन्त

वर्णित, चर्चित, चित्रित, तरलित, तापित, तारकित, थकित, द्रवित, दीपित, धूसरित, निद्रित, पल्लवित, पीडित, पुष्पित, पुलकित, प्रमुदित, फलित, मर्दित, मीलित, ऊर्जित, मजरित, रचित, रजित, लु ठित, विस्मित, विकसित, श्वसित, शोषित, शापित, सचित, सुरभित आदि आदि। अन्य प्रकार के विशेषणो का विधान भी पाया जाता है—अलसित, अवसित, अर्पित, अकित, अकुरित, आलोकित, आलोडित, आन्दोलित, उच्छ्वसित, उल्लसित, कुसुमित, कुत्सित, कंपित, खचित, गु जित, ग्रसित, गर्जित आदि।

तीसरे प्रकार का शब्द-शिल्प भी मिलता है—

अग्निमय, कल्पनामय, चिन्मय, जलमय, श्यामय, नीलिमामय, भावनामय, मधुमय, मेघमय, रहस्यमय, रगमय और वेदनामय[१] आदि।

छायावादी काव्य के बहु प्रचलित शब्द नीचे दिये जाते हैं—

अवगु ठन, अभिशाप, अपलक, अमृत, अचल, अभिसार, अन्वेषण, अजलि, अन्तर्पट, अश्रु, आलिगन, आह्लाद, आरती, इन्दु, उच्छ्वास, उन्मेष, उषा, ऊर्मि,उल्लास, एकाकी, कलिका, किसलय, कर्णफूल, कुन्द, कूल, कौतुक, गुजन, चितवन, छुईमुई, जजर, ज्योत्स्ना, झोना, झकार, झझा, तार, तराना, नीरव, नीड, निर्झर, पल्लव, पवमान, पराग, पदचाप, पतझड, पाटल, पिक, प्रणय, प्रभात, प्रतिध्वनि, मलय, मधु, मधुप, मधुमास, मधुरिमा, मदिर, महावर, मझदार, मुकुल, मृदुल, मृणाल, मलय, रश्मि, रजत, रजकण, रूपहले, रुनझुन, लावण्य, लास, लोल, वातायन, विलास, विहार, वीणा, वेणु, शाश्वत, शूल, शृ गार, शेफालिका, शतदल, सजल, स्पन्दन, सिहर, सोकार, स्फीत, ससृति, स्फुलिंग, स्मृति, हास, हिमकण, हृतत्री, हृद्वीणा, क्षितिज आदि आदि।

छायावादी कवियो का शिल्प-विधान अत्यन्त मोहक है। इससे काव्य मे स्वारस्य की अभिवृद्धि हुई है तथा खडी बोली मे काव्योपयुक्त लालित्य का संचार हुआ है। पन्त जी का शब्द-शिल्प सबसे अधिक सुन्दर एव चित्ताकर्षक है। इसमे अन्य कवियो का भी अतुल योगदान है।

लाक्षणिक पद-प्रयोग

भाषा की लाक्षणिक शक्ति का विकास आलोच्यकालीन कविता की अन्यतम विशेषता है। नीचे लाक्षणिक प्रयोगो के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

अलसित पलक, अलक नयन, अधीर नूपुर, आकुल तान, आशा-पथ,

१—इनमे संस्कृत का 'मयट्' प्रत्यय है।

आँसू की हिलोर, आँसू रुकी मचलती आँखें, उच्छृंखल यौवन, उमड़ती जवानी, उदास आकाश, उमड़ती बालू-सी-मृग तृष्णा में एक 'ओसिस' सी अर्थात् स्त्री, काला बुखार, क्वारी रातें, गुलाबी सुधि, गूँजता था सुनसान, गर्वोन्नत यौवन, छवि के सपनो की रम्य शयन-शिला (स्त्री), जीवन-वसन्त की पिक (स्त्री), जग-तरंगिनी (स्त्री), जीर्ण जगत, जग का निश्वास, जोडकर कण कण कृपण आकाश ने तारे सजाए (राम कुमार वर्मा). झुकेगा कल गुंजित मधुमास, (पन्त) डूबता दिन, भीगती सी शाम, तरल हँसी, तृषित, गोद, तरल तिमिर, दिया की जोत, निद्रित जीवन, निश्चल सागर की आत्मा सी शान्त (स्त्री), नीरव गान, निठुर दीपक, नीरव व्यथा, निशा बह गई, डूबे तारे, नीद भरी मदी बयार, पृथ्वी की रगस्थली पुलक-पखिनी, 'पर मेरे जलते गीतो मे होती ठंडक की लहर' (अचल), हलको मे निर्झरिणी मचली (महादेवी), प्रगल्भधारा, फूटा प्रभात-फूटा विहान (भारत भूषण), व्याकुल पनघट, 'मधुराका मुसुक्याती थी' (प्रसाद), मधु-यामिनी मुखरित मुख, 'मुसकाता सकेत भरा नभ' (महादेवी), रूप-सिन्धु की निवासिनी चिर-उर्वशी (अचल), रूप की मोहक खान, रागमयी सन्ध्या, लहराता सुरभित केश-पाश (महादेवी), वेदना की विद्युत्, शशि की सलौनी देह, शारदाय ऊषा सी निष्कलंक (अचल), शिथिल सेज, शीतल चुम्बन, शरवती चितवन, सुधि का दशन, सुरभित लहरो की छाया, सरस प्रवाह, है टूट पड़ा भू पर अम्बर, क्षुब्ध प्रेम का पारावार आदि आदि।

लक्षणा के ये नए प्रयोग किसी नियम के आश्रित नही हैं। इनमे लक्षणा के व्यापार की बहुत दूर तक खीचतान की गई है। कही-कही एक ही पद मे दो-दो लक्षणाओ को गूँथ दिया गया है। इसके लाक्षणिक प्रयोगो मे दुरूहता आ गई है तथा अर्थ का निकालना क्लिष्ट हो गया है। उदाहरणार्थ—

(१) गगन के भी उर मे हैं घाव
देखती ताराएँ भी राह
बंधा विद्युत् छवि मे जलवाह
चन्द्र की चितवन मे भी चाह।

—पन्त

कवि प्राकृतिक वस्तुओ मे भी अभिलाषा की पीडा दिखाना चाहता है। गगन का उर 'कहने से ही लक्षणा का कार्य पूरा हो जाता है, किन्तु उसमे 'घाव' दिखाना लक्षणा मे लक्षणा है। 'हृदय' चेतन प्राणी के होता है, गगन का नही। इसी प्रकार 'घाव' शरीर मे होना है, 'उर' मे नही। किन्तु लक्षणा से यह अर्थ प्राप्त होता है कि गगन का उर भी आशा से पीडित है।

अन्तिम पक्ति में 'चन्द्र को चितवन' एक लक्षणा है तथा 'चितवन मे चाह' का होना, लक्षणा मे दूसरी लक्षणा का व्यापार है। लक्षणा का यह व्यापार किसी नियम के आश्रित न होने से दुरूह हो गया है।

(२) 'करुण भौहो मे था आकाश'

—पन्त

'करुण भौह' से आशय चिन्ता युक्त होने से है, उनमे आकाश का सा विस्तार था। लक्षणा पर लक्षणा है।

(३) ओ अकूल की उज्ज्वल हास,
अरी अतल की पुलकित श्वास
महानन्द की मधुर उमग
चिर शाश्वत की अस्थिर लास।

—बीचि विलास—पन्त

इस बन्ध की प्रत्येक पक्ति के पदो मे दो-दो लक्षणाओ का व्यापार गुँथा हुआ है।

(४) किसकी विकच-वीचि-चितवन पर
अब होता निर्भय अभिसार।

—निराला

इसमे विकच (विकसित) वीचि (तरग) पहली लक्षणा, बीचि की चितवन, दूसरी लक्षणा, चितवन पर अभिसार, तीसरी लक्षणा तथा अभिसार का निर्भय होना चौथी लक्षणा। एक ही पद मे चार लक्षणाओ का जमघट है। कवि की उक्ति यमुना के प्रति है।

(५) मर्म पीडा के हास।'

इसमे 'मर्म पीडा' तक तो ठीक है, किन्तु पीडा मे 'हास' को स्थान कहाँ। यह बेतुकी लक्षणा है।

(६) पवन-धेनु, रवि के पाशुल श्रम अर्थात् बादल।'

इसमे बादल को पवन की धेनु अर्थात् गाय कहा है, क्योकि वायु धेनुओ की तरह बादलो को छितरा देता है। किन्तु यह सादृश्य बेतुका है। रवि के पाशुल अर्थात् धूलि भरे श्रम। इसमे साध्यवसान का कोई आधार ही नही है। क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

(७) हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा।
हरीभरी सी दौड धूप, ओ
जल-माया की चल-रेखा।

—प्रसाद

ये सब चिन्ता के लिए विशेषणी भूत लाक्षणिक उपमान हैं। चिन्ता को अभाव की कन्या बतलाया है। दूसरे पद मे माथे की दु.खद लेखा कहा है। तीसरे पद मे चिन्ता को दौड-धूप तथा चौथे पद मे उसे माया की चचल रेखा बताया है। ये सब गौणी साध्यवसाना लक्षणा के उदाहरण हैं। किन्तु यहाँ मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ किसी प्रकार का सबध न होने से अर्थ की खीचतान करनी पडती है।

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि आधुनिक कवियो के लाक्षणिक प्रयोग अधिकतर दोषपूर्ण हैं, क्योकि इनमे प्रायः लक्षणा का व्यापार घटित नही होता। अतएव ये प्रयोग कही-कही हास्यास्पद से हो गए है।

'सिटी के गूढ़ हुलास,' 'नयन के बाल,' 'क्वारो साँसे' आदि ऐसे ही प्रयोग है।

ध्वनि के प्रयोग

शब्द-शक्ति की दृष्टि से आधुनिक युग की काव्य-भाषा का आश्चर्यजनक विकास हुआ है। लाक्षणिक प्रयोगो का तो प्राचुर्य है ही, व्यग्यार्थ का भी अभाव नही है। प्रयोजनवती लक्षणा मे व्यग्य अवश्य होता है, वह कही पर गूढ होता है, और कही पर अगूढ। वस्तुत. ध्वनि का व्यापार लक्षणा और अभिधा दोनो के आश्रित होता है,। जहाँ लक्षणा के ऊपर आश्रित होता है, वहाँ लक्षणामूला ध्वनि और जहाँ अभिधा के आश्रित होता है, वहाँ अभिधामूला ध्वनि कहलाती है। नीचे उदाहरणो द्वारा ध्वनि के प्रयोगो को स्पष्ट किया जाता है—

(१) 'कमल पर जो चारु दो खजन, प्रथम
पख फडकाना नही थे जानते,
चपल चोखो चोटकर अब पख की
वे विकल करने लगे है भ्रमर को।"

—ग्रन्थि : पन्त

कमल के ऊपर स्थित खजनो का जोडा पहले पख फडकाना भी नही जानता था, किन्तु अब पख की मारो से भ्रमर को व्यथित करने लगा है। इस वाच्यार्थ मे कोई चमत्कार नही है। वस्तुतः इसमे नायिका के दोनो नेत्र खजन है, मुख कमल है, तीक्ष्ण कटाक्षो से निहारना पख फडकाना है तथा भ्रमर प्रेमाजन है। भाव यह है कि नायिका अपने दोनो सुन्दर नेत्रो की चपलता से युवको को अधीन करने लगी है। दूसरा अर्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। इसमे रूपकातिशयोक्ति व्यग्य है। अतएव अलकार ध्वनि है।

(२) "इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे, पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।"

—ग्रन्थि—पन्त

प्रेमी की दृष्टि पूर्व दिशा में उदित हुए चन्द्रमा पर तथा चन्द्र-मुखी (प्रेमिका) पर एक साथ ही पडी। दोनो लाल रग के थे। चन्द्रमा उदयकालीन होने से रक्त वर्ण था तथा प्रेमिका के मुख पर लज्जा की लाली दौड रही थी। चन्द्रमा पूर्व की ओर था, किन्तु प्रेमिका के मुख की शोभा अपूर्व थी। इसमे मुख चन्द्रमा से कही अधिक सुन्दर था, यह व्यग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। व्यतिरेक के द्वारा यह ध्वनित होता है, अतएव यहाँ अलकार ध्वनि है।

(३) "शीतल ज्वाला जलती है, ईधन होता दृग जल का,
यह व्यर्थ साँस चल चल कर, करता है काम अनिल का।"

—आँसू : प्रसाद

ज्वाला शीतल नही हुआ करती, यदि होती है तो वह जल नही सकती। इससे अभिधा का व्यापार बन्द हुआ। लक्षणा से यह अर्थ प्रकाशित होता है कि हृदय मधुर वेदना से व्याकुल है। नेत्रो का जल ईधन नही हो सकता। भाव यह कि नेत्रो मे आँसू भरे हुए हैं। साँसे अग्नि का कार्य नही कर सकतीं। लक्ष्यार्थ यह कि साँसो मे उष्णता है। इस प्रकार यहाँ प्रेमी की विरह-वेदना व्यग्य है। इसमे गूढ व्यग्य प्रयोजनवती लक्षणा है।

(४) "उषा का था उर मे आवास
मुकुल का मुख मे मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव मे भास
विचारो मे बच्चों की साँस।

—आसू : पन्त

इसमे प्रेमिका के सौन्दर्य की ओर सकेत है। प्रत्येक पक्ति मे लक्ष्यार्थ प्रधान है, क्योकि वाच्यार्थ सिद्ध नही होता। 'उषा' से कोमलता, 'मुकुल' से प्रफुल्लता, 'चाँदनी' से मधुरता, उज्ज्वलता एव 'बच्चो की साँस' से भोलेपन का अभिप्राय है। इसमे प्रयोजनवती गूढ़ व्यग्या लक्षणा स्पष्ट है। प्रेमिका की शोभा ध्वनित है।

(५) "हस छोड़ आए कहा, मुक्ताओं का देश ?
यहाँ वन्दिनी के लिए, लाये क्या सन्देश ?"

—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत

इसमे 'मुक्ताओ' का देश और 'वन्दिनी' दोनो पद लाक्षणिक हैं। 'मुक्ताओ' के देश से प्रयोजन मानसरोवर से है, जहाँ हस मोती चुगा करते हैं। 'वन्दिनी' से प्रयोजन है, विरहिणी उर्मिला का। श्लेष के द्वारा 'मुक्ताओ' का अर्थ 'स्वाधीना' भी होता है। विरहिणी को आशा है कि कदाचित् मुक्ताओ के देश से आने वाला हस वन्दिनी को भी मुक्ति का सन्देश सुना सके। वही सन्देश सुनने की विरहिणी की इच्छा है। यहाँ वस्तु ध्वनि है।

(६) 'हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकटक राज्य उसे जब, तब भी ?"

—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत

इसमे भारत की आत्म-ग्लानि ध्वनित है। 'अकटक राज्य' मे व्यजना है। राम की अनुपस्थिति मे अयोध्या का राज्य 'दु:खपूर्ण' है। यहाँ 'अकटक' शब्द अपना अर्थ ही छोड बैठा है, अतएव इसमे अत्यन्त तिरस्कृत लक्षणामूला ध्वनि है।

(७) "ग्राम नही वे ग्राम आज
औ नगर न नगर जनाकर,
मानव कर से निखिल प्रकृति जग
सस्कृत, सार्थक, सुन्दर।

—ग्राम्या : पन्त

यहाँ 'ग्राम' और 'नगर' का दो-दो बार प्रयोग हुआ है। एक समान शब्दो को रखने से पुनरुक्ति दोष होता है, अतएव यहाँ दूसरे ग्राम और नगर का अर्थ, सस्कृत, सार्थक एव सुन्दर से है। आजकल के ग्राम ग्राम नही और नगर नगर नही, क्योकि इनमे सप्रदाय एव जातिवाद का आधिक्य है। इस मे अर्थान्तर सक्रमित लक्षणामूला ध्वनि है।

(८) पावस ही मे धनुष अब, नदी तीर ही तीर।
रोदन मे ही लाल दृग, नौ रस ही मे वीर॥

—वीर सतसई : वियोगी हरि

यहाँ क्षत्रिय वीरो की कायरता एव दुर्बलता पर व्यग्य है। आजकल पहले जैसे धनुर्धर वीर कहाँ है ? अब तो पावस का इन्द्रधनुष ही धनुष है, नदी का तीर

ही तीर है, रोने मे ही आँखे लाल हो जाती हैं तथा नौ रसो मे ही वीर का नाम आता है। वस्तुत. अब वीरो का अन्त हो गया, यह ध्वन्यर्थ व्यजित होता है।

(९) अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।

—निराला

यहाँ 'अबे' 'सुन बे,' 'खून चूसा' तथा 'इतरा रहा' व्यजक पद है। 'गुलाब' पूँजीपति वर्ग का स्थानापन्न है। 'खाद का खून चूसना' मे प्रयोजनवती लक्षणा है, लक्ष्यार्थ है, गरीबो का शोषण करना। इसमे व्यग्य स्फुट है, अतएव यह अगूढ व्यग्य लक्षणा का उदाहरण है। इस छन्द के प्रत्येक शब्द मे व्यग्य है।

(१०) "लाखो क्रोच कराह रहे है, जाग आदि कवि की कल्याणी,
फूट फूट तू कवि कठो से, बन व्यापक निज युग की वाणी।"

—दिनकर

यहाँ 'लाखो क्रौच' का लक्ष्यार्थ है, त्रस्त एव उत्पीडित जनता, 'कल्याणी' के लक्ष्य है, कविता, कवि कठो से फूट पडने मे 'क्रान्ति' का स्वर ध्वनित है। अभिप्राय यह कि शोषित-पीडित मानवता के उद्धार के हेतु व्यापक क्रान्ति आवश्यक है। इसमे वाच्यार्थ से व्यग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। यहाँ भाव ध्वनि है।

(११) 'मेरा पथ तेरे ध्वस्त गौरव का पथ है
और तेरे भूत काले पापो मे प्रवहमान
लाल आग
मेरे भावी गौरव का रथ है।'

—अज्ञेय

इसमे पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध श्रमिक की क्रान्ति का स्वर है। 'लाल आग' क्रान्ति की द्योतक है। 'काले पापो मे लाल आग के प्रवाह' की लक्षणा निश्चय ही क्लिष्ट है, क्योकि आग मे प्रवाहित होने की योग्यता नही। यहाँ पूँजीपति के गौरव को नष्ट कर श्रमिक के विजय रथ को आगे बढाने की ओर सकेत है। किन्तु इनमे लक्षणा का व्यापार सुन्दरता से घटित नही होता। भाषा मे शैथिल्य तथा वाक्य-रचना मे योग्यता का अभाव है।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि आलोच्यकाल की कविता की भाषा मे लाक्षणिक एव ध्वनि के प्रयोगो का विधान प्रचुरता से हुआ है। इससे भाषा की शक्ति का यथेष्ट विकास हुआ है। मध्यकालीन कविता की भाषा मे अलकारो का सौन्दर्य अवश्य था। किन्तु शब्द-शक्ति का अभाव था। भाषा की शक्ति का जितना विकास आलोच्यकाल मे हुआ है, उतना पहले कभी नही हुआ। ध्वनि के सौन्दर्य को समझने वाले कवियो ने यद्यपि व्यग्य के नाम पर अशुद्ध प्रयोग भी कर डाले हैं, तो भी ध्वनि के सुन्दर प्रयोगो का पर्याप्त विकास हुआ है। निष्कर्ष यह कि शब्द शक्ति एव भाषा के सामर्थ्य के विचार से आलोच्यकाल की काव्य-भाषा कही अधिक सम्पन्न है, इसमे सन्देह नही। शत प्रतिशत कवियो ने भाषा की शक्ति के विकास मे योग दिया है।

लोकोक्ति तथा प्रोक्ति चमत्कार

लोकोक्ति एव मुहावरो का प्रयोग करने की और भी बहुत से कवियो की प्रवृत्ति है। यहाँ कुछ प्रोक्ति (मुहावरो) के प्रयोग उदाहरण के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं।

अट्टहास करना, अस्त-व्यस्त होना, आँख चढाना, आँखें धँसना, आँख-कान झूँठे होना, आह उठना, आँख-मिचौनी खेलना, आरती उतारना, आशा के फूल खिलाना, उलटी माला फेरना, आँधे मुह रपटना, चक्र घूमना, छाती खोलना, ज्वाला धधकना, दो बूँद ढलकाना, दीर्घ श्वास छोडना, द्रौपदी का चीर होना, धरा धसकना, धूल बटोरना, धूल छानना, नाच नाचना, नया रग आना, पलक-पावड़े बिछाना, पानी भरना, पेट पीठ से लगना, प्राणो के लाले पडना, पानी देना, भौह चढाना, भौचक रहना, भव-सिन्धु के पार होना, मस्तक ऊँचा करना, मेदिनी फट जाना, मतवाला होना, मुँह जोहना,[1] मुँह पर कालिख,[2] रोम-रोम जलना, लक्ष्य भ्रष्ट होना, विपत्तियो से लड़ना,[3] विजय-पताका झुकना, विजय-सूर्य ढलना, विप्लव का बाजा बजना, सुधा वृष्टि होना,

---

१—"वर्दी फटी, हृदय घायल, कारिख मुख पर, क्या वेश बना ?
आँखें सकुचीं, कायरता के पकिल से सब देश सना ॥
खिचता ही आता है जब से खाली यह तूणीर हुआ।" —नवीन

२—"मुँह जोहता था इतिहास जिस वीर का" —वियोगी हरि।

३—"भय के दीप्तानल में धँस कर उसे बुझा दे पैरों से,
छाती खोल खुले मे अड़कर, विपदाओं के साथ लड़े।"
—सियारामशरण गुप्त

सिर मारना, सुध-बुध भूलना, सिर-माथे, सौ चक्कर काटना, स्मृति टिमटिमाना, स्वप्न बिखरना, हाथ मलना, हृदय उमडना, हृदय के घाव भरना, हृदय टूक-टूक होना, हूक उठना, हार का साँप बन जाना[1] आदि-आदि।

प्रोक्ति (मुहावरे) और लोकोक्तियो का चमत्कार काव्योत्कर्ष मे कितनी सहायता करता है, इसके विषय मे दो मत नही हो सकते। हरिऔध जी ने अपने चौपदो की रचना मे यह चमत्कार प्रदर्शित किया है। उनके चौपदे, प्रोक्तियो[2] के रत्नाकार हैं। इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण, सियारामशरण, गुरुभक्त सिंह, नवीन, प्रसाद, गोपालशरण सिंह आदि की रचनाओ मे प्रोक्तियो का चमत्कार प्रचुरता से मिलता है।

द्विरुक्त पद (वीप्सा)

प्रोक्ति की भाँति द्विरुक्त पदो से भी भाषा के सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है—

कड-कड़, खड-खड, रोम-रोम, शत-शत, राशि-राशि, बुद्‌बुद्, छप-छप, थर-थर, पीउ-पीउ, कुहू-कुहू, कण कण, लघु-लघु, नव-नव, घुल-घुल, युग-युग, काल-काल, जन-जन, हर-हर, मह-मह, लह-लह, श्वास श्वास, प्राण-प्राण, सर-सर, थर-थर, पग-पग, क्षण-क्षण, गद्-गद्, पल-पल, कल-कल, झर-झर, मर-मर, झल-झल, छल-छल, अणु-अणु, खर-खर, टप-टप, सिहर-सिहर, मधुर-मधुर, पुलक-पुलक, थहर-थहर, गरज-गरज, छहर-छहर, उन्मन-उन्मन आदि द्विरुक्त पद है।

द्विरुक्त पद वीप्सा अलकार के अन्तर्गत आते है। छायावादी काव्य मे इनका सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा-सौन्दर्य के साथ भाव की तीव्रता मे भी इनसे सहायता मिलती है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि छायावादी कवियो की रचनाओ मे द्विरुक्त पदो का प्राचुर्य है। अन्य कवियो मे इनका प्रयोग विरल है।

१—"अन्धकार वह वस्तु, हार भी जहाँ साँप बन जाता।"

—मैथिलीशरण गुप्त

२—"घोंटते जो लोग है उसका गला
क्या नही उन पर लहू हम गार लें।
है हमारी जाति का दम घुट रहा,
हम भला दम किस तरह से मार लें।"

—अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' : चोखे चौपदे

ध्वन्यात्मक शब्द

ये ध्वन्यर्थ व्यजक शब्द हैं, जो भावो की व्यजना मे बहुत सहायता करते है। छायावादी कविता मे ऐसे शब्दो के प्रयोग प्रचुरता से मिलते हैं।

झूम-झूम, झर-झर, रोर, छलछल-कलकल, मरमर-सरसर, गुन-गुन, सन सन, झकझोर, हिल्लोल, कप-कप, घर-घर, बुद्-बुद्, सिसकना, हहर हहर, थहराना, सिहरना, चरमर, धड़कन, साँय साँय, हाहाकार, सीत्कार, चीत्कार, क्रन्दन, स्पन्दन आदि।

पन्त, निराला, माखनलाल, महादेवी, दिनकर, बच्चन, अचल आदि अनेक कवियो की रचनाओ मे ये प्रयोग अधिक मिलते हैं। पन्त जी ने पल्लव की कविताओ मे इस ओर बहुत रुचि दिखाई है।

विवेचन

भाषागत परम्पराओ के इस अध्ययन से विदित होता है कि किस प्रकार द्विवेदी युग की गद्यवत् इतिवृत्तात्मकता से निकल कर आलोच्यकालीन कविता की भाषा ने अपनी शक्ति को विकसित किया है। छायावादी-रहस्यवादी काव्य मे सस्कृत तत्सम प्रधान भाषा-शैली का पूर्ण विकास हुआ है। भाषा की लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता तथा साकेतिकता की दृष्टि से छायावादी काव्य पूर्ण समुन्नत है। प्रसाद का लाक्षणिक विधान, पन्त का शब्द-शिल्प, निराला का नादात्म सौन्दर्य एव महादेवी की व्यजनाओ ने भाषा की शक्ति के विकास मे पूर्ण योग दिया है। राष्ट्रीय काव्यधारा मे, प्रगतिवादी एव प्रयोगवादी कविता मे साधारण बोलचाल की भाषा पाई जाती है। वर्तमान काल के कवि क्षेत्रीय बोलियो के शब्दो एव मुहावरो का समावेश करके भाषा को कही अधिक लोक-जीवन के निकट लाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्यकाल मे भाषा की स्वस्थ परम्पराओ का विकास हुआ है। किन्तु तत्सम शब्द प्रधान शैली का शनैः शनैः प्रचार कम होता जा रहा है और सर्व साधारण मे प्रचलित सरल भाषा विकासोन्मुख है। इसके लिए कविजन क्षेत्रीय शब्द, मुहावरे, लोकोक्ति एव ध्वनियो के समावेश द्वारा कविता को जनजीवन के अधिकाधिक निकट लाने के लिए प्रयत्नशील है। ब्रज भाषा के शब्द, उर्दू के पद, अग्रेजी मिश्रित पदावली के पयोगो की वृद्धि इसी प्रयत्न के चिह्न है।

छन्द-प्रयोग

आलोच्यकाल मे जहाँ एक ओर पुराने छन्दो मे काव्य रचना हुई है, वहाँ दूसरी ओर नये छन्दों के प्रयोग भी बहुत हुए हैं। वस्तुतः आलोच्यकाल छन्दों के नए-नए प्रयोगों का काल है। भारतेन्दु युग संक्रान्ति का युग था। इस युग मे रीतिकाल की सामन्तवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। स्वयं भारतेन्दु जी ने शास्त्रीय छन्दों मे परिवर्तन करके नये-नये छन्दो की रचना की। दोहे मे थोडा-सा परिवर्तन करके पहले और तीसरे चरण मे १२ मात्राएँ रख दी गई हैं। राधिका छन्द मे अन्तरा देकर ६ पदो का नया छन्द प्रचलित किया है। इस प्रकार बँगला के पयार छन्द (८+६ वर्ण) का उन्होने सर्वप्रथम प्रयोग किया। भारतेन्दु काल मे उर्दू के छन्द भी हिन्दी मे व्यवहृत हुए।[1]

द्विवेदी-युग पुनरुत्थान काल है। इस युग में सस्कृत के वर्ण-वृत्तो का पुनरुत्थान हुआ। आचार्य द्विवेदी से लेकर मैथिलीशरण, कामताप्रसाद, राम-चरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गिरधर शर्मा आदि सभी कवियो ने इस पथ का अनुसरण किया। सस्कृत के गण-वृत्तो में भी अन्त्यानुप्रास का निर्वाह किया गया, क्योकि यह हिन्दी की अपनी प्राचीन निधि थी, जिसका मोह इन कवियों को नहीं छूटा था। द्विवेदी जी महाराष्ट्री काव्य की प्रगति से बहुत प्रभावित थे तथा उसमे वर्ण-वृत्तो का अधिक प्रवाह देखकर उन्होने हिन्दी के कवियो को भी वर्ण-वृत्तो की रचना की ओर प्रेरित किया था। मराठी भाषा में वर्ण-वृत्तो का उत्कर्ष देखकर द्विवेदी जी में हिन्दी के प्रति स्पर्धा का भाव जाग्रत हुआ था—

'महाराष्ट्र भाषा देव नागरी से अच्छी दशा में है। इस भाषा के प्रसिद्ध कवियो के निरीक्षण से यह विदित होता है कि उसमें गण-वृत्त बड़े विस्तार से प्रयुक्त हैं। इस समय मे इस भाषा के कवियों में विरले ही ऐसे हैं जो मात्रा छन्दो का प्रयोग करते हैं।[2]

इस प्रकार द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से हिन्दी मे वर्ण-वृत्तो का प्रयोग

१—देखिए, नागरीप्रचारिणी पत्रिका (भारतेन्दु अंक), श्री चन्द्राकर शुक्ल, भारतेन्दु को छन्द बोजना।

२—ऋतु तरंगिणी की भूमिका।

अत्यन्त क्षिप्र गति के साथ हुआ, जिसका पूर्ण उत्कर्ष हरिऔध जी के प्रियप्र मे दृष्टिगोचर हुआ।

द्विवेदी युग में संस्कृत के वर्ण-वृत्तो का जो प्रचार हुआ, उसकी प्रतिक्रिया आलोच्यकाल में आरभ हुई। वर्ण-वृत्तो मे 'गण' की कठोरता के बन्धन ने कवि-चेतना में विरोध की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। 'हिन्दी का सगीत, केवल मात्रिक छन्दो ही मे अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सपूर्णता प्राप्त कर सकता है। उन्ही के द्वारा उसमे सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है। वर्ण-वृत्तो की नहरो मे उसकी धारा अपना चचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता, कलकल-छलछल तथा अपने क्रीडा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ ही खो बैठती है।[१]

इससे सिद्ध है कि भारतेन्दु युग से ही छन्दो की दिशा मे नये प्रयोग होने लगे थे तथा कवि-चेतना भावाभिव्यक्ति के लिए नये-नये पथो का अन्वेषण करने मे सलग्न थी।

छन्द तथा परिवर्तन की प्रक्रिया

आलोच्यकाल मे छन्द योजना के प्रयोगो का विवेचन करने से पहले परिस्थिति विशेष छन्दो की परिवर्तन की प्रक्रिया पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। छन्द क्या है? लय का मर्यादित रूप। छन्द मे आवृत्ति और आशान्वित की प्रधानता होती है। परन्तु उसका प्राण-तत्त्व लय है। लय के विकास मे सहजात प्रवृत्ति के साथ युग और सामाजिक अभिरुचि का भी योग रहता है। देश और काल के परिवर्तन छन्द के लय मे भी परिवर्तन होता रहता है। छन्द की भिन्नता पर विचार प्रकट करते हुए पन्त जी लिखते हैं "भौगोलिक स्थिति, शीत-ताप, जल-वायु, सभ्यता आदि के भेद के कारण ससार की भिन्न-भिन्न भाषाओ के उच्चारण" सगीत मे भी विभिन्नता आ जाती है। छन्द का भाषा के उच्चारण, उसके सगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।[२]

इससे स्पष्ट है कि भौगोलिक एवं सास्कृतिक कारणो से छन्दो की लय मे परिवर्तन हो जाता है। जातीय सस्कार एव सामाजिक सबधो का प्रभाव व्यक्ति की चेतना पर अवश्य पडता है। इसी कारण भिन्न-भिन्न समाजो की रुचि एव प्रवृत्ति मे भी भिन्नता आ जाती है। इसी से भाषा, उच्चारण-सगीत

१—देखिए, सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव-भूमिका, पृ० २२, २३।

२—वही, पाँचवाँ संस्करण, पृ० २१।

लयान्विति, स्वराघात मे भी भेद हो जाता है। अत: प्रत्येक समाज की भाषा और उसकी लय अन्य समाज से नही मिलती है।

सामन्तीयुग के जीवन मे नियम और अनुशासन कठोर होते हैं। उसके छन्द और लय मे भी इसका प्रभाव लक्षित होता है। पूँजीवादी युग मे सामन्ती युग का ढाँचा बदल जाता है। अतएव ऐसे युग मे छन्दो की कुछ प्राचीन परपरायें चलती रहती हैं और कुछ नई परिस्थितियो से नई चेतना लेकर प्रादुर्भूत होती है। इस प्रकार ह्रास-विकास, क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण भाषा, सगीत एवं छन्दो मे परिवर्तन चलता रहता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे युग प्रवृत्ति तथा परिस्थितियो के कारण जब-जब परिवर्तन आया है, छन्द, लय और भाषा मे भी भिन्नता आ गई है।

रीतिकाल की सामन्ती सस्कृति ने कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा के रूप मे अपने को विकसित किया था। भारतेन्दु युग मे इसका ह्रास होने लगा तथा विभिन्न प्रकार के हिन्दी, सस्कृत, बँगला, उर्दू के छन्द एव लोक गीतो की ध्वनियो मे युग की हृततन्त्री की झकार गूँज उठी।

इससे सिद्ध है कि समाज, सस्कृति एव युग-प्रवृत्ति का प्रभाव व्यक्ति के मानस को आलोडित करता है, उसकी सहजात प्रवृत्तियो, भावों एवं आवेगो को उद्वेलित करता है, जिसके कारण भाषा, छन्द एव लय मे विभिन्नता उत्पन्न होती है।

छायावाद युग का आरम्भ प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से होता है। यह वह समय था जब राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी जड़ें पकड रहा था। अग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्त होने के लिए राष्ट्रीय चेतना अपने पख फडफडा रही थी। समाज मे सरकार के प्रति अनिश्चय और अविश्वास की लहर उठ रही थी। वैयक्तिक चेत्ना राजनीतिक बन्धनो से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील थी। ऐसे युग मे कवि और कलाकार अपने मनोजगत् मे विलक्षण स्वातत्र्य-सुख का अनुभव करने लगे। उधर अग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी बढ़ने लगा। अग्रेजी कवि शैली, कीट्स, वर्डसवर्थ, ब्राउनिंग, स्विनवर्न, वाल्टह्विट मैन जिस स्वच्छन्दतावादी कवि काव्य प्रवृति को लेकर चले थे, छायावादी भी उसी पथ का अनुसरण करने लगे। फलत: पुराने काव्यादर्श, काव्यानुशासन, छन्दोविधान, सभी मे परिवर्तन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। परिवर्तन की यह प्रक्रिया केवल हिन्दी मे ही नही, भारत की सभी साहित्यिक भाषाओ मे प्रकट हुई। अमित्राक्षर छन्द (ब्लैंकवर्स) का प्रयोग सबसे पहले बँगला मे आरंभ हुआ, फिर हिन्दी में आया।

आलोच्यकालीन कविता में तुक, अन्तर्यति, अन्तरनुप्रास, लय तथा

स्वराघात सम्बन्धी छन्दों के अनेक प्रयोग हुए हैं। इनके अतिरिक्त उर्दू, बंगला तथा अँगरेजी छन्दो के लय तथा प्रवाह के आधार पर अनेक प्रकार के छन्दो के प्रयोग हुए हैं। नीचे इनका अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है—

(१) तुक

छन्दों मे नये प्रयोगो की दिशा मे अन्त्यानुप्रास का त्याग सबसे पहला कार्य है। कविता कौमुदी मे प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि हिन्दी मे भिन्न तुकान्त कविता का श्रीगणेश पहले-पहल बाबू जयशंकर प्रसाद जी ने किया है। उनका यह छन्द २१ मात्राओ का है। प्रसाद जी की 'महाराणा का महत्व' नामक कविता इसी अतुकान्त छन्द मे लिखी गई है। मैथिलीशरण जी ने एक दूसरे प्रकार के भिन्न तुकान्त का प्रयोग किया है। यह वर्णिक छन्द है जिसके प्रत्येक चरण मे १५ अक्षर होते हैं। उनके वीरागना काव्य के अनुवाद में यही छन्द प्रयुक्त हुआ है। अतुकान्त कविता का तीसरा प्रयोग अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने प्रिय प्रवास मे किया है। इसकी रचना सस्कृत के गण वृत्तो के आधार पर है। आगे चल कर भिन्न तुकान्त कविता का प्रयोग करने मे सुमित्रानन्दन पत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सियारामशरण गुप्त, अनूप शर्मा, मोहनलाल महतो 'वियोगी' आदि कवियो ने यथेष्ट रुचि प्रदर्शित की। सुमित्रानन्दन पन्त का 'ग्रन्थि' निराला जी की 'परिमल' की तीसरे खड की कवितायें इसके सफल उदाहरण है। गुप्त जी का 'सिद्धराज', मोहनलाल महतो का 'आर्यावर्त, हरिऔध जी के 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' और 'बोलचाल' तथा अनूप शर्मा का 'सिद्धार्थ' अतुकान्त छन्दो मे लिखे गये हैं। मात्रिक, वर्णिक तथा गण वृत्तो मे यह छन्द पूर्ण रूप से सफल हुआ है। इसकी सफलता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि आधुनिक काल मे इसकी नवीन परम्परा स्थापित हो चुकी है तथा इसमे प्रबन्ध एवं मुक्तक सभी प्रकार के काव्यो की रचना हुई है।

(२) अंतर्यति

इसके अन्तर्गत चरण के मध्य मे कही पर भी यति का सन्निवेश किया जाता है। इसका कोई नियम नही है। गति और प्रवाह ही इसके नियामक है। विराम अथवा आडी लकीर के द्वारा इसका रूप स्थिर किया जाता है। एक उदाहरण से इसको स्पष्ट किया जाता है—

'बोला हँस बाल—'माँ, तुम्हे जो मनःपूत हो,
बाधा नही देगा कभी मेरा तर्क उसमे,

जो तुम्हारी इच्छा !' तब रत्नमाला बोली थी—
'किन्तु अब रात हुई, मेरे ही अतिथि हो,
मैं भी आ रही हूँ सोमनाथ, साथ चलना !'

—सिद्धराज

आधुनिक प्रयोगवादी कवियो की रचनाओ मे अन्तर्यति का प्रयोग अधिकता से पाया जाता है। अज्ञेय जी की 'चार का गज़र,' 'वर्ग-भावना' और 'चेहरा उदास' कविताओ मे इसके प्रयोग मिलते हैं।

(३) अंतरनुप्रास

इसमे चरण के बीच-बीच मे अनुप्रासो का सन्निवेश किया जाता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चचल गति सुर सरिता।

—निराला

(ख) ठहर, ठहर, आततायी। जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहारा ले—
क्षण भर स्थिर खडा रह ले—
मेरे दृढ पौरुष की एक चोट सह ले।
नूतन प्रचण्डतर स्वर से
आततायी आज तुझको पुकार रहा मैं—
रणोयत दुर्निवार ललकार रहा मै—
कौन हूँ मैं ?
तेरा दीन दुःखी पद-दलित पराजित
आज जो क्रुद्ध सर्प-से अतीत को जगा
'मैं' से 'हम' हो गया।

—अज्ञेय

(ग) गा रे गा हरवाहे दिलचाहे वही तान
खेतो मे पका धान
मजरियो मे फैला आमो का गंध-ध्यान
आज बने हैं कल के ज्यो निशान,
फूलो मे फलने के हैं प्रमाण।

खेतीहर लड़की की भोली-सी आँखों मे, निबुओ की फाँकों मे,

मुस्काता अज्ञान, हँसता है सब जहान,
खेतो मे पका धान।

—प्रभाकर माचवे

ऊपर की कविताओं के रेखाकित पदों में अन्तरनुप्रास की प्रवृत्ति लक्षित होती हैं। पन्त की छाया शीर्षक कविता मे—"कौन कौन तुम परिहत वसना, म्लानमना, भूपतिता सी" इसका प्रयोग प्रचुरता से हुआ है।

(४) मुक्त छन्द

इसका प्रयोग दो रूपो मे हुआ है—(१) छन्द तथा लय युक्त (२) केवल लय युक्त।

मर्म-पीडा के हास, १२ मात्रा
रोग का है उपचार, १२ मात्रा
पाप का भी परिहार, १२ मात्रा
है अदेह सन्देह, नही है इसका कुछ सस्कार। २७ मात्रा,

—पन्त

इसके प्रथम तीन पाद तोमर छन्द के है और अन्तिम पाद सरसी छन्द का है। दो छन्दो के मेल से यह निर्मित है। पन्त के पल्लव की उच्छ्वास, आंसू, परिवर्तन, कविताओ मे विशेषत. विभिन्न छन्दो के योग से बने हुए सयुक्त छन्द है। 'परिवर्तन' मे २४ मात्रा के रोला के साथ १२, १३, १६ मात्राओ वाले छन्दो के मेल से नये छन्दो को सघटित किया गया है—

अहे निष्ठुर परिवर्तन, = १३ मात्राएँ
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन, = १५ मात्राएँ
विश्व का करुण विवर्तन, = १३ मात्राएँ
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन, = १५ मात्राएँ
निखिल उत्थान, पतन, = ११ मात्राएँ

—पन्त

इसके पादो मे तीन प्रकार के छन्दो का योग है। सिद्ध है कि उपर्युक्त छन्दो का प्रत्येक चरण किसी-न-किसी नियत छन्द के आधार पर बना है तथा उसमे लय भी अन्तर्निहित है। छन्द और लय का घनिष्ठ सबध है। इन छन्दो मे नियमित पादो को घटा-बढा कर तथा विषम मात्राओ के पादो को जोडकर बहुत कुछ स्वच्छन्दता से काम लिया गया है, परन्तु छन्द का अस्तित्व प्रत्येक पाद मे मिलता है। इसी कारण पन्त जी ने इसे स्वच्छन्द छन्द कहा है।

मुक्त छन्द का दूसरा प्रकार वह है, जिसमे किसी प्रकार का छन्द नही

है। इसका आधार केवल लयान्विति है। इस प्रकार के छन्द को प्रचलित करने का श्रेय निराला जी को है—

'वह तोडती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
कोई न छायादार
पेड वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार'

—निराला

इस कविता मे निराला जी ने केवल लय पर ध्यान रखा है। इसकी पहली पक्ति मे जो लय उठती है, वह 'पत्थर' शब्द के लम्बे उच्चारण मे कुछ देर तक गूंजती है। इस प्रकार प्रत्येक पाद की मात्रा की कमी को उसके स्वरो के विलम्बित उच्चारणो से पूरा किया जाता है। इसमे छन्द का स्थान सगीत ने ले लिया है। इस प्रकार की छन्द-मुक्त रचना पर बँगला का प्रभाव है, जिसमे शब्दो को खीच-तान कर मात्राओ की कमी को लय से पूरा करने का प्रयत्न है।

'परिमल' के तृतीय खड की कविताएँ इसी शैली मे रचित हैं। अनामिका की प्रेयसी, रेखा, दिल्ली, क्षमा-प्रार्थना, गाता हूँ गीत मैं तुम्हे ही सुनाने को तथा 'नये पत्तो' की कविताओ मे मुक्त छन्द का प्रयोग है। प्रसाद जी ने 'लहर' की अन्तिम, 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, 'पेशोला' की प्रतिध्वनि और प्रलय छाया मे यही छन्द रखा है। निराला जी ने इस छन्द को प्रचलित करने मे सबसे अधिक साहस प्रदर्शित किया। प्रारभ मे इस छन्द को 'खर छन्द', केंचुआ छन्द, कगारू छन्द कहकर उपहास किया गया। आचार्य शुक्ल स्वय इस प्रकार की मुक्त रचना के घोर विरोधी थे। इसे इन्होने अमेरिका के कवि वाल्ट ह्विटमैन की नकल बतलाया है जो बँगला के माध्यम से हिन्दी मे आई है। ऐसी रचनाओ मे छन्दोव्यवस्था का ही नही बुद्धि तत्व का भी प्राय. अभाव है[१]।

कहना न होगा कि प्रारभ मे इस छन्द की अत्यधिक छीछालेदर हुई। परन्तु निराला जी ने इसका निर्द्वन्द्वता से सामना किया। वे परिमल की भूमिका मे लिखते हैं—'मनुष्यो की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यो की मुक्ति कार्यों से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छन्दो के शासन से अलग हो जाना है। 'इस प्रकार मुक्त छन्द के द्वारा उन्होने कविता

१— रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, नवाँ संस्करण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ६४१।

के स्वातंत्र्य का उद्घोष सुनाया और इस प्रकार के काव्य की उपादेयता के विषय मे कहते हैं—

"मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नही होता, किन्तु उससे साहित्य मे एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है[१]।"

निराला जी ने मुक्त छन्द की प्रवृत्ति को सिद्ध करने के लिए गायत्री आदि वैदिक मत्रो के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः वे इस विचार के थे कि छन्द के पूर्वाग्रह को लेकर चलने से भाव का नाश हो जाता है। गण, मात्राओ और अन्त्यानुप्रास का बन्धन कवि के स्वतत्र भाव प्रवाह मे बाधक होता है। छन्द कविता का अनिवार्य धर्म नही है। बिना छन्द के भी उत्तम काव्य की सृष्टि हो सकती है। छन्द तो काव्य का साधन मात्र है। मूल वस्तु है, भाव। छन्द तभी तक आवश्यक है, जब तक उससे भावोत्कर्ष मे सहायता मिलती हो। यदि वह भाव के स्वच्छन्द प्रवाह मे बाधा डालता है तो उसका परित्याग भी हो सकता है। निराला जी छन्द को कविता-कामिनी के पैरो की बेडियाँ समझते थे। कविता को छन्द के कठोर बन्धन से मुक्त करने के लिये उन्होने भरसक प्रयत्न किया। उन्हे इस क्षेत्र मे पर्याप्त सफलता मिली। उसी के परिणामस्वरूप आज कवियो का एक विशाल वर्ग मुक्त छन्द के माध्यम से काव्य रचना करने मे प्रवृत्त है। वर्तमान युग की छायावादी, प्रगतिवादी, राष्ट्रीयतावादी तथा प्रयोगवादी—सभी श्रेणी के कवियो ने इसे अपनी कविता के लिए चुना है। यह प्रयोग इतना सफल हुआ है कि इसकी नवीन परपरा चल पडी है।

मुक्त छन्द मे निराला जी किसी प्रकार का नियम स्वीकार नही करते। मुक्ति का अर्थ है, बन्धनो से छुटकारा पाना। अतएव मुक्त काव्य सभी प्रकार के गण, मात्रा, तुक सबधी नियमो से मुक्त होता है। इसमे केवल प्रवाह का ध्यान रखा जाता है। गति ही इसका प्राण है। यह दो रूपो मे प्रचलित है—मात्रिक और वर्णिक।

खडहर खडे हो तुम आज भी ! = १६ मात्रा १२ अक्षर
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज। = २३ मात्रा १८ अक्षर
विस्मृति की नीद से जगाते हो क्यो हमे = २३ मात्रा १४ अक्षर
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ? = २५ मात्रा १८ अक्षर

१—देखिए, परिमल की भूमिका, पृ० ६।

इसकी पंक्तियो की लय मात्राओ के आश्रित है। पहले पाद मे १६, दूसरे और तीसरे मे २३-२३ तथा चौथे पाद मे २५ मात्राएँ हैं।

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल-कोमल तनु तरुणी
जुही की कली।

इसकी दूसरी पंक्ति मे ८ अक्षर हैं और पूरे छन्द मे कवित्त के समान गति है॥ अतः यह वर्णिक मुक्त छन्द है।

मुक्त छन्द को प्रवर्तित करने के लिए निराला जी को पुरानी परपरा से खुलकर विद्रोह करना पडा था। इसी से वे क्रान्तिकारी कवि प्रसिद्ध हुए। मुक्त छन्द को अग्रसर करने मे निराला, पन्त, प्रसाद, उदयशकर, भगवतीशरण, तथा अज्ञेय स्कूल के सभी कवियो का योग है।

(२) उर्दू छन्दों के प्रयोग

उर्दू भाषा के छन्दो मे वर्ण और मात्राओ का विचार नही है। गुरु वर्ण के स्थान पर दो लघु वर्णो का प्रयोग किया जा सकता है। उर्दू पथ के हर एक मिसरे मे वजन पर ध्यान रखा जाता है। इसी के अभ्यास करते रहने से कविता मे अक्षर और मात्रा आप-से-आप ठीक आ जाते है। हिन्दी की दृष्टि से उर्दू छन्दो मे गण और अक्षरो का क्रम नही होता। सभी छन्द मात्रिक होते है।

उर्दू बह्रो के वजन सुनिश्चित है, जिनके आधार पर काव्य रचना की जाती है। उर्दू की प्रचलित लय बह्रे इस प्रकार की हैं।

(१) फायलातुन, फायलातुन, फायलातुन .. पीयूष वर्ष
(२) फायलातुन, फायलातून, फायलातुन फायलात् .. शुद्ध गीता
(३) फऊलुन, फऊलुन, फऊलुन फऊल . भुजगी
(४) मफऊल, फायलुतुन, मफऊल, फायलातुन दिगपाल
(५) फऊलुन, फऊलुन, फऊतुन, फऊलुन ... भुजगप्रयात

शैर, गजल, रुबाई, कसीदा, मरसिया, मुसल्लस, मुखम्मस आदि उर्दू के काव्य रूप हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता मे उर्दू के छन्दो का प्रयोग भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने सबसे पहले आरभ किया था। इसके पश्चात् हरिऔध, दीन, सनेही, मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने विशेष रूप मे इस ओर अपनी रुचि

प्रदर्शित की। हरिऔध जी ने अपने चौपदो मे उर्दू बह्रो का प्रयोग बडी सफलता से किया है।

प्यार डूबे लोग कहते है उमग,
जो कहो अपना कलेजा काढ दूँ।'
पर अगर वे निज कलेजा काढ़ दें,
तो कहेगा वह कढ़ा मतलब से हूँ।

—मतलब की दुनियाँ

इसकी रचना फायलातुन, फायलातुन, फायलुन बहर मे हुई है, जिसकी लय हिन्दी के पीयूष वर्ष के समान है।

लाला भगवानदीन ने अपने वीर पचरत्न में उर्दू छन्दो का ही प्रयोग किया है—जिसका वजन है, 'मफऊल, मफ़ाईल, मफाईल, फऊलुन।

परताप यह सुन मान की अभिमान भरी बात,
वीरो की तरह मान को दी बात की इक लात
जिस बात से बस मान भी ज़िन खाके हुए मात,
दिखलाते बनी और अधिक कुछ न करामात
गभीर सी आवाज मे राना ने कहा यो,
जो कर के दिखाना हो कहते हो भला क्यों!

—दीन

यह हिन्दी का 'विहारी' छन्द है और छः पद होने के कारण यह षटपदी है। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही,' नाथूराम शकर, 'हरिऔध', मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, शमशेर, भारती ने उर्दू के शेर, गजल तथा रुबाई की तर्ज पर काव्य रचना की है।

रुबाई

इसके चार पद होते हैं। यह अरबी, फारसी का छन्द है। इसमे नीति और उपदेश की कविता बहुत हुई है। उमर खैयाम की रुबाइयो ने सबसे अधिक प्रसिद्धि पाई है। रुबाई के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पदो मे तुक रखा जाता है, तीसरा पद तुकहीन होता है। (क+क+ख+क) सबसे पहले बाबू मैथिलीशरण ने उमरखैयाम की रुबाइयो का हिन्दी अनुवाद किया। आज कल के प्रयोगवादी कवियो ने इन्हें बहुत अपनाया है।

हम अपने ख्याल को सनम समझे थे
अपने को ख्याल से भी कम समझे थे

'होना था'—समझना न था कुछ भी 'शमशेर',
होना भी कहाँ था वो जो हम समझे थे।'

—शमशेर

मुसल्लस

इस छन्द मे तीन पद होते हैं, जिसे हिन्दी मे तिकडी कह सकते हैं। पाँच पद के छन्द को मुखम्मस, छपद वाले छन्द को मुसद्दस, सात पद वालो को मुसव्वा, आठ पद वालो को मुसम्मन, नौ पद वालो को मुतस्सा और दस पद वालो को मुअश्शर कहते हैं। उर्दू मे मौलाना हाली के मुसद्दस (षटपदी) बहुत प्रसिद्ध है। इससे प्रभावित होकर हरिऔध, सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवान-दीन ने हिन्दी के मात्रिक छन्दो के आधार पर षटपदियाँ लिखी। प० बदरी-प्रसाद भट्ट ने उर्दू शैली मे मुसद्दस की रचनायें प्रस्तुत की।[1] पर ये प्रयत्न आधुनिक काल से पूर्व के है। आगे चल कर यह प्रयत्न लुप्त हो गया।

(३) बँगला छन्दों का प्रयोग

बँगला भाषा के अध्ययन से उसके कुछ प्रचलित छन्द हिन्दी मे भी आ गये। प्रसाद, पन्त, निराला और मैथिलीशरण गुप्त ने विशेष रूप से बँगला छन्दो का प्रभाव ग्रहण किया है। बँगला का 'पयार' छन्द सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम भारतेन्दु जी ने इसका प्रयोग ब्रज भाषा की कविता मे किया था। प्रसाद जी भी इस छन्द की ओर आकृष्ट हुए और उन्होने चित्राधार के अन्तर्गत 'सान्ध्यतारा' कविता का पयार छन्द मे सृजन किया था।

माईकेल मधुसूदनदत्त का प्रसिद्ध काव्य-ग्रथ 'मेघनाद वध' पयार छन्द मे ही लिखा गया है। बँगला की रीति से यह १४ अक्षर का वर्ण वृत्त है। जिसका अन्त्यवर्ण गुरु है। यह भिन्न तुकान्त शैली मे प्रचलित है। मेघनाद वध मे एक उदाहरण दिया जाता है—

शुनेद्दि कैलाशपुर कैलास निवासी,
व्योम केश स्वर्णासने वसिस्गौरी सने।
आगम पुराण वेद पच तत्व कथा,
पच मुखे पच मुख कहे न उभारे।

बँगला का यह सुप्रचलित छन्द अमित्राक्षर के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दी मे 'वीरागना' और मेघनाद वध का अनुवाद मैथिलीशरण गुप्त ने १४ अक्षर के स्थान पर १५ अक्षर कर के इसी छन्द मे किया है। बँगला मे विभक्तयन्त

१—डा० सुधीन्द्र-हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ९३-९४।

पद पाये जाते हैं, किन्तु हिन्दी मे विभक्तियाँ पृथक् अस्तित्व रखती हैं। बँगला भाषा मे विभक्ति पद मे ही सयुक्त रहती है (यथा पच मुखे, स्वर्णासने-पच मुख मे स्वर्णासन पर)। हिन्दी मे विभक्ति को अलग रखने की कठिनाई के कारण ही गुप्त जी ने कदाचित् एक वर्ण और अधिक रक्खा है। गुप्त जी ने पयार छन्द को भिन्न तुकान्त के रूप मे ही ग्रहण किया है। प्रसाद जी ने तुक के साथ। गुप्त जी को इस छन्द की रचना मे इतना कौशल प्राप्त हुआ है कि उन्होने 'सिद्धराज' की रचना मे इसी छन्द को प्रयुक्त किया। 'आर्यावर्त' की रचना मे मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने इसी अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग करके इसका ऊर्जस्वित रूप प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त 'परिमल' की रचना मे यत्रतत्र स्वच्छन्द छन्द के रूप मे इसकी झलक दिखाई पडती है।

बँगला और हिन्दी मे उच्चारण-साम्य न होने के कारण इस प्रकार के प्रयत्न अत्यन्त विरल है। अतः हिन्दी मे प्रयुक्त बँगला छन्दो की कोई स्थिर परपरा नही है।

(४) अंग्रेजी छन्दों के प्रयोग

अग्रेजी छन्द शास्त्र की कुछ अपनी विशेषताएँ है। अनेक प्रत्येक पाद मे कुछ फुट होते है जिनमे दो लयान्वितियाँ (सिलेबिल) होती है। यह दोनो या तो दीर्घ (– –) या एक लघु और एक गुरु (– –) या दोनो लघु (– –) अथवा इन्ही के उल्टे सीधे मेल से विभिन्न प्रकार की लयान्वितियाँ होती हैं तथा उन्ही के आधार पर छन्द का माप होता है। छन्द की गति के लिये लयान्वितियो पर बल दिया जाता है, जिसे ऐक्सेंट कहते है।

वीरत्वपूर्ण कविता के लिए 'आर्याम्बिक ट्रैटामीटर' का प्रयोग किया जाता है तथा बैलड अथवा प्रबन्ध काव्य मे छोटे-छोटे छन्द होते है, जिनमें प्रायः दो आयम्बिक ट्रैटामीटर और बीच-बीच मे दो आयम्बिक ट्राटामीटरो की योजना रहती है। चौदह पक्तियो के छन्द का नाम सौनेट है, जिसकी सब पक्तियाँ निर्धारित लम्बाई की होती है तथा लय का साम्य रहता है। अग्रेजी मे अन्त्यानुप्रास-हीन कविता (ब्लैक वर्स) का अधिक प्रयोग होता है। फ्री वर्स लायदे का नवीनतम आविष्कार हुआ है जिसका इन दिनो बहुत अधिक प्रचार है।

अग्रेजी का छन्द उच्चारण के घात (ऐक्सेंट) पर आधारित है। उसकी प्रकृति अन्त्यानुप्रासहीन है। बगला के माध्यम से अग्रेजी छन्द का प्रभाव हिन्दी कविता पर त्रिविध रूप मे आया है—(१) अतुकान्त (ब्लैंक वर्स), (२) मुक्त छन्द (फ्री वर्स) और (३) चतुर्दश पदी (सानेट)। ब्लैंक वर्स और फ्रीवर्स का विचार ऊपर हो चुका है। वर्तमान हिन्दी कविता मे मुक्त छन्द का एक फैशन चल गया

है जिसकी सज्जा अंग्रेजी की लयान्विति के आधार पर रखी गई है। इस प्रकार के मुक्त छन्द, जिनमे न मात्रा का और न वर्ण का विचार है जो केवल लय के आधार पर ही अवलम्बित है, अंग्रेजी छन्दो के अनुकरण से बने हैं। उदाहरण के लिये एक छन्द पर्याप्त होगा—

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़ कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमे आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सेकत, कूल।
सब गोलाइयाँ उसकी गढी हैं।
मा है वह। है, इसी से हम बने हैं।

—नदी के द्वीप, अज्ञेय

कहना न होगा कि मुक्त छन्द का यह रूप वर्तमान कवियो की रचनाओ में ही प्राप्त होता है। निराला ने जिस मुक्त छन्द का प्रयोग किया था, उसमे वर्ण, मात्रा और लयान्विति पर बराबर विचार रखा गया था। वर्तमान कवियो ने लय को भी उडा दिया है, तथा वे अंग्रेजी फ्री वर्स के अनुसार केवल स्वराघात या बल पर ही ध्यान रखते हैं।

इस प्रकार फ्रीवर्स (मुक्त छन्द) की तीन अवस्थाएं आलोच्यकाल मे दिखाई पड़ती हैं। पहली अवस्था मे तुक का बन्ध उडा दिया गया है, जिसमे प्रसाद, पन्त, तथा मैथिलीशरण का सबसे अधिक भाग है। दूसरी अवस्था मे अनमिल सयुक्त छन्दो का प्रचार आरम्भ हुआ, किन्तु मात्रा और वर्णों का नियम बना रहा। इसमे भी प्रसाद, पन्त और निराला का सबसे बड़ा हाथ है। तीसरी अवस्था मे तुक, मात्रा एव वर्ण का भी अन्त हो गया। वर्तमान प्रयोगवादी कवियो मे मुक्त छन्द का अन्तिम रूप ही अधिक प्रचलित है। हिन्दी मे फ्रीवर्स का प्रचार अंग्रेजी कविता का ही परिणाम है[1]। वर्तमान कवियो ने इलियट पाउड आदि कवियो से प्रभाव ग्रहण किया है।

प्रचलित मुक्त छन्द का विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

मुक्त छन्द का विकास

मुक्त छन्द की प्रवृत्ति फ्रास से आरम्भ होती है। आर्नाल्ड हिवटमैन तथा

१—देखिए, रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९७।

हैंनले आदि अन्य कवियो ने भिन्न रूपो मे इसकी भूमिका तैयार की। शनैः शनैः विश्व के विभिन्न साहित्यो मे इसकी प्रगति दिखाई पडने लगी।

मुक्त छन्द मे लय (उतार-चढाव) का आधार होता है। इसमे कविता का मुक्त प्रवाह चलता है, जिसके चरण मुक्त होते हैं। इसकी रचना मे कोई नियमित छन्द विधान नही होता। प्रत्युत् इसके पढने मे एक प्रकार का लय-रूप पाया जाता है। इसके सगीत मे कोई नियमो का बन्धन नही है। इसी से वह मुक्त है। मुक्त छन्द का आधार न पाद है, न वर्ण, न मात्रा और न चरण। इसकी पक्तियो मे मुक्त लय (सगीत) का संतुलित प्रवाह होता है। लय के भीतर कवि की इच्छानुसार पक्तियाँ गतिशील रहती है। कविता का प्रवाह तीव्र, मन्द या अवरुद्ध-सा प्रतीत हो सकता है किन्तु ये सब एक केन्द्रीय गति का अनुसरण करते है। इसके अन्दर लयात्मक गति होती है जो इसका मूल तत्व है। छन्द मे नियमित चरण होते है, जिससे उसमे लयात्मक तत्व की एकरूपता आ जाती है। मुक्त छन्द मे लयान्वित मुक्त, स्वच्छन्द और यथेच्छ होती है। मुक्त छन्द मे लय की स्वतन्त्रता विशेष है। इसी कारण मुक्त छन्द मे लय की एकरूपता नही होती है।

मुक्त छन्द के कवि भौतिक जगत के दृश्यो को एक भिन्न दृष्टि से देखते हैं तथा जो कुछ देखते है, उनको प्रभावो (इमप्रेशन्स) को अकित करने के लिये उन्होने एक विशिष्ट माध्यम ढूँढ लिया है। उनमे इसका आग्रह है। वे उसकी स्वीकृति चाहते हैं। नयी कविता मे यही है। (जगत मे यथार्थ की सत्ता है) मनुष्य को वस्तुओ पर अपने भावो का आरोप करने की आवश्यकता नही है। उनका ध्येय है, वाह्य वस्तुओ के यथार्थ चित्रण का। अत' उनके कथन मे स्पष्टता और तथ्यवादिता होनी चाहिए। यथार्थ शब्द से वस्तु का तुरन्त बोध हो जाता है और वह कवि के ऊपर पडने वाले प्रभाव को प्रगट कर देता है। लय प्रधान अतुकान्त कविता इस ध्येय को शीघ्र पूरा करती है क्योकि इसके छन्द मे परम्परागत भावात्मकता नही होती। इसके माध्यम से कवि के भाव स्पष्टता से पाठक तक पहुँच जाते हैं। इसका प्रवर्तक अमेरिका का कवि ह्विटमैन को माना जाता है जो प्रजातन्त्र के भाव से प्रेरित होकर मुक्त छन्द के माध्यम से अपने ओजस्वी विचारो को अभिव्यक्ति देने लगे थे। अग्रेजी के प्रतीकवादी कवि और अति यथार्थवादी कवियो ने भी अपनी अस्वस्थ मानसिकता के सकुल उद्‌गारो को इसी छन्द के द्वारा प्रकट किया है। बंगला भाषा मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने और हिन्दी मे निराला ने मुक्त छन्द की परम्परा को आगे बढाया। निराला जी ने स्वर-सकेतो से तथा लय के आरोह-अवरोहो से मुक्त छन्द मे

अपने भावो के वेग को प्रदर्शित किया है। वस्तुतः मुक्त छन्द का आधार भावों का वेग ही है।

आज हिन्दी मे मुक्त छन्द सब विरोधो को पार कर स्वस्थ परम्परा के रूप मे विकसित हो चुका है। मुक्त छन्द मे भावो का वेग, अनुमति की गहराई के साथ भाषा के संगीत मे लय मय गति है प्रवाहित होता है। भावो के वेग, सतुलित लय एव स्वरो के सगीत मे बँधकर मुक्त छन्द का प्रवाह गद्य के कूलो को स्पर्श करता हुआ कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ आगे को बढता है। इससे गद्य को भी कलात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है तथा उसमे काव्योपयुक्त भावो को अभिव्यक्त करने की क्षमता बढ़ गई है। लय का सगीत इसमे अन्तः सलिला सरस्वती की धारा की तरह प्रच्छन्न रूप से बहता रहता है। मुक्त छन्द अपने सहज रूप मे आत्मानुभूति, यथार्थ जीवनबोध तथा भावो मुक्त प्रवाह का परिचायक है। इसके प्रचार ने नये कवियो के लिए नए-नए छन्दो के प्रयोग का द्वार उन्मुक्त कर दिया है। यद्यपि अभी तक इसमे किसी काव्य ग्रथ का सृजन नही हुआ, किन्तु इसकी सभावनाएँ बहुत है और निकट भविष्य मे उनके फलवती होने की पूर्ण आशा है।

किन्तु कुछ कवि भ्रम से इस छन्द को भावाभिव्यक्ति का सुगम कार्य समझने की भूल करते है। ऐसे ही कवियो ने भ्रान्त बातो को फैलाकर इस छन्द की गतिशील धारा को कलुषित किया है। मुक्त छन्द के नाम पर कुछ नए कवि कोरा गद्य लिख देते है, कुछ असबद्ध भाव-चित्रो को विरामादि सकेतो से युक्त छोटे-बडे वाक्यो मे गूँथ कर विचित्र सृष्टि खडी कर देते हैं और कुछ अश्लील एवं कलुषित भाषा के प्रयोगो द्वारा अनर्गल प्रलाप करते है। इसी कारण प्रचलित मुक्त छन्द बदनाम हुआ है, तथा उस पर अराजकता, कृत्रिम और दुरूहता का दोष मढा गया है।

हिन्दी मे चतुर्दशपदी अग्रेजी के सानेट का अनुकरण है। इसको सपूर्ण रचना मे एक ही छन्द का होना अनिवार्य है तथा इसे अष्टपदी और षट्पदी के दो भागो मे विभाजित करने का प्रयत्न भी कई कवियो मे पाया जाता है। हिन्दी मे इसके लिए कोई भी छन्द सुनिश्चित नही है। अतः भिन्न-भिन्न कवियो ने इसकी भिन्न-भिन्न रूपो मे रचना की है। हिन्दी मे हरिऔध जी ने दो-एक चतुर्दशपदियाँ लिखी हैं, जिनमे प्रथम बारह पक्तियाँ रोला की है और अन्तिम दो पक्तियाँ उल्लाला की। तुकान्त भी हिन्दी का ही है। प्रसाद जी ने भी आरम्भ मे 'बसन्त राका', 'स्वभाव', 'दर्शन' आदि कविताएँ चतुर्दशपदी मे लिखी। मैथिलीशरण गुप्त और सुमित्रानन्दन पन्त ने भी इस ओर कुछ रुचि

प्रदर्शित की किन्तु छन्द विन्यास की दृष्टि मे कोई आकर्षण न देखकर लिखना छोड दिया[१]। उधर प्रभाकर माचवे ने कुछ सानेट लिखे हैं। परन्तु इस दिशा मे प्रयत्न अत्यन्त विरल हैं।

(५) लोक धुनियों के प्रयोग

लोक धुनियो के अतर्गत ख्याल, लावनी, दादरा, झूलना, कजली, रसिया, चौबोला, गजल, कव्वाली आदि आते हैं। भारतेन्दु युग के कवियो ने ग्राम्य गीतो के प्रयोग किए थे। स्वय भारतेन्दु जी ने ख्याल, लावनी, कजली आदि धुनियो के आधार पर बहुत से गीतो की रचना की थी।[२] आगे चल कर श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, बदरीनाथ, मन्नन द्विवेदी, देवीप्रसाद पूर्ण, सनेही, नाथूराम शकर ने इस शैली मे गीत लिखे, जिनमे गजल रसिया और कजली के लय की प्रधानता रहती थी। 'शकर' ने विभिन्न छन्दो के मिश्रित रूप से अनेक प्रकार के नये गीतो की सृष्टि की, जिनमे भुजंगात्मक राजगीत, रुचिरात्मक राजगीत आदि अनेक प्रकार के गीतो की रचना की, जिनका सग्रह अनुराग-रत्न मे मिलता है। रसिया की तर्ज पर उनका 'साँची मान सहेली परसो प्रीतम लैवे आवेगो' व्रज भाषा का गीत बहुत प्रसिद्ध है। शकर बडे प्रतिभाशाली कवि थे। छन्द और गीतो के आकर्षण लयो के आधार पर नए-नए छन्द और गीतो की सृष्टि करना उनके बाएँ हाथ का खेल था। वर्ण और मात्राओ के नियमो का बराबर ध्यान रखते हुए मिश्रित छन्दो के जो उन्होने प्रयोग किए, उनका साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होने गीतो मे भी वर्ण और मात्राओ के कठोर नियमो का एक साथ निर्वाह किया है।

जिस अविनाशी से डरते है	=	१६ मात्राएँ तथा	११ अक्षर
भूल देव जड चेतन सारे	=	,,	,,
जिसके डर से अम्बर बोले	=	,,	,,
उग्र मन्द गति मारुत डोले	=	,,	,,
पावक जले प्रवाहित पान	=	,,	,,
युगल वेग वसुधा ने धारे	=	,,	,,

इस गीत के प्रत्येक चरण मे मात्रा और वर्णों का क्रम एक सा है। इस प्रकार के गीतो की रचना 'शकर' की प्रतिभा के लिए संभव थी। अन्य कवियो

१—देखिए, डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ४३२।

२—देखिए, भारतेंदु ग्रंथावली, भाग २, पृ० ४८७–८८।

के लिए यह नितान्त कठिन है। इसलिये इसका कोई अनुकरण न कर सका।

लोक गीत की शैली मे प्रसाद के 'झरना' मे दो एक गीत मिलते है—

डाल पर बोलता है पपीहा,
हो भला प्राण धन तुम कहाँ ? हा !
आ मिलो हो जहाँ,
पी कहाँ ! पी ! कहाँ ?

इस पर उर्दू कव्वाली के तर्ज की छाप है। 'उपेक्षा करना' भी इसी प्रकार की रचना है।

आश्चर्य है कि जन गीतो की यह परपरा जिसका भारतेन्दु युग मे और द्विवेदी युग मे इतना विकास हुआ था, आलोच्यकाल के आते-आते लुप्त होने लगी। छायावादी और प्रगतिवादी मे लोकधुनियो के आधार पर रचित गीतो का एकान्त अभाव हो गया है। कदाचित् राष्ट्रीय आन्दोलन, सत्याग्रह और प्रतिक्रिया स्वरूप सरकारी दमन-चक्र लोक गीतो के स्वर को कुचलने मे कारण रहा हो। इसमे सन्देह नही लोकधुनियो पर रचित गीतो मे एक विचित्र मस्ती और फक्कड-पन होता है। साथ ही उसकी भाषा साधारण बोलचाल की भाषा से मिलती-जुलती होती है। छायावादी-राष्ट्रीयतावादी युग मे इन दोनो ही बातो का अभाव था।

वर्तमान काल के प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियो ने जन-गीतो की ओर कुछ अभिरुचि दिखाना आरम्भ किया है।

द्वितीय महायुद्ध काल (१९४२-४७) नये काव्य-प्रयोगो का युग है। इसी समय 'अग्रेजो भारत छोडो' का नारा बुलन्द हुआ। राष्ट्र के महान नेता बन्दीगृह मे डाल दिए गए। राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचल दिया गया। इस समय हिन्दी के कवियो ने अपना स्वर बदला तथा जन-गीतो के माध्यम से वे नूतन भावो को अभिव्यक्ति देने लगे। निराला की एक कजली मे जनता की बेबसी और निरीहता का कितना मार्मिक चित्रण है—

काले काले बादल छाये ना आये वीर जवाहर लाल।
पुरवाई की है फुफकारें, घन-घन को विष की बौछारें
हम हैं जैसे गुफा मे समाये—ना आये वीर जवाहर लाल
महँगाई की बाढ बढ आई, गाँठ की छूटी गाढी कमाई
भूखे नगे खडे शरमाये, ना आये वीर जवाहर लाल।
कैसे हम बच पाये निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे

राह देखते है भरमाये, ना आये वीर जवाहर लाल ।
कैसे कैसे नाग मॅडराए न आए वीर जवाहर लाल ।
बिजली फनके मन की कौधी, कर दो सोधी खोपडी औंधी ।
सर पर सर सर करते धाए, न आए वीर जवाहर लाल ।

जन गीतो की लय पर रचित कविताओ मे प्रकृति के रमणीय चित्रो के अकन के साथ मानव-हृदय की अनुभूतियो का भी मनोहर योग हुआ है । 'सुमन' के निम्नाकित गीत मे कितनी मधुर व्यजना है—

आज रात भर बरसे बादल ।
साँझ हुई नभ के कोने मे कारे मेघा छाये,
ये विरहिन के ताप काम के शाप गरज इतराये ।
दीप छिपाय चलो समेटे निशा दिशा का आचल
अमराई अकुलाई सिहरी नीम हॅस पडे चलदल,
मुखरित मूक अटारी शापित यक्ष हो उठे चचल
गमके मद मृदग बज उठो रिमझिम रिमझिम पायल ।
खिडकी मे झीनी-झीनी बौछार बिखरती आई ।
अनायास हो किसी निठुर की याद हगो मे छाई ।
पानी बरसा कही किसी की बहा आख का काजल ।

वर्तमान नयी पीढी के कुछ कवि लोक धुनियो मे काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए है, जिनमे भवानी प्रसाद मिश्र, शभूनाथ सिह, वीरेन्द्र मिश्र, शमशेर, सुमन, गिरिजाकुमार, चिरजीत, देवराज 'दिनेश' प्रधान है ।

आलोच्यकाल मे छन्दो के सबमे अधिक प्रयोग हुए है । अमित्राक्षर छन्द, स्वच्छन्द छन्द, उर्दू छन्द, मुक्त छन्द एव लोक-गीतो की ध्वनियो के छन्द आदि जितने भी प्रयोग हुए है, वे सब अधिकतर सफल है । अन्त्यानुप्रास-हीन छन्द का प्रयोग तो इतना सफल हुआ है कि उसमे उत्तमोत्तम मुक्त एवं प्रबन्ध काव्यो की सृष्टि हुई है । मेघनाद वध (हिन्दी अनुवाद), सिद्धराज, (मैथिलीशरण), ग्रथि (सुमित्रानन्दन पत), महाराणा का महत्व (जयशकर प्रसाद) तथा आर्यावर्त (मोहनलाल महतो 'वियोगी') इसके ज्वलन्त प्रमाण है । अन्त्यानु-प्रासहीन प्रबन्ध काव्य के क्षेत्र मे ये अनुपम उपलब्धियाँ है । इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ और वर्द्धमान (श्री अनूप शर्मा) भी अतुकान्त कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है । अतुकान्त मुक्तक रचनाओ मे हरिऔध जी के 'चोखे चौपदे,' 'चलते चौपदे' और 'बोलचाल' प्रसाद जी की 'लहर' के पेशोला की प्रतिध्वनि, शेर सिह का आत्म समर्पण, निराला का परिमल आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं ।

मुक्त छन्द मे काव्य सृष्टि हुई है और नई पीढ़ी के तरुण कवि बहुत कुछ लिख रहे है किन्तु इस मे उपलब्धियाँ न्यून हैं। मुक्त छन्द के नाम पर कुछ कवियो ने गद्यमयी रचनाएँ लिख कर कविता को विकृत कर डाला है। इस दिशा मे अभी तक किसी प्रौढ रचना के दर्शन नही हुए है। मुक्त छन्दो मे 'विराम सकेतो से, अको और सीधी-तिरछी लकीरो से, छोटे-बडे टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरो से, लोगो और स्थानो के नामो से, अधूरे वाक्यो के प्रयोगो से भी अभी साधारणीकरण की समस्या हल नही हुई है। इन बहुविध प्रयोगो के होते हुए भी आज का पाठक उलझी हुई सवेदना की सृष्टि को समझने मे अपने को असमर्थ पाता है। फिर भी इन प्रयोगो से कवि-चेतना की जागरूकता लक्षित होती है। लोकध्वनियो मे रचना करने मे भी कुछ अच्छी प्रतिभाएँ दिखाई पड रही हैं। नई पीढी के तरुण कवि जन-भाषा के शब्दो से जन गीतो की लय मे नई-नई रचनाओ की सृष्टि कर रहे हैं। इस दिशा मे शभुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, ठाकुरप्रसाद, भवानीप्रसाद मिश्र, रामविलास, गिरजाकुमार और भारती के नाम प्रमुख हैं। इन कवियो की रचनाओ मे जन-युग का स्पन्दन है। इनका काव्य नई अनुभूति, नये जीवन-बोध एव नव युग की आकाक्षाओ से अनुप्रेरित है। इनके प्रयोगो मे एक सत्यान्वेशी का विश्वास है तथा ये उसी के सहारे नया पथ प्रशस्त करने मे लगे हुए है।

निष्कर्ष यह है कि छायावादी काव्य भूमि मे जो प्रयोग हुए हैं, वे अपेक्षाकृत .अधिक सफल हुई है। नई कविता के प्रयोग प्रयोग के लिए ही हैं। छायावादी काव्य के सामने नयी कविता की उपलब्धियाँ नगण्य हैं। फिर भी नई कविता की सभावनाएँ अधिक है तथा निकट भविष्य मे नयी पीढी के तरुण रचनाकारो से बहुत कुछ आशा है।

उपसंहार

उपसंहार

प्रबन्ध के प्रथम भाग मे काव्य-सबधी परपराओं के क्रमिक विकास एव आधुनिक हिन्दी काव्य मे उनकी स्थिति पर विचार किया गया है तथा द्वितीय भाग मे वस्तु, भाव एव शैली-शिल्प की दृष्टि से काव्य के नवीन प्रयोगो की समीक्षा की गई है। प्रस्तुत अध्याय मे प्रबन्ध मे दिए हुए परपरा और प्रयोगो के निष्कर्षो का उल्लेख तथा विवेचन किया जाता है।

काव्य को विषय-वस्तु के अध्ययन करने के उपरान्त यह परिणाम निकलता है कि कथानक एव वस्तु-वर्णन की परम्परा वर्तमान काल मे जीवित है तथा उसका यथेष्ट विकास भी हुआ है। प्राचीन प्रबन्ध काव्यो मे कथा-वस्तु का वर्णन रस की दृष्टि मे किया जाता था तथा कला का आलम्बन कोई विशिष्ट व्यक्ति चुना जाता था, जिसके गुण, कर्म एव चरित्र से साधारण जन परिचित होते थे। इस प्रकार के विशिष्ट एव वीर पुरुष ही कथा के नायक हो सकते थे, क्योकि इससे रस-निष्पत्ति मे पूर्ण सहायता मिलती थी। आलोच्यकाल के प्रबध काव्यो मे भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है तथा विशिष्ट पुरुषो को कथा का नायक बनाने की दिशा मे और अधिक विकास हुआ है। अन्तर केवल यह है कि प्राचीन काव्यो के नायक अधिकतर देवी-देवता एव अवतार होते थे, किन्तु आधुनिक युग मे उनका स्थान लोक-वन्य महान् पुरुष एव इतिहास-प्रसिद्ध वीरो ने ले लिया है। नये युग ने देवताओ के स्थान पर मानवो को कथा-नायक के रूप मे प्रतिष्ठित किया है (देखिए अध्याय ५)। यह आधुनिक युग के मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रभाव के कारण है।

किन्तु यह प्रवृत्ति पचास प्रतिशत प्रबन्ध काव्यो मे ही दृष्टिगत होती है। शेष काव्यो मे नूतन काव्योन्मेष के दर्शन मिलते है। इनमे वस्तु-वर्णन रस-सापेक्ष न होकर चरित्र-चित्रण की प्रधानता है। कथा के नायको का चयन सामान्य वर्ग मे से किया गया है। फलतः कथा के नायको मे सामान्य नेता, स्त्री एव अधम पात्रो को भी स्थान मिल गया है (देखिए अध्याय ६)। यह प्रवृत्ति अँगरेजी साहित्य तथा नये युग के प्रभाव से उत्पन्न हुई है, जिसके फल-स्वरूप विशिष्ट जनो के स्थान पर सामान्य जनो को भी काव्य मे प्रधान पुरुष का स्थान मिला है।

आधुनिक कविता मे पौराणिक कथानक एव वस्तु-वर्णन की प्रवृत्ति का

ह्रास हो गया है। यद्यपि आलोच्यकाल मे पौराणिक कथानको के आधार पर रचित काव्य-ग्रन्थ भी विद्यमान हैं, तो भी इनकी सख्या गिनी-चुनी है तथा धीरे-धीरे वह भी लुप्त होती जा रही है। धार्मिक विषय, प्राकृतिक विषय तथा ऐतिहासिक विषयो का वर्णन प्रायः सभी प्रबन्ध काव्यो मे मिलता है। इस दिशा मे भी युगोचित नया विकास हुआ है। धार्मिक विषयो के अतर्गत राष्ट्रप्रेम, दलितोद्धार एव जनतात्रिक विषयो का भी समावेश हो गया है। नीति एव धर्म की मानव प्रेम की दृष्टि से नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। आधुनिक युग मे धर्म साप्रदायिक रूढियो से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप मे विकसित हुआ है। अब धर्म वैयक्तिक साधना की वस्तु न होकर समष्टिगत हो गया है। उसका स्वरूप बहुत कुछ रूढियो के जाल से छूट गया है। वाह्याडम्बरो की अपेक्षा उसमे सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, सेवा के आदर्शों का अधिक महत्व हो गया है। व्यवहार-पक्ष मे वह मानवतावाद के ऊपर प्रतिष्ठित है, जिसमे जाति, वर्ण, सप्रदाय एव राष्ट्र की सकुचित भावनाओ का परित्याग हो गया है (देखिए, तीसरा अध्याय)।

आधुनिक कविता मे 'नारी' की प्रमुख स्थान मिला है। यो तो हर एक युग के कवियो ने ही नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया है, किन्तु आधुनिक काल मे नारी ही काव्य का मूल विषय है। युग-युग मे नारी के प्रति कवियो का दृष्टिकोण बदलता रहा है। उसको आदर्श और यथार्थ दोनो रूपो मे चित्रित किया गया है। वर्तमान युग मे नारी के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि का भी विकास हुआ है। इस युग की वैयक्तिकता प्रधान कविताओ मे कवियो को व्यक्तिगत कुठाओ की ही प्रतिच्छाया अधिक है। छायावादी तथा प्रगतिवादी कवियो ने नारी का जैसा चित्रण किया है उसमे दमित वासनाओ के उद्‌गारो का ही प्राचुर्य है। इस युग के कवि भी नारी को कोई स्वतत्र व्यक्तित्व नही दे सके है। हाँ, आजकल के कवियो ने युग-युग से परतत्र नारी के स्वातत्र्य का उद्‌घोष अवश्य सुनाया है। पुरानी मर्यादाओ एवं परपराओ से मुक्ति पाने से ही नारी का स्वतत्र विकास सभव है, ऐसे नए कवियो का अटल विश्वास है। इसीलिए उनकी कविता मे नारी की स्वतत्रता का स्वर मुखर है। अत्याधुनिक युग के काव्य मे जाग्रत नारी का चित्रण प्रधान है तथा यौन-प्रवृत्तियो को प्रकृत रूप मे निस्सकोच वर्णन किया जाता है। प्रयोगवादी काव्य मे नारी को यथार्थता की भाव-भूमि पर चित्रित किया गया है।

आधुनिक युग मे काव्य के प्रतिमान एकदम बदल गए है। प्राचीन कवि रस की दृष्टि से काव्य का सृजन करते थे। इसलिए विशिष्ट आलम्बनो को चुनकर

उनके प्रति विविध भावो की व्यजना दिखाई जाती थी, जिससे श्रोता या पाठक के हृदय मे पूर्ण रसानुभूति हो सकती थी । आजकल के कवि अँगरेजी काव्यादर्श से प्रभावित होकर अपने काव्यो मे चरित्र चित्रण एव जीवन सघर्ष को प्रधानता देते हैं । अतएव इनमे रसोन्मेष के स्थल बहुत कम जा पाते हैं । इन काव्यो को पढ कर सहृदय को रसानुभूति का आनन्द नही मिलता वह केवल चरित्र से प्रभावित होकर रह जाता है ।

आधुनिक काव्य मे रति के क्षेत्र का पर्याप्त विकास हुआ है । पहले रति नायक-नायिका तक ही सीमित थी । आलोच्यकाल मे देश-विषयक, प्रकृति विषयक एवं अव्यक्त प्रियतम विषयक रति का भी प्रकाशन हुआ है । अभिप्राय यह कि आधुनिक युग मे देशानुराग, प्रकृति-प्रेम एव अव्यक्त प्रियतम के प्रति रति-भाव भी प्रकट हुआ है, जो रस की अवस्था तक न पहुँचने से केवल भाव-कोटि तक रह जाता है । वीर रस के आलम्बनो मे राष्ट्र वीर, सत्याग्रह वीर, त्याग वीर, निम्न वर्ग, स्त्री एव पूँजीपतियो को भी स्थान मिला है । करुण रस के आलम्बनो मे दलित, विधवा, अनाथ, भिक्षुक, किसान एव मजदूरो का भी समावेश हुआ है (देखिए, अध्याय ८) ।

भाव-क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है । राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-प्रेम एव दलित-प्रेम के साथ-साथ कुछ नये सचारी भावो की भी वृद्धि हुई है । सचारियो की स्थिति रस के आभोग मे ही सभव है, क्योकि उनका स्वतत्र अस्तित्व नही होता । आधुनिक कविता मे लोकानुभूति का भाव प्रधान है, जो देश-भक्ति एव दलितोद्धार के रूप मे प्रकट हुआ है । विषाद या सहानुभूति इसका स्थायी भाव माना जा सकता है । विक्षोभ, प्रतिशोध, देश-भक्ति, विजय, प्रतियोगिता, समता, विचार, वितर्क आदि इसके सचारी हैं ।

प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कविता मे भाव-पक्ष का ह्रास हो गया है, क्योकि ये कवि रस-सिद्धान्त से विरोध रखते है । इनका काव्य बुद्धि-पक्ष प्रधान है, जो तर्क, विचार, सशय, श्रद्धा, अविश्वास एवं असतोष के रूप मे प्रकट हुआ है । ये कवि अपनी रचनाओ मे यथार्थ चित्रण, बौद्धिकता, तार्किकता, ऐन्द्रियिक सवेदन और यौन-भावनाओ को अधिक महत्व प्रदान करते है । इनके ऊपर आधुनिक युग की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रभाव अधिक है । इससे काव्य के मूल तत्व रस-बोध को क्षति पहुँची है, जिससे काव्य का स्वारस्य नष्ट हो गया है । मूलतः काव्य रागात्मक है, यह परपरा से सिद्ध है । नये कवियो ने काव्य के मूल तत्व का ही खडन किया है, किन्तु उसके स्थान पर अभी तक कुछ नवीन तत्व नही दिया है । केवल विद्रोह की प्रवृत्ति अपने-आप मे कोई सिद्धात नही । नया काव्य-

सिद्धान्त रचनात्मक सृजन से उद्‌भूत होना चाहिए, वाद-विवाद एवं अनर्गल प्रचार से नही। बाल्मीकि, कालिदास, सूर एव तुलसी के काव्यो मे प्राण-तत्व रस है। उस परम्परा से विच्छिन्न होकर काव्य लघु हो सकता है, महान् नही।

प्रयोगवादी कविता उलझी हुई सवेदनाओ का प्रकाशन है। भावो की विशुद्ध अभिव्यक्ति उसमे बहुत कम है। उसमे वैयक्तिक अनुभूति को समष्टि तक पहुचाने के लिए नये-नये माध्यमो को ढूंढा गया है, जिससे काव्य मे क्लिष्टत्व दोष आ गया है। यह सत्य है कि वर्तमान युग की जटिलताओ ने जीवन मे नाना प्रकार की गुत्थियाँ डाल दी हैं, जिससे सवेदनाओ मे भी उलझन आ गई है। कवि भी बेचारा परिस्थितियो का दास है। किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य है कि कवि अपने समय मे अपने समाज का सबसे अधिक सचेत व्यक्ति होता है। अत. अनुभूति की क्षमता तथा अभिव्यक्ति की शक्ति—दोनो ही गुण उसमे औरो की अपेक्षा अधिक विकसित होते है। वह अपने युग की मानवीय अनुभूतियो को आत्मसात् करके इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि वह पाठको के लिए सहज-सवेद्य हो जाती है। अतएव कवि की सफलता इसी मे है कि वह उलझी हुई सवेदनाओ को सर्वग्राह्य बना दे। जिस कवि की अनुभूति वैयक्तिक घेरे मे ही सीमित रहेगी, वह सामाजिक दायित्व को नही निभा सकता तथा उसकी कविता सर्वजन स्वीकृति भी नही हो सकती।

काव्य जीवन की अनुकृति है या उसकी व्याख्या? यह भी वाद का विषय हो गया है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवि जीवन मे वस्तु-सत्य को प्रधानता देते है। इसी से उनके काव्य मे भी यथातथ्य चित्रण अधिक है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनकी वर्णन-पद्धति मे जीवन के कुत्सित एव भद्दे रूपो का समावेश हो गया है। वस्तु का यथातथ्य चित्रण काव्य नही है। वह तो इतिहास का मार्ग है। काव्य मे वस्तु को चमत्कार पूर्ण बनाकर प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वह चित्त मे आह्लाद उत्पन्न करने मे सक्षम होती है। काव्य नग्न सत्य का आदर नहीं करता, उसकी दृष्टि सौन्दर्योन्मुखी होती है। साथ ही वह आत्मानुभूति को लोक-सापेक्ष दृष्टि से अवलोकन करने का प्रयत्न करता है। कम-से-कम भारतीय परपरा मे काव्य को सार्थकता लोकहित का विधान करने मे ही है[१]।

१—कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। (रामायण बालकांड १३।८)

काव्य रूप

आधुनिक कविता मे काव्य के रूप-प्रकारो के क्षेत्र मे जितने प्रयोग हुए हैं, उतने पहले कभी नही हुए। इन नये प्रयोगो पर बहुत कुछ अँगरेजी-साहित्य के काव्य रूपो का प्रभाव है। आधुनिक काल मे महाकाव्य की परिभाषा ही बदल गई है। नये महाकाव्यो मे रस का स्थान चरित्र-चित्रण एव जीवन-सघर्ष ने ले लिया है तथा उसके कथानक मे जातीय-राष्ट्रीय गौरव को प्रधान स्थान दिया जाता है। नायक का आदर्श भी बदल गया है। पहले क्षत्रिय कुलोत्पन्न वीर पुरुष ही कथा के नायक हो सकते थे। नायक के चुनाव मे आभिजात्य का पूरा विचार रखा जाता था, किन्तु आधुनिक महाकाव्यो मे सामान्य वर्ग के स्त्री-पुरुष भी नायक हो सकते है (देखिए, काव्य के रूप, अध्याय ६)। दैत्य जैसे अधम पात्रो को भी उत्कर्ष मिला है तथा उनके चरित्रो को भी महाकाव्य का विषय बनाया गया है।

सबसे अधिक प्रयोग प्रगीत काव्य के क्षेत्र मे हुए है। व्यग्य गीति, शोक गीति, पत्र गीत, सबोध गीति (ओड), राष्ट्रीय गीति, विचारात्मक गीति, लोक गीत, सिनेमा गीत एव नाट्य गीत इत्यादि विविध रूपो मे प्रगीत काव्य का सृजन हुआ है। इससे प्रकट है कि आलोच्यकालीन कवियो की प्रवृत्ति गीति-काव्य की रचना की ओर अधिक रही ह।

आधुनिक प्रगीत काव्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता हे कि छायावादी-रहस्यवादी कवियो की दृष्टि कल्पना की ओर रही है तथा प्रगतिवादियो की यथार्थ की ओर। छायावादी गीतो की मुख्य विशेषताएँ है, वैयक्तिकता की भावना, कल्पनाशीलता, आध्यात्मिक विवृति, वेदना का स्वर एव अवसाद-विषाद का प्रकाशन। इस काव्य मे प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति एवं अध्यात्म को लेकर गीतो की रचना की गई है। अनुभूति एव अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये गीत एकदम नये प्रयोग है, क्योकि इनके पीछे एक नूतन काव्य-प्रेरणा है। इनमे अनुभूति की अपेक्षा कल्पना-प्रवणता है। सन्त कवियो की सी सहजानुभूति एव उदात्तता इन गीतो मे ढूँढने पर भी नही मिलती है। कारण यह है कि छायावादी कवियो की अनुभूति मे उतनी प्रगाढता नही है। इनमे कल्पना का वेग है, अनुभूति की तीव्रता नही।

प्रगतिवादी गीतो मे अनुभूति का स्तर और अधिक नीचे को गिरा है। ये स्थूल, ऐन्द्रियिक वासनाओ से प्रेरित गीत है। सन्त कवियो मे आत्मानुभूति थी, छायावादी कवियो की अनुभूति मानसिक है तथा प्रगतिवादी रचनाकारो की अनुभूति है विशुद्ध ऐन्द्रियिक।

काव्य का प्राण-प्रद धर्म है, विशुद्ध स्वानुभूति। यह अनुभूति भीतर से

प्रादुर्भूत होती है। निश्छलता इसका मूल तत्व है। यही गीत का सर्वस्व है। शैली और शिल्प तो गौण स्थान रखते है। इस दृष्टि से आलोच्यकालीन प्रगीत काव्य की पर्यालोचना की जाय तो वह अपेक्षाकृत उतरा हुआ मिलेगा। इसमे शैली शिल्प का विधान तो सर्वथा नूतन, आकर्षक एव वैचित्र्यपूर्ण है, किन्तु काव्यानुभूति असत्य, अस्वस्थ एव विकृत है। उच्च कविता केवल अनुभूति ही नही है, उसे उदात्त एव स्वतः प्रेरित भी होना चाहिए। मीरा, सूर एव कबीर के गीत इसमे प्रमाण है।

वर्तमान हिन्दी-कविता मे गीति-काव्य का भविष्य निराशामय है। प्रगतिवादी कवियो ने फिर भी जन जीवन के गीत गाए है, किन्तु प्रयोगवादी रचनाकारो ने तो गीति-काव्य का गला ही घोट दिया है। ये कवि गीतो के स्थान पर मुक्त छन्द मे नीरस पद्य-खडो की रचना करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि गीतो का प्रवाह मरुस्थल मे जा पहुँचा है। गीतो के क्षेत्र मे अब परपरा ही नही, प्रयोग भी लुप्त हैं। कुछ कवि लोक ध्वनियो के आधार पर नए गीत लिख रहे हैं।

आधुनिक कविता मे वस्तु की अपेक्षा शिल्प के प्रयोग अधिक हैं। काव्य-शिल्प मे छन्दो के प्रयोग आश्चर्यजनक है। इस काल मे सयुक्त छद, विषमपादी छन्द, मिश्र छन्द, स्वच्छन्द छन्द, मुक्त छन्द सस्कृत-छन्द, उर्दू के शेर, गजल, रुबाई, बँगला का पयार छन्द तथा अँगरेजी के सानेट के आधार पर रचित छन्दो के प्रयोगो से हिन्दी काव्य की पुष्कल वृद्धि हुई है (देखिए अध्याय १०)। इनके अतिरिक्त सिनेमा गीत और लोकधुनियो के आधार पर रचित गीतो की भी पर्याप्त रचना हुई है तथा हो रही है। छन्दो के प्रयोगो मे बहुत सी खटकने वाली बाते भी आ गई हैं। पाद-योजना, लय, तुक, मात्रा एव वर्ण सबधी दोषो की बाढ सी आ गई है। कवित्त को तोडकर जो मात्रिक एव वर्णिक छन्द बनाए गए हैं, उनमें पाद-व्यवस्था दोष-युक्त है। इसी प्रकार मुक्त छन्द दो प्रकार का है, मात्रिक और वर्णिक। लय उसका अन्तः सगीत है, जिसके बिना उसका कोई मूल्य नही। किन्तु आधुनिक कविता मे मनमाने मुक्त छन्द प्रचलित हो गए हैं, जिससे काव्य-सौष्ठव को क्षति पहुँची है। छन्दो के नये प्रयोग कुशल कवियो द्वारा ही सफल होते हैं, क्योकि उनमे कोई-न-कोई नियम अवश्य रहता है। अव्यवस्थित एव अनियमित छन्द काव्य के दूषणो की ही वृद्धि करते हैं। अतः छन्दो के प्रयोग मे कवियो को विशेष रूप से सचेष्ट रहना आवश्यक है। छन्द मे मात्रा या वर्णों का क्रम लय की दृष्टि से निर्धारित किया जाता है, जिससे

उसका गेय तत्व सुरक्षित रहता है। इसके बिना कविता और गद्य मे कोई अन्तर नही रह जाता।

नयी कविता मे लोक-गीतो की अनेक धुन प्रचलित हैं, जिनमे सोरठ, ठुमरी, ठाठ, ठप्पा, कव्वाली, ख्याल, झूलना, दादरा, कजली, आल्हा, लावनी, रसिया आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक रगत के लोक-गीतो की प्रादेशिक धुनो पर आजकल के हिन्दी कवि लिख रहे हैं। जन-गीतो की तर्जों के आधार पर वर्तमान काल मे जो कविताएँ लिखी गई है, निस्सन्देह प्रयोगात्मक है। किन्तु इनका स्वतत्र अध्ययन व्यवस्थित रूप से तब तक नही हो सकता, जब तक इस प्रकार के काव्य का प्रचुर परिमाण मे सृजन नही हो जाता। अभी थोडे ही कवियो ने इस ओर प्रयास किया है। जब तक इस क्षेत्र मे प्रचुर काव्य राशि उपलब्ध हो नही जाती, तब तक इन प्रयोगो का सुनिश्चित रूप से अध्ययन असभव ही है।

अलंकार-विधान

नयी कविता का अप्रस्तुत-विधान अत्यत प्रभावशाली है। इस क्षेत्र मे हिन्दी के कवि अँगरेजी साहित्य से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। नये कवियो ने काव्य को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए अभिव्यजना की नई-नई पद्धतियो को ढूंढ निकाला है। इनमे मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, मूर्त विषय के लिए अमूर्त उपमान, अमूर्त विषय के लिए मूर्त उपमान, अगी के लिए अग का प्रयोग, विशेष के लिए सामान्य तथा सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग, जाति वाचक के लिए भाव वाचक एव भाव वाचक के लिए जाति वाचक का प्रयोग, गुणी के स्थान पर गुण और गुण के स्थान पर गुणी का प्रयोग, प्रभाव साम्य के आधार पर अप्रस्तुतो का प्रयोग, प्रस्तुत-अप्रस्तुत का तादात्म्य, प्रतीकात्मक उपमान, लाक्षणिक उपमान, अन्यापदेश (एलेगरी) तथा लक्षणामूल रूपको के प्रयोग विशेष आकर्षक हैं (देखिए, अध्याय १० अलकारो के प्रयोग)।

छायावादी कवियो के अलकार-विधान पर अगरेजी के वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, बायरन आदि कवियो का प्रभाव विशेष है तथा प्रयोगवादी कवियो पर ईलियट, एजरा पाउड, लारेंस, ह्विटमैन आदि का। इसके साथ-ही बहुत कुछ अश मे इन कवियो की समर्थ प्रतिभा ने भी अप्रस्तुत-विधान के नये नये स्तरो का अन्वेषण किया है। छायावादी-रहस्यवादी कवियो की अभिव्यजना पद्धति मे सौन्दर्य के नाना पक्षो का सफल उद्घाटन हुआ है। उपमान एव प्रतीको की खोज के लिए कवियो की प्रतिभा ने अधिकतर प्राकृतिक क्षेत्रो का अनुसधान किया है तथा सूक्ष्म, सुन्दर एव रमणीय उपमानो की योजना सफलतापूर्वक

की गई है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक एव व्यजक अप्रस्तुतो की सृष्टि करने मे इन कवियो ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है (देखिए, अध्याय १० अलकारो का विवेचन)।

अलकारो से काव्य मे सौन्दर्य की वृद्धि होती है। जब ये अश्लील, असुन्दर एव अवाछित रूपो की सृष्टि खडी करने लगते है, तब इनका प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी रचनाओ मे अधिकतर भद्दे एव कुरुचिपूर्ण उपमानो का ढेर-सा लगा दिया गया है। काव्य के शोभाधायक धर्मों का ऐसा दुरुपयोग शिष्ट रुचि का अनुमोदन कभी नही प्राप्त कर सकता है।

प्रतीक-योजना

आलोच्यकालीन कविता मे पुराने प्रतीको का भी व्यवहार हुआ है और नये प्रतीको की भी सृष्टि हुई है। किन्तु अधिकाश कवियो की दृष्टि पुराने प्रतीको की ओर से हट कर नये प्रतीक-विधान की ओर मुड रही है।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य की प्रतीक-पद्धति के दो रूप है। एक प्रकार के प्रतीक वे है जो अन्योक्ति-पद्धति पर आश्रित है तथा दूसरे प्रकार के प्रतीक लाक्षणिक है। ये प्रतीक अधिकतर प्राकृतिक जगत् से चुने गए हैं। प्रभावाभिव्यजक होने से ये भावो को उद्दीप्त करने मे पूर्ण रूप से समर्थ हैं। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य के प्रतीक अधिकतर व्यावहारिक जीवन से चुने गए हैं। ये प्रतीक दैनिक जीवन के व्यवहार से सबधित होने के कारण वस्तु को प्रभावोत्पादक बनाने मे पूर्ण सहायता करते है। यद्यपि इनमे सौन्दर्य का अभाव है, तो भी ये प्रभाववर्धक अधिक है। प्रतीकात्मक एव विम्बाधायक शैली नयी कविता की निजी विशेषता है। इन प्रतीको के साथ कभी जन-हृदय का परिचय नही हुआ है। इसी से इनको समझने मे कभी-कभी बहुत बडी भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। जिन कवियो ने जीवन के अश्लील और घृणित पक्षो से प्रतीको को चुना है, उनकी रचनाएँ घटिया और हास्यास्पद बन गई हैं (देखिए, नये प्रतीक, अध्याय १०)।

आधुनिक कविता की भाषा नागरी हिन्दी है। कुछ काव्य ब्रज और अवधी भाषा मे भी लिखे गए है। पहले कवियो ने सहज-सरल भाषा मे हृदय के उद्गारो को प्रकट किया है, किन्तु आलोच्यकाल मे लाक्षणिक पदावली, प्रतीक-पद्धति एव अभिव्यजना के विभिन्न मार्गों का उद्घाटन हुआ है। इससे नयी कविता की भाषा कही अधिक सशक्त, सुन्दर एव प्रभावोत्पादक है। छायावादी-रहस्यवादी कविता कवियो ने लाक्षणिक, व्यजक, प्रतीकात्मक, चित्रोपम एव साकेतिक प्रयोगो के द्वारा काव्य-भाषा की श्रीवृद्धि की है। प्रगतिवादी-

प्रयोगवादी एव राष्ट्रीय कविता मे भाषा का स्वाभाविक रूप ही ग्रहण किया गया है। किन्तु उसमे हास्य एव व्यग्य की प्रधानता है। प्रयोगवादी रचनाओ मे उर्दू शब्द, क्षेत्रीय प्रयोग एव जन भाषा की पदावली को निस्सकोच अपनाया गया है। लोकोक्ति एव मुहावरो का भी प्राचुर्य है तथा उर्दू और अगरेजी भाषा के मुहावरो को छूट के साथ ग्रहण किया गया है। नयी कविता की भाषा मे अनेक प्रकार के शब्दो का प्रयोग मिलता है।

(१) तत्सम शब्द (२) तद्भव शब्द (३) क्षेत्रीय प्रयोग (४) उर्दू के प्रयोग (५) अगरेजी शब्द तथा छायानुवाद। (६) ध्वन्यर्थ व्यजक शब्द (७) द्विरुक्त पद आदि (देखिए, 'भाषा' शीर्षक अध्याय १०)।

सस्कृत पदावली, उर्दू शब्द एव अगरेजी प्रयोगो के पूर्वग्रह से भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हुई है तथा उसमे कृत्रिमता की बाढ सी आ गई है। सस्कृत की समास युक्त पदावली ने कही-कही पर भाषा को दूषित कर दिया है। इसी प्रकार लक्षणाओ की रचना भी किसी नियम पर आधारित नही है। इसी से आधुनिक कविता के लाक्षणिक प्रयोग अधिकतर दूषित है। लक्षण के व्यापार को दूर तक खीचने की प्रवृत्ति ने भाषा को दुरूह बना दिया है। इसी प्रकार उर्दू प्रयोगो की बाढ ने भाषा के सहज रूप को विकृत बना डाला है।

वस्तुत भाषा की शक्ति अपने ही भीतर से प्रकट होती है। विदेशी शब्द, पद, मुहावरो एव लोकोक्तियो के अनावश्यक प्रयोगो से उसके गौरव को हानि ही पहुचती है। इसी प्रकार लक्षणा और व्यजना के प्रयोगो मे किसी नियम का आधार न होने से उनमे उच्छृखलता आ जाती है। इसके लिए आधुनिक कवियो को भाषा की परपरा, शब्द-शक्ति, नाद-सौन्दर्य, स्वर-मैत्री, लय-साम्य, एव ध्वनि-तत्व से परिचित होने की आवश्यकता है। व्याकरण के नियमो की ओर ध्यान रखने से ही भाषा परिष्कृत हो सकती है।

प्रयोग का उद्देश्य

काव्य की प्राचीन रूढियो को तोडने-फोडने तथा अप्रचलित, अपरिचित प्रतीको एव अप्रस्तुतो की योजना प्रयोग नही है। टकसाल मे ढके हुए नए सिक्को के तुल्य नए-नए शब्दो को गढना भी प्रयोग नही है। काव्य मे प्रयोग का अर्थ केवल इतना ही है कि अभिव्यक्ति एव रचना-प्रक्रिया के क्षेत्र मे नए-नए मार्गों का निर्माण हो, नई-नई रीतियो का उद्घाटन हो तथा वस्तु का नए रूप, रग एव भगिमाओ के साथ चित्रण हो। रीतिकालीन कवियो का प्रेम-वर्णन पढ़ते-पढते जी ऊबने लगता है, किन्तु छायावादी कवियो ने उसी प्रेम का अभिव्यक्ति

के नए माध्यम से ऐसा अनुपम चित्रण किया है कि उसमे अभिनय दीप्ति आ गई है।

प्रयोग मे नया आविष्कार करने का प्रश्न नही उठता। परिचित वस्तुओ मे सन्निहित सभावनाओ का उद्‌घाटन करना ही प्रयोग का उद्‌देश्य है। काव्य मे यही सत्य दृष्टिगोचर होता है। काव्य-वस्तु का आधार चिर-परिचित होता है, जिससे मानव-समाज प्रेरणा ग्रहण करता है तथा जिसका मानव-हृदय से शाश्वत सबध होता है। रूस, मास्को, लाल सेना एव लाल निशान के गीत भारतीय हृदय को स्पन्दित नही कर सकते, क्योकि इनके साथ उसका रागात्मक सबंध नही है। प्रयोग की विशेषता यह है कि कवि प्राचीन वस्तु मे कल्पना का ऐसा रग देता है कि वह सर्वथा मौलिक एव नवीन दिखाई पडती है, जिससे उसकी ओर सबका हृदय आकर्षित होता है। प्रयोग का अर्थ यही है कि कवि शाश्वत सत्य को नवीन परिस्थितियो के सन्दर्भ मे रखकर नये रूप मे उपस्थित करे। इसके अतिरिक्त प्रयोग का और क्या अर्थ है ?

प्रयोगवादियो मे सामान्य को छोडकर विशेष को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पडती है। इसके पीछे अपने व्यक्तित्व को प्रकाशित करने का अभिलाष ही प्रधान कारण है। आधुनिक काल मे निराला जी और अज्ञेय जी मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप मे दृष्टिगत होती है। ये जो कुछ कहना चाहते है, उसमे वैचित्र्य एव विशेष का प्रदर्शन अधिक होता है। विविध प्रकार के मुक्त छन्दो की सृष्टि, कथन-शैली नये-नये प्रकार, शब्दो के विचित्र प्रयोग, इनके काव्यो मे बहुत है। अज्ञेय जी ने फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर जो नूतन काव्य-सृष्टि खडी की है, उसमे कितना स्थायित्व है, यह तो कोई भविष्य का आलोचक बताएगा, परन्तु परपरा के प्रति विद्रोह का तीव्र स्वर उसमे स्पष्ट दिखाई पडता है।

कविता सामान्य जीवन और जगत् से कभी बाहर नही जा सकती। कवि जो कुछ कहता है, उसे यदि सामान्य लोग नही समझते, तो वह व्यक्तिगत वस्तु रह जाती है। व्यक्तिवाद मे वैचित्र्य की प्रवृत्ति आप से आप आ जाती है, जिससे सामान्य हृदय के साथ उसका साधारणीकरण नही हो पाता। यही कविता का पतन है। जब कविता समाज की वस्तु न होकर व्यक्तिगत वैचित्र्य के प्रदर्शन के लिए लिखी जाती है, तब उसका सामान्य जीवन से सबध टूट जाता है। वैचित्र्यवाद से प्रेरित होकर कवि जो कुछ कहता है, उसमे प्रेषणीयता नहीं रहती है तथा ऐसी कविता जीवन से विच्छिन्न हो जाती है।

साहित्य के क्षेत्र मे प्रयोग सदैव से होते आए हैं। हर एक रचनाकार वस्तु, रूप, लय, तुक, गीत, प्रतीक एव उपमानो की दिशा मे कुछ प्रयोग करता

है। इसी से वह कविता मे कलात्मक सौन्दर्य ला सकता है तथा रचनात्मक सृजन को कुछ गति दे सकता है। जो रचनात्मक कार्य मे प्रवृत्त होता है, वह कुछ-न-कुछ प्रयोग अवश्य करता है। प्रयोग तो रचना के पीछे-पीछे चलते हैं। जिसने कला या साहित्य के क्षेत्र मे कोई प्रयोग नही किए, उसकी रचना भी कोई मूल्य नही रखती। हर एक सशक्त रचना नए-नए प्रयोग का सन्धान करती है। प्रयोगो से ही इस बात का प्रमाण मिलता है कि कवि की प्रतिभा भावानुभूति को सहज ग्राह्य बनाने के लिए जागरूक है, तथा वह विकासोन्मुख है। पूर्ण सत्य आज भी अनुपलब्ध है और रहेगा। उसी की शोध के लिए कवि-प्रतिभा अनेकानेक प्रयोग-पद्धतियो का सृजन करती है। प्रयोग इस बात के साक्षी हैं कि कवि सत्यान्वेषण मे निरन्तर सलग्न है। वस्तुतः प्रयोग अन्वेषण-कर्ता कवि या रचनाकार का साधन है किन्तु यह तभी तक है जब तक उसकी दृष्टि काव्य-सत्य पर केंद्रित है। प्रयोग के लिए प्रयोग करना कवि-शक्ति का दुरुपयोग है। यह स्मरण रखने योग्य है कि काव्य की लता हर एक प्रकार की भूमि पर नही उगती है। यह हेतुवाद और बौद्धिक विवेचन का फल नही है। इसके लिए सच्ची काव्यानुभूति अपेक्षित है, तर्क-पद्धति नही। निष्कर्ष यह कि राजनीतिक वादो एव सप्रदायो की धरती में कविता के फूल नही खिलते।

परिशिष्ट

प्रतीक कोश

परिशिष्ट

नीचे आलोच्यकाल की छायावादी कविता के अन्तर्गत नूतन प्रतीक-परपरा का अध्ययन किया जाता है। इनको दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—(क) लाक्षणिक प्रतीक, (ख) अन्योक्ति प्रधान प्रतीक। लाक्षणिक प्रतीको मे वाचक पदो के स्थान पर लक्षक पदो का प्रयोग किया जाता है तथा अन्योक्ति प्रधान प्रतीको मे प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत चित्रो का विधान रहता है। नीचे लाक्षणिक प्रतीक विधान के उदाहरण दिये जाते है :—

(१) गीला गान=गीला का अर्थ है, आर्द्र (भीगा हुआ), किन्तु गान गीला नही होता है, गीला वस्त्र होता है। अतएव मुख्यार्थ का बोध है। गीला का लक्ष्यार्थ है, वेदना से पूर्ण। उत्पाद्य-उत्पादक सबध। प्रयोजन है, दुःख से पूर्ण कविता।

(२) नयनो के बाल=नेत्रो के बाल (शिशु) नही हो सकते, अतः मुख्यार्थ का बाध हुआ। लक्ष्यार्थ है, आँखो से उत्पन्न। यह जन्य जनक सबध है। प्रयोजन है आँसू।

(३) उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख मे मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव मे भास
विचारो मे बच्चो के साँस।

उषा=प्रफुल्लता, मुकुल=मुसकान, चाँदनी=कोमलता, स्वच्छता, बच्चो के साँस=सरलता, भोलापन।

(४) त्रिभुवन के मनोविकार=काम

(५) असीम सौदर्य-सिन्धु की विपुल वीचियो के शृगार=काम, अनग (यहाँ पूर्ण पद-योजना मे लाक्षणिक विधान है)।

(६) हास-अश्रु का अभिनय=सयोग-वियोग की क्रीडा।

(७) त्रिनयन की नयन-वह्नि के तप्त-स्वर्ण=अनग।

(८) अवाक् निर्जन की भारति=छाया।

(९) कौन तुम अतुल अरूप अनाम =शिशु।

(१०) तुम्ही हो स्पृहा, अश्रु औ हास,
सृष्टि के उर की साँस=ये सब नारी रूप के लाक्षणिक प्रतीक है।

(११) ऐ नश्वरता के लघु बुद् बुद,
काल-चक्र के विद्युत कन,
ऐ स्वप्नो के नीरव चुम्बन,
तुहिन दिवस, आकाश सुमन।

—नक्षत्र

(१२) पवन धेनु, रवि के पाशुल श्रम,
सलिल अनल के विरल वितान,
व्योम-पलक, जल-खग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान्।

—बादल

(१३) अहे वासुकि सहस्र फन = शेष के सहस्र फन प्रसिद्ध हैं, परिवर्तन भी सर्वतोमुख होता है। सादृश्य सबध है। भाव हैं—परिवर्तन।

(१४) सुषमा के शिशु = शोभा के कुमार, जन्य जनक सम्बन्ध अर्थात मनुष्य।

(१५) जीवन मधु = जीवन का आनन्द, मधु आनन्द का उपलक्षण है।

(१६) जीवन की डाल = हृदय।

(१७) फूलो का हास = फूलो के खिलने और हास मे सादृश्य सबध है अर्थात् प्रफुल्लता।

(१८) अनन्त का मुक्त मीन = विशेष्य-विशेषण सबध अर्थात् तारा।

(१९) धूलि की ढेरी मे अनजान।
छिपे हैं मेरे मधुमय गान॥

धूलि की ढेरी = असुन्दर वस्तुए। मधुमय गान = सुन्दर भाव।

(२०) मर्म पीडा के हास = हास = विकास, समृद्धि।

विरोधी-वैचित्र्य के लिए व्यग्य व्यजक भाव। आधार — आधेय सबंध अर्थात् है मेरे पीडित मन।

(२१) हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा।

अभाव = शून्यता। अभाव से उत्पन्न बालिका अर्थात् चिन्ता (जन्य-जनक सबध) ललाट = प्रारब्ध, खल लेखा = टेढी रेखा अर्थात् चिन्ता।

(२२) मधु मय अभिशाप = मधुर शाप (विरोधाभास) व्यग्य व्यजक सबध। चिन्ता मे भी मधुर इच्छा विद्यमान रहती है।

(२३) अरी उपेक्षा भरी अमरते = उपेक्षा भरी = कर्तव्य ज्ञान शून्य, अमरता = देव (विरोध वैचित्र्य लक्षित है) अर्थात् कर्तव्य के विषय मे उपेक्षा रखनेवाले देव।

(२४) तम के सुन्दरतम रहस्य। रहस्य=रूप, तम के सुन्दर तम रूप अर्थात् तम को प्रकाशित करने वाले तारे। प्रकाश्य – प्रकाशक सबध।

(२५) व्यथित विश्व के सात्विक शीतल विन्दु=सात्विक शीतल विन्दु = सुख एव शान्ति के पुज (उपकार्य-उपकारक सबध) अर्थात् दु खी प्राणियो को सुख-शान्ति प्रदान करने वाले तारे।

(२६) जीवन की गोधूली=गोधूली=समाप्ति, अवसान (सादृश्य सबध) अर्थात् जीवन की अतिम बेला।

(२७) बाडव-ज्वाला सोती थी, उस प्रणय-सिन्धु के तल मे।

बाडव-ज्वाला=पूर्वकालीन स्मृतियाँ। समुद्र के गर्भ मे जिस तरह बाडव रहती है, उसी प्रकार हृदय के भीतर प्रेम की स्मृतियाँ।

(२८) शीतल ज्वाला जलती है

ज्वाला=वेदना, वेदना के उत्ताप को आँसू शीतल कर देते हैं। विरोध का वैचित्र्य प्रदर्शित किया गया है।

(२९) काँटो ने भी पहना मोती

काँटो=(कटीले पौधो) कठोर हृदय के मनुष्य, मोती=हिम-विन्दु (अश्रु) अर्थात् पाषाण-हृदय वाले लोगो के नेत्र भी सजल हो गए।

(३०) हीरे सा हृदय हमारा कुचला शिरीष कोमल ने।

हीरा=कठोरता, कोमल शिरीष=मृदुल प्रेम अर्थात् मेरे कठोर हृदय को मृदुल प्रेम ने व्याकुल कर दिया (विरोध—वैचित्र्य का भाव)।

(३१) नीरव गान=नीरव=मूक, शान्त, गान=कविता। कविता नीरव नही हो सकती अर्थात् अतीत की स्मृति (विरोध-वैचित्र्य)।

इससे सिद्ध है कि छायावादी काव्य मे लाक्षणिक प्रतीको का बाहुल्य है।

प्रगतिवादी काव्य में प्रतीक विधान

(३२) शोषण के फौलादी हाथ।

शोषण=शोषक, अत्याचारी, फौलादी हाथ=निष्ठुर व्यापार (व्यग्य-व्यंजक भाव) अर्थात् शोषको के अत्याचार।

(३३) उग रही तलवार की फसले।

तलवार की फसलें=हिंसापूर्ण क्रान्ति। तलवार हिंसा का प्रतीक है। फसल क्रान्ति का। अर्थात् हिंसामय क्रान्ति जन्म ले रही है। तलवार और फसल दोनो ने अपना-अपना अर्थ छोड दिया है, अतः लक्षण-लक्षणा है।

(३४) केसर की मासूम क्यारियो से आती आवाज ।
काश्मीर पर कश्मीरी जनता का होगा राज ॥
—नागार्जुन

केसर की मासूम क्यारियाँ=कश्मीर-देश। केसर विशिष्ट देश से विशेष्य-विशेषण भाव लक्षित होता है। अर्थात् सौन्दर्य से पूर्ण कश्मीर देश।

(३५) गिर नही सकती कभी विश्वास की दीवार।

दीवार=अविचल निष्ठा। लक्षण लक्षणा है। सादृश्य सबध। तात्पर्य यह कि अटल विश्वास कभी निष्फल नही जाता।

(३६) पृथ्वी के गाल।

गाल=सतह, तल (सादृश्य सबध) लक्षण लक्षणा। पृथ्वी के धरातल से तात्पर्य है।

(३७) तन्द्रिल से स्वप्निल से बादल।

बादल=श्रमजीवी (बादलो के जल-दान और श्रमिको के श्रम-दान मे साम्य है, दोनो के उपकारक स्वरूप का सा दृश्य है। तन्द्रिल-स्वप्निल से आलस्य और थकावट व्यजित है। प्रतीक मे भाव की पूर्ण-व्यजना है।

(३८) गोरे रग के अभिगान।

अभिगान=आभिजात्य वर्ग, सवर्ण या कुलीन। गोरे रग से उज्ज्वलता अथवा उच्चता का भाव लक्षित है (व्यग्य-व्यजक भाव)।

(३९) पायलो की रुनकती झकार।

पायल=कामिनी, वेश्या, रुनकती झकार=मृदु गीत। स्त्रियो के गीतो के मधुर स्वर से तात्पर्य है।

(४०) यौवन का सौदागर।

यौवन=युवावस्था का सौन्दर्य सौदागर=उपभोक्ता अर्थात् युवतियो के सौन्दर्य को क्रय करने वाले धनिक श्रेणी के लोग।

(४१) नशीला चाँद।

चाँद=जीवन, नशीला=उन्माद पूर्ण, आवेग-युक्त। उल्लास एव प्रेम से पूर्ण जीवन। सादृश्य सबध से सारोपा गौणी लक्षण-लक्षणा है।

(४२) कटको के डक।

कटक=बाधाएँ, डक=मूल (व्यग्य-व्यजक भाव) अर्थात् बाधाओ की मूल।

(४३) पथ-प्रदर्शिका मशाल।

मशाल=नई चेतना, पथ-प्रदर्शिका=भावी जीवन की निर्मात्री। नव

जीवन का सचार करने वाली चेतना-शक्ति से प्रयोजन है

(४४) मानवता का शव ।

शव=निरीह, असमर्थ अर्थात् अशक्त एव निरीह जनता ।

(४५) गुलाम देश मे मगर
किसी जवान लाश पर
निरीह शोक का कफन तानना गुनाह है ।

—भारती

जवान लाश=असमर्थ जवान आदमी (विरोध वैचित्र्य) । निरीह शोक का कफन=निष्क्रिय सहानुभूति का प्रदर्शन । शुद्धा उपादान लक्षणा । निष्फल सहानुभूति के प्रदर्शन से प्रयोजन है ।

(४६) तम के जो बन्दी थे
सूरज ने मुक्त किए
किरनो से रग पोछा
धरती को रग दिये ।

—नरेश कुमार

तम=प्राचीन परपरा, सूरज=नई चेतना, रग=ऐश्वर्य । सूर्य जैसे अन्धकार को हरा देता है, वैसे ही नई चेतना ने दकियानूसी प्राचीन परपरा को तोड दिया । किरन=विकास । नई चेतना के विकास-प्रकाश से प्राचीन मलिन रग (सस्कार) साफ हो गए । धरती पर नया ऐश्वर्य छा गया । शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा ।

(४७) आज उठ अगार से शृ गार कर मेरी जवानी

—उदयशकर

अगार=विपत्ति, शृ गार—सुख, प्रसन्नता, जवानी=युवक-शक्ति । यहाँ साध्यवसाना शुद्धा लक्षण लक्षणा है । विरोध-वैचित्र्य का भाव व्यजित है । भाव यह कि हे युवक, विपत्तियो को सहर्ष वरण करो ।

(४८) अमृत रखा सागर के तल मे, लहर लहर से लड़ना होगा ।
बिन पतवार बिना नैया के, खारे जल मे बढना होगा ॥

—उदयशकर

अमृत=आनन्द, सागर=ससार, लहर-लहर=विघ्न-बाधा, पतवार=सहायक, खारा जल=विषम परिस्थिति । साध्यवसाना शुद्धा लक्षण लक्षणा ।

(४९) तू शैलराट हु कार भरे, फट जाय कुहा, भागे प्रमाद ।

—दिनकर

कुहा=भ्रान्ति, प्रमाद= जडता, आलस्य; साध्यवसाना शुद्धा लक्षण लक्षणा।

(५०) धूल के कन
हिमालय बन जा कि तुझको
कुचलने वाले झुका दे शीश। —रागेय राघव

धूल के कन=पद्दलित लोग, हिमालय=शक्तिशाली। सादृश्य सबध है। गौणी लक्षणा है। विषय और विषयी दोनो का उल्लेख होने से सारोपा है। लक्ष्यार्थ के साथ मुख्यार्थ ने स्वकीय अर्थ को पूर्णरूप से त्याग दिया है, अतएव जहत लक्षण लक्षणा है।

(५१) खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट॥
—कुक्कुरमुत्ता (निराला)

गुलाब=पू जीपति वर्ग, कुक्कुरमुत्ता=सर्वहारा वर्ग। खाद=शोषित वर्ग, डाल=उच्चता, कुलीनता।

(५२) फूल लाया हूँ कमल के। क्या करूँ इनका?
—भवानीप्रसाद

'कमल के फूल'=प्रेम

(५३) फिर वह एक हिलोर उठी
—शमशेर

हिलोर=क्रान्ति

(५४) किन्तु उधर, पथ प्रदर्शिका मशाल, कमकर की मुट्ठी मे।
—शमशेर

मशाल=क्रान्ति।

(५५) फिर मिट्टी मे जीवन की आशा जागी है
गिरती है दकियानूसी मिट्टी के ढेले
पिछली फसलो की गिरी पड़ रही हैं मेडे॥
—रघुवीर सहाय

मिट्टी=साधारण जनता, मिट्टी के ढेले=सामन्तवाद, पिछली फसल=प्राचीन परम्पराएँ, मेडे=विधि-विधान।

(५६) हम नदी के द्वीप हैं।
—अज्ञेय

नदी=समाज, द्वीप=व्यक्ति।

(५७) लाल झडा, लाल सेना, लाल तारा=क्रान्ति ।

(५८) खडहरो के मूक औ निस्पन्द से, उमडे अकेले गीत ।

—मुक्तिबोध

खण्डहर= विकेन्द्रित व्यक्तित्व ।

(५९) ये आज ठोस दीवार बनी
है रोक रही जीवन की गति, मन की उन्नति ।

—भारत भूषण

ठोस दीवार=प्राचीन रूढिया ।

(६०) नोन तेल लकडी की फिक्र मे लगे घुन-से,
मकडी के जाले से, कोल्हू के बैल-से ।

—माचवे

कोल्हू के बैल=निम्न मध्यवर्ग ।

(६१) जोतता है । बोता जो किसान इस धरती को
मिट्टी का पुतला है ।

—रामविलास

मिट्टी का पुतला=किसान ।

प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत के रूप मे भी प्रतीको का विधान मिलता है । छायावादी-रहस्यवादी काव्य से इसके उदाहरण दिये जाते है—

प्रतीक	अर्थ
अरुण ज्वाल	नव चेतना
अन्तर सौरभ	प्रेम, स्नेह
अमृत घन	आनन्द
अश्रु-हास	दु.ख-सुख
आग	अतृप्ति
उषा	सुख
कनक छाया	भोर
कलिका	प्रिया
काँटे	दुःख
किसलय	नेत्र
कुन्द	श्वेत रग
कुलिश	कठोर, निर्दय

गुलाब	लालिमा
चाँदनी	कोमलता
चिर निद्रा	मृत्यु
छाया	विषाद
ज्वार	लोक-चेतना
ज्वाला	चेतना
जीर्ण केचुल	पुराने विश्वास
जीवन	गति, विकास
झझा	क्षोभ
झरना	प्रेम-प्रवाह
झकार	भाव तरग
तत्री	हृदय
तरी, तरणि	जीवन
तूफान	उद्वेग
दीपक	नेत्र, तारा, प्राण
निर्झर	परिवर्तन
निर्मोक	जीर्णता
नीलम की घाटी	नेत्र
नीलम की प्याली	आँखे
प्रभात	आनन्द
पराग	स्मित
फूल	सुख
बुदबुद	नश्वरता
विन्दु-सिन्धु	व्यक्ति-समाज
मधु	सुख-माधुर्य
मधुकाल	शैशव, सुदिन
मधुप	प्रेमी
मद	यौवन
मदिरा	लाली
मधु बाल	भौंरा
मधु ऋतु	यौवन
मधु मास	सुख के दिन

मुकुल	प्रियतमा
मुरली	मधुर स्वर
मृत्यु	अगति
मोती	आसू-ओस
रजत	श्वेत-रग
रजत-शिखर	आत्मोन्नति
रक्त	बलिदान
रजतातप	आत्म निर्माण
रथ के चक्र	उत्थान-पतन
राखी	स्नेह का प्रतीक
बसन्त	उल्लास
विहग	मन
वीणा	हृदय
वशी	माधुर्य का प्रतीक
शूल-फूल	दु.ख-सुख
श्मशान	शून्य, नीरवता
सविता	प्रकाश
सहस्रफन (वासुकि)	परिवर्तन
सुमन	हृदय
सुरा	लाली
सोने की रेखा	आशा
सोने का ससार	प्रिय का लोक
स्वर्ण किरण	नव चेतना
स्वर्ण धूलि	स्वर्गीय प्रकाश
स्वर्ण निर्झर	सौन्दर्य चेतना
स्वर्णोदय	जीवन-सौदर्य
सिन्दूर	सौभाग्य-चिह्न
सितार	हृदय
हिमगिरि	विश्व कल्पना

प्रगतिवादी काव्य के प्रतीक

प्रतीक	अर्थ
अग्नि शिखा	क्रान्ति

अर्थ दस्यु	उच्च वर्ग
अँधियारा	परतन्त्रता
आज	विप्लव
अंकुर	जीवनी शक्ति
उजडो बगिया	निराशायुक्त जीवन
उजला-काला	पुण्य-पाप
ऊँचा मस्तक	गौरव
ऊँचो चितवन	अनन्त दृष्टि
कन-हिमालय	व्यक्ति-समाज
काँटे	विघ्न
कारवा	विकास यात्रा
काले बादल	श्रमिक वर्ग, जाति द्वेष
काली दीवार	सामन्तवाद
क्रान्ति	परिवर्तन
कुत्ते	खुशामदी, तुच्छ
कछुआ	भारतीय सस्कृति
ककड-पत्थर	दलित-शोषित
कीडा-कूडा	अपदार्थ-तुच्छ
कृमि	निम्न वर्ग
खुली हवा-खिली धूप	स्वतन्त्रता
खाल	जामा
गन्दो झील	पुराना जीवन
गागर	देह
गिद्ध	शोषक
गूँगी ईंट	मूक जनता, निम्न वर्ग
गरल तूफान	साम्राज्यवाद के पोषक
घूँसा	निर्दयता
घिसी व्यवस्था	पू जीवादी प्रथा
चेतना	क्रान्ति
चगेज	अत्याचार
चोर बजार	भ्रष्टाचार

चट्टान	बाधा
चिनगारी	क्रान्ति
छिपकली	नई फैशन की लडकिया
जोक	शोषक
ज्वाला	प्रलय, क्रान्ति
जजीर	परतत्रता
ज्वार	जोश, उत्साह
ज्वालामुखी	विघ्न बाधा
ठढा लोहा	निराशा का भाव
डागर	पू जीपति
ताडव	महानाश
ताजा पानी	नया जीवन
धरती का पुत्र	किसान
दरार	वर्ग भेद
दीप	ज्ञान
धरती के धब्बे	पाप, दुराचार
धूप छाह	द्वन्दयुक्त जीवन
नागपाश	पू जीवादी व्यवस्था
नई फसल	नया समाज
नादिरशाह	अत्याचार
नया सबेरा	नया जीवन
पिल्ला	दलित बच्चे
पतझर	निर्धनता
पहिया	गति
पिरामिड	शोषण के चिह्न
परवाना	त्याग
पुरातन शव	पुरानी समाज-व्यवस्था
पीले बासी फूल	दुख की सत्ता
बसन्त	ऐश्वर्य, समृद्धि
बगले	भक्षक
बत्ती	सास
बासी फूल	प्राचीन आदर्श

भुस का पुतला	वर्तमान [illegible]
भवरो की पात	केशपाश
भूसी	अकिंचन
मशाल	प्रकाश
महाजन	शोषक
मिट्टी के ढेले	दकियानूसी लोग
मैं-हम	व्यक्ति-समाज
मिट्टी का कण	व्यक्ति
मोती	सार, तत्व
मिट्टी का दिया	देह
रक्त	बलिदान
रणभेरी	क्रान्ति
रुद्र	प्रलय
लाल सितारा	रूसी झंडा
लाल रग	क्रान्ति
लौह मुष्टि	कठोरता
लहर	व्यक्ति
विपथगा	क्रान्ति
विषघट	सामन्ती शासन
वज्र की दीवार	पूजीवादी व्यवस्था
वज्र	जन शक्ति
विष के दीप	साम्राज्य के पोषक
शृखला	बन्धन
सबेरा	नव युग
सम्राट	नृशसता
साप	धन का रक्षक
सिह	बल
सपना	आकाक्षा
सकरी गली	तग जीवन
सूरज	सत्य, तेज
सासो की कारा	देह
सूखी हड्डियो के ढाचे	दलित, शोषित जन

होली	सर्वनाश
हड्डिया	सर्वहारा
हिमवान	योद्धा
हथकडिया	बन्धन
हिमाचल	साम्राज्यवाद
हथौडे	चोट
हड्डी	धन

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

हिन्दी

१—अँगराज . आनन्दकुमार
२—अपराजिता रामेश्वर शुक्ल 'अचल'
३—अनामिका .. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
४—अनन्त के पथ पर हरिकृष्ण प्रेमी
५—अभिमन्यु वध रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'
६—अमृत और विष . उदयशंकर भट्ट
७—अरस्तू का काव्य शास्त्र सपादक डा० नगेन्द्र
८—आचार्य क्षेमेन्द्र ... अनुवादक डा० मनोहरलाल गौड
९—आधुनिक गीति-काव्य सच्चिदानन्द तिवारी
१०—आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्द योजना डा० पुत्तूलाल शुक्ल
११—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास डा० श्रीकृष्णलाल
१२—आर्यावर्त ... मोहनलाल महतो 'वियोगी'
१३—आत्मोत्सर्ग ... सियारामशरण गुप्त
१४—आँसू जयशंकर प्रसाद
१५—इत्यलम् अज्ञेय
१६—उत्तरा .. सुमित्रानन्दन पन्त
१७—उद्धव शतक ... जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
१८—उपवन .. कु जविहारी पाडेय
१९—उन्मुक्त ... सियारामशरण गुप्त
२०—एकला चलो रे उदयशंकर भट्ट
२१—कलापी ... आर० सी० प्रसाद सिंह
२२—कविप्रिया . केशवदास
२३—कवि भारती सपादक पत, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र
२४—कामायनी जयशंकर प्रसाद
२५—कबीर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
२६—कानन कुसुम जयशंकर प्रसाद
२७—काव्य के रूप गुलाब राय

२८—काव्य-धारा	...	सपादक शिवदान सिंह चौहान
२९—कुरुक्षेत्र	...	रामधारी सिंह दिनकर
३०—कुक्कुरमुत्ता	...	निराला
३१—कुणाल	...	सोहनलाल द्विवेदी
३२—कृष्णायन	..	द्वारिका प्रसाद मिश्र
३३—कैकेयी	..	प्रभातकुमार मिश्र
३४—खडी बोली का आन्दोलन		डा० शितिकठ मिश्र
३५—गंगावतरण	...	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
३६—गाँधी गौरव	...	गोकुलचद्र शर्मा
३७—गुजन	..	सुमित्रानदन पत
३८—गीतिका	...	निराला
३९—ग्राम्या	.	पन्त
४०—ग्रन्थि	.	पन्त
४१—चिन्ता	..	अज्ञेय
४२—चिन्तामणि (द्वितीय भाग)	.	रामचन्द्र शुक्ल
४३—चुभते चौपदे	..	हरिऔध
४४—छन्द प्रभाकर	..	जगन्नाथप्रसाद भानु
४५—छायावाद युग	.	डा० शम्भूनाथ सिंह
४६—छेडछाड	.	श्रीनारायण चतुर्वेदी
४७—जगदालोक	.	गोपालशरण सिंह
४८—जन नायक	..	रघुवीर शरण मित्र
४९—जयद्रथ वध	...	मैथिलीशरण गुप्त
५०—जीवन के गान		शिवमगल सिंह 'सुमन'
५१—जौहर	.	श्यामनारायण पाडेय
५२—जौहर	...	सुधीन्द्र
५३—ज्योतिषमती	...	गोपालशरण सिंह
५४—झरना	...	जयशकर प्रसाद
५५—ठढा लोहा	...	धर्मवीर भारती
५६—तक्षशिला	.	उदयशकर भट्ट
५७—तपस्वी तिलक	..	गोकुलचन्द्र शर्मा
५८—तसव्वुफ अथवा सूफी मत	...	चन्द्रबली पाडेय
५९—तार सप्तक	...	सपादक अज्ञेय

६०—तुमुल ... श्यामनारायण पाडेय
६१—तुलसीदास निराला
६२—द्वापर ... मैथिलीशरण गुप्त
६३—दीप शिखा . महादेवी
६४—दूर्वा दल ... सियारामशरण गुप्त
६५—दूसरा सप्तक सपादक अज्ञेय
६६—दैत्य वश ... हरदयालु सिंह
६७—धूप के धान गिरिजाकुमार माथुर
६८—धूप और धुआँ दिनकर
६९—नल नरेश पुरोहित प्रतापनारायण
७०—नकुल ... सियारामशरण गुप्त
७१—नई कविता के प्रतिमान ... लक्ष्मीकात वर्मा
७२—नये पत्ते निराला
७३—नहुष ... मैथिलीशरण गुप्त
७४—नीरजा ... महादेवी
७५—नीद के बादल ... केदारनाथ अग्रवाल
७६—नूरजहाँ . गुरुभक्त सिंह
७७—पथिक रामनरेश त्रिपाठी
७८—पल्लव ... पन्त
७९—पल्लविनी . पन्त
८०—परिमल ... निराला
८१—पाथेय . सियारामशरण गुप्त
८२—पिघलते पत्थर ... रागेय राघव
८३—प्रियप्रवास ... अयोध्या सिंह उपाध्याय
८४—प्रणवीर प्रताप ... गोकुलचन्द्र शर्मा
८५—प्रभात फेरी ... नरेद्र
८६—प्रलय सृजन ... शिवमगल सिंह 'सुमन'
८७—प्रवासी के गीत ... नरेन्द्र शर्मा
८८—बापू सियारामशरण गुप्त
८९—बुद्ध चरित ... रामचन्द्र शुक्ल
९०—बेढब की बहक बेढब बनारसी
९१—बोलचाल ... हरिऔध

९२—बीसवी शताब्दी के महाकाव्य	.	डा० प्रतिपाल सिह
९३—भारतीय साहित्य शास्त्र	...	श्री बलदेव उपाध्याय
९४—भारतेन्दु ग्रथावली (२ रा खड)	.	सपादक ब्रजरत्न दास
९५—भारत का प्राचीन इतिहास	..	डा० सत्यकेतु विद्यालकार
९६—भैरवी	.	सोहनलाल द्विवेदी
९७—माधवी	.	गोपालशरण सिह
९८—मानवी		गोपालशरण सिह
९९—मिलन		रामनरेश त्रिपाठी
१००—मधुपुरी		गयाप्रसाद द्विवेदी
१०१—मुकुल	.	सुभद्रा कुमारी
१०२—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य	.	सपादक गगाप्रसाद पाडेय
१०३—मधुशाला		हरिवश राय 'बच्चन'
१०४—मधुकलश		हरिवश राय 'बच्चन'
१०५—मेधावी	.	रागेय राघव
१०६—मौर्य विजय	.	सियारामशरण गुप्त
१०७—यशोधरा	...	मैथिलीशरण गुप्त
१०८—यथार्थ और कल्पना		उदयशकर भट्ट
१०९ यामा	.	महादेवी वर्मा
११०—युग वाणी		पन्त
१११—युग पथ		पन्त
११२—युगान्त	.	पन्त
११३—रजत शिखर		पन्त
११४—रश्मि रथी		दिनकर
११५—रस मीमासा		रामचन्द्र शुक्ल
११६—राम कथा	...	डॉ० कामुल बुल्के
११७—रावण महाकाव्य	.	हरदयालु सिह
११८—रेणुका	..	दिनकर
११९—रूप और अरूप		जानकी वल्लभ शास्त्री
१२०—लहर		जयशकर प्रसाद
१२१—वनबास	.	राजाराम शास्त्री
१२२—वासवदत्ता		सोहनलाल द्विवेदी
१२३—विक्रमादित्य	.	गुरुभक्त सिह

१२४--	विषपान	सोहनलाल द्विवेदी
१२५	वीर काव्य सग्रह	सपा० भगीरथप्रसाद दीक्षित
१२६—	वीर सतसई	वियोगी हरि
१२७	व्रज माधुरी सार	सपा० वियोगी हरि
१२८	शकर सरोज	नाथूराम शकर
१२९—	शक्ति	मैथिलीशरण गुप्त
१३०—	शर्वाणी	अनूप शर्मा
१३१—	सचिता ...	गोपालशरण सिंह
१३२—	समीक्षा शास्त्र	सीताराम चतुर्वेदी
१३३—	साकेत .	मैथिलीशरण गुप्त
१३४	साकेत सत	बलदेवप्रसाद मिश्र
१३५—	साहित्य समालोचना	डा० रामकुमार वर्मा
१३६—	सिद्धार्थ ..	अनूप शर्मा
१३७—	सिद्धराज	मैथिलीशरण गुप्त
१३८—	सिद्धान्त और अध्ययन .	गुलाब राय
१३९—	सियाराम शरण गुप्त	सपा० डा० नगेन्द्र
१४०—	स्वर्ण धूलि .	पन्त
१४१—	स्वर्ण किरण	पन्त
१४२—	स्वप्न	रामनरेश त्रिपाठी
१४३—	हरिऔध सतसई .	हरिऔध
१४४—	हल्दी घाटी .	श्यामनारायण पाडेय
१४५—	हिम कण	भगवतीचरण वर्मा
१४६—	हरी घास पर क्षण भर	अज्ञेय
१४७—	हिल्लोल .	शिवमगल सिंह 'सुमन'
१४८—	हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास	डॉ० भगीरथ मिश्र
१४९—	हिन्दी साहित्य मे हास्य रस	डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी
१५०—	हिन्दी अलंकार साहित्य	डॉ० ओमप्रकाश
१५१—	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१५२—	हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना	राजाराम रस्तोगी
१५३—	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
१५४—	हिन्दी काव्य मे युगान्तर	डा० सुधीन्द्र
१५५—	हिन्दी छन्द प्रकाश	रघुनन्दन शास्त्री

संस्कृत

१—अग्नि पुराण
२—अलकार शेखर ... केशव मिश्र
३—अथर्व वेद
४—ऋग्वेद
५—ऐतरेय
६—कठोपनिषद्
७—कथा सरित्सागर
८—कवि कठाभरण
९—काव्यादर्श . दण्डी
१०—काव्यालकार सूत्र .. वामन
११—काव्य प्रकाश .. मम्मट
१२—काव्य मीमासा राजशेखर
१३—काव्य कल्प लता वृत्ति अरि सिंह
१४—कवि कल्प लता . देवेश्वर
१५—काम शास्त्र .. वात्स्यायन
१६—काव्यानुशासन वाग् भट्ट
१७—किरातार्जुनीय . भारवि
१८—कुमार सभव कालिदास
१९—गीत गोविन्द जयदेव
२०—छन्द : शास्त्र . पिंगल
२१—छान्दोग्य .
२२—दश रूपक धनञ्जय
२३—ध्वन्यालोक आनन्द वर्द्धन
२४—नाट्य शास्त्र .. भरत
२५—नैषध . श्रीहर्ष
२६—बुद्ध चरित अश्वघोष
२७—बृहदारण्यक ...
२८—महाभारत .. व्यास
२९—माडूक्य .
३०—मुडक
३१—मेघदूत .. कालिदास

३२—रघुवश ... कालिदास
३३—रामायण .. वाल्मीकि
३४—रस गगाधर ... जगन्नाथ
३५—वक्रोक्ति काव्य जीवतम् ... कुन्तक
३६—शतपथ ...
३७—शिशुपाल वध ... माघ
३८—श्वेताश्वतर ...
३९—श्रीमद्भागवत्
४०—सरस्वती कंठाभरण .. भोज
४१—साहित्य दर्पण ... विश्वनाथ
४२—सुभाषित रत्न भाडागार ... काशी नाथ (सपादक)
४३—सुवृत्त तिलक .. क्षेमेन्द्र

List of the English Book

1	After strange Gods	.. T. S Elliot
2.	A history of Sanskrit Literature	.. Keith
3	A History of Sanskrit Literature	S N Das Gupta
4	A Psychological a Study in Rasa	. Dr. Rakesh.
5.	An Introduction to the study of Literature	W H Hudson.
6	An Introduction to Sahitya Darpana	P V Kane
7.	An Introduction to the Poetry of Romantic Revival	K K Sharma
8.	Convention and Revolt in Poetry	... John Livingston
9	Encyclopaedia of the Social Sciences	..
10.	Illusion and Reality	. Codwell
11.	Life in the Gupta Ages	. Raj Narain Sekhtor.
12	Historical Introduction to Modern Psychology	. Gardner Murphy.
13	English Literature and Ideas in the twentieth Century	. D H V Rooth.
14.	Nationality	... Sydeny Herbert.

	New b arings in English	...	F.R. Leavis Poetry
	Psychological Types	.	C.G Jung.
	Symbolism A Psychological Study	..	Dr Padma Agrawal.
8	Selected Prose	...	T S Elliot.
9	The Encyclopaedia Britanica	.	
0	The Psychology of Society	..	Morris Ginsderg.
1.	The Classical Tradition in Poetry	..	Gilbert Murray.
2.	The Oxford Dictionary	.	
3	The West Land	.	T S. Eillot.
4.	The Making of Literature	...	R.A Scott James.
25	The Romantic Imag nation	...	C M. Bowra.
26	Theory of Poetry	..	Abercrombie.
27	Studies in the History of Sanskrit Poetics		S.K De
28	Principles of Literary Criticism		I A. Richard.
29.	Literature and Psychology	.	F L Lucas.
30	Vedic Metre		Ghate
31	Vedic Grammar	.	Macdonald.

पत्रिकाएँ

१—अवन्तिका ...

२—आलोचना

३ —कल्पना

४—काव्यधारा

५—नागरीप्रचारिणी पत्रिका

६—नई कविता